॥ श्रीशः ॥

व्रतोत्सव-चन्द्रिका ।

अर्थात्

हिन्दुत्योहारोंका शास्त्रीय विवेचन ।

लेखक और प्रकाशक :—

झालरापाटन (राजपूताना) निवासी, सनाढ्यकुलोद्भव,
पं० गणेशरामात्मज, श्रीमान् "व्याख्यान-कौस्तुभ-
विभूषण" एवं "वाणी-विभूषण" पं०
श्रवणलाल शर्मा, महामहो-
पदेशक श्रीभारतधर्म-
महामण्डल ।

—:※:—

श्रीयुत् बाबू एच्. एन्. बागचीके प्रबन्धसे
भारतधर्म प्रेस, स्टेशन रोड, जगत्गंज, बनारसमें मुद्रित ।

प्रथमावृत्ति— १५०० | सम्वत्— १९८० | मूल्य— ३) तीन रु०

मुख-बन्ध ।

'विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः'

श्रीभगवान् नन्दनन्दनके मुखारविन्दनिःसृत इस मधुर वचनके द्वारा व्रतोंकी चित्तशुद्धिविधायिनी उपकारिता सुस्पष्ट होती है। व्रतोंमें विहित शारीरिक, मानसिक तपके अनुष्ठान द्वारा तथा इष्ट पूजादि उपासनाङ्गोंके द्वारा कल्मषनाश, भगवत्सान्निध्यलाभ तथा आध्यात्मिक उन्नतिसाधन अवश्य ही होता है। इसी कारण आर्य्यशास्त्रमें प्रत्येक वर्ण तथा आश्रमस्थ नरनारियोंके लिये अनेक प्रकारके व्रतोंकी आज्ञा दी गयी है।

'उत्सव' के विना मनुष्यजीवन मरुमय हो जाता है, क्योंकि श्रीभगवान्‌की आनन्दसत्ताका प्रचुर विकाश मनुष्यजीवनमें ही होता है और उत्सवमें उसी हृदयनिहित आनन्द उत्सवके उत्सारित होनेका यथार्थ अवसर प्राप्त होता है। यही कारण है, कि तत्त्वदर्शी पूज्यचरण महर्षियोंने यवन जातियोंकी तरह आर्य्यजातिको 'मृत्यूत्सव' न मनाकर 'जन्मोत्सव' आदिके मनानेकी ही आज्ञा दी है। वास्तवमें मृत्युमें कोई उत्सव नहीं हो सकता है, केवल शोक-प्रकाश ही हो सकता है। महापुरुष तथा अवतारोंके स्मरणार्थ तत्तत्सम्बन्धीय जन्मोत्सव, विजयोत्सव, धर्मोद्धारोत्सव आदि उत्सव ही अनुगुणार्थक हो सकते हैं। इसी कारण आर्य्यशास्त्रमें व्रतके साथ उत्सवका बहुधा विधान दृष्टिगोचर होता है।

जिस प्रकार व्रतमें इष्ट ध्यानादि द्वारा श्रीभगवान् तथा देवतादिके साथ अन्तःकरणकी तादात्म्य भावप्राप्ति होती है, उसी प्रकार उत्सवमें भी उत्सवपात्र भगवद्विभूति तथा भगवदवतारादिके अलौकिक गुणग्राम हृद्गत होकर मनुष्य-हृदयको शिवभावमें अवश्य ही भावित कर देते हैं। श्रीकृष्णजन्मके महोत्सवको मनाते समय पूर्णावतार नन्दनन्दनकी अलौकिक सर्वाङ्ग सम्पूर्ण चरित्र चिन्ताके द्वारा किसका हृदयकमल शतदलकमलकी तरह प्रस्फुटित होकर श्रीभगवान्‌के चरण कमलोंमें उत्सर्गीकृत न होगा? नवघनश्याम भगवान् रामचन्द्रके दशाननविजयोत्सवको मनाते समय किस आर्य्यसन्तानकी पवित्र धमनीमें असुर-विजयमयी रुधिरधारा प्रवाहित न होगी? इस प्रकारसे उत्सवोंके

द्वारा मनुष्य-हृदय अवश्य ही वीरता, धीरता, उदारता, आस्तिकता, धर्मप्राणता, महाप्राणता, आध्यात्मिकता आदि देवदुर्लभ गुणोंका विकाशस्थल बन सकता है। इसी कारण देशमें व्रतोत्सवोंका यथाशास्त्र प्रचलन होना विशेष लाभजनक है, इसमें अणुमात्र सन्देह नहीं।

कालप्रभावसे व्रतोत्सवोंके शास्त्रीय प्रचलनपथमें अनेक विघ्न उपस्थित हो रहे हैं। इसमें एक ओर तो शास्त्रज्ञानके अभावसे अनेक वीभत्सादिभावपूर्ण कुरीतियाँ व्रतोत्सवोंके अङ्गरूपसे चल पड़ी हैं। जिस कारण सभ्य जनोंकी रुचि इनसे दिन बदिन हट रही है और दूसरी ओर व्रतोत्सवोंके शास्त्रीय तथा देश और जाति उन्नतिकर लक्ष्यके साथ सर्वथा अपरिचित होनेके कारण उच्चकोटिके नर नारियोंमें इनका प्रचार क्षीण होकर केवल मूढ़जनोचित गड्डलिकाप्रवाहरूपसे इनका तामसिक अनुष्ठान हो रहा है। अतः इन सब दोषोंके मूलसे व्रतोत्सवोंको मुक्त करके जिससे मनुष्य-हृदयमें इनके प्रति यथार्थ प्रीतिका उदय हो सके ऐसा प्रयत्न करना विद्वानोंका अवश्य कर्तव्य है।

'व्रतोत्सवचन्द्रिका' के प्रणयन द्वारा श्रीमान् वाणीविभूषण महामहोपदेशक पं० श्रवणलालजीने उल्लिखित जातीय आवश्यकताका विशेषरूपसे समाधान कर दिया है, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने इसमें प्रथमतः व्रतोत्सवोंके शास्त्रीय-स्वरूपपर प्रकाश डालकर तदनन्तर क्रमशः उनकी अनुष्ठानविधि, उनका लौकिक-स्वरूप, प्रचलित कथादि और अन्तमें इन व्रतोत्सवोंसे हमें देश तथा जातिहितकर कैसी शिक्षा मिलती है, इसका सुन्दर विवेचन किया है। इस प्रकार विशद विवेचनके द्वारा यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी हुआ है। श्रीमान् वाणीविभूषणजीके इस धार्मिक पुरुषार्थके द्वारा आर्य्यसाहित्यजगत् तथा धर्मजगत्का एक चिरन्तन अभाव दूरीभूत हुआ है, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देहावसर नहीं है।

संशोधनमें अति शीघ्रता तथा पण्डितजीके मुद्रण-स्थानसे अति दूर रहनेके कारण संस्कृत श्लोकोंमें तथा हिन्दी भाषामें कहीं कहीं वर्णाशुद्धि और रचनाशुद्धि रह गयी है। जिसको सहृदय, गुणग्राही पाठक अवश्य ही क्षमा करेंगे। इति शम्।

विजयादशमी
संवत् १९८० विक्रमीय

दयानन्द
श्रीभारतधर्ममहामण्डल, काशीधाम।

प्रस्तावना।

—०ॐ०—

पाठकवर्ग ! आप जिस प्रकार विभु भगवान्के विराट-रूप स्थूल-जगत्को प्रतिक्षण परिवर्त्तित देखते हैं, ठीक उसी प्रकार जगत्के सूक्ष्म-रूपमें भी परिवर्त्तन होता रहता है। जिसकी साक्षी अपने अहर्निशके परिवर्त्तनसे स्थूल-जगत् ही दे रहा है। जगत्के तत्वोंमेंसे यदि हम एक कालका ही अनुसन्धान करने लगें, तो विदित होगा, कि सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग आदि बड़े बड़े परिवर्त्तनोंके अतिरिक्त प्रतिदिन अथवा प्रतिक्षणमें कितने ही अन्य परिवर्त्तन भी होते रहते हैं। विचित्रता यह है कि, कालके विभाजक सूर्य्यदेवको भी अवश होकर इस परिवर्त्तनात्मक वेगके पञ्जेमें फँसना पड़ता है। प्रातःकाल जिस सूर्य्यकी मनोहरमूर्त्तिको देखकर एक नन्हासा बालक भी स्पर्श करनेको उत्सुक होता है, क्या ही सृष्टिकर्त्ताका वैचित्र्य है कि, मध्यान्ह कालीन उसी सूर्य्यकी उत्तप्तरश्मियोंको देखकर बड़े बड़े शूर वीर भी घबड़ा जाते हैं। पुनः सायंकालके समय वही सूर्य्य अपनी क्षीण किरणोंद्वारा जिस प्रकार अपने वार्धक्यको द्योतन करता है, यह पाठकोंसे छुपा हुआ नहीं।

जब कालके विभाजक सवितादेव ही परिवर्त्तित होते हुए प्रतिक्षण अपने जन्म, वृद्धि और क्षयको चरितार्थ करते हैं; तो फिर अन्य क्षुद्र एवं पामरजीवोंकी अथवा पदार्थोंकी क्या शक्ति है, जो इस अनिवार्य-वेगकी टक्करसे बच सकें। दुःखके साथ लिखना पड़ता है, कि इसी अनिवार्य परिवर्त्तनकी दृष्टि अन्य पदार्थोंकी तरह जब हिन्दुओंके बढ़े हुए "साहित्य" पर पड़ी; तो उसको अचिरकालमें ही नामशेष कर दिया। जिस समय हिन्दुओंका "साहित्य" यौवनावस्थामें था, उस समय उसने भारत ही नहीं, किन्तु समस्त संसारको चकित कर दिया था। आज पाश्चात्य साहित्यकी वृद्धिको देखकर हम आर्य्यगण जो चकित हो रहे हैं; इसका कारण यही है, कि हमको अपने प्राचीन साहित्यका स्मरण नहीं है। जिन विदेशी लोगोंके बढ़े हुए "साहित्य" को देखकर हम मुग्ध हो जाते हैं, वे लोग भी आज मुक्तकण्ठसे आर्य्योंके प्राचीन साहित्यकी प्रशंसा कर रहे हैं; परन्तु दुःख है कि, यह प्रशंसा बढ़े हुए हिन्दु-साहित्य-भवनके खँडहरोंकी है।

आपको स्मरण होगा, कि हमारा यह भारतवर्ष बहुत समय तक यवन सम्राटोंके अधिकारमें रह चुका है। खेदके साथ लिखना पड़ता है, कि उसी

कालमें कतिपय अदूरदर्शी यवनसम्राटोंने हिन्दुओंके पढ़े हुए "साहित्य" से चिढ़कर बलात्कारसे उसको नष्ट कर दिया। कौन हिन्दुसाहित्यज्ञ यह नहीं जानता, कि उस समय हमारा पुस्तकभण्डार वर्षोंतक धधकती हुई अग्निमें भस्मसात् होता रहा था। कहीं जलको गर्म करनेके लिये और कहीं अन्यान्य कार्योंके लिये काष्ठके बदलेमें आर्यशास्त्र ही जलाये गये थे। सुनते हैं, कि एक बार तो करोड़ों ही ग्रंथोंको एकत्र कराकर अग्नि लगा दी गयी थी, जिससे उस पुस्तक-पुञ्जकी अग्नि छः मास तक भी न बुझी।

यद्यपि प्राचीन हिन्दु साहित्यके कुछ मौलिक ग्रंथोंका पता जर्मनीमें लगता है, परन्तु वे ग्रन्थ जर्मन-देशमें कब और कैसे गये इसके विषयमें कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि, वे सब पुस्तकें समुद्रमें डुबानेके लिये जा रही थीं, इतनेमें किसी जर्मन व्यापारीने उन्हें खरीद लिया।

"सब दिन जाहिं न एकसे" की कहावतके अनुसार समय तथा भाग्यका पट परिवर्त्तन अवश्यम्भावी है। तदनुसार इस देशमें अन्य राजाका राज्य हुआ, जिससे बचे हुए प्राचीन शास्त्र तथा ग्रन्थोंकी कथञ्चित रक्षा हो सकी। यह तो निर्विवाद ही है, कि जब मनुष्य स्वस्थ होकर आनन्दका उपभोग करने लगता है, तब उसका ध्यान अवश्य ही अपने गौरवकी खोजमें लगता है और वह जानना चाहता है, कि मैं प्रथम कौन था, मेरे मूल प्रवर्त्तक पुरुष कैसे थे, और अब मेरी क्या स्थिति है? जिस प्रकार एक व्यक्तिकी यह दशा है, ठीक इसी प्रकार जातिकी भी दशा होती है। यही कारण है कि, आज हमारी हिन्दु-जाति भी स्व-स्वरूपानुसन्धानकी ओर झुकी है।

यह तो सब लोगोंको विदित ही है, कि अपने स्वरूपका अनुसन्धान बिना प्राचीन-साहित्यके नहीं हो सकता, क्योंकि मूल-पुरुषोंका इतिहास प्राचीन साहित्यमें ही है। मेरी समझमें वे लोग बड़ी भूल करते हैं, कि जो प्राचीन साहित्यकी अवहेलना करके नवीन और वैदेशिक-साहित्यके द्वारा जनताको स्व-स्वरूपानुसन्धानकी ओर झुकाना चाहते हैं। विदेशियोंका नवीन साहित्य अनेक उपयोगी रत्नोंसे परिपूर्ण होनेपर भी हमारे लिये स्वरूप-विस्मृतिका ही कारण हो सकता है, न कि स्वरूपानुसन्धानका।

बड़े आनन्दकी बात है, कि आजकल हमारे देशके बहुधा मुखियोंका ध्यान भी इस तरफ आकृष्ट हुआ है। जिसके कारण अब देशमें प्राचीन

साहित्यके उद्धारका आन्दोलन ही नहीं, किन्तु कार्य्य भी प्रारम्भ हो गया है। इस साहित्योद्धारके इस समय तीन विभाग हैं:—(१) प्राचीन ग्रंथोंका अन्वेषण करके उनको मुद्रित कराकर प्रकाशित करना,—(२) प्रकाशित संस्कृत ग्रंथोंके हिन्दीमें अनुवाद कराकर जनताके सामने रखना,—(३) अनेक शास्त्रोंमेंसे चुनकर किसी आवश्यक विषयपर प्राचीन साहित्यके अनुकूल निबन्ध लिखना। उक्त तीनों विभागोंमें ही आजकल समुचितरूपसे उन्नति हो रही है, परन्तु फिर भी इस कार्यमें विशेष परिश्रम करनेकी आवश्यकता है। मेरी रायमें सम्पूर्ण सनातनधर्म सभाओं और प्रान्तीय मण्डलोंका भी यही कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वे भी इन तीन ही विभागोंमेंसे किसी न किसी विभागकी उन्नति करते हुए देशोद्धारकों एवं प्राचीन साहित्योद्धारकोंका हाथ बटावें।

सन्तोषकी बात है, कि अब प्रान्तीय मण्डलोंका ध्यान भी इस ओर झुका है। इसी कारण श्रीभारतधर्ममहामण्डलके संयुक्त-प्रान्तीय मण्डल मेरठने लखनऊके महाधिवेशनमें प्रस्ताव पास किया था,—"हिन्दू-त्यौहारोंका इतिवृत्त, वेद-पुराण आदिमें अनेक स्थानोंपर प्रकीर्ण-रूपसे लिखा है, इस कारण उन सब विषयोंका संग्रह होकर, एक संग्रहात्मक ग्रंथ बननेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। क्योंकि प्रत्येक जातिका पूर्व इतिहास उस जातिके प्रचलित त्यौहारोंसे बड़ा सम्बन्ध रखता है। अतः हिन्दी-भाषामें एक इस प्रकारके निबन्ध लिखे जानेकी आवश्यकता है, कि यह "त्यौहार" कब, किस कारणसे और किस महापुरुषके द्वारा चला एवं अब उसकी क्या आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक त्यौहारके साथ जिन जिन आर्य-पुरुषोंका सम्बन्ध है, उन उनकी जीवनी किस प्रकारकी थी, यह भी लिखना चाहिये।"

मैंने भी यू० पी० मण्डलके प्रस्तावानुकूल और सनातनधर्मी जगत्में इस प्रकारकी पुस्तकका अभाव देखकर, विचार किया, कि "व्रतोत्सव-चन्द्रिका" नामक एक पुस्तक अवश्य बनाई जाय। तदनुसार यह "व्रतोत्सवचन्द्रिका" विद्वज्जनोंकी सेवामें सादर समर्पण कर प्रार्थना है, कि सज्जन लोग सारग्राही होकर इसका अवलोकन करें।

हिन्दी साहित्यमें इस प्रकारकी कोई अन्य पुस्तक नहीं है; इस कारण इसमें अनेक त्रुटियोंका रह जाना बहुत सम्भव है। सहृदय पाठक यदि कृपा कर इस दासको सूचित करेंगे, तो द्वितीयावृत्तिमें उन सबका सुधार हो जायगा।

आपका—ग्रन्थकर्त्ता।

भूमिका।

जो भारतवर्ष सृष्टिके आदिकालसे ही आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक उन्नतिका केन्द्र बन रहा था, समय पाकर वह आज अनेक परिस्थितियोंके कारण इतना नीचे गिर गया है, कि हमको अपने प्राचीन वैभवका स्मरण तक भी नहीं रहा। क्रिया-रूपसे कार्यके विस्मरण हो जानेपर उसका स्मरण-रूप संस्कार ही पुनः उद्बोधन या उन्नति अथवा क्रियारूपमें लानेका कारण बनता है। जिन लोगोंके अन्तःकरणमें अपने प्राचीन-गौरवका स्मरण नहीं रहता, उनके उस संस्कारको जागृत करनेका सर्वोपरि उपाय प्राचीन-गौरवका स्मरण कराना ही है। स्मरण होनेसे मनोगत आन्दोलन-ध्यान-होता है। ध्यानसे वाणीमें आता है और पुनः अचिरकालमें ही वह गौरव क्रियारूपमें परिणत हो जाता है। इसीका नाम पूर्णोन्नति है। उपनिषद्में भी लिखा है :—

"यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति।
यद्वाचा वदति तत् करोति तदभिसम्पद्यते॥"

कोई भी कार्य ध्यान और वाणीमें आये विना क्रियारूपमें परिणत हो नहीं सकता। अतः सम्पूर्ण भारतियोंके अन्तःकरणमें प्रथम प्राचीन गौरवान्वित वैभवका स्मरण कराना ही देशोन्नतिका प्रथम सोपान है।

जिन लोगोंको अपनी अज्ञानताके कारण प्राचीन वैभवका स्मरण नहीं है, उनको तो स्मरण कराना अभीष्ट ही है, परन्तु जो लोग पढ़-लिखकर और पण्डितम्मन्यताका अभिमान करते हुए भी पूर्णोन्नत प्राचीन गौरवको तुच्छ मानते हैं एवं उस गौरवयुक्त वैभवके उत्पादक अपने पूर्वजोंको मूर्ख तथा असभ्य कहने ही में अपनी विज्ञता तथा पण्डिताई प्रकट करते हैं और देशमें इसी प्रकारकी शिक्षाके प्रचारको श्रेय मानते हैं, उन लोगोंको प्राचीन वैभवका स्मरण कराना ही मुख्य प्रयोजन है। मेरी समझमें जो लोग उपर्युक्त शिक्षाको भारतमें प्रचलित करना चाहते हैं, वे देशरक्षक नहीं, किन्तु देशभक्षक हैं और देशको अधोगतिमें लेजानेके कारण बनते हैं। दौर्भाग्यवश आजकल देशमें हम इसी प्रकारके पुरुषोंकी अधिक संख्या देख रहे हैं। अर्थात् जो लोग देशके अगुआ कहलानेमें अपनी शोभा समझते हैं, वेही लोग देशके प्राचीन पुरुषोंसे घृणा करते हैं। यहांतक कि देशकी प्राचीन रीति-नीतिको बुरा ही नहीं कहते; किन्तु भारतकी खान-पान और भाषा पोशाकसे भी नफरत करते हैं।

आजसे पांच हजार वर्ष पूर्व जब इस भारतमें गऊ एवं गोपालोंकी अधोगति पराकाष्ठापर पहुँच चुकी थी और एक अत्याचारी राजाके भीषण-दमनसे पृथ्वी कम्पित हो रही थी, तब भगवान् कृष्णचन्द्रका आविर्भाव हुआ था। आविर्भाव होनेके पश्चात् भगवानने स्थिर किया था,—"मैंने जिस जातिको उद्धार करनेके लिये अवतार धारण किया है, उस जातिकी रीति-नीति, पोशाक और खान-पान एवं भाषासे जबतक प्रेम न होगा, तबतक उस जातिकी उन्नति होना असंभव है।" इसी कारण त्रिलोकीनाथ होनेपर भी समस्त वैभवोंको छोड़कर उस नटनागरने गोपोचित गुञ्जाओंके आभूषणोंसे अपने आपको अलंकृत किया; लक्ष्मीनाथ होनेपर भी अपने जगद्वन्द्य मस्तकको मयूरपिच्छोंके मुकुटसे सजाया और शंख, चक्र, गदा, पद्मको वैकुंठमें ही छोड़कर निज करकमलोंमें गोपोंके सदृश लकुटियाको लेकर, गोकुलकी रक्षा करते हुए भाण्डीरक आदि वनोंमें भ्रमण किया। सारांश यह है, कि जिस देश अथवा जातिकी उन्नति करना अभीष्ट हो, उस देशकी रीति-नीतिका अवलम्बन करना आवश्यक है।

एक वस्तुको सूक्ष्मरूपसे स्थूलरूपमें लेजाना ही उन्नति है; न कि, उसके सूक्ष्मरूपको नाशकर, स्थूलरूपमें परिवर्त्तन करना। उदाहरण स्थलपर देखो,—"हमको एक बटके वृक्षकी उन्नति करनी है, तो उस बटवृक्षके छोटेसे बीजमें जो संस्काररूपसे स्थूलबट समाया हुआ है, उसीको संस्कार-रूपसे स्थूलरूपमें लाकर विशाल बट बना देना ही "बटोन्नति" है। यदि कोई अविचारी मनुष्य उस बटके बीजमें किसी औषधिका पुट देकर—उससे गूलरका वृक्ष उत्पन्न करदे, तो कोई भी समझदार पुरुष उसको बटोन्नति नहीं कहेगा; किन्तु सब लोग बटका नाश एवं गूलरकी उन्नति ही कहेंगे। ठीक इसी प्रकार जो लोग विदेशी रीति-नीति, भाषा और खान-पान पूर्वक विदेशीय व्यक्तियोंको आदर्श मानकर भारतकी उन्नति करना चाहते हैं; वे मानो, भारतके बीजरूप आर्यप्रणालीके विरुद्ध भारतीय बीजमेंसे विदेशवृक्ष निकालना चाहते हैं। इससे ज्ञात होता है, कि भारतको नाशकर और हिन्दु जातिको डुबोकर, विदेश एवं विदेशियोंकी उन्नति करना ही इस प्रकारके लोगोंका ध्येय है।

इन दिनों देशके बहुधा अगुआओंके अन्तःकरणोंमें अब यह विषय अच्छी प्रकार स्थान पा गया है, कि जबतक हमारे देशकी प्राचीन रीति-नीति एवं प्राचीन पुरुषोंमें आदर बुद्धि न होगी, तबतक हम आदर्शके बिना देशोन्नति

कदापि नहीं कर सकते, यह देशका परम सौभाग्य है। इससे भी अधिक आनन्दकी बात यह है, कि इस परम प्रयोजनीय नियमके प्रचारार्थ हमारे बहुतसे नेता बड़ा भारी प्रयत्न कर रहे हैं और अपने आचरणोंसे भी हमको यही पाठ पढ़ा रहे हैं। परमात्मा इस प्रकारके जात्यभिमानी एवं देशाभिमानी महापुरुषोंके परिश्रमको सफल करे, यही प्रार्थना है।

पाठकवर्ग! हमलोगोंकी प्राचीनकालमें रीतिनीति किस प्रकारकी थी, इसका निर्णय हिन्दु त्यौहारोंसे अनायास और अच्छा हो जाता है, बल्कि जब तक हमारे देशमें त्यौहारों—उत्सवों—का लोगोंको ठीक ज्ञान न होगा, तबतक प्राचीन इतिहासपर ध्यान जाना असंभव है। यद्यपि त्यौहार अब भी हमारे देशमें प्रचलित हैं; परन्तु उनका प्रचार ज्ञानपूर्वक नहीं किन्तु रूढी-मूलक है। यही कारण है, कि वर्त्तमान कालमें अशिक्षित समाजके लोग त्यौहारोंका पालन विशेष रूपसे करते हैं और शिक्षित समाज उत्तरोत्तर त्यौहार-प्रणालीसे उदास हो रहा है। बल्कि कितने ही शिक्षितोंने तो इस त्यौहार-प्रणालीको अशिक्षितोंका सनातनधर्म मान लिया है और इसी कारण वे लोग इस प्रथाका बड़े जोरसे खण्डन करने लग गये हैं। इस वैमत्यके कारण ही आजकल हिन्दु समाजमें शिक्षित और अशिक्षितोंका भेद हो गया है और वह भेद आपसकी फूटका एक प्रधान अङ्ग बन गया है।

शिक्षित समाज जबसे अशिक्षितोंके कार्यका तिरस्कार करने लगा, तबसे अशिक्षित समाजने भी शिक्षितोंके कार्यकी बुराई करना प्रारंभ कर दिया। परिणाम यह हुआ, कि शिक्षित समाज अपनेको देशका नेता मानकर, जिस "कुरीति" से अशिक्षित समाजको हटाना चाहता है; वह अशिक्षित समाज इनकी बातको सुनता ही नहीं और जो सुनता है, तो इनके समर्थित विषयका खण्डन करना ही अपना धर्म समझता है। इस कारण देशकी हालत दिन ब दिन नीचेको गिरती जाती है। सारांश, अशिक्षित समाजमें ही कुछ कुछ त्यौहारोंका प्रचार देखा जाता है, परन्तु खेद है, कि वह जड़श्रद्धा एवं अन्ध-विश्वासपर स्थित है। जड़श्रद्धा एवं अन्ध-विश्वासपर जिस कार्यकी नींव रक्खी जाती है, वह बालूकी भींतके सदृश तत्काल ही किसी परिवर्तनके वेगमें बह जाता है; परन्तु ज्ञानपूर्वक जो भी प्रारंभ होता है, वह युगान्तरकी वायुसे भी नहीं कम्पित होता। इसी कारण प्रत्येक देशहितकारी कार्यको शिक्षित समाजमें पहुँचानेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

यह "व्रतोत्सव-चन्द्रिका" नामक पुस्तक इसी कारणसे बनायी गयी है, कि विज्ञसमाज समुचितरूपसे हिन्दूओंके त्यौहारोंपर दृष्टिपात करके देखे, कि प्रत्येक त्यौहार हमारी देशोन्नति, समाजोन्नति और धर्मोन्नतिपर कितना गहरा प्रकाश डालता है।

"हितोपदेश" एवं "पंचतंत्र" आदि ग्रन्थोंमें जिस प्रकार श्याल और कबूतरोंके इतिहासोंकी पोशाक पहनाकर समाजनीति, राजनीति और धर्मनीतिके तत्त्वोंको भर दिया है; उसी प्रकार हिन्दू त्यौहारोंको भी बाह्य घटनाओंकी पोशाक पहनाकर, उनमें देश, धर्म और राजनीतिके तत्त्वोंको हमारे पूर्वजोंने किस प्रकार भरा है, इसका पता विज्ञ पाठकोंको इस पुस्तकसे भली भांति लग जायगा।

यद्यपि चैत्रशुक्ला प्रतिपदासे लगाकर चैत्रकृष्णा ३० तक हिन्दुओंके अनेक त्यौहार आते हैं, परन्तु जिन त्यौहारोंसे हम केवल एक ही घटनापर पहुंच सकते हैं, इस प्रकारके सब त्यौहारोंको छोड़कर, जिन त्यौहारोंसे अनेक तत्त्वोंका स्पष्टीकरण होता है, उस प्रकारके ४४ त्यौहारोंका ही इस पुस्तकमें प्रतिपादन किया गया है।

"त्यौहार" शब्दसे बहुधा उत्सवका बोध होता है, परन्तु उत्सव दो प्रकारके होते हैं। एक वह उत्सव जो किसी प्राचीन व्यक्ति या घटनाका स्मारक हो और दूसरा वह जो वर्त्तमान व्यक्ति या घटनाके होनेपर हो। इनमेंसे प्राचीन व्यक्ति या घटनाके स्मारकमें जो उत्सव किया जाता है, उसीको "त्यौहार" कहा जाता है। प्राचीन व्यक्ति अथवा घटनाका स्मारकरूप उत्सव जो प्रतिवर्ष किया जाता है, उसका तात्पर्य्य यही है, कि सालमें एक दिन उस प्राचीन व्यक्ति अथवा घटनासे हमारे अन्तःकरणका तादात्म्यभाव हो जाय। जिस व्यक्ति अथवा घटनामें देशके कल्याण-गुणगणोंका कोश भरा हो, उसके साथ तादात्म्यभाव हो जानेसे उन जगदुद्धारक गुणोंका पुञ्ज हमारे अन्तःकरणमें आकर विराजमान हो जाता है। अर्थात् उनके गुणोंसे गुणान्वित होकर हम भी अपनी जाति अथवा देशका कल्याण कर सकते हैं।

प्राचीन कालमें कुलशेखर नामका एक राजा नीलाचल पर्वतपर रहता था, जो सीतारामका बहुत बड़ा भक्त था। एक समय यह राजा श्रीमद्वाल्मीकि-रामायणकी कथा श्रवण कर रहा था। जिस समय कथा व्यासने कही,— "श्रीरामचन्द्रजीकी अनुपस्थितिमें रावण आया और जगज्जननी जनकनन्दिनी-

को पञ्चवटीसे चुराकर ले गया।" इस घटनाको सुनकर शोकसन्तप्त राजा कुलशेखर अपने आपको भूल गया और अतीत वृत्तान्तको वर्त्तमानमें जानकर, उसी समय खड्गको हाथमें लेकर, लंकापुरीकी ओर प्रस्थित होकर, सेतुबन्धके पास क्षारसिन्धुके तटपर खड़ा होगया। चाहता था, कि समुद्रमें कूदकर, दुष्ट रावणको दण्ड देकर, सीतामाताको फिर पीछी लाऊं, परन्तु यह उसके तादात्म्यभावका आतिशय्य था। कारण कि, तादात्म्यभाव अन्तःकरणके गुणोंका तत्स्वरूप कर सकता है; पदार्थोंके गुणोंको नहीं पलट सकता। यदि राजा समुद्रमें गिर गया, तो इसके प्राण जानेका डर है, यह विचार कर श्रीरामचन्द्रजी सीताके सहित नौकामें दिखलाई दिये और कहा,—"राजन्! मैं सीताको ले आया, अब तुम्हारे जानेकी आवश्यकता नहीं है।" इस प्रकार राजाको सन्तोष हुआ।

पाठकवर्ग! यह तो कथाके तादात्म्यभावका नमूना है, परन्तु त्योहार वा उत्सवका मनाना तो कथाका अभिनय है। यदि अभिनयमें लोगोंको तादात्म्य भाव न हो, तो उस प्रकारका त्योहार मनाना व्यर्थ है।

सारांश, त्योहारके समयपर जो लोग त्योहार मनावें, उनमें तादात्म्यभाव अवश्य होना चाहिये। यदि वह न हो, तो त्योहारका मनाना न मनाना बराबर है। आज यदि अरुन्धति-व्रतके दिन हिन्दु ललनाओंके अन्तःकरणोंमें परम पतिव्रता अरुन्धतिका तादात्म्य होजाय, तो फिर क्या हमारे देशमें दुराचारकी सृष्टि उत्पन्न हो सकेगी? कदापि नहीं। परन्तु खेद है कि, अरुन्धतिव्रतका पालन होते हुए भी देशमें अनेक अनर्थोंकी उत्पत्ति हो रही है; जिसके कारण देश रसातलको जा रहा है। यदि भविष्यमें भी यह परिपाटी इसी प्रकार चली गयी, तो एक दिन हिन्दूजाति नामशेष होजायगी।

इसी प्रकारसे अन्य त्योहारोंको भी समझना चाहिये। यदि रामनवमीके त्योहारको मनाते हुए हम भारतीयोंके अन्तःकरणमें भगवान् रामचन्द्रजीके शुभ गुणोंका तादात्म्य होता, तो आज भारतमें भ्रातृभावकी मन्दाकिनी हिलोरें ले रही होती; जिससे देशमें सर्वत्र एकता नदीका नाट्य देखनेमें आता और भारतमें निवास करते हुए ही हमलोग स्वर्गीय नन्दनवनके सुखोंका उपभोग करते, परन्तु कहां इस अभागे देशमें तादात्म्यभाव हो सकता है? इस तादात्म्यभावके अभावका ही कारण है, कि आजकल भारतमें मुकद्दमे और साथ साथ अनन्त झगड़े बढ़ रहे हैं।

निष्कर्ष यह है, कि यदि हमलोग रामनवमीके त्यौहारको मनाते हुए उसके तादात्म्यभावको प्राप्त होते, तो भगवान् रामचन्द्रजी, भरत और शत्रुघ्नके पारस्परिक भ्रातृभावकी पवित्र धारा हमारे अन्तःकरणोंमें बहे बिना न रहती ; जिससे पारस्परिक विद्वेषका मूल नाश होकर देशमें सर्वत्र आनन्द छा गया होता, परन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है, कि रामनवमीका त्यौहार मनानेपर भी नहीं मनाया जाता।

पाठकोंको उपरोक्त दोनों उदाहरणोंसे ज्ञात हुआ होगा, कि देशोन्नतिके लिये प्राचीन त्यौहार-प्रणालीको उत्तेजना देनेकी कितनी आवश्यकता है। यदि सुशिक्षित समाज इस ओर ध्यान दे, तो इस प्रणालीका उद्धार अनायास ही हो सकता है।

अन्तमें परम कृपालु भगवान् कृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रार्थना है, कि भगवन्! जिस देशके उद्धारार्थ आपने समय समयपर अनेक अवतारोंको धारण किया है, आज उसी देशकी नौका समयके प्रबल भँवरमें पड़ी है; कृपाकर एकबार फिर भी इस पर दया करो और सम्पूर्ण भारतीयोंकी बुद्धिको सत्त्वगुणी बनाकर देशमें त्यौहार-प्रणालीका पुनः प्रचार करो।

ग्रन्थकर्त्ता।

धन्यवाद ।

मैंने इस "व्रतोत्सव-चन्द्रिका" नामक पुस्तकके बनानेमें प्राचीन एवं अर्वाचीन अनेक पुस्तकों और लेखोंकी सहायता ली है। उन पुस्तकों और लेखोंके नामोंको लिखनेपर ग्रन्थका आकार बहुत बढ़ जायगा, इस लिये यह कहदेना ही पर्याप्त होगा, कि इस पुस्तकमें जो कुछ लिखा गया है अथवा संग्रह किया गया है, वह सब मेरा न होकर और और सज्जनोंका या पुस्तकोंका ही भाव है। योजना मात्र मेरी है। हां, जहां-जहां अशुद्धियां रह गई हों वे अवश्य ही मेरी हैं।

यद्यपि, अर्वाचीन और प्राचीन अनेक पुस्तकोंसे सहायता ली गई है, तथापि प्राचीन पुस्तकोंमें संस्कृतके "व्रतराज" से और अर्वाचीन पुस्तकोंमें मराठी भाषाके "आर्य सणांचा अर्वाचीन व प्राचीन इतिहास" से जो सहायता ली है, वह अन्यके अपेक्षा मौलिक है; इस लिये इन दोनोंके रचयिता महानुभाव विशेष धन्यवादके पात्र हैं। मराठी पुस्तककारने हिन्दु-त्यौहारोंका बहुत पता लगाया है; यदि उनकी पुस्तक मुझे न मिलती तो नहीं कह सकता कि, मैं इस पुस्तकका संग्रह कर सकता या नहीं।

"व्रतोत्सवचन्द्रिका" के प्रत्येक त्यौहारमें शंकासमाधान भी लिखा था और वह इतना विस्तृत था कि, "समग्र पुस्तक" का एक चतुर्थांश था। यद्यपि आजतक सनातनधर्मपर किये गये समस्त आक्षेपोंका उसमें उत्तर था, परन्तु "व्रतोत्सव-चन्द्रिका" जैसी व्यापक पुस्तकको इस प्रकरणने एकदेशीय अवश्यही बना दिया था। इस कारण शोधनकालमें श्रीपूज्य स्वामी दयानन्दजी महाराजने उन समस्त प्रकरणोंको अलग कर दिया है और अनेक प्रकारकी उचित सलाहोंसे समय समयपर लाभ पहुंचाया है। यहां तक कि, इस पुस्तकको मैं इतनी शीघ्र निकाल सका यह उनकी कृपाका ही फल है।

ब्रह्मावर्त्त सनातनधर्ममण्डल कानपुरके सभापति श्रीमान् धर्मालंकार रायबहादुर बाबू विक्रमाजीत सिंह बी. ए. एल. एल. बी., एम. एल. सी. महोदयने अति उदारताके साथ इस पुस्तकके छपानेका अधिकांश व्ययभार ग्रहण किया है, इस कारण मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूं। उनकी इस प्रकार उदार आर्थिक सहायताके विना मुझे यह ग्रन्थ प्रकाशित करना बहुत ही कठिन होता। श्रीभगवान् ऐसे धार्मिक दानवीर विद्योत्साही महानुभावको सदा सुखी, दीर्घायु तथा धर्मजगत्‌में यशस्वी बनाये रक्खें, यही उनके राजीवचरणोंमें मेरी विनीत प्रार्थना है। कृतज्ञताके निदर्शन स्वरूप व्रतोत्सवचन्द्रिकाकी कुछ प्रतियां अपने इष्ट मित्रों तथा विद्यार्थियोंके वितरणके लिये मैंने श्रीमान् रायबहादुर साहबको दे दी हैं। आशा है, इस प्रेमोपहारको स्वीकार करके वे मुझे प्रसन्न करेंगे।

ग्रन्थकर्ता।

व्रतोत्सव-सूची ।

१—चैत्र-मास ।

संख्या । विषय ।			पृष्ठ ।
१—मङ्गलाचरण ।	....	....	१
१—सम्वत्सर-प्रतिपदा ।	....	....	२
२—गणगौरी ।	....	....	६
३—अरुन्धति-व्रत ।	.	....	१०
४—राम-नवमी ।	....	....	१४
५—हनुमज्जयन्ती ।	....	....	४७

२—वैशाख-मास ।

६—परशुराम-जयन्ती ।	....	....	५९
७अक्षय्य-तृतीया ।	....	....	६७
—नृसिंह-चतुर्दशी ।	....	....	७३

३—ज्येष्ठ-मास ।

९—वट-सावित्री ।	....	....	८३
१०—गङ्गा-दशहरा ।	....	....	९७

५—आषाढ़-मास ।

११—विष्णु-शयनी-एकादशी ।	....	....	११३
१२—चातुर्मास्य ।	....	....	११९

५—श्रावण-मास ।

१३—नाग-पञ्चमी ।	....	....	१३१
१४—उपाकर्म और रक्षाबन्धन !	....	....	१३७

६—भाद्रपद-मास ।

१५—जन्माष्टमी ।	....	....	१४९
१६—हरतालिका ।	....	....	१७०
१७—गणेश-चतुर्थी ।	....	....	१७५
१८—ऋषि-पञ्चमी ।	....	....	१९४
१९—वामन-जयन्ती ।	....	....	२००
२०—अनन्त-चतुर्दशी ।	....	....	२०७

संख्या । विषय ।			पृष्ठ ।
७—आश्विन-मास ।			
२१—महालय-श्राद्ध ।	....	....	२१२
२२—देवी-नवरात्र ।	....	....	२२१
२३—दशहरा ।	....	....	२२८
८—कार्तिक-मास ।			
२४—करवा चौथ ।	....	....	२३५
२५—धन-त्रयोदशी ।	....	....	२३८
२६—नरक-चतुर्दशी ।	....	....	२४०
२७—दिवाली ।	....	....	२४१
२८—अन्न कूट ।	....	....	२५०
२९—यमद्वितीया और भाई दोज ।	....	....	२५७
३०—भीष्मपञ्चक और देव-प्रबोधनी ।	....	....	२६०
३१—तुलसी-विवाह ।	....	....	२६५
३२—वैकुण्ठ चतुर्दशी ।	....	....	२७२
३३—त्रिपुरी-पौर्णिमा ।	...	...	२७५
९—मार्गशीर्ष-मास ।			
३४—काल-भैरवाष्टमी ।	...	...	२८२
३५—चंपा षष्ठी ।	...	...	२८३
३६—श्रीदत्त-जयन्ती ।	...	...	२८४
१०—पौष-मास ।			
३७—मकर-संक्रान्ति ।	...	...	२८७
११—माघ-मास ।			
३८—वसन्त-पञ्चमी ।	...	...	२९४
३९—सौर-सप्तमी ।	...	...	२९९
४०—अचला-सप्तमी ।	...	...	३०४
४१—पुत्रदा सप्तमी ।	...	...	३०५
४२—भीष्माष्टमी ।	...	...	३०६
१२—फाल्गुन-मास ।			
४३—महा-शिवरात्रि ।	...	...	३१३
४४—होली ।	...	...	३३७

श्रीकृष्णः शरणम्।

व्रतोत्सवचन्द्रिका।

मङ्गलाचरणम्।

—:*:—

वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाऽहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः। ऐतरेयोपनिषद्।

व्रजे प्रसिद्धं नवनीत-चौरं गोपाङ्गनानां च दुकूल-चौरम्।
अनेक-जन्मार्जित-पाप-चौरं चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि॥
नीलाम्बुज-श्यामल-कोमलाङ्गं सीता-समारोपित वाम-भागम्।
पाणौ महा-सायक-चारु-चापं नमामि रामं रघुवंश-नाथम्॥

चैत्र-मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

वर्षके आरंभमें चैत्रका महीना होनेके कारण इस मासके शुक्ल-पक्षमें अनेक व्रतोत्सवों (त्यौहारों) का पृथक पृथक उल्लेख हुआ है। यदि उन समस्त त्यौहारोंका वर्णन इस पुस्तकमें किया जाय, तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ केवल चैत्रके त्यौहारोंसे ही बनजाय और इस प्रकारकी वृहत्काय पुस्तकको न तो एक लेखक अपनी उमरभरमें लिख सकता है और न पाठकोंकी ही उसमें रुचि होना संभव है। इसलिये "व्रतोत्सव-चन्द्रिका"में प्रायः सर्वत्रही मुख्य मुख्य त्यौहारोंका ग्रहण किया गया है। उसी प्रकार चैत्रमेंसे सम्वत्सर-प्रतिपदा, गणगौरी-व्रत, अरुन्धती-व्रत, राम-नवमी और हनुमज्जयन्ती इन पांच त्यौहारोंका ही विवरण लिखा जाता है।

प्रत्येक त्यौहारके इति-वृत्तको लिखनेके लिये इस पुस्तकमें तीन विभाग किये गये हैं। प्रथमविभागमें प्रतिपाद्य त्यौहारका शास्त्रीयस्वरूप बतलाया जायगा। अर्थात् किस किस शास्त्रमें इस त्यौहारके विषयमें क्या क्या लिखा गया है और साथ साथ उन शास्त्रोंके श्लोकोंका भी संक्षेपसे उद्धरण होगा। द्वितीयविभागमें प्रतिपाद्य त्यौहारका लौकिकस्वरूप लिखा जायगा। अर्थात् वर्त्तमान समयमें इस त्यौहारकी क्या दशा है और देशभेदसे क्या क्या हेर फेर होगया है। तृतीयविभागमें प्रतिपाद्य त्यौहारसे वर्त्तमानमें हमको क्या शिक्षा मिलती है, इसका प्रतिपादन किया जायगा।

१—सम्वत्सर-प्रतिपदा।

—:*:—

शास्त्रीय स्वरूप।

चैत्र शुक्ल-प्रतिपदासे जो सम्वत्सरका प्रारंभ होता है—उसके विषयमें ब्राह्म-पुराणमें इस प्रकार उल्लेख हुआ है :—

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।

चैत्रमास शुक्लपक्षके प्रथमदिनमें ब्रह्माने जगत्को रचा है। इस कारण प्रतिपदाके त्यौहारको उसी दिन मनाना चाहिये और सूर्योदय व्यापिनी प्रतिपदाका ग्रहण करना चाहिये। वहां यह भी लिखा है,—"एकबार चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके दिन ब्राह्मी सभामें ब्रह्माजीने सब देवताओंको बुलाकर कहा, कि आजसे तुम लोगोंको सृष्टि सम्बन्धि कार्योंमें लगजाना चाहिये।" तदनुसार सब देवता अपने अपने कार्यमें लग गये और वही दिन संसारमें परम पवित्र माना गया है। वहां और भी लिखा गया है :—

ततःप्रभृति यो धर्मः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः।
अद्यापि रूढः सुतरां स कर्त्तव्यः प्रयत्नतः॥
तत्र कार्या महाशान्तिः सर्वकल्मषनाशिनी।
सर्वोत्पातप्रशमनी सर्वदुःखप्रणाशिनी॥
तस्यामादौ तु संपूज्यो ब्रह्मा कमलसंभवः।
पाद्यार्घपुष्पधूपैश्च वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥

अर्थात् उस दिनके बाद फिर यह त्यौहार रूढी होकर संसारमें चलने लगा, जिसको पूर्वजोंने भी किया था। इस त्यौहारमें महा शान्ति करना

चाहिये, जिससे सम्पूर्ण उत्पातोंकी और दुःखोंकी निवृत्ति होजाय। इस त्यौहारकी शान्तिके समय प्रथम कमलसे पैदा होनेवाले ब्रह्माजीका सत्कार होना चाहिये, पुनः निमेष, त्रुटि, लव, क्षण, काष्ठा, कला, नाडी, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात आदि कालावयवोंको मंत्र सहित नमस्कार करना चाहिये और काल भगवान्‌का यथा-विधि पूजन करना चाहिये। वेदवित् ब्राह्मणों और हवनके द्वारा ही देवताओंकी तृप्ति होती है—इस कारण इन दोनों कार्योंको अवश्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उस दिन तोरण पताका आदिसे गृहको सुसज्जित करना चाहिये।

सम्वत्सर प्रतिपदाको त्यौहार मनानेका आधार वेदमें भी मिलता है। अन्तर इतना ही है, कि पुराणमें ब्रह्माकी मूर्ति बनाकर पूजन करना लिखा है और वेदमें सम्वत्सर रूप प्रजापतिकी प्रतिमाका पूजन लिखा है। यथाः—

> सम्वत्सरस्य प्रतिमाँ याँ त्वां रात्र्युपास्महे,
> सा न आयुष्मती प्रजा रायस्पोषेण संसृजः। अथर्व० ३।८।१०

इसका विवरण शतपथमें इस प्रकार है—

> स ऐक्षत प्रजापतिः इमं वात्मनः प्रतिमामसृक्षीयत
> सम्वत्सरमिति तस्मादाहुः प्रजापतिःसम्वत्सर इत्या-
> त्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत यद्देव चतुरक्षरः सम्वत्सर
> श्चतुरक्षरः प्रजापति स्तेनो है वास्यैष प्रतिमा।
>
> शतपथ—११।१।६।१३

मन्त्रार्थ—

हे सम्वत्सर! ब्रह्मा अथवा प्रजापतिकी प्रतिमा! हम तुझको पूजते हैं, तू हमारे लिये सर्व धनसम्पन्न पुत्र दे।

शतपथका अर्थ—

उस प्रजापतिने देखा और अपने शरीरसे प्रतिमा उत्पन्न की। सम्वत्सर-के भी चार अक्षर हैं और प्रजापतिके भी चार अक्षर हैं; सो प्रजापतिने सम्वत्सर-रूप प्रतिमा अपने अंगसे बनाई—उसीका यह पूजन है।

साराँश यह है, कि सम्वत्सर प्रतिपदाका त्यौहार वैदिक है।

——o——

लौकिक स्वरूप।

यह त्यौहार किस तरह चला? इस विषयका जो शास्त्रीय आधार था,

उसका तो वर्णन किया ही जा चुका है, परन्तु उसके अतिरिक्त अन्य शास्त्रोंमें कुछ और भी मिलता है। जैसे—मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी सीताके सहित चतुर्दश वर्षके वनवासको विताकर, चैत्र-शुक्ला प्रतिपदाको ही अयोध्यामें आये थे; इस कारण यह त्यौहार मनाया गया। जो नवरात्र चैत्रमें किये जाते हैं, उनके विषयमें किसी किसी शास्त्रका यह लेख है,—"श्री-रामचन्द्रजीने रावणको मारा था, उसका स्मारकरूप जो उत्सव अयोध्यामें किया गया था, उस दिनसे ही चैती दसहरा एवं नव-रात्रोंकी रूढ़ी चली है।" परन्तु धर्मसिन्धु जो हमारे सम्पूर्ण धार्मिक कार्योंका आधारभूत है—उसमें चैत्र-नवरात्रको देवीका उत्सव माना है और लिखा है, कि चैत्र-शुक्ल प्रतिपदासे नवमी तक, देवी नवरात्रका उत्सव करना चाहिये, किन्तु इस नव-रात्रका पारणा आदि समस्त कृत्य शारदीय (आश्विन) नवरात्रके ही अनुसार होना चाहिये। एक और भी विधान है,—"जब वसु नामका राजा तपस्या करके "मनुजेन्द्र" हुआ था, तब स्वर्गाधिपति इन्द्रने उसके लिये चैत्र-शुक्ल प्रतिपदाको वस्त्रालङ्कार दिये थे; अतः उस दिनसे ही यह पवित्र दिन माना गया।" सारांश—किसी भी प्रकारसे क्यों न चला हो, परन्तु है बड़े महत्वका।

किसी देशमें सम्वत्सरका प्रारम्भ कार्त्तिक, किसीमें अग्रहायण (मार्ग-शीर्ष) और किसीमें फाल्गुनसे माना गया है, परन्तु शास्त्रीय आधार और लौकिक प्रचार अधिकतया चैत्रका ही है; अतः इस उत्सवका चैत्रमें ही होना युक्ति-युक्त है। खेद है कि आज कल हमारे देशमें यह त्यौहार नाममात्रको मनाया जाता है। दक्षिण देशमें हमारी अपेक्षा कुछ विशेष मनाया जाता है। हाँ, मलाबार प्रान्तमें यह त्यौहार बड़े ठाट-बाटसे मनाया जाता है। घरोंको सजाना, नीमकी कोमल पत्तियोंका भक्षण करना और नवीन वर्षके पंचाङ्गका श्रवण करना—इत्यादि बातें इस देशमें भी होती हैं। मन्दिरोंमें तो इसका सर्वत्र ही अच्छा प्रचार है।

शिक्षा।

सम्वत्सर प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल उठकर स्वयं अथवा भृत्योंसे अपने स्थानको सुसज्जित करना चाहिये और सकुटुम्ब अपने आपको स्नान आदि करके स्वच्छ वस्त्रोंको धारण करना चाहिये। पुनः सृष्टिके उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मा अथवा प्रजापतिका पूजन करना चाहिये। पूजनके साथ साथ यह भी विचार करना चाहिये,—"सृष्टिके उत्पन्न करनेसे ही ब्रह्माजीका आज तक पूजन

होता है। यदि हम भी सृष्टि, देश अथवा जातिका कुछ भला करेंगे, तो उपकृत लोग हमको भी सदैव पूज्य-दृष्टिसे देखा करेंगे। शरीर वास्तवमें क्षण-भङ्गुर है, परन्तु किया हुआ उपकार कल्पान्तमें भी नष्ट नहीं होता। तुलसीदास, सूरदास, समर्थरामदास, शिवाजी और महाराना प्रताप आदि इस असार संसारको छोड़ गये, परन्तु उनकी अटल कीर्त्ति आज भी संसारको मुग्ध कर रही है।"

देवताओंकी तृप्तिके लिये अग्निहोत्रका करना भी आवश्यक है। इससे देशमें समयपर वर्षा होकर, धन-धान्यकी वृद्धि होती है। जिस समय भारतमें अग्निहोत्रका प्रचार था, उस समय इसकी सम्पत्ति बहुत बढ़ी हुई थी, यहांतक कि देवराज इन्द्र भी इसकी आढ्यता पर मुग्ध होकर स्वर्गकी सम्पत्तिको इसकी सम्पत्तिके अपेक्षा तुच्छ मानता था और स्वर्गका "कोषाध्यक्ष" कुवेर तो डाह करता था।

काल भगवान्‌की मूर्त्तिका पूजन करके, यह ध्यानमें लाना चाहिये, कि गत-वर्षमें हमसे कितने देशहितकर शुभ कार्य हुए हैं और स्वार्थवश कितने अकार्य हुए हैं। आगेको शुभ कार्यों के करनेकी प्रतिज्ञा और दुष्ट कार्यों को न करनेका सङ्कल्प करना चाहिये।

मूल कथामें नीम और मिश्रीका भक्षण भी लिखा है; अतः भोजनके पूर्व निम्ब और मिश्रीको खाना चाहिये—जिससे साल भरमें किसी प्रकारका रक्तज विकार न होने पावे। यही वैद्यकका भी मत है।

सम्वत्सर प्रतिपदाके दिन देवता ब्रह्माकी आज्ञासे सृष्टिके कार्यमें लग गये थे, उसी प्रकार हमको भी वर्षके आरम्भ दिनसे ही धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक कार्योंमें लग जाना चाहिये जिससे देशकी अधिक उन्नति हो।

अपने ग्राम किम्वा देशके ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये; जिसके द्वारा पुण्यके साथ साथ देशमें सच्चे और धार्मिक एवं विद्या-शाली विद्वान् ब्राह्मणोंको संख्या बढ़े। जिस देशमें विद्वानोंका सम्मान नहीं होता, वहांके लोग विद्यामें परिश्रम करना छोड़ देते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि, विद्वानोंकी संख्या घट कर देशमें मूर्ख मण्डली बढ़ जाती है और मूर्खोंके बढ़ जानेसे देशमें सर्वत्र मूर्खता फैल जाती है, जिससे देश गुणहीन और धर्महीन होकर नितान्त दुःखी हो जाता है।

ब्राह्मण-भोजनके पश्चात् अपने कुटुम्बियोंके साथ स्वयं भी भोजन करना चाहिये। जो लोग अपने कुटुम्बके साथ सहानुभूति नहीं रखते, वे सदैव

दुःखी रहते और देश-द्रोही होते हैं, क्योंकि देश-व्यापिनी एकताका प्रारम्भ प्रथम कुटुम्बसे ही होता है। इसके अनन्तर सायङ्कालके समय अपने इष्ट मित्रोंके घरोंपर जाकर प्रेम-पूर्वक उनसे मिलना चाहिये और जो इष्ट मित्र अपने घर पर मिलनेके लिये आवें, उनसे प्रेमालिङ्गनके पश्चात् आगेके कर्त्तव्य-कार्योंमें परामर्श करना चाहिये। इस प्रकार सम्वत्सर प्रतिपदासे शिक्षा लेनी चाहिये।

२—गौरी-उत्सव (गणगौरी)।

—: * :—

शास्त्रीय स्वरूप ।

हेमाद्रि और देवीपुराणमें इस त्यौहारको केवल स्त्रियोंके लिये ही लिखा है; क्योंकि यह सौभाग्य-प्रद है और इसका विधान नीचे लिखे अनुसार है।

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम् ।
संपूज्य दोलोत्सवं कुर्यान्नारी शुभेप्सुका ॥

निर्णयामृतेऽपि—

तृतीयायां यजेद्देवीं शंकरेण समन्विताम् ।
कुंकुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रैरगःहिताम् ॥
रात्रौ जागरणं कुर्यात् प्रातर्देया तु दक्षिणा ।
सौभाग्याय सदा स्त्रिभिः कार्या पुत्रसुखेप्सुभिः ॥

इयञ्च परा ग्राह्या ।

अर्थात् "चैत्रशुक्लतृतीयाके दिन सौभाग्यवती स्त्रीको महादेव-गौरीका पूजन करना चाहिये। कुंकुम, अगरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र और अलङ्कार आदि-से पूजनकी विधि है। रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल दक्षिणा दे, जिससे सौभाग्य बढ़ता है और पुत्र उत्पन्न होता है। इस तृतीयाको मध्यान्होत्तर-व्यापिनी लेना चाहिये।" इसके अतिरिक्त इस त्यौहारका शास्त्रोंमें विशेष विवरण नहीं मिलता।

लौकिक स्वरूप ।

इस गौरी-उत्सवमें गौरी और शिवका पूजन करना ही शास्त्रोंका सिद्धान्त है। यद्यपि, गण-गौरीका व्रत संसारमें अब भी प्रचलित है, परन्तु लौकिकरूढ़ी बहुत विलक्षण होगई है। इसमें सन्देह नहीं, कि प्रायः सब

देशोंमें "गण-गौरी" व्रत अब भी स्त्रियोंके द्वारा किसी-न-किसी रूपसे मनाया अवश्य जाता है। सौर एवं चान्द्रमासके कारण कुछ दिन एवं मासका अन्तर अवश्य पड़ गया है। जैसे, दक्षिण देशमें वैशाख मासमें माना जाता है, परन्तु गौरी एवं महादेव—गण-गौरी एवं गण-गौराकी प्रतिमा बनाकर पूजन करना सब देशोंमें प्रचलित है। शास्त्रीय व्यवस्थामें यह त्यौहार केवल दो दिनका लिखा है, परन्तु लौकिकमें चैत्रकृष्ण प्रतिपदाको ही गौरीकी स्थापना हो जाती है और उसी दिनसे स्त्रियां गायन-वाद्य द्वारा गौरीकी आराधना करना प्रारंभ कर देती हैं।

राजपूतानेमें तो चैत्रकृष्ण ८ के दिन अपने अपने मोहल्लोंसे स्त्रियां एकत्र होकर किसी वापी (बावड़ी) और कूप (कूआ) अथवा तड़ाग (तलाव)में से चांदी सोनेके पात्रोंमें जल भर कर लाती हैं और उसी दिन जुवारे बोती हैं। उस दिनके बाद पुनः उस प्रतिमाकी सन्निधिमें स्त्रियां प्रतिदिन सौभाग्य-प्रद भजन अथवा गीत गाती रहती हैं। तृतीयाके दिन भी कूप आदिसे उसी उत्सवके साथ जल लाती हैं और दिनमें गण-गौरीके पूजनके निमित्त अनेक प्रकारका पक्वान्न बनाती हैं, जिसमें मुख्य व्यञ्जनका नाम 'गुना' है। यह "गुना" पदार्थ वर्ष भरमें केवल इसी दिन होता है, फिर कभी नहीं होता।

तृतीय प्रहरके समय सब स्त्रियां नवीन आभूषण और वस्त्रोंको पहनकर गौरी एवं महादेवका पूजन करती हैं और गुड़ अथवा शक्करके बहुत बड़े बड़े गुनाओंका दान करती हैं; जिसको "सोरां" कहा जाता है। सोरां जेठ या श्वशुर अथवा इसी प्रकारके किसी पूज्य व्यक्तिको दिया जाता है। राजस्थानमें सर्वत्र और कितने ही अन्य नगरोंमें, सायङ्कालके समय गण-गौरी एवं गण-गौराकी सवारी प्रजा लोग अथवा राजा लोग बड़े ठाट-बाटसे निकालते हैं; जिसमें हजारों आदमियोंकी भीड़ होती है।

रात्रिके समय स्त्रियां गौरीको पानी पिलाती हैं और गीत गाती हैं। किसी किसी देशमें इस अवसरपर स्त्रियां अपने अपने पतियोंका नाम भी बड़े आदरसूचक शब्दोंमें लेती हैं। कहीं कहीं इस अवसरपर स्त्रियां एक कहानी (कथा) भी कहा करती हैं। वह कहानी इस प्रकार है।

कहानी।

"एक समय महादेव और पार्वती जङ्गलमें गयें। जब अति गहन वनमें पहुंचे, तो पार्वतीने कहा,—"भगवन्! मुझको प्यास लगी है।" महादेवजी

बोले,—"देखो उस दिशामें पक्षी उड़ रहे हैं, वहां अवश्य ही जल होगा।" यह सुनकर पार्वती वहां गई और उन्होंने एक बहती हुई नदीमें पानी पीना चाहा तो प्रथमाञ्जलिमें दूबका गुच्छ आया, द्वितीयाञ्जलिमें टेसूका पुष्प आया और तृतीयाञ्जलिमें गुना आया। इन तीनों पदार्थोंको देखकर पार्वतीके चित्तमें कितने ही आन्दोलन उत्पन्न हुए, परन्तु महादेवजीके कहनेसे विदित हुआ, कि आजका दिन चैत्रशुक्ल तृतीयाका है। समस्त सौभाग्यवती स्त्रियां सौभाग्यार्थ गौरी-उत्सव करती हैं और तुम जङ्गलमें भटक रही हो। पार्वतीने प्रार्थना की, कि प्राणनाथ! दो दिनके लिये मेरे माता-पिताका नगर इसी स्थानमें निर्माण होना चाहिये; जिससे सब स्त्रियां यहीं आकर गण-गौरीके व्रतको करें और मैं स्वयं ही उनको सौभाग्य-वर्द्धनका आशीर्वाद दूं। अपनी अलौकिक शक्तिसे महादेवजीने पार्वतीकी इच्छाके अनुकूल नगर बसा दिया। गौरी-पूजनके निमित्त आनेवाली स्त्रियोंमेंसे प्रथम मध्यम कक्षाकी स्त्रियाँ आगईं, पार्वतीजीने यह समझ कर कि सब स्त्रियां आगईं, सौभाग्य-प्रद आशीर्वाद दे दिया। थोड़ी देरके बाद जब उच्च-कुलकी स्त्रियोंका समूह आया तो पार्वती चिन्तित हुई और महादेवजीके पास जाकर उन्होंने प्रार्थना की,—"भगवन्! मैं तो प्रथमही सौभाग्य-प्रद आशीर्वाद देचुकी अब कृपाकर इन शेष स्त्रियोंको आप आशीर्वाद दें!" तब पार्वतीके कहनेसे महादेवने आशीर्वाद दिया। इन स्त्रियोंको पार्वतीका आशीर्वाद न मिला, इसीसे उच्च कुलकी स्त्रियोंमें सौभाग्यकी न्यूनता रह गई है। दूसरे दिन महादेवजीने पार्वतीसे कहा,—"प्रिये! कल उस वनमें हमारा उत्तरीय वस्त्र रह गया, क्या तुम उसको ला सकोगी?" जब पार्वतीजी वहां गईं तो देखा, कि वहां वनके अतिरिक्त और कुछ भी न था।"

सारांश—इस लौकिक गाथासे भी "गण-गौरी" यह महादेव और पार्वतीका व्रत ही जाना जाता है। संभव है, कि इस गाथाका आधार किसी पुराणमें भी हो, परन्तु रूपान्तर अवश्य होगया होगा।

शिक्षा।

जिस प्रकार सम्वत्सर-प्रतिपदाकी शिक्षामें पुरुषोंके करने योग्य अनेक कार्योंका अच्छा विवरण था, उसी प्रकार स्त्रियोंके कर्त्तव्यका पथ-प्रदर्शक यह गौरी-उत्सव भी है। देशके सम्पूर्ण मनुष्योंमें एकताका होना, यह उस देशके सौभाग्यका चिन्ह है, परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक भाषाके पढ़नेसे प्रथम उसकी वर्णमालाका पढ़ना परम आवश्यक है, उसी प्रकार एकताकी प्राथमिक शिक्षा-

का प्रारंभ कुटुम्बसे होता है। जबतक हमारे कुटुम्बमें एकता न होगी, तबतक देशमें एकताका होना असंभव है। कुटुम्बमें स्त्री और पुरुषकी ही प्रधानता होती है; और तो क्या, परन्तु इन दोनोंको गार्हस्थ्य-राज्यका राजा कहें, तो भी अत्युक्ति नहीं है। सम्पूर्ण परिस्थितियोंका सामना करके बाह्यराज्यका मार्ग सरल रखना—यह पुरुषका राज्य है और उसी प्रकार भीतरी—गृह-सम्बन्धी परिस्थितियोंको अनुकूल रखना—यह स्त्रीका राज्य है। इसी कारण शास्त्रकार-गण "गृहिणी गृहमुच्यते"—घर स्त्रीका है—ऐसी आज्ञा देते हैं।

एक राज्यमें दो स्वतन्त्र राजा हों और वे निज निज स्वार्थके वशीभूत होकर कार्य करें, तो निःसन्देह ऐसे राज्यको ब्रह्मा भी आपत्तिसे नहीं बचा सकते। हाँ, वे दोनों ही यदि व्यक्ति-गत स्वार्थको छोड़कर राज्य बढ़ानेके निमित्त, एक दूसरेके सहायक होकर कार्य करें, तो अवश्य ही इस प्रकारके राज्यको दैव भी नष्ट करनेमें समर्थ न हो सकेगा। यही दशा दाम्पत्यकी है। स्त्री और पुरुष, दो राजा मिलकर एक गार्हस्थ्यको चलाते हैं। जब इन दोनों राजाओंमें स्वार्थ-बुद्धिका प्रवेश हो जाता है, तब अनैक्य-रिपान इस राज्यको अपने अधिकारमें लेकर नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है। इसी कारण परमकारुणिक जगदीशने स्त्री और पुरुष दोनोंको निःस्वार्थी होकर गार्हस्थ्यका पालन करनेकी आज्ञा दी है और उसीको गार्हस्थ्य कहते हैं। इस परम प्रयोजनीय निःस्वार्थ-ताको टिकाऊ बनानेकी यह बड़ी अच्छी रीति है, कि पुरुष अपने जीवनको स्त्रीके निमित्त और स्त्री अपने जीवनको पुरुषके निमित्त समझे।

उपरोक्त त्यौहारमें इसी विषयको कैसा अच्छा चरितार्थ किया गया है। स्त्रीका ध्येय सांसारिक कार्योंके करनेमें तो पति रहता ही है, परन्तु पारमार्थिक कार्योंके करनेमें भी यही हेतु रहे,—"मेरे इस शुभ कर्मसे पति चिरजीवी हो" कैसी सुन्दर निःस्वार्थता है। परन्तु खेद है कि आज कल इस सौभाग्यप्रद व्रतको करनेवाली स्त्रियोंके अन्तःकरणमें यह तादात्म्य भाव उत्पन्न नहीं होता।

स्त्रियोंको इस त्यौहारसे यह शिक्षा लेनी चाहिये,—"हमारा जीवन पतिके जीवनार्थ है। जिस प्रकार एक सच्चा ईश्वरभक्त समस्त कार्योंको करता हुआ, कृष्णार्पणके द्वारा सब कर्म-बन्धनोंसे विनिर्मुक्त होकर मोक्षको प्राप्त करता है; उसी प्रकार एक सच्ची पति-परायणा स्त्री भी संसारके अखिल कार्योंको पतिके निमित्त करती हुई, सौभाग्यको भोगकर अन्तमें पति-लोक-गामिनी होती है।" स्त्री-जन्मका यही साफल्य है।

इस त्यौहारसे एक और भी लाभ है। वह यह कि, जिस प्रकार पुरुषोंका आपसमें किसी न किसी निमित्तसे मिलना भ्रातृभावको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार इस त्यौहारमें परस्पर स्त्रियोंका सम्मेलन भी सख्य अर्थात् एकताको उत्पन्न करता है। जिस देशमें इस प्रकार पारस्परिक स्नेहकी धारा बह चलती है, उस देशकी दशा अवश्य ही सुधर जाती है। अतः इस पवित्र त्यौहारका विशेष प्रचार होना परम श्रेष्ठ कार्य है।

३—अरुन्धती-व्रत ।

इस अरुन्धती व्रतके पुनः प्रचारकी भारतमें बड़ी भारी आवश्यकता है। आजकलके व्रतोत्सवोंमें जितने पुरुषसम्बन्धके हैं, उनका तो अच्छा प्रचार है, परन्तु स्त्री-सम्बन्धी व्रतोत्सवोंका प्रचार जैसा चाहिये, वैसा नहीं है। "गण-गौरी" आदि व्रतोत्सवोंका कुछ कुछ प्रचार भी है, परन्तु उनका लोक-प्रवाह स्त्री और पुरुष दोनोंमें समान रूपसे बट गया है। इस कारण स्त्रियोंके लिये "अरुन्धती" जैसे व्रत या त्यौहारोंकी बहुत ही आवश्यकता है। समयकी बात है, कि इस पवित्र त्यौहारका प्रचार आजकल भारतके किसी किसी प्रान्तमें रह गया है, जो न होनेके बराबर है।

शास्त्रीय स्वरूप ।

इस अरुन्धती व्रतका वर्णन थोड़ासा व्रतराज और विशेष कर स्कन्द-पुराणमें इस प्रकारसे आया है:—

अथ चैत्रशुक्लप्रतिपदमारभ्य त्रिरात्रपूर्वकं तृतीयायां अरुन्धती-व्रतम्। तत्र स्त्रीणामेवाधिकारः। अवैधव्यादिफल-श्रवणात्। तत्रादौ सङ्कल्पः। "मम इह जन्मनि जन्मान्तरे वा बाल-वैधव्य-नाशनार्थं अनेकसौभाग्य-पुत्ररूप-सम्पत्तिसमृद्ध्यर्थं अरुन्धतीव्रतमहं करिष्ये"।

अर्थात्—"चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ करके तृतीया तक अरुन्धती-व्रतके करनेकी व्यवस्था है। इस व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है, क्योंकि इस व्रतका फल 'विधवा न होना' लिखा है। इस व्रतके प्रारम्भमें जो संकल्प किया जाता है, उसका अर्थ यह है,—"इस जन्म या दूसरे जन्ममें मुझको बाल-वैधव्यका दुःख न हो और पुत्ररूप सम्पत्ति मिले, एवं पतिके जीवनसे मेरा सौभाग्य स्थिर रहे, इस कारण मैं अरुन्धतीव्रतको करती हूं।"

चैत्र-शुक्ल द्वितीयाकी रात्रिको बहुत सुन्दर सुवर्णकी तीन मूर्त्तियां बनावे। जिनमें एक ध्रुवकी, एक वशिष्ठकी और एक अरुन्धतिकी हो। प्रथम वशिष्ठकी पत्नी अरुन्धतीकी मूर्त्तिका स्थापन और आवाहन पूर्वक षोडशोपचारसे पूजन कर यह प्रार्थना करेः—

अरुन्धति! महाभागे! वशिष्ठ-प्रिय-वादिनि!
सौभाग्यं देहि मे देवि! धन-पुत्रांश्च सर्वदा।

अर्थात्—"हे महाभागे! वशिष्ठजीसे प्रिय बोलनेवाली देवि! अरुन्धति! मुझको सौभाग्य, धन और पुत्र दे।" इसके पश्चात् इस व्रतकी कथा है।

कहानी।

प्राचीनकालमें सर्व-शास्त्र-निष्णात एक ब्राह्मण था। उसकी अत्यन्त सुन्दरी एक कन्या बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गई। वह कन्या श्रीयमुनाके तीरपर तप कर रही थी। दैवात् वहाँ पार्वतीके सहित महादेव आगये। पार्वतीने उस कन्याके वृत्तान्तको जानकर महादेवसे प्रार्थना की,—"भगवन्! यह कन्या किस कारणसे बाल्यकालमें ही विधवा होगई है?" महादेवजीने कहा,—"प्राचीन समयमें एक ब्राह्मण था। उसने एक कुल-शीलवाली सवर्णा और समान-वयस्का कन्याके साथ विवाह किया। विवाह करके वह ब्राह्मण सदैवके लिये परदेशमें चला गया और वहाँ जाकर किसी परस्त्रीके साथ प्रीति उत्पन्न कर ली। उसी दारुण पापके कारण वही ब्राह्मण स्त्री-जन्ममें आकर यह कन्या हुई है।"

इस स्थानपर महादेवजीने पार्वतीसे कुछ उपदेशात्मक वाक्य और भी कहे हैं। जो मूल कथामें इस प्रकारसे हैं:—

यः स्व-नारीं परित्यज्य निर्दोषां कुल-संभवाम्।
याति देशान्तरे चाथ अन्धा इव महार्णवे॥
परदाररतो वा स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम्।
सोऽन्य-जन्मनि देवेशि! स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्॥
या नारी तु पतिं त्यक्त्वा मनोवाक्कायकर्मभिः।
रहः करोति वै जारं गत्वा वा पुरुषान्तरम्॥
भोगान्भुक्त्वा च या योषिन्मदेन प्रमदा सती।
तेन कर्मविपाकेन सा नारी विधवा भवेत्॥

अर्थात्—"हे पार्वति! कुलीन और निर्दोष अपनी स्त्रीको छोड़कर जो मनुष्य सदैवके लिये देशान्तरको चला जाता है, वह अन्धे पुरुषकी भांति, महासागरमें डूब जाता है। जो पुरुष निज स्त्रीको छोड़कर परस्त्रीसे प्रीति करता है अथवा पर स्त्रीको घरमें डाल लेता है, वह जन्मान्तरमें स्त्री होकर बालवैधव्यके दुःखको भोगता है। जो स्त्री एकान्तमें अन्य-पुरुषके साथ व्यभिचार करती है, चाहे वह व्यभिचार मनसे हो अथवा कर्मसे हो, उस पापके कारण बाल-वैधव्यके असह्य दुःखको भोगती है।" इस प्रकारके उपदेशामृतको श्रवण कर और करुणा-वश होकर पार्वतीने शिवजीसे प्रार्थना की,— "भगवन्! इस वैधव्य-दुःखकी निवृत्तिका कुछ ऐसा उपाय भी है, जिससे पुनः इस पापके फलको न भोगना पड़े?" यह सुनकर महादेवजीने उपरोक्त अरुन्धति-व्रतका विधान बतला कर कहा, कि जो स्त्री इस व्रतको करेगी उसको बाल-वैधव्यका असह्य दुःख न भोगना पड़ेगा। अर्थात् उसकी बुद्धि पाप-कर्मसे परांमुख हो जायगी।

लौकिक स्वरूप।

देशी और विदेशी लोगोंके द्वारा संगृहीत, हिन्दुस्तानके अर्वाचीन इतिहासको देखनेसे विदित होता है, कि दो हजार वर्षोंसे इधर इस त्यौहारका प्रचार नहीं है, परन्तु मैंने अपनी भ्रमणावस्थामें अवश्य देखा है, कि जो स्त्रियां कथा-वार्ताको श्रवण करती हुई, बारह-मासके सम्पूर्ण व्रतोंका पालन करती हैं—वे इस अरुन्धती-व्रतको भी करती हैं।

शिक्षा।

इस अरुन्धती व्रतसे हमारी माता, भगिनी एवं कन्याओंको निम्न-लिखित शिक्षाएँ ग्रहण करनी चाहिये।

१—संसारमें मनुष्यका जन्म काम-भोगके निमित्त नहीं, किन्तु मोक्षके निमित्त है। इस कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ और पाखण्ड-आदि पापोंसे और विशेष कर कामके परिणाम-भूत व्यभिचारसे मनुष्य-मात्रको बचना चाहिये। जो स्त्री थोड़ेसे सुखाभासके कारण पर-पुरुषसे संगति कर लेती है, वह थोड़े कालमें ही परलोकमें जाकर महारौरव आदि नरकोंके असह्य-दुःखोंको भोगती है और उस समय पिछले कर्मोंको याद करती है।

२—किसी भी स्त्रीको दैवात्, बाल-वैधव्यका दुःख भोगना पड़े, तो उसको यह समझकर सोचना चाहिये, कि यह पिछले जन्ममें किये हुए

व्यभिचारका फल है। आगामी जन्ममें इस दुःखसे बचनेका यही उपाय है, कि जितेन्द्रिय रहकर और मृत पतिकी आज्ञाको उल्लंघन न करके वर्तमान-जीवनको व्यतीत करना चाहिये।

३—माताएँ अपनी कन्याओंको सदैव "पतिव्रतधर्म"की शिक्षा दें। और आजकल कामज-सृष्टिके समयमें रजोदर्शनसे पूर्व ही कन्याका विवाह करदें। क्योंकि मनुजी महाराजने लिखा है:—

त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश-वार्षिकीम्।
त्र्यष्ट-वर्षोऽष्ट-वर्षाम्वा, धर्मे सीदति सत्वरः॥

अर्थात्—"तीस वर्षका वर बारह वर्षकी कन्यासे विवाह करे और चौबीस वर्षका वर आठ वर्षकी कन्यासे विवाह करे; इससे जलदी करने वाला दुःखी होता है।"

४—स्त्रियां दो प्रकारकी होती हैं,—(१) सद्योवधू और (२) ब्रह्म-वादिनी। उनमेंसे गार्गी और मैत्रेयी आदि अलौकिक स्त्रियां ब्रह्म-वादिनी हैं और सावित्री, सीता तथा अनुसूया आदि सद्योवधू हैं। संसारमें सद्योवधू होना ही स्त्रीका आदर्श है, ब्रह्म-वादिनी तो उसका अपवाद है। इसलिये स्त्रियोंको सावित्री आदि सद्योवधुओंके सदृश ही होना चाहिये और उनको यही शिक्षा भी देनी चाहिये। स्मरण रहे, कि स्त्रीको आदर्श-स्त्री बनानेवाली शिक्षा ही स्त्री-शिक्षा है। स्त्रीको पुरुष बनानेवाली शिक्षा स्त्री-शिक्षा नहीं, किन्तु कुशिक्षा है। आजकल स्त्रियोंको जो एम० ए, बी० ए बनाया जारहा है अथवा संस्कृतकी शास्त्री परीक्षामें उत्तीर्ण कराया जारहा है—यह उनको भ्रष्ट करनेका मार्ग है। मैं स्त्रियोंको सुशिक्षिता न बनानेके पक्षमें तो नहीं हूं, परन्तु स्त्रीको उतनी ही विद्या पढ़ानी उचित है, जिससे वह पति-व्रत, बालकोंका पालन, भोजन बनाना, वस्त्र सीना आदि गृह-सम्बन्धी कार्यों-को सीखले।

५-स्त्रीजाति स्वभावसे ही कोमल बुद्धिवाली होती है और पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंमें काम भी अष्ट-गुण अधिक होता है; इसलिये उनको बाल, यौवन और वार्द्धक्य—किसी भी अवस्थामें स्वतंत्र रहनेकी "धर्म-शास्त्र" आज्ञा नहीं देता।

सारांश—उपरोक्त संपूर्ण शिक्षाएं एक अरुन्धती-व्रतके ही तादात्म्यसे अनायास प्राप्त हो जाती हैं; अतः प्रत्येक स्त्रीका परम धर्म है, कि श्रद्धा और भक्तिसे इस व्रतको करे।

४—श्रीरामनवमी महोत्सव ।

—:*:—

शास्त्रीय स्वरूप ।

श्रीरामनवमीके व्रतमें मध्यान्ह-व्यापिनी तिथि लेनी चाहिये; जैसा कि अगस्त्य संहितामें लिखा है:—

चैत्र-शुक्ला तु नवमी, पुनर्वसु-युता यदि ।
सैव मध्यान्ह-योगेन, महा-पुण्यतमा भवेत् ॥
नवमी चाष्टमी विद्धा, त्याज्या विष्णु-परायणैः ।
उपोषणं नवम्यां वै, दशम्यां पारणं भवेत् ॥
चैत्रे मासि नवाम्यां वै, जातो रामः स्वयं हरिः ।
पुनर्वस्वृक्ष-संयुक्ता, सा तिथिः सर्वकामदा ॥

"चैत्र-शुक्ला नवमी यदि पुनर्वसु नक्षत्र-युक्ता हो और मध्यान्हव्यापिनी हो, तो उसको महा पुण्यवाली जानना चाहिये। विष्णुभक्तोंका अष्टमी-विद्धा नवमी कभी भी न लेनी चाहिये। नवमीमें उपवास और दशमीको पारण करना चाहिये। चैत्र-शुक्ला नवमीको स्वयं भगवान्‌का जन्म हुआ है; सो पुनर्वसु नक्षत्रके सहित—यह तिथि सम्पूर्ण फलोंको देती है।"

कहानी ।

अगस्त्य संहितामें लिखा है, कि चैत्र-शुक्ला नवमीको पुनर्वसु-नक्षत्रमें, गुरुनवांशमें, उच्चस्थ ग्रह पञ्चकमें और मेष-राशिमें कर्कटयोग होने पर कौशल्यामें परम-पुरुष भगवान् रामचन्द्रजीका आविर्भाव हुआ था। इसलिये रामनवमीका व्रती उस दिन उपवास करे और रात्रिमें जागरण करता हुआ प्रातःकाल विधिके साथ भगवान्-रामचन्द्रजीका पूजन करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मण भोजन करावे और गऊ, भूमि, सुवर्ण, तिल, वस्त्र, अलङ्कार और भूषण आदि दक्षिणामें दे। जो मनुष्य इस प्रकार रामनवमीके व्रतको करता है, उसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और वह विष्णुभगवान्‌के परम पदको प्राप्त हो जाता है। जो पापिष्ठ मनुष्य रामनवमीके दिन भोजन करता है, वह कुंभीपाक नरकमें गिरता है। रामनवमीके व्रतको न कर—चाहे सब व्रतोंको करे, परन्तु उनके फलको प्राप्त नहीं होता। एक रामनवमीका ही व्रत है, जिसको करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, किन्तु भक्ति और श्रद्धाके साथ करना चाहिये।

उपरोक्त कथाको सुनकर "सुतीक्ष्ण" ऋषिने अगस्त्यजीसे प्रश्न किया है:—

श्रीरामप्रतिमादानं, विधानन्वा कथं मुने!
कथयस्व मुनि-श्रेष्ठ! भक्तस्य मम विस्तरात्॥

अगस्त्यजी कहते हैं:—

कथयिष्यामि तद्विद्वन्! प्रतिमादानमुत्तमम्।
विधानञ्चापि यत्नेन, यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः॥

"हे मुने! श्रीरामनवमीपर रामचन्द्रजीकी प्रतिमाका दान किस प्रकारसे होता है, कृपाकर कहो। अगस्त्यजी बोले, हे सुतीक्ष्ण! तुम वैष्णव हो, इस कारण प्रतिमादानकी विधि कहता हूँ—श्रवण करो।"

चैत्र-शुक्ल पक्षकी अष्टमीको जितेन्द्रिय रहे और नौमीको प्रातःकाल दन्त-धावन पूर्वक नदी या तालाबमें स्नान करके, सन्ध्यावन्दन करे एवं भगवान् रामचन्द्रजीका ध्यान कर पश्चात् मकानपर आकर हरि-भक्ति-निष्ठ और वेद शास्त्र-निष्णात ब्राह्मणको बुलाकर प्रार्थना करे,—"भगवन्! आप मेरे आचार्य बनें। मैं आपको प्रतिमा-दान करूँगा। कारण कि आप मेरे लिये साक्षात् रामचन्द्रजी हैं।" इतना कह कर, आचार्य्यको तैलाभ्यंग स्नान कराकर, भूषणोंसे अलंकृत कर और गन्ध आदिसे पूजन कर, प्रीतिपूर्वक भोजन करावे और हृदयमें भगवान् रामचन्द्रजीका स्मरण करता हुआ स्वयं भी भोजन करे। यह सब अष्टमीका कृत्य है।

नवमीको प्रातःकाल उठकर दन्त-धावन तथा स्नान करे और ध्वजा, तोरण आदिसे घरको सजा कर एक भव्य मण्डप बनाकर, उसमें वेदी स्थापित करे। उस सर्वतोभद्र वेदीपर दो पल वजन वाली स्वर्णकी भगवान् रामचन्द्रजीकी द्वि-भुजी मूर्त्ति बनवा कर स्थापित करे और विधिसे उसका पूजन कर रात्रिमें जागरण करे। दशमीको प्रातःकाल उठकर, सन्ध्या-वन्दन आदि कृत्यसे निवृत्त होकर, भक्तिपूर्वक प्रतिमाका अर्चन करे तथा घृत और खीरकी १०८ आहुतियाँ देकर हवन करे। पश्चात् आचार्यका पूजन कर प्रार्थना करे:—

"इमां स्वर्ण-मयीं रामप्रतिमां समलंकृताम्।
चित्र-वस्त्र-युगच्छन्नां, रामोऽहं राघवाय ते॥
श्रीरामप्रीतये दास्ये, तुष्टो भवतु राघवः॥"

इस मंत्रको उच्चारण कर आचार्यको प्रतिमाका दान करे और प्रतिमाके साथ गऊ, स्वर्ण आदिकी दक्षिणा दे तथा शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराकर उन ब्राह्मणोंको भी दक्षिणा दे। इस प्रकारसे व्रतका उद्यापन कर, आप भी भोजन करे। इसका सविस्तर वर्णन अगस्त्य-संहितामें लिखा है। वहां यह भी बतलाया है,—"रामनवमी व्रतके करनेसे अनेक जन्म-कृत पापोंका क्षय होकर, अनायास ही मनुष्यको भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है।"

लौकिक स्वरूप ।

जिस प्रकारसे इस त्यौहारके मनानेकी रीति अगस्त्य-संहिता अथवा अन्य शास्त्रोंमें बतलाई गई है, भारतमें उस प्रकारसे तो प्रचलित नहीं, परन्तु इसमें संदेह नहीं, कि चैत्र-शुक्ला नवमीके दिन भगवान् रामचन्द्रजी एवं भगवान् कृष्णचन्द्र आदि अवतारोंके मन्दिरोंमें इस महोत्सवको यथाशास्त्र मनाया जाता है। स्मार्त्त लोगोंमें पंच-देवोपासनाको समान अधिकार दिया गया है; अतः उनके मन्दिरोंमें तो राम-जयन्ती होनी ही चाहिये, परन्तु यह बड़े हर्षकी बात है, कि अपने इष्टको अनन्य भावसे पूजन करनेवाले साम्प्रदायिक लोग भी अपने मन्दिरोंमें रामजयन्तीको बड़ी श्रद्धासे करते हैं। श्रीमद्वल्लभ-सम्प्रदाय, जो श्रीयशोदोत्संग-लालित भगवान् बालकृष्णको ही अनन्य भावसे अपना इष्ट समझता है—उसमें भी वामन, नृसिंह और रामजयन्तीके दिन बड़ा भारी उत्सव किया जाता है।

आजकल कितने ही अनभिज्ञ लोग कह देते हैं, कि सनातन-धर्मी लोग सम्प्रदाय-भेदके कारण एक दूसरेके इष्टकी निन्दा करते हैं; परन्तु यह उनका भ्रममात्र है। रामनवमीके उपरोक्त विवरणसे जाना जाता है, कि सम्प्रदाय-भेद अधिक उपासनार्थ है, द्वेषमूलक नहीं। यही कारण है, कि राम-जयन्तीका महोत्सव प्रायः सब मन्दिरोंमें भक्तिपूर्वक मनाया जाता है।

मन्दिरोंके अतिरिक्त गृहस्थ लोग अपने अपने घरोंपर भी रामनवमीके दिन उत्सव मनाते हैं और व्रत करते हैं। रामनवमीके दिन कितने ही मनुष्य तो उपवास करते हैं और कितने ही व्रत। व्रत करनेवाले मध्याह्नके समय मिष्ट-भोजन करते हैं।

श्रीरामचन्द्रजीके मन्दिरोंमें प्रायः चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे नवमी तक नवाह्न नव दिनोंकी कथा होती है। किसी किसी मन्दिरमें "वाल्मीकि रामायण" और किसी किसीमें गोस्वामी तुलसीदास कृत "रामायण" का नवान्ह होता है।

आदि कवि वाल्मीकि महाराजने श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रको २४ हजार अनुष्टुप छन्दोंमें लिखा है; जिसको श्रवण कर मनुष्य अनायास ही परात्पर परमात्मा भगवान् रामचन्द्रजीके लोकको प्राप्त कर लेता है।

वाल्मीकीय रामायण संस्कृतमें होनेके कारण सर्वगम्य नहीं थी, इसलिये महात्मा तुलसीदासजीने तुलसी-कृत रामायणको भाषामें रचकर "सोनेमें सुगन्धि" के न्यायको चरितार्थ कर दिया। सत्य तो यह है, मुसलमान बादशाहोंके अत्याचारसे जिन दिनों सनातन धर्मकी नाव अनेक आपत्तियोंके भँवरमें पड़ कर डूबनेकी तयारीमें थी और हिन्दुओंके मस्तकपर चोटी, तथा स्कन्ध पर जनेऊका रहना असम्भव सा हो गया था; उस विषमावस्थामें तुलसीकृत रामायण रूप मल्लाहने ही सनातनधर्मकी नौकाका उद्धार किया। यद्यपि तुलसीदासजीकी यह "रामायण" भाषामें लिखी गई है; परन्तु संस्कृतके वेद, वेदाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद्, षट्-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, पुराण और इतिहास ग्रन्थोंका भक्ति एवं ज्ञानके साथ ऐसा समावेश किया है, कि जिसको देखकर, बड़े बड़े विद्वान् भी चकित होजाते हैं और मुक्तकंठसे कह देते हैं,—"तुलसीदासजीके द्वारा इस ग्रंथरत्नको जीवोंके उद्धारार्थ अञ्जनी-सुत हनूमानने ही कहा है।" सारांश—प्रायः सब मन्दिरोंमें उक्त दोनों रामायणोंकी कथा होती है, जिसका होना परम श्रेष्ठ है। क्योंकि शास्त्रकारोंने कहा है,—"श्रुत्वा धर्मं विजानीयात्" अर्थात् श्रवण करनेसे ही धर्म जाना जाता है। वर्तमान कालमें शास्त्रोंके श्रवण करने की विधिका ह्रास हो गया है, इसी कारण आज समाजोंसे धर्म नष्ट हो रहा है।

कथाके अतिरिक्त मन्दिरोंमें कीर्तन और भजन भी होते हैं। अब थोड़े समयसे रामचरित्रोंका अभिनय (रामलीला) भी होने लगा है। इस रामलीलाके अभिनयको लेकर भारतमें मनुष्योंके दो दल हो रहे हैं, एक दलका कथन है, कि रामलीलाका अभिनय अनर्थमूलक है। द्वितीय दलका कथन है, कि रामलीला अवश्य होनी चाहिये; क्योंकि इससे मनुष्यको उपदेश मिलता है। मेरी समझसे उपरोक्त दोनों दलोंमें कुछ सत्य और कुछ असत्यका मिश्रण है। भगवान् कृष्णचन्द्र जब महारासमें अन्तर्धान हो गये थे, तब सब व्रजबालाओंने भगवान्की लीलाओंका अनुकरण किया था, इससे भगवान्की लीलाओंका अभिनय करना पाप नहीं, किन्तु शास्त्रविहित कार्य्य है। परन्तु यह अवश्य विचारणीय है, कि वह गोपियोंका लीला-अनुकरण किस उद्देश्यसे था और आजकलकी रामलीला एव

रासोंका क्या उद्देश्य है ? सच तो यह है, कि आप जब इस विषयका विचार करेंगे, तो गोपियोंके और हमारे उद्देश्यमें पृथिवी एवं आकाशका अन्तर प्रतीत होगा। पहली बात तो यही है, कि गोपियोंका प्रेम भगवान्में पराकाष्ठाका था; जिससे उनका वियोग भी पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। ऐसी दशामें अपने प्रेमीके प्रत्येक पूर्व अनुष्ठित कार्यमें भक्तोंका स्वाभाविक ही अनुराग हो जाया करता है। दूसरे जिन गोपियोंका भगवान्में अति अनुराग था, वे ही तन्मय होकर अपने प्यारेसे मिलनेके लिये लीलाओंका अनुकरण करती थीं। आज कल जो लोग रास किम्वा रामलीला करते हैं, वे भाड़ेके टट्टू होते हैं। न तो उनको भगवान् रामचन्द्रजीसे अनुराग है, न तन्मय होकर भगवान्से मिलनेके लिये ही रामलीला करते हैं; किन्तु उनको तो अपने टकोंसे मतलब है। जब लीला करने वाले पात्रोंकी ही यह दशा है तो दर्शकोंका तो कहना ही क्या ? क्यों कि उनकी तो तन्मयताके निमित्त प्रवृत्ति ही नहीं है। वे तो केवल नयनानन्द तथा कर्णानन्दके निमित्त ही जाते हैं। यही कारण है कि, रास और रामलीलाकी यात्राओंमें एवं प्रेक्षकोंमें समय समयपर ऐसे दुराचरण हो जाते हैं, जिनको लिखते हुए लेखनी भी लज्जासे लज्जित हो जाती है। इन पात्र और प्रेक्षकोंकी विषयाकार प्रवृत्तिका ही फल है, कि आजकल रामलीला एवं रासलीलाओंमें नोटंकी और दादरा आदि अत्यन्त घृणित गायनोंका भी प्रवेश हो गया है। भगवान्की लीलाओंका अनुकरण करना शास्त्रसम्मत अवश्य है, परन्तु गोपियोंकी तरह तन्मयताके कारण सच्चे हरिभक्तोंको निजानन्दके लिये करना चाहिये; न कि भाड़ेके टट्टुओंके द्वारा।

कहीं कहीं रामनवमीके दिन विमान भी निकलते हैं। अयोध्या, तिरुपति और रामेश्वर आदि स्थानोंमें तो इस महोत्सवकी बड़ी भारी धूम होती है। लाखों मनुष्योंका समारोह होता है और दूर दूर देशोंके यात्री भी आते हैं। आजकल यू० पी० और पंजाबकी कितनी ही सनातन धर्म सभाओंमें भी रामनवमीका उत्सव मनाया जाता है। भारतके किसी किसी प्रदेशकी राममण्डलियाँ भी रामनौमीके उत्सवको मनाती हैं।

शिक्षा।

रामनवमीके चरित-नायक भगवान् रामचन्द्रजीकी कथासे हमको कौन कौनसी शिक्षायें ग्रहण करनी चाहिये—यह बात निम्नलिखित घटनाओंपरसे क्रमशः पाठकोंकी समझमें आवेंगी। यद्यपि यहांपर भगवान् रामचन्द्रजीके

चरित्रको लिखनेकी आवश्यकता थी, परन्तु राम और कृष्ण इन दोनों अवतारोंकी सम्पूर्ण वार्तोंको प्रायः भारतके आबालवृद्ध सभी लोग जानते हैं, इसलिये नहीं लिखा गया।

१—क्षत्रियोंका कर्त्तव्य।

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चारों भाइयोंके कुछ बड़े हो जाने पर, "सिद्धाश्रम" के निवासी महर्षि विश्वामित्रको विदित हुआ, कि राम और लक्ष्मणका अवतार धर्मकी रक्षाके लिये हुआ है। उन दिनों विश्वामित्र और समस्त ऋषि समूहको मारीच, ताडका और सुबाहु आदि राक्षसोंने बड़ा दुःखी कर रक्खा था। अतः इस शुभ सम्वादको सुनकर विश्वामित्रजी अयोध्यामें राजा दशरथके पास गये और राक्षसोंके वध करानेके लिये राम तथा लक्ष्मणको मांगा। यद्यपि महाराज दशरथ बड़े विवेकी थे, परन्तु भगवान्की बालक्रीडाओंसे मोहित हो कर कहने लगेः—

चौथे पन पायहु सुत चारी, विप्र! बचन नहिं कहे विचारी।

"नाथ! वृद्धावस्थाके कारण पुत्रोंपर मेरा प्रेम अधिक है; इस कारण मैं स्वयं तो आपकी आज्ञाका पालन करनेको तयार हूँ, परन्तु राम और लक्ष्मणके देनेको चित्त नहीं चाहता। यह सुनकर, महर्षि विश्वामित्रको क्रोध आ गया और वे सभासे उठकर चलनेको ही थे कि राजा दशरथने अपने मनमें यह विचार किया:—

क्रुद्धश्चकुलनं दयति विप्र-वन्हिः, यास्यन्सुतस्तपस्यति मां समन्युं।
इत्थं नृपः पूर्वमवालुलोचे, ततोऽनुजज्ञे गमनं सुतस्य॥

"एक तरफ तो पुत्रका वियोग है और दूसरी तरफ ब्राह्मणका शाप, इनमेंसे ब्राह्मणके शापकी ही विशेषता है, क्योंकि वह समस्त कुलको नष्ट करनेवाला है।" राक्षसोंके वधमें प्रजारक्षण भी है; अतः महाराज दशरथने अपने प्राणसे भी अधिक प्यारे राम लक्ष्मणको विश्वामित्रके साथ कर दिया।

ऋषि और मुनि लोग इसलिये यज्ञ करते हैं, कि उन यज्ञोंके प्रभावसे समयपर वर्षा होकर संसारके लोग सुखी रहें, किन्तु जबसे राक्षसोंके अग्रणी सुबाहु आदिने यज्ञ-यागादिको रोक दिया, तबसे प्रजा बहुत दुःखी हो रही थी—इस क्षत्रियोचित कारणसे ही महाराज दशरथने भगवान् रामको विश्वामित्रके साथ कर दिया। इस कथासे प्रत्येक मनुष्यको यह शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये, कि प्रजाके सुखके लिये कठिनसे कठिन भी विपत्तिका स्वागत करनेको

तयार रहना चाहिये। क्षत्रियोंको तो देशसेवामें इतना तत्पर रहना चाहिये, कि समय आनेपर प्राणोंकी भी परवाह न करें और जिस प्रकार महाराज दशरथने प्रजाहितके लिये अपने प्राणोंसे भी प्रिय राम-लक्ष्मणको दे दिया, उसी प्रकार देश एवं धर्मके लिये क्षत्रियोंको हर तरहसे प्रस्तुत रहना चाहिये।

२—प्रजातन्त्र राज्य-प्रणाली।

भगवान् रामचन्द्रजीका चरित्र त्रेताकालीन होनेके कारण प्राचीन भारतकी रीति-नीतिपर गहरा प्रकाश डालता है। यद्यपि प्राचीन कालमें भी सांसारिक कार्य्य वर्त्तमानकी तरह ही किये जाते थे, परन्तु एषणाके अतिरेकसे स्वार्थकी मात्रा अधिक न बढ़ जाय, इसलिये उस कालमें वैराग्यको ही अधिक श्रेष्ठ माना जाता था। वैराग्यके यथावत् पालनके लिये ही एक मनुष्यकी आयुके चार विभाग किये गये थे। प्रथम विभागमें वेदादि सच्छास्त्रोंका अध्ययन करना ही मुख्य प्रयोजन था—जिसको ब्रह्मचर्य्य कहा है। द्वितीय विभागमें सवर्णा और कुलीन कन्याका पाणि-ग्रहण कर, धर्मानुकूल गार्हस्थ्यका चलाना ही ध्येय था और इसीको गार्हस्थ्य कहा जाता है। तृतीय विभागमें परिवारके सुखसे मोह छोड़कर, स-पत्नीक अथवा एकाकी तीर्थोंमें पर्यटन करता हुआ ही शेष जीवनको बितावे—इसीको वानप्रस्थाश्रम कहते हैं। चतुर्थ भागके प्राप्त होनेपर निवृत्तिमार्ग—संन्यासका अवलम्बन किया जाता था। दशरथ महाराजको भी उपरोक्त नियमानुसार ही वैराग्य प्राप्त हो गया था—इस प्रकारकी एक कथा रामायणमें आती है।—एक बार महाराज दशरथ हाथमें काचको लेकर अपने मुखको देखने लगे, तो कानके पास एक सफेद केश नज़र आया। उसको देखकर ही महाराजने स्थिर कर लिया, कि अब हमारी आयुके चतुर्थ भागका प्रारम्भ है और रामचन्द्र भी राज्य करनेमें सर्वथा योग्य हो गये हैं, अतः अब हमको वैराग्य धारण कर विरक्त हो जाना चाहिये और इस राजकाजके भारको भगवान् रामचन्द्रपर छोड़ देना चाहिये।

यद्यपि भारतवर्षमें अपेक्षाकृत प्राचीन कालसे लगाकर अब तक प्रजाको राजाके अधीन रहना ही अच्छा माना गया है और इसी कारणसे राजाको साधारण मनुष्य मानना महापाप है, यह बतलाते हुए मनुजी महाराजने कहा है:—

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नर-रूपेण तिष्ठति॥

"राजा यदि बालक भी हो, तो भी उसका अपमान न करना चाहिये, कारण कि मनुष्यके रूपमें यह बहुत बड़ा देवता है।" तथापि तुलसीकृत एवं वाल्मीकि रामायणके अवलोकनसे विदित होता है, कि उस कालमें भी ऐसा "नृप-तन्त्रराज्य" नहीं था, कि जिसमें प्रजाका कुछ भी हस्तक्षेप न हो और राजा चाहे जैसी अनीतिसे काम ले सके; प्रत्युत उस समय यह दृढ़ बन्धन था, कि राजा जब किसी मौलिक कार्य्य जिससे प्रजाकी हानि लाभका सम्बन्ध हो—करे, उसको विना प्रजाकी सम्मतिके न करे। भागवतसे मालूम होता है, कि महाराज वेणुने प्रजाकी विना सम्मतिके ही राज्यकार्य्यको करना चाहा था, परन्तु प्रजाके प्रतिनिधिरूप ब्राह्मणोंने प्रजाके हितके लिये उसको भस्म कर दिया था।

सारांश यह है, कि उसी नियमके अनुसार संसारसे अथवा राज्यकाजसे उपराम होते समय महाराज दशरथने भी त्रेतायुगमें जब रामचन्द्रजीको "युवराज" पदसे अलंकृत करना चाहा, तब प्रजा लोगोंकी एक विराट् सभा कर कहाः—

जो पञ्चहि मत लागै नीका, तो हठि देव राम कहँ टीका।

"यदि आप प्रजाजनोंको स्वीकार हो, तो रामचन्द्रजीको युवराज पद देना चाहिये।" इससे स्पष्ट है, कि प्राचीन कालमें शासन राजाके अधिकारमें था और राजा प्रजाके अधिकारमें। अर्थात् व्यक्तिगत जीवनमें राजा स्वतन्त्र था, किन्तु समष्टिगत जीवनमें परतन्त्र था।

३—माता और पिताकी आज्ञाका पालन।

यह तो पाठक जानते ही हैं, कि भगवान् रामचन्द्रजीका अवतार संसारमें लोकमर्यादा स्थापित करनेके निमित्त ही था। इसी कारण आपने अपने अवतारकालमें वेद और लोक दोनोंकी मर्यादाको रक्खा था। लोकमें जिस प्रकार माता पिता और आचार्यकी प्रतिष्ठा करना मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य माना गया है, वैसा ही—"मातृदेवो भव" "पितृदेवो भव" "आचार्यदेवो भव" इत्यादि वाक्योंसे माता पिता और आचार्यकी आज्ञाका पालन करना भी वैदिक धर्म है। इस धर्मको भगवान् रामचन्द्रजीने कैसा अच्छा निभाया है यह बात नीचेकी उक्तिसे अनायास समझमें आजाती है।

स तन्नियोगात् खलु सत्यवादी, सत्यां प्रतिज्ञां नृप पालयंस्ते।
इतो महात्मा वनमेव रामो, गतः सुखान्यप्रतिमानि हित्वा॥

"राजा दशरथ बड़े सत्यवादी थे; अतः उनकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये अयोध्याके चक्रवर्त्ती राज्यको तृणके समान छोड़कर भगवान् राम वनको चले गये।"

इस अवसरपर रामचन्द्रजीको वन-गमनसे रोकनेके लिये अथवा उनकी सत्यनिष्ठाको जांचनेके लिये, वशिष्ठजीने एक प्रतारणा की थी। वशिष्ठजी बोले,—"राम! तुम्हारा वन जाना इस समय अच्छा नहीं है। यदि तुम हठात् वन चले जाओगे, तो तुम्हारे इस कर्त्तव्यसे राजा दशरथको नरक-गामी होना पड़ेगा और उस हालतमें तुम्हारा पुत्रात्मक धर्म नष्ट हो जायगा। कारण कि राजा दशरथने अपने मुखसे यह प्रतिज्ञा की थी, कि "मैं कल रामचन्द्रको राज्य दूंगा।" यदि राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार आपको आज ही राज्य न मिला, तो उनका वचन मिथ्या हो जायगा।" यह कैसी विचित्र बात है? प्रथम तो दुस्त्यज राज-लक्ष्मीका त्याग करना ही मनुष्यके लिये दुर्घट है और कदाचित् पितृ-भक्तिके कारण त्याग करनेको भी समर्थ हो जाय, परन्तु पिता दुर्गतिका अधिकारी होता है—इस वचनको सुनकर कौन ऐसा पितृ-भक्त पुत्र होगा, जो फिर भी राज्य-लक्ष्मीको स्वीकार न करे और अपने दृढ़ विचारपर अटल रूपसे जमा रहे? परन्तु लिखते हुए हर्ष होता है, कि इतना होनेपर भी भगवान् रामचन्द्रजीने अपने निश्चयको पूर्ण रक्षा की। भगवान् रामचन्द्रजीने कहा,—"गुरु-वर्य्य! इसमें सन्देह नहीं कि महाराजने मुझको आजही राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु उस प्रतिज्ञामें यह निर्देश नहीं था, कि अयोध्याके राज्यान्तर्गत वनका राज्य देंगे अथवा जनपदका राज्य देंगे। जब जनपद और वनका मूल प्रतिज्ञामें निर्देश ही नहीं और चौदह वर्षके वन-वासकी आज्ञा स्पष्ट है, तो आज मैं दशरथकी आज्ञाके अनुसार ही चौदह वर्षके लिये सु-विशाल वन प्रदेशका राजा होकर जा रहा हूं। ऐसी दशामें मैं नहीं समझता कि महाराज दशरथके किस वाक्यकी हानि होगी?" अन्तमें वशिष्ठजीके अनुमोदन करनेपर भगवान् राम वनको पधार ही गये। इससे हमको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हम माता, पिता और आचार्यकी आज्ञाको अवश्यमेव पालन करें।

४—स्त्रीका पातिव्रत्य धर्म।

रामनवमीके पवित्र त्यौहारसे जितना सम्बन्ध भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रोंका है, ठीक उतना ही सम्बन्ध श्रीजानकीजीके चरित्रोंका है, इस लिये "पातिव्रत्य धर्म" की शिक्षा सीताजीके चरित्रोंसे बतलाई जाती है।

जब स्त्रीधर्मकी मीमांसा की जाती है, तो शास्त्रोंके अवलोकनसे स्त्रीका परमधर्म पतिसेवा ही विदित होता है। यहां तक कि मनुजी महाराजने तो स्त्रीका गुरु भी पति ही बतलाया है:—

पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्। मनु०

"स्त्रीका गुरु पति ही है।"

उपरोक्त आज्ञाका भगवान् रामके वनगमन-कालमें श्रीमती जनकनन्दिनीने जैसा पालन किया है, उसपर आदर्श हिन्दू महिलाओंको ध्यान देना चाहिये।

भगवान् राम जिस समय माता कौशल्याके पास आज्ञा लेनेको गये थे उस समय वहांपर श्रीजनकनन्दिनी भी उपस्थित थी। सीताने रामचन्द्रजीके वनगमनको श्रवण कर, पहले ही अपना सिद्धान्त स्थिरकर लिया था,—"जब मेरे पति-देव वनको जाते हैं तो मेरा यहां रहना व्यर्थ ही है," अतः मुझको अवश्य ही भगवान्‌के साथ वनमें जाना चाहिये।" सीता भगवान्‌के आनेसे प्रथम यह सोच रही थी "श्रीरामचन्द्रजी वनको पधारते हैं। देखें, मैं शरीर और प्राणके सहित रामचन्द्रजीके साथ जाती हूं या केवल प्राण ही जाते हैं?" अभिप्राय यह है कि, यदि श्रीरामचन्द्रजीने साथ चलनेकी आज्ञा दे दी, तब तो शरीर और प्राण दोनों ही साथ जांयगे और यदि मनाई कर दी तो स्वामीकी आज्ञाको उल्लंघन करके शरीर तो जा नहीं सकता, परन्तु प्राण अवश्य ही उनकी सम्पत्ति है, सो वह निश्चय ही भगवान्‌के साथ जायगा। जनकनन्दिनी इस प्रकारकी कठिन मीमांसामें लगी हुई थीं, कि उसी समय वहाँ भगवान् रामचन्द्रजी आ गये।

माता कौशल्याको अनेक प्रकारसे समझाकर और आज्ञा लेकर फिर भगवान् राम सीतासे कहने लगे,—"प्रिये! वास्तवमें यह समय तुम्हारे और मेरे लिये "कसौटीके" समान है। यदि इस समय तुमने मेरी शिक्षापर ध्यान दिया तो निःसन्देह हम इस "कसौटीकी" परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे। तुम्हारी और मेरी भलाई इसीमें है कि, तुमको इस समय घरपर ही रहना चाहिये। प्रथम तो मेरी आज्ञाका पालन और दूसरे सास एवं श्वशुरकी सेवा प्राप्त होना, तुम्हारे लिये ये दोनों बातें अच्छी हैं। जब कभी माता मेरी सुधि करे तब हे सुन्दरि! अच्छी २ पुरातन कथाएँ कहकर उनको समझाती रहना। क्योंकि मैं तुमको इसी कारण घरपर छोड़ता हूँ। दिन जानेमें देर नहीं लगती,

इधर तुम सास श्वशुरकी सेवामें और उधर मैं पिताके वचनपालनमें लग जाऊंगा, तो अचिर-कालमें ही यह चौदह वर्षकी अवधि समाप्त हो जायगी। मोहवश कदाचित् तुमने मेरे वचनोंका पालन न किया, तो वनके असह्य दुःखोंको सहन करनेके अतिरिक्त तुमको परिणाममें बड़ा भारी दुःख होगा। वनके दुःखोंको तुम जानती नहीं हो; गर्मी, शीत और वायु आदिकी पीड़ाको सहना और मार्गमें नंगे पैर चलनेसे कुश, कंकड़ तथा कंटक आदिकी वेदनाओं-का सहन करना, जिन वनके पशुओंका चित्र देखकरभी तुमको डर लगता था उनका साक्षात्कार होना, खरेरी पृथ्वीपर सोते हुए वल्कलके वस्त्रोंका धारण करना, प्रतिदिन नहीं, किन्तु दूसरे तीसरे दिन कन्द मूलके आहारका मिलना, मनुष्योंका भक्षण करनेवाले राक्षसोंका वहां रहना और पहाड़के जलसे उत्पन्न अनेक रोगोंकी वेदनाको सहन करना इत्यादि अगणित दुःख वनमें हैं। इस कारण प्रिये! तुम्हारा यहीं रहना सर्वथा उचित है।"

भगवान् रामचन्द्रजीकी उपर्युक्त शिक्षाको श्रवणकर सीता आश्चर्यमें रह गई और हाथ जोड़कर कहने लगी, "प्रभो! संसारमें स्वामीका स्वामी तो कौन है, किन्तु—

ये त्वया कीर्तिता दोषाः वने वास्तव्यतां प्रति।
गुणानित्येव तान्वेद्मि, तव स्नेहपुरस्कृता॥

जो जो दोष आपने वनके चलनेमें और वहांके निवास करनेमें वतलाये हैं, मैं आपके साथ रहनेपर उनको दोष नहीं, किन्तु गुण मानती हूं।" अन्तमें सीताने यहां तक कह दिया है कि,—

प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम विनु रघुकुल-कुमुद-विधु, सुरपुर नरक समान॥

भगवान् रामने तो मर्यादा स्थापित करनेके लिये अवतार ही लिया था, परन्तु जनक-नन्दिनीने कैसा अच्छा मार्ग वतलाया है। हमारे देशकी स्त्रियों-को सीताके इस मन्तव्यसे "पतिव्रत-धर्म"की शिक्षा अवश्य ही ग्रहण करनी चाहिये।

५—छोटे भाईका बड़े भाईके प्रति कर्त्तव्य।

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः। नीतिः।

संसारमें किसी पुरुषको भाई कह देना तो अत्यन्त सरल है, परन्तु भाई-पनेका निर्वाह करना कठिन है। इसी कारण नीतिवालोंका कथन है,—

"राजद्वार और श्मशानमें जो साथ देता है, वह सच्चा भाई।" सारांश—कठिन से कठिन विपत्ति आने पर भी साथ न छोड़े, वह सच्चा भाई। इसका मूर्तिमान उदाहरण लक्ष्मण है। रामचन्द्रजी चौदह वर्षके लिये वनमें पधारते हैं इस खबरको सुनकर और अत्यन्त व्याकुल होकर लक्ष्मणजी तत्काल ही भगवान् रामचन्द्रजीके पास पहुंचे और पुलक-गात्र होकर, नेत्रोंसे जलमोचन करते हुए, अति प्रेमसे चरणोंमें गिरकर, जलविहीन दीन-मीनकी तरह भगवान् रामके पास खड़े हो गये तथा मुखसे कुछ भी न कह सके। अन्तर्यामी रामचन्द्रजीने मनकी वातको जानकर भाईसे कहा,—"लक्ष्मण! इस कठिन समयमें भरत और शत्रुघ्न तो यहां हैं नहीं और महाराज दशरथ वृद्ध होने पर भी मेरे वियोगजन्य दुःखसे दुखी हैं। यदि इस समय तुमको भी मैं अपने साथ लेकर वनमें चला जाऊं, तो राजधानी सूनी रहती है। इस कारण मेरी प्रबल इच्छा है, कि तुम यहां रहकर मेरे वियोग-जन्य दुःखसागरमें डूबते हुए अयोध्यावासियोंके कर्णधार वनो।" इसको श्रवण कर लक्ष्मणके मनोराज्यमें जो आन्दोलन हुआ, उसको गोस्वामी तुलसीदासने इस प्रकारसे कहा है :—

उतर न आवत प्रेम वश, गहे चरण अकुलाय।
नाथ! दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो काह वसाय॥

हे रघुनन्दन! आपने मेरे हितके लिए जो भी शिक्षा दी है, वह वास्तवमें सरल है, परन्तु मेरी कदराईके कारण मुझको असह्य प्रतीत हो रही है। जो पुरुष धर्मकी धुरको धारण करनेमें समर्थ हो, वीर हो, ज्ञानी हो, वही निगम और नीतिका अधिकारी हो सकता है। मैं तो आपके स्नेहसे पलाहुआ बालक हूं; अतः इस निगम-सिद्धान्तके समझनेमें असमर्थ हूं। जिस प्रकार स्तनन्धय बालकको केवल माताका ही आधार होता है, उसी प्रकार मुझको तो केवल आपका ही आधार है। धर्म-नीतिका उपदेश तो उसको देना योग्य है, जिसको मोक्ष तथा वैभवकी आवश्यकता हो। जो मन, वाणी, कर्मसे सर्वथा आपका ही अनन्य दास हो, उसको आपके सिवाय अन्य वस्तुकी इच्छा ही नहीं, तो आप मुझको किस प्रकार छोड़ सकते हैं? सारांश, इस लक्ष्मणके प्रसङ्गसे हम लोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये,—"आपत्ति कालमें छोटा भाई बड़े भाईके साथ जानेको यहाँ तक तैयार है, कि सर्व प्रकारके वैभव और मुक्तिको भी तिरस्कार करता है, परन्तु वनमें जाते समय भाईका संग छोड़नेको तयार नहीं है।"

६—आदर्श-नरेशका कर्त्तव्य।

भगवान् रामका अवतार क्षत्रियवंशमें हुआ था; अतः समय समय पर भगवान्ने अपने आचरणसे क्षत्रियजातिको भी सावधान किया है। वनवासके समय जब भगवान् रामचन्द्रजी ऋषियोंसे मिलकर आगेको चले, तो मार्गमें एक बहुत विशाल पर्वत देखा। उसको देखकर ऋषियोंसे पूछा,—"यह सामने अति विशाल पर्वत कैसा है, जिसमें वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है?" भगवान्के इस कथनको श्रवण कर मुनियोंने जो उत्तर दिया और उस समय भगवान्ने जो प्रतिज्ञा की—उसको गोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रकार रामायणमें लिखा है:—

अस्थिसमूह देख रघुराया, पूछा मुनिहिं लागि अति दाया।
जानतहू कस पुछिय स्वामी! समदरशी उर अन्तर्यामी।
निशिचर-निकर सकल मुनि खाए, सुनि रघुनाथ नयन जल छाए।

दोहा।

निशिचरहीन करौं मही, भुज उठाय प्रण कीन।
सकल मुनिके आश्रमनि, जाय जाय सुख दीन॥

प्रजाके कष्टको श्रवण कर भगवान्के नेत्रोंमें आँसू बह निकले और उसी समय निशाचर-हीन पृथ्वीको करनेकी प्रतिज्ञा की। इससे भगवान्ने क्षत्रियोंका कर्त्तव्य दुष्टोंको दण्ड देना और प्रजाके दुःखसे दुखी होना स्पष्ट बतला दिया है। आदर्श-नरेश वही है, जो अपने जीवनको प्रजा-हितके लिये मानता है।

७—नीति और धर्मका आदर्श भरत।

भरतजीका नानाके यहाँसे आकर दश गात्र आदिको करना और भगवान् रामचन्द्रजीसे "चित्रकूट" पर मिलकर, पादुकाओंकी अधीनतामें रहकर, राज्यके कार्यको चलाना—इतने प्रसङ्गसे हमको जो उपदेश मिलते हैं, उनको यहाँ लिखा जाता है।

पितृ-भक्ति।

भरतजीका पितामें इतना प्रेम था, कि इधर रामचन्द्रजीके वियोगमें राजा दशरथके प्राण निकले, उधर अपने नानाके यहाँपर भरतजीको स्वप्नमें महाराजकी मृत्युका निश्चय हो गया। यह निश्चय अन्तःकरणके दृढ़-प्रेम विना नहीं होता। इसीसे जाना जाता है कि, भरतजीका पितामें अच्छा प्रेम था। पिताके साथ प्रेम करना, यह पुत्रका परम धर्म है। जो लड़के जीवित पिताकी

अवज्ञा करते हैं और फिर धर्मकार्यार्थ तीर्थोंमें भटकते हैं—मेरी समझमें वे बड़ी मूर्खता करते हैं; कारण कि धर्माधर्मके निर्णायक वेदमें "पितृदेवो भव"—यह वाक्य प्रथम दिन ही पढ़ाया जाता है। जिस प्रकार क, ख के बिना वर्णमालाका आना असम्भव है, उसी प्रकार माता, पिता और आचार्यकी भक्तिके बिना मुक्तिकी वर्णमालामें भी प्रवेश नहीं हो सकता। अतः पुत्रका सर्वोत्तम धर्म यही है, कि तन मन और धनसे पिताकी सेवा करे।

वैराग्य।

भरतजीमें वैराग्यकी मात्रा भी कम नहीं थी, किन्तु वैराग्यका आदर्श किसीको देखना हो, तो भरतजीके निम्न चरित्रमें देख सकता है। अयोध्या जैसे राज्यको जब रानी कैकेईने भरतजीको दिलाना चाहा तो भरतने उस राज्यका तिरस्कार ही नहीं किया, किन्तु माताको भी ऐसे अनुचित शब्दोंसे सम्बोधित किया कि भरत जैसे धार्मिक पुरुषको न करना चाहता था, परन्तु यह भरतजीके पूर्ण वैराग्यका ही कारण था। समीपमें प्राप्त हुए वैभवका तिरस्कार करना—यही सच्चे विरागीका कर्त्तव्य है।

प्रेम।

भरतजीके अनिर्वचनीय प्रेमको भगवान् राम ही जानते थे; यहाँ तक कि छोटे भाई लक्ष्मणको भी विदित नहीं था। गोस्वामीजीने लिखा है:—

अगम स्नेह भरत रघुवरको, जँह न जाय मन विधि, हर हरिको।

अगम प्रेमसे यहाँपर अनिर्वचनीयताका उल्लेख किया है। यही कारण है, कि लक्ष्मणजीने भी उस प्रेमको नहीं जाना। यदि लक्ष्मणजी भरतके उस अपूर्व प्रेमको जानते तो "भरत निष्कंटक राज्य करनेके लिये ही हमसे लड़ने आया है" यह कभी भी न कहते। लक्ष्मणके इस अभिप्रायको सुनकर भगवान् राम कहते हैं;—"लक्ष्मण! जहाँतक ब्रह्माकी बनाई सृष्टि है, उसमें भरतके सदृश न तो सुना न देखा। वत्स! तुम्हारा यह विचार कि अयोध्याके राज्यको पाकर भरतको राज्यमद हो गया है—नितान्त झूठा है! ब्रह्मा, महादेव और विष्णुके पदका अधिकार प्राप्त होनेपर भी भरतको मदका होना असम्भव है। लक्ष्मण! क्या काँजीके दो चार बिन्दु पड़नेसे क्षीरसागरका क्षीर विकारको प्राप्त हो सकता है? कदापि नहीं। मध्यान्ह कालके सूर्यको चाहे अन्धेरा निगल जाय, कदाचित् सुविशाल आकाश बादलमें छुप जाय, गोपदके खड्डेमें समुद्रका आचमन करनेवाला "घटयोनि" डूब जाय, पृथ्वी क्षमाको छोड़ जाय

और मच्छरकी फूँकसे चाहे सुमेरु उड़ जाय, परन्तु भाई भरतको राज्यमदका होना असम्भव है।" इसका नाम प्रेम।

निःस्वार्थता।

सर्व स्वार्थोंमें राज्यलक्ष्मी ही प्रबल स्वार्थ है। अयोध्याके चक्रवर्ती राज्यको लेकर भगवान् राम और भरतमें क्या सम्वाद हुआ है यह लिखा जाता है; जिससे आपको यह विदित हो जाय, कि एक दिन चक्रवर्ती राज्यकी गेंद बनाकर भारतके दो वीर निःस्वार्थ होकर किस प्रकारसे टकरा रहे थे। खेद है कि आज उसी भारतमें एक दमड़ीके निमित्त भाईको भाई मारनेके लिये तैयार है।

चित्रकूट पर मिलनेके पश्चात् भरत चाहते थे, कि किसी प्रकारसे भी श्रीरामचन्द्रजीका पधारना अयोध्यामें होजाय और रामचन्द्रजी चाहते थे, कि किसी भी प्रकारसे अयोध्याका राज्य भरत ही करें, तो पिताकी आज्ञाका पालन होजाय। भगवान् रामचन्द्रजी बोलेः—

अरण्ययाने सुकरे पिता मां,
प्रायुंक्त राज्ये बत दुष्करे त्वाम्।
मागाः शुचं वीर! भरं वहामुं
आभाषि रामेण वचः कनीयान्॥

"भरत! यह मैं जानता हूं कि पिताजीने आपको अति कठिन अयोध्याका राज्य दिया है और मुझको अति सुकर सरल वनका राज्य दिया है। परन्तु वीर! तुमको और मुझको अनेक कष्ट सह कर भी पिताकी आज्ञाका अवश्य ही पालन करना चाहिये" और भी कहते हैंः—

अस्माकमुक्तं बहु मन्यसे चेत्,
तदीशिषे त्वं न मयि स्थिते च।
जिहेष्य तिष्ठन् यदि तातवाक्ये,
जहीहि शंकां व्रज शाधि पृथ्वीम्॥

"मेरी उपस्थितिमें तुम अयोध्याके राज्यको नहीं करना चाहते—इससे विदित होता है, कि तुम मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले हो। यदि यह सत्य है, तो मेरी आज्ञाको मानकर तुमको अवश्य ही अयोध्याका राज्य करना चाहिये और यदि पिताके वचनको मानना अभीष्ट है—तो भी अयोध्याके राज्यका पालन

करना चाहिये।" इस प्रकारकी भगवान् रामकी उक्तिको सुनकर, धर्मसिन्धु भरतजी बोले,—

उर्जस्वलं हास्तिहस्ति तुरंगमेतत्,
अमूनि रत्नानि च राज-भांजि।
राजन्यकं चैतदहं क्षितीन्द्र,
त्वयि स्थिते स्वामिति शान्तमेतत्॥

"नाथ! हाथी, घोड़ा, रत्न और राज्य आदि जितने भी पदार्थ हैं, सब आपके सम्मुख उपस्थित हैं और मैं स्वयं भी उपस्थित हो गया हूं। ये सब पदार्थ चक्रवर्ती दशरथके हैं अथवा उनके ज्येष्ठ पुत्र आपके हैं।"

भरतके इस न्यायानुमोदित वाक्यको श्रवण कर भगवान् रामने सोचा कि भरतको नियमानुसार गद्दी पर बिठलाना तो अशक्य है। हाँ, बलात्कारसे दी हुई आज्ञाका भरत अवश्य ही पालन करेगा। इस कारण आज्ञाके रूपमें कहाः—

इति निगदितवन्तं राघवस्तं जगाद,
व्रज भरत! गृहीत्वा पादुके त्वं मदीये।
च्युतनिखिलविशंकः पूज्यमानो जमोघैः,
सकलभुवनराज्यं कार्यमस्मन्मतेन॥

"भरत! युक्ति प्रयुक्तिसे नहीं, किन्तु आज्ञाके द्वारा यह कहता हूँ, कि सम्पूर्ण शंकाओंसे निःशंक होकर और अखिल मनुष्योंसे पूजित होकर, सकल भुवनके राज्यको मेरी सम्मतिसे तुम करो? अर्थात्—मेरी खड़ाऊँको सिंहासन पर विठाकर, मेरी आज्ञासे तुमको ही प्रजाका पालन करना चाहिये।" बड़े भाईकी इस अनिवार्य आज्ञाको शिरोधार्य करके ही भरतजीको नन्दीग्राममें रह कर, अयोध्याका शासन करना पड़ा। इतने पर भी भरतजी शासन मात्र ही करते थे, राजसिंहासन पर तो भगवान्की पादुकाओं-को बिठलाया था। इस प्रकारका निःस्वार्थ प्रेम जब तक हमलोगोंमें न होगा तब तक देशोन्नति, देशोन्नति कहना प्रलाप मात्र ही है।

८—साध्वी स्त्रीका कर्त्तव्य।

संसार भरमें "पति-व्रत" धर्मकी शिक्षा जैसी भारतवर्षमें है, प्रतिज्ञाके साथ कहना पड़ता है कि, उसका शतांश भी इतर देशोंमें नहीं। हाँ प्राचीनकालीन शिक्षा और अर्वाचीन-कालीन आचरणमें अवश्य ही अन्तर पड़ गया है, परन्तु

इतना होनेपर भी हिन्दू ललनाओंका प्राचीनकालीन "पतिव्रत धर्म" आज भी संसारको मोहित कर रहा है।

भगवान् राम जब वनमें गमन करते हुए अत्रि ऋषिके आश्रम पर पहुँचे थे, तब माता अनसूयाने जनक नन्दिनीको जिस "पतिव्रत धर्म" का उपदेश किया है, कौन ऐसा आर्य-पुरुष होगा कि उस प्रकारकी प्राचीन प्रणालीकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा न करेगा? गोस्वामी तुलसीदासजीने उस मौलिक उपदेशको इस प्रकारसे लिखा है:—

जग पतिव्रता चार विधि अहहीं ; वेद, पुराण, सन्त, अस कहहीं।
उत्तमके अस बसे मन मांहीं , सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखहि कैसे , भ्राता, पिता, पुत्र, निज जैसे।
धर्म विचार समुझ मन रहहीं; सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिन अवसर भयसे रहे जोई , जानहु अधम नारि जग सोई।
पतिवंचक परपति रति करहीं, रौरव नरक कल्प शत परहीं।

"सीते! पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकारकी होती हैं, यह शास्त्र और पुराण सबका मत है। उत्तम कक्षाकी पति-व्रता वह स्त्री है, जो "यह पुरुष है" इस दृष्टिसे केवल अपने पतिको ही देखती है, अन्य पुरुषोंको स्त्री ही जानती है, अर्थात् मेरे पतिके अतिरिक्त संसारमें कोई और भी पुरुष है इस प्रकारका जिसको ज्ञान ही नहीं है। अनसूयाको इसी प्रकारका ज्ञान था, ऐसा पुराणान्तरमें लिखा है। जो स्त्री अपनेसे बड़ेमें "पिता" भाव, बराबरीकेमें "भाई" भाव, और छोटेमें "पुत्र" भाव रखती है, वह मध्यमकक्षाकी है। क्योंकि पिता भाई और पुत्र मानने पर भी अन्य पुरुषका ज्ञान तो रहता ही है, अतः उत्तम कक्षाकी नहीं हो सकती। निकृष्ट कक्षाकी वह स्त्री है, जो यह समझकर व्यभिचारसे रुकती है, "मेरा धर्म नष्ट हो जायगा।" यह डर कर धर्मका पालन करती है। डर दो प्रकारका होता है, (१) इहलौकिक और (२) पारलौकिक। डरकर धर्मका पालन करना उत्तम कोटिमें नहीं किन्तु निकृष्ट कोटिमें ही गिना जाता है। अतः यह निकृष्ट कक्षाकी स्त्री है। जो स्त्री अवसर न मिलनेसे और सम्बन्धियोंके डरसे पतिव्रतका रक्षण करती है वह निश्चय ही अधम है। क्योंकि ऐसी स्त्री अवसर मिलने पर और सम्बन्धियोंसे आंख चुरा कर व्यभिचारमें प्रवृत्त हो सकती है। अपने पतिको ठगकर परपतिके साथ जो रति करती है वह अवश्य ही कुलटा होती है। और कल्पोंतक "महारौरव" नरककी अधिकारिणी

होती है, यह शास्त्रोंका मत है।" हमारे देशकी ललनाओंको इस अनसूयाके उपदेश पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

९—क्षत्रियोंका जितेन्द्रियत्व।

भगवान्-रामचन्द्रजी अवतार थे और अवतार सम्पूर्ण लोककी रक्षा एवं शिक्षाके निमित्त तो होता ही है, परन्तु मनुष्योंके जिस जातिमें अवतार होता है, उसी जातिके विशेष धर्मको रक्षा पूर्ण रूपसे करता है। "रामावतार" क्षत्रिय जातिमें था। इसलिये धर्मशास्त्रानुसार एक धार्मिक क्षत्रियका क्या कर्त्तव्य होना चाहिये, इसको भगवान् रामने पद पदमें बतलाया है। क्षत्रियोंके असाधारण धर्ममेंसे मनुजीने अत्यावश्यकीय धर्म "विषयेष्वप्रसक्तिश्च" अर्थात् विषयोंमें अप्रसक्त होना ही बतलाया है। इसका कारण यह है कि, क्षत्रियोंका जन्म प्रजाकी रक्षाके लिये ही होता है। प्रजाकी रक्षा एकपत्नीव्रतवाला अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही कर सकता है, अतः क्षत्रियको पूर्ण जितेन्द्रिय रहना चाहिये। विषयी जीव कभीभी रणक्षेत्रमें अपने शत्रुको पराजित नहीं कर सकता। सभी जानते हैं कि क्षत्रियोंके नामके अन्तमें "सिंह" शब्द होता है। यदि वह स्त्री-लम्पट हो तो सिंह कुतियाके पीछे पड़नेसे जैसे सिंह न रहकर कुत्ता बन जाता है, उसी प्रकार क्षत्रिय क्षत्रियत्वसे भ्रष्ट होकर पामर बन जाता है।

जिस समय सीता और लक्ष्मणके सहित भगवान्-राम "पंचवटीमें" निवास करते थे, उस समय एक दिन कामवश होकर रावणकी भगिनी शूर्पनखा वहां पर आकर भगवान्-रामसे कहने लगी, "तुम्हारे समान पुरुष और मेरे समान स्त्रीका जो दैवात् संयोग हुआ है सो अपूर्व है। आज तक मुझको मेरे स्वरूपानुकूल वर नहीं मिला था, इसी कारण मैं कुमारी रही अब आपको सर्वथा योग्य पाकर आशा करती हूं कि आप मुझको अवश्य ही सनाथ करोगे?"

इस प्रकारका अवसर संसारमें प्रायः मनुष्योंकी परीक्षाके लिये ही आया करता है। सर्व प्रकारके रूप लावण्यसे युक्त यदि कोई युवती वन एकान्तमें प्रार्थना करे, फिर साधारण मनुष्यकी क्या शक्ति है जो उसके चक्करसे बच सके, परन्तु भगवान्-राम तो भगवान ही थे, वे भला किस प्रकार विषयाग्निके पतंगे बन सकते थे। विषय लोलुपा शूर्पनखाको प्रथम तो दया-दृष्टिसे भगवान्-ने बहुत समझाया, परन्तु अनेक प्रकारसे समझाने परभी वह अपने दुराचरण और कुचेष्टासे नहीं रुकी, तब विवश होकर भाई लक्ष्मणके द्वारा नाक कान कटाकर, मानो दुष्ट रावणको डंगकी "चिनौती" दे दी। महात्मा भर्तृहरिजीने ठीक कहा है:—

धन्या स्त एव तरलायत-लोचनानां,
तारुण्य-रूप-घन पीन-पयोधराणाम्।
क्षामोदरोपरि लसत्रिवली-लत्तानां,
दृष्ट्वाकृतिं विकृतिमेति मनो न येषाम्॥

तरल नेत्रोंवाली, तरुणावस्थावाली, पीनपयोधरी, कृशोदरी और उदरमें त्रिवली रेखावाली स्त्रीकी आकृतिको देखकर जिनके मन मोहित नहीं होते, वे लोग धन्य हैं।

भ्रातृ-भाव।

आजकल हम लोगोंके मनोराज्यमें "देशोन्नति" यह अत्यन्त प्रयोजनीय महामन्त्र प्रति दिन ही नहीं, किन्तु प्रतिक्षण जपा जाता है; जिसका होना हमारे लिये परम सौभाग्य प्रद है, परन्तु यह स्मरण रहे, कि जबतक हमारे देशमें भ्रातृभावकी अभिवृद्धि न होगी, तबतक देशोन्नतिकी आशा—आकाश कुसुमके सदृश है। हमलोगोंने भगवान् रामके चरित्रको एक नहीं, अनेक बार देखा और सुना होगा, परन्तु उससे शिक्षा कुछ भी न ली। "भ्रातृभाव" का जैसा उदाहरण भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रमें मिलता है, मेरी समझसे समस्त संसारके इतिहास और धर्मग्रंथोंमें भ्रातृभावका ऐसा दृष्टान्त आपको न मिलेगा। रामायणमें इस घटनाको यों लिखा है:—

भ्रातृभावका उज्ज्वल दृष्टान्त।

"प्रातःकालका समय है, भगवान् मरीचि-मालीका उदय होनेको है; अरुणोदय हो गया है—उसी समय अपने नित्य-कृत्यसे निवृत्त होकर, लक्ष्मणजी भगवान् रामचन्द्रजीके पास पहुंचे और अभिवादनके पश्चात् अतिनम्र भावसे प्रार्थना की,—"भगवान्! आज रावणके पुत्र मेघनादके साथ संग्राम है; अतः इस दासके लिये आज्ञा हो जाय!" होनहारको लक्ष्यमें रखते हुए भगवानने लक्ष्मणके अत्याग्रहको देखकर, आज्ञा दे दी। प्रथम तो मेघनादके साथ लक्ष्मणका घोर युद्ध हुआ, परन्तु अन्तमें इन्द्रकी दी हुई वीरघातिनी सांग जिसके निष्फल न होनेका वरदान ब्रह्माने दिया था उससे लक्ष्मणजी मूर्छित होकर रण-भूमिमें गिर गये। मूर्छित लक्ष्मणको गोदमें लेकर भगवान् विलाप करने लगे:—

जैहों अवधि कवन मुँह लाई, नारि हेत प्रिय बन्धु गँवाई।
निज जननीके एक कुमारा, तात तासु तुम प्राण अधारा।
उत्तर काह दैहों तेहिं जाई, उठ किन मोहि सिखावहु भाई।

यद्यपि रामचन्द्रजी अवतार होनेके कारण लक्ष्मणके भवितव्यको जानते थे, तथापि लोक मर्यादाके दो प्रबल हेतुओंको लेकर ही यह उनका विलाप था,—[१] प्रतिज्ञा हानि और [२] भ्रातृ-भाव ।

प्रतिज्ञा-हानि ।

जिस रघुकुलमें भगवान् रामका जन्म हुआ था, उसका असाधारण धर्म यही था—"प्राण भलेही चले जाँय, परन्तु वचन न जाना चाहिये !" पाठकोंको स्मरण होगा, कि रानी कैकेयीके वरदान प्रसङ्गमें राजा दशरथने यही कहा था:—

रघुकुल रीति यही चलि आई, प्राण जाहिं बरु वचन न जाई ।

भगवान् रामके चतुर्दश वर्षीय वनवासमें भी यही प्रतिज्ञा कारण थी । अस्तु ।

इसी प्रकारकी एक और प्रतिज्ञा भगवान् रामचन्द्रने की थी,—"आओ, लंकेश !"—अर्थात् विभीषण जिस समय अपने बड़े भाई रावणसे तिरस्कृत होकर भगवान्‌की शरणमें आया, उस समय "आओ, लंकेश !" यह कह कर रामचन्द्रजीने पुकारा था, मानो लंकाके राज्य देनेकी प्रतिज्ञा की थी । लक्ष्मणको शक्ति लगने पर भगवान्‌के मनमें यही चिन्ता हुई कि लक्ष्मण तो अब रहा नहीं और मैंने कदाचित् रावणको मार भी लिया, तो विना लक्ष्मणके विभीषणको लँकामें जाकर राज कौन देगा ? क्योंकि मैं तो चौदह वर्ष बीते विना किसी ग्राममें जा नहीं सकता और चौदह वर्षके उपरान्त यहां एक दिन भी ठहर नहीं सकता कारण कि "चौदह वर्षके उपरान्त यदि एक दिन भी राम न आये, तो मैं अवश्य ही प्राण छोड़ दूँगा"—यह प्रतिज्ञा भरतकी है; अतः लक्ष्मणका मरण इस समय बड़ा कष्ट देनेवाला है—यही समझ कर भगवान् विलाप करते थे । उपर्युक्त प्रकरणको एक भाषाके कविने इस प्रकार लिखा है:—

मातुको मोह न द्रोह कुमातसूँ शोच न तातके घात भयेको,
राज्यको लोभ न प्राणको क्षोभ बन्धु विछोह न अवधि रहे को ।
नेकहु चित्तमें आवे न हे शिव ! शोच न सीताके संग रहेको,
ता रणभूमिमें राम कह्यो मोहि शोच "विभीषण भूप" कहे को ॥

सारांश—भगवान् रामचन्द्रजीका यह विलाप "प्रतिज्ञा-हानि" के निमित्त था । रामायणके पाठकोंको, प्रतिज्ञाहानिसे बढ़कर पाप नहीं—इसको न भूलना चाहिये ।

भ्रातृ-भाव।

संसारमें भाईको भाईके साथ कितनी प्रीति होनी चाहिये, यदि इसका उत्तर देखना हो, तो भगवान् रामके इसी विलापमें मिलेगा। क्योंकि उस विलाप-कालमें भगवान्ने स्वयं ही कहा है:—

अस विचार जिय जागहु ताता। मिले न जगत सहोदर भ्राता॥

"संसारमें पुत्र, कलत्र, बान्धव और मित्र आदि सब मिल सकते हैं, परन्तु लक्ष्मण! सहोदर भ्राताका मिलना बहुत कठिन है; इसका कारण तू उठकर मुझको समझा?" इसी प्रकरणको आदि कवि बाल्मीकजीने इसी प्रकारसे लिखा है:—

देशे देशे कलत्राणि, देशे देशे च बान्धवः।
तं देशं नैव पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः॥

इससे जाना जाता है कि जो लोग भाईके दुःखसे दुःखी नहीं होते, उनका जन्म व्यर्थ है। अब इसीको विशेष स्पष्ट समझनेके लिये, लक्ष्मणजीके चरित्र पर ध्यान देना चाहिये।

जिस समय महावीरजी सञ्जीविनी बूटीको लेकर आगये और लक्ष्मणकी मूर्छा दूर हो गई, तो सब रीछ बन्दर लक्ष्मणजीके पास जाकर बोले,—"भगवन्! मेघनादके हाथसे छूटी हुई जिस शक्तिसे आप मूर्छित हुए थे और उससे जो कुछ कष्ट आपको हुआ, उसको हम लोग नहीं जानते कृपाकर आप बतलाये।" रीछ बन्दरोंके इस प्रश्नको सुनकर शेषावतार लक्ष्मण बोले,—"मेरे प्यारे योद्धाओ! इस विषयमें जितना आपको ज्ञान है, उससे अधिक मुझको नहीं, कारण कि मूर्छित-मनुष्य मूर्छा हो जानेके पश्चात् अपने दुःखका अनुभव नहीं कर सकता और न कह ही सकता है। यदि आप लोगोंको दुःखको जाननेकी अधिक उत्कण्ठा है, तो भगवान् रामचन्द्रजीसे पूछना चाहिये। क्योंकि:—

ईषणमात्रमहं वेद्मि, स्फुटं यो वेत्ति राघवः।
वेदना राघवेन्द्रस्य, केवलं व्रणिनो वयम्॥

"थोड़ेसे दुःखका मैंने अनुभव किया है, समग्र दुःखका वृत्तान्त तो रामचन्द्र ही जानते हैं। अर्थात्—मेरे शरीरमें तो घाव मात्र था, दुःख तो भगवान् रामके हृदयमें हुआ है।" सारांश यह है, कि जब तक हम भारतवासी भ्रातृ भावके मूल्यको न समझ जायँगे, तबतक हमारा अभ्युदय होना कठिन

है। दुःख तो इस बातका है, कि रामकथाके सुननेवाले और रामनवमीके माननेवाले भाई भाई भी परस्परमें लड़कर मुकद्दमाबाजी करते हैं और एक दूसरेको नष्ट करनेकी भरसक कोशिश करते हैं।

११—भगवान् रामके कुछ अनुकरणीय चरित्र।

"राम-राज्य" यह कहावत प्राचीनकालसे चली आती है। अर्थात्—जो धर्मात्मा राजा धर्मानुकूल राज्य करता है, उसके राज्यको "राम-राज्य" कहा जाता है। इससे जाना जाता है, कि रामके राज्यमें प्रजा सब प्रकारसे सुखी और वैभवसम्पन्न थी। माता, पिता, गुरु और दूसरे वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्धोंका राम-राज्यमें यथोचित सम्मान होता था। राम-राज्यमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके साथ इतना प्रेम करता था, कि "सिंह और गाय एक घाट पानी पीते हैं"—यह कहावत ही प्रचलित हो गई थी। समय पर पानी पड़ता था और अपमृत्यु एवं अकालमृत्युसे राम-राज्यमें कोई नहीं मरता था। बापके रहते हुए पुत्रकी मृत्यु नहीं होती थी, केवल एक ही घटना इस प्रकारकी हुई थी। वह इस प्रकारसे है,—अयोध्यामें किसी ब्राह्मणका छोटा बालक पिताकी उपस्थितिमें मर गया। ब्राह्मणने समाधिके द्वारा प्रथम तो यह देखा, कि यह बालक कदाचित् मेरे अपराधसे तो नहीं मर गया है! परन्तु जब यह निश्चय हो गया कि हम दम्पतिमेंसे किसीके पापसे नहीं मरा, तो समझ लिया कि निश्चय ही यह राजाके पापसे मरा है। उस मृत बालकको भगवान् रामके पास ले गया और बोला,—"राजन्! यह बालक आपके ही पापसे मरा है।" ब्राह्मणके इस कथनको भगवान् रामने यथार्थ मानकर अन्वेषण कराया, कि मेरे राज्यमें ऐसी क्या धर्महानि हुई है, कि जिससे पिताकी उपस्थितिमें यह ब्राह्मण कुमार मर गया। अन्वेषण करके गुप्त चरोंने खबर दी, कि आपके राज्यमें एक "शम्बूक" नामका शूद्र ब्राह्मणोचित तप कर रहा है; अतः इस अनधिकार चेष्टाके कारण ही ब्राह्मणकुमार मर गया है। यह सुनकर भगवान्ने उस शूद्रको दण्ड दिया और उसी समय ब्राह्मण-बालक जीवित हो गया। इससे विदित होता है, कि उस समय वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा करना ही राजाका प्रथम कर्त्तव्य था। आजकलकी सी 'मनमानी घरजानी' नहीं थी, कि श्रम विभागके राष्ट्रीय नियमको तोड़कर जो चाहे, सो वर्णधर्मको बदल डाले।

श्रीरामचन्द्रजी धर्मके केवल वक्ता ही नहीं थे, किन्तु स्वयं भी पालन

करते थे; जिससे प्रजामें अधर्म नहीं होता था। जो राजा कूट नीतिका अवलम्बन करता है, उसकी प्रजा भी वैसा ही करने लगती है; अतः रामचन्द्रजीके सभी कार्य न्याय एवं धर्मानुकूल थे। राज्याभिषेकके समय अयोध्याके राज-सिंहासनको लात मारकर माता और पिताके वचनोंको पालन करनेके लिये वनमें प्रयान करना, वानर-सैन्यको लेजाकर तथा अनेक कष्ट उठाकर, सीताके चुरानेवाले अन्यायी रावणका वध करना एवं सीताको विपत्तिसे छुड़ाना और समय पड़नेपर उसी सीताको क्षुद्र पुरुषके अपवाद करनेके कारण त्याग कर, यह स्पष्ट बतला देना, कि मैं प्रजाके अति क्षुद्रसे भी क्षुद्र पुरुषका इतना मान करता हूं, कि जिसके लिये भ्राता, पुत्र तथा स्त्री तकको भी त्याग देना कठिन नहीं समझना; ये ऐसी बातें हैं, कि जिनसे भगवान् धर्मपालक थे यह पता अनायास लग जाता है।

रावण जिस समय लड़ाईमें मारा गया, उस समय विभीषणको रोते देखकर भगवान् राम बोले,—"विभीषण! रणमें जय किम्वा पराजय तो नियत ही है, परन्तु रावणके पराजय अथवा वधका शोक करना व्यर्थ है। क्योंकि परम वीर यह तुम्हारा भाई पराक्रम करके रणमें मरा है। क्षत्रिय वीरका ऐसा ही मरण प्रशंसनीय है। तुमको इस प्रकारकी क्षत्रियोचित मृत्युसे मरनेवाले तेजस्वी रावणका शोक न करना चाहिये किन्तु आगेके कर्त्तव्यमें दत्तचित्त होना चाहिये। हमारा वैर इसके मरनेके साथ ही गया। अब यह, जैसा तुम्हारा भाई है, वैसा ही मेरा भाई है"। इसीका नाम है उदारता।

१२—रामावतार और राजनीति।

संसारमें प्रकृतिकी जितनी भी वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म जो वस्तु है, वह चित्शक्ति है। अर्थात्—चित्शक्तिका ही स्थूल स्वरूप संसार है। अथवा जिस चरम सीमागत वस्तुसे यह जगत् बना है, उसके सूक्ष्म रूपको चेतन और स्थूल रूपको प्रकृति कहते हैं। सारांश यह है, कि उस मूल तत्त्वकी ही ये दो अवस्थायें हैं। इसी कारण वेदोंमें लिखा है—

नेह नानास्ति किञ्चन०

एक तत्त्वके अतिरिक्त यहां दूसरा कुछ भी नहीं है। इस चेतन सत्ताको ही ब्रह्म कहा गया है।

साधारणतया यह चित्शक्ति तामसिक, राजसिक और सात्विक सभी वस्तुओंमें रहती है, परन्तु यह केवल सत्त्वगुणमें ही प्रगट होती है। अर्थात्—

राजसिक और तामसिक वस्तुओंमें तो चित्शक्ति अनुद्भूत रूपसे रहती है और सत्त्वगुणमें उद्भूतरूपसे । जिस प्रकार सूर्य्यकी किरणें संसारकी प्रत्येक वस्तु पर पड़कर भी अपनी दाहकत्व शक्तिका परिचय नहीं करा सकतीं, परन्तु वे ही किरणें आतशी शीशेपर पड़कर अपने गुण और धर्मको प्रगट कर देती हैं, उसी प्रकार चित् शक्ति भी सत्त्वगुणमें ही प्रगट होती है। भागवतादि शास्त्रोंमें इसी कारण "सत्त्वधामन् !" पद देकर ब्रह्मकी स्तुति की गयी है, कि आप सर्वव्यापी होनेपर भी सत्त्वगुणमें ही प्रकट होते हैं।

वास्तवमें तो ईश्वर निराकार ही है, परन्तु प्रकृतिमें आन्दोलन हो जानेके कारण—जहां सत्त्वगुणका पृथक् संग्रह हो जाता है वहां चेतनादि ईश्वरके गुण धर्म स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं और उसी अवस्थाको साकार कहते हैं। भगवान् राम और कृष्णके अवतारोंका यही मूल है।

भगवान्का अवतार होता है, या नहीं ? इस विषयको लेकर तो आज कल विद्वन्मण्डलीमें किसी प्रकारका विवाद नहीं होता, परन्तु अवतार किस कारण और किस अवसरपर होता है, इस विषयपर अवश्य ही विवाद होता रहता है। आज मैं उपर्युक्त मीमांसाको लेकर ही बतलाना चाहता हूँ कि त्रेताके भगवान् रामचन्द्रजीका अवतार क्यों और कैसे हुआ।

सामान्य रीतिसे तो प्रायः अवतारके कारण पर सभी शास्त्रोंमें विचार किया गया है, परन्तु गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें रामावतार क्यों हुआ इसकी अच्छी तरह विवेचना की है। उन्होंने अवतार होनेके तीन कारण बतलाये हैं, परन्तु वह उनकी अपनी सम्मति नहीं अन्य शास्त्रोंकी अवतरणिका मात्र है।

(१) स्वेच्छासे।

महाप्रलयके पश्चात् जब दूसरी सृष्टि रचनेकी आवश्यकता होती है तब जो अवतार होता है वह स्वेच्छा पूर्वक होता है। इसी कारण वेदोंमें लिखा है "एकोऽहं बहुः स्याम्" कि मैं इस समय एक हूँ और बहुत होनेकी इच्छा करता हूँ।

२—प्रकृतिमें परिवर्त्तन होनेसे।

यहां प्रकृति शब्दसे उस नियमको ग्रहण करना चाहिये जो इस समस्त ब्रह्माण्डको एक विशेष लक्ष्यपर चला रहा है। जगन्नियन्त्रण-शक्ति अथवा कुदरत ही इसका पर्याय शब्द है। परमात्माने जगत्को बनाकर इसके मूलमें

एक इस प्रकारका नियम स्थापित कर दिया है जो विना किसी अन्यकी सहायताके संसारके सभी कार्योंको स्वयं करता रहे। यदि दैवात् उसके कार्यमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित हो जाय तो वह स्वयं अपनी शक्तिसे उसको हटा दे। जिस प्रकार समुद्रमें डाली हुई प्रत्येक वस्तुको समुद्रका प्रवाह पृथक् कर देता है, उसी प्रकार अपने पथमें विघ्न डालनेवाले कारणोंको प्रकृतिका प्रवाह भी हटा दिया करता है। इस विषयमें मनुष्यके शरीरका उदाहरण विशेष विचारणीय है। जिस समयसे प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्यका शरीर उत्पन्न हो कर बढ़ता रहता है, उसी समयसे बाढ़को रोकने-वाली शक्तियां भी अपना कार्य करती रहती हैं, परन्तु शरीरकी नियन्त्रण शक्ति उन विघ्नकारिणी शक्तियोंको अपने मार्गसे हटाकर बाढ़की प्रगतिको स्वच्छन्द रखती है। यदि ऐसा न होता तो यह मनुष्य क्षण क्षणमें जनन-मरणको प्राप्त हुआ करता। इसी आधारपर शास्त्रोंमें क्षणिक प्रलय माना गया है। प्रकृतिका यह प्रवाह केवल मनुष्यके शरीरमें ही कार्य कर रहा है—यह बात नहीं है, किन्तु वस्तु मात्रमें यही आन्दोलन हो रहा है। यदि विरुद्ध शक्तियों-को दूर करनेकी शक्ति सृष्टिके सभी पदार्थोंमें न होती तो आप जिस दशामें इस विश्वको आज देख रहे हैं, उस दशामें न देखते।

अब यहाँ यह शंका हो सकती है कि शरीरमें जब इस प्रकारकी शक्ति है, तो फिर विरुद्ध शक्तियोंकी विजय होने पर वैद्य, हकीम और डाक्टरोंकी अपेक्षा क्यों होती है? किन्तु थोड़ासा विचार करनेसे यह शंका नष्ट हो जाती है। हकीम और डाक्टर लोग भी उस विघ्न हटानेवाली शक्तिको ही प्रबल बनाते हैं। इसका कारण यह है कि शरीर-पोषक-शक्तिको प्रति दिन और प्रति क्षण अनेक विरुद्ध शक्तियोंके साथ सदा संग्राम करना पड़ता है। ऐसी दशामें कभी कभी विरुद्ध शक्तियोंमें भी कोई बलवती शक्ति उत्पन्न हो जाती है जिसका निवारण शरीरकी पोषक शक्तिसे नहीं होता। इसी कारणसे मनुष्य बीमार हो जाता है फिर वैद्य अथवा डाक्टरके बिना काम नहीं चलता। वैद्य या डाक्टर विरुद्ध-शक्तिके हटानेका प्रयत्न नहीं करता किन्तु औषधोपचारसे शरीरकी पोषक-शक्तिको इस तरह संभालता है कि वह बलवती होकर विरुद्ध शक्तिको अपने मार्गसे हटा सके। इसमें सफलता न होनेसे ही मृत्यु हो जाती है।

जिस प्रकार मनुष्यके शरीरकी व्यवस्था है उसी प्रकार ब्रह्मांडकी भी

है। ब्रह्मांडकी प्रकृति साम्यवादके नियमसे ब्रह्मांडको बाढ़की तरफ ले जाना चाहती है और विरुद्ध शक्तियां साम्यवादकी शृंखलाको तोड़ कर सृष्टिको नष्ट करना चाहती है। नियत सीमा तक तो पोषकशक्ति विरुद्ध शक्तिको दबा कर अपना कार्य सफलताके साथ करती रहती है, परन्तु विरुद्धशक्तिके बलिष्ठ हो जानेपर वह अशक्त होकर स्वयं दब जाती है। ऐसे अवसरपर सृष्टिका डाक्टर (परमात्मा) अवतार धारण करके प्रकृतिको बलवती बनाता है, जिसके कारण पोषक-शक्ति पुष्ट होकर विरुद्ध-शक्तिको अपने मार्गसे हटा देती है।

भगवान् रामचन्द्रजीका अवतार ठीक ऐसे ही अवसरपर हुआ था। जबतक साम्यवादको नष्ट करनेके लिये छोटे मोटे राक्षस प्रयत्न करते रहे, तबतक तो पोषक प्रकृति उनको हटाती रही, परन्तु जब रावण जैसा बलवान शत्रु उत्पन्न होगया तब विशृङ्खलता उत्पन्न हो गयी। रामायणके पढ़नेसे विदित होगा कि त्रेता-युगमें रावणने संसारकी सभी प्रबल शक्तियोंपर अपना अधिकार जमा लिया था। यहांतक कि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, अग्नि और कुवेरादिपर भी रावणका ही शासन था।

पृथ्वी।

भारत ही नहीं, किन्तु समस्त भूमण्डलकी सम्पत्ति रावणके ही अधिकारमें थी। भारत भूमिका भी राजा प्रकारान्तरसे रावण ही था। इसी कारण पृथ्वी उसके अधिकारमें मानी गयी थी।

आकाश।

रावणकालीन देशमें विमानोंका बहुत प्रचार था, बल्कि उस समयका सबसे बड़ा पुष्पक विमान रावणके ही पास था, जिसको वह कुवेरसे छीन कर लंकामें ले गया था। इसी पुष्पक विमानके द्वारा रावणने अनेक देशोंकी विजय की थी। आज-कल जहाजोंकी प्रबलता होनेसे जिस राजाके पास सामुद्रिक बल अधिक होता है, उसीका बोलबाला समझा जाता है। इसी प्रकार उस समय विमानोंकी अधिकताके कारण जिसका आकाशपर जितना आधिपत्य होता था, वह उतना शक्ति-शाली माना जाता था। यही कारण है कि रावण आकाशका अधीश्वर था।

जल।

यह तो सब लोगोंको ज्ञात ही है कि रावणकी राजधानी लंका समुद्रके

उस पार थी। रामायणसे यह भी विदित है कि, समुद्रके उस पारवाले प्रायः सभी देशोंपर रावणका अधिकार था। जब उसने अपनी शक्ति विशेष बढ़ा ली तब भारतपर चढ़ाई की। इससे निश्चय होता है कि पूर्व समयमें भी समुद्र-पारवालोंका काम विना भारतके नहीं चलता था। इसी कारणसे अनेक चालाकियां करके रावणने भारतको हस्तगत किया।

यह निश्चय है कि समुद्रके उस पार रहकर इस पारके रहनेवाले भारत पर वही राजा आधिपत्य जमा सकता है जिसके पास जहाजोंका पूरा बल हो। रावणके पास जहाजोंका अधिक बल था, इसी कारण वह समुद्र अर्थात् जलका अधिपति माना गया।

वायु।

संभव है कि वायुसे जितना काम विज्ञानद्वारा वर्त्तमानकालमें लिया जाता है, उतना उस कालमें भी लिया जाता हो, परन्तु यह तो निश्चय ही है कि उस कालमें जहाज मशीनोंसे नहीं चलाये जाते थे, किन्तु वायुसे ही उनका संचालन होता था। जिन प्राचीन-पुस्तकोंमें जहाजोंके बनानेकी विधि लिखी है, उनमें पतवार और वर्द्धमानका ही वृतान्त आया है। यदि किसी मशीनसे चलाये जाते तो अवश्य ही उसका उल्लेख होता, परन्तु वायुपर आधिपत्य निश्चित रूपसे बतलाता है कि उस समयकी पतवारें विशेष कौशलसे बनायी जाती थीं कि जो प्रतिकूल-वायु होनेपर भी अनुकूलका ही काम देती थीं।

अग्नि।

अग्निपर रावणका आधिपत्य कैसे था यह समझमें नहीं आता। यह तो निस्संदेह है कि उस समयके वायुयान तो किसी न किसी मशीनके द्वारा ही चलाये जाते थे क्योंकि अति प्राचीन "कथासरित्सागर" में "कीलिका हतमात्रेण" आया है, जिससे जाना जाता है कि किसी मशीनके घुमानेसे ही वायुयान चलते थे। बहुत सम्भव है कि, उनके चलानेमें वाष्पकी आवश्यकता पड़ती हो और इसीसे अग्नि रावणके अधिकारमें मानी गयी हो।

कुवेर।

यह तो सबको भलीभांति मालूम है कि त्रेतायुगके भारतमें एक ही साम्राज्य था। यद्यपि पुराणोंमें अनेक राजाओंका वृत्तान्त आता है, परन्तु वे सब माण्डलिक राजा थे, सार्वभौम तो एक ही राजा था, जो चक्रवर्त्ती भी कहा जाता था। एक साम्राज्य होनेसे समस्त देशका एक ही खजाना

(कोश) था और उसका कोशाध्यक्ष कुवेर कहलाता था। कुवेर स्वर्गलोक का खजाञ्ची था। अपने पराक्रमसे उस समय कुवेरको भी रावणने अपना मातहत बना लिया था। इसी कारण और यहांके ही धनसे रावणने लंकाको स्वर्णमयी बनाया था जिसको कुसमय आजाने पर नर नहीं, किन्तु वानरने जलाकर भस्म कर दिया। बहुतसे लोगोंको सन्देह है, कि लंका-द्वीपमें सोनेकी कोई खान होगी, परन्तु यह सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि आजकलकी सीलोन (लंका) में इस प्रकारकी कोई खान नहीं जिससे लंका जैसी विशाल नगरी सोनेकी बनायी जा सके। समस्त भूमण्डलमें भारत ही कृषि-प्रधान देश है और इसी कारणसे प्राचीन लोगोंने इसी वसुन्धराको रत्न-गर्भा कहा है। इससे निश्चय है कि यहांके धनसे ही रावणने अपनी राजधानीको सजाया था। यह अपूर्वता भारतमें ही है कि अपने बालकोंको चाहे फूंसकी झोपड़ी न मिलती हो, परन्तु अपने विजेताओंके घर सोनेके बना देता था। अस्तु, यह कुवेर भी रावणके अधिकारमें था।

रावण इतना बलवान् होकर भी भारतमें अपनी राजधानी स्थापित न कर सका। इस विषयमें शंका अवश्य होगी, परन्तु इसमें शंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उस समयके भारतीयोंमें स्वाभिमान और स्वावलम्बनका अभाव नहीं था और न पारस्परिक विद्वेषका ही आधिक्य था। यदि स्वाभिमान, स्वावलम्बनका अभाव और फूटका प्राधान्य होता तो अवश्य ही रावणकी जड़ मजबूत हो जाती और फिर उसका परास्त होना असाध्य हो जाता। अस्तु, राजा न होनेपर भी आधिपत्य उसीका था। इसका परिणाम यह हुआ कि, राक्षस लोग बलवान होकर निर्बल प्रजापर अत्याचार करने लगे इसीसे कहा है—

सुन खगेश असको जग मांहीं,
प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं।

प्रभुताको पाकर प्रायः सभीको मद हो जाया करता है और यही कारण है कि, विजेता लोग विजयके मदमें चूर होकर "ये विजित हैं और हम विजयी हैं" इस नीच धारणासे जनसाधारणको दुःख देने लगते हैं।

प्रकृति साम्यवादको नष्ट करनेवाले इस प्रकारके विघ्नोंको टक्कर देकर हटाती रहती है, परन्तु जब उसकी सामर्थ्यसे शत्रु अधिक

प्रबल हो तो फिर प्रकृतिका नियन्ता अथवा ब्रह्माण्डका वैद्य (परमात्मा) अवतार लेकर उस विघ्नको हटाता है। यदि उस समय भगवान् रामचन्द्रजीका जन्म न हुआ होता तो रावण जैसे प्रबल-शत्रुसे भारतका छुट-कारा होना असंभव था।

(३) भक्तोंकी प्रार्थनासे।

यद्यपि भक्तोंकी प्रार्थनासे भगवान्‌के अनेक अवतार हुए हैं, परन्तु यहां पर केवल एक ही उदाहरण दिया जाता है। सत्ययुगमें स्वायंभुवमनु और सत्य-रूपा रानीने एक पैरसे खड़े होकर निर्जन वनमें एक सहस्र वर्ष तक भगवान् आदि पुरुषकी तपस्या की, जिससे सन्तुष्ट होकर उसी वनमें भगवान्‌ने अपने चतुर्भुज रूपका दर्शन दिया और कहा, कि मैं तुम्हारे कठोर तपसे प्रसन्न हुआ हूँ। अतः जो वरदान मांगोगे मिलेगा। यद्यपि राजा और रानीने किसी ऐहिक लाभसे तपस्या न की थी, परन्तु भगवान्‌के उस अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित होकर कहा, कि हम "आपके समान पुत्र चाहते हैं"। वह समय बड़ा अलौकिक था। उधर तो राजा और रानीके विना कहे उनके दिव्य प्रेमसे अधीर होकर भगवान्‌ने कह दिया कि, वर माँगो और इधर भगवान्‌के रूपसे मोहित होकर, किसी प्रकारका विचार न करके साधारणतया "आप जैसा पुत्र हो" यह वरदान दम्पतिने मांग लिया। उस समय एक अकथनीय सन्नाटा छा गया। राजा और रानी भगवान्‌की तरफ देख रहे थे और भगवान् दम्पतिकी तरफ। जब कुछ क्षण व्यतीत हो गये तो भगवान्‌ने मनुजीको सम्बोधन करके कहा—

"आप सरिस खोजौं कहँ जाई, नृप तव तनय होब मैं आई।

मेरे समान मैं ही हूं अतः त्रेतायुगमें आप महाराज दशरथ होंगे और सत्यरूपा, महारानी कौशल्या होंगी, उस समय मैं रामचन्द्र होकर आपके यहां अवतार लूँगा।

अवतारके विषयमें गोस्वामीजीकी अपनी राय।

अबतक जो कुछ भी अवतारोंके विषयमें कहा गया है, वह अन्य शास्त्रोंके आधार पर था। अब गोस्वामीजीका अपना मन्तव्य प्रगट किया जाता है।

जब जब होय धरमकी हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाय नहिं बरनी, सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी।
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

दोहा—

असुर मार थापहिं सुरहिं, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग विस्तारहिं विमल यश, राम जन्म कर हेतु॥ १३१॥

तु० कृ० रा० बालकाण्ड॥

गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् रामचन्द्रजीके अवतारको धर्म रक्षाके लिये मानते हैं, परन्तु देखना यह है कि, वह कौन सा धर्म है, जिसकी रक्षाके निमित्त रामचन्द्रजीका जन्म हुआ। बहुतसे सज्जनोंका मन्तव्य है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

"मनुजी महाराजके बतलाये हुए, दश लक्षणयुक्त धर्मकी रक्षा करनेको ही रामचन्द्रजीका जन्म हुआ था," परन्तु मेरा मन्तव्य इससे भिन्न है और न यह सिद्धान्त गोस्वामीजीका ही है। भगवान् रामचन्द्रजी राजा थे, अतः स्थान स्थानपर उन्होंने राजधर्मका ही उल्लेख किया है। जिससे विदित होता है, कि उनका अवतार सामान्यतया सब धर्मों और विशेषतया राजधर्मके ही लिये था। जिस प्रकार आजकल राजाओंके पृथक् पृथक् मोटो होते हैं, उसी प्रकार भगवान रामके मोटोका वर्णन तुलसीदासजीने एक चौपाईमें किया है।

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

इससे और भी स्पष्ट होजाता है कि भगवान् रामका अवतार राजनीतिके उद्धारार्थ ही था और उसीको गोस्वामीजीने धर्म कहा है।

राजनीतिकी व्याख्या।

साधारणतया तो नीति स्व-मन्तव्यको कहते हैं, परन्तु व्यापक अर्थमें अपनी या अपने साम्राज्यकी उन्नतिके निश्चित सिद्धान्तको ही नीति कहते हैं। संसार त्रिगुणात्मक है, इसलिये उसकी प्रत्येक वस्तु भी तीन प्रकारकी होती है। इसी कारणसे धर्मनीति, कूटनीति और राजनीतिके हिसाबसे नीति भी तीन प्रकारकी ही होती है।

धर्मनीति।

धर्मराज-युधिष्ठिर धर्मनीतिके आदर्श थे। भरी सभामें दुष्ट दुःशासन द्वारा साध्वी द्रौपदीका घोर अपमान होनेपर भी अपने चित्तको अशान्त न होने दिया। धर्मनीतिवाला पुरुष सदैव काम, क्रोधादि कोंको विजय करता

ही अपना कर्त्तव्य समझता है। ज़ालिमके ज़ुलमका सहन करना जितना अच्छा धर्मनीतिवाला जानता है, उतना और कोई नहीं। देवदत्तको ज़ुलम करते हुए देखकर यज्ञदत्त तत्काल बदला लेनेको प्रस्तुत हो जाता है, परन्तु धर्मनीतिवाला ज़ालिमके ज़ुलमको बन्द करनेका प्रयत्न नहीं करता, किन्तु अधिक बढ़नेका अवसर देता है—जिससे ज़ालिम और ज़ुलम दोनोंकी आयु समाप्त हो जाय। धर्मनीतिवाला समझता है, कि यदि ज़ालिमके ज़ुलमको दबानेके लिये हमने भी ज़ुलम करना प्रारम्भ कर दिया, तो हम दोनों एक ही अपराधके अपराधी होंगे। अतः अन्यायीके अन्यायका सहन करना ही धर्मनीति है। समर्थ होनेपर भी धर्मराजने बदला लेना उचित न समझा यही कारण है कि कौरव वंशका नाश होकर विजयश्रीने धर्मराजाके चरणोंका ही आश्रय लिया।

कूटनीति।

कूट—शब्दके अर्थ गुप्तके हैं। कूटनीति छुपी नीति है। जिस राजाका शासन प्रजाकी भलाईके लिये होता है, उसकी नीति कूटनीति नहीं होती, किन्तु जहाँ राजा और प्रजाके हितमें भिन्नता होती है और इसी कारण शासन प्रजाके हितके लिये नहीं, किन्तु अपने हितके लिये होता है—वहाँ कूटनीतिकी आवश्यकता पड़ती है। प्राचीन साहित्यके देखनेसे मालूम होता है, कि भारतीय राजाओंमें कूटनीतिका प्रचार नहीं था। कारण कि वे धर्मात्मा थे और प्रजाका हित ही उनका हित था। धर्मका उपदेश है—

मनस्येकं वचस्येकं कार्यमेकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्कार्यमन्यद् दुरात्मनाम्।

जिनके मनमें, वाणीमें और काममें एकता होती है, वे सज्जन होते हैं और जिनके मन, वचन, काममें भिन्नता होती है, वे दुर्जन होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कूटनीतिवाला मनुष्य वा राजा पापी होता है। कूटनीतिज्ञ अपनी चालाकीसे औरोंके हितको नष्ट करके अपना भला करता है। बाहरसे "हम तुम्हारे ही हितका प्रयत्न करते हैं" इस प्रकारके मोहक शब्दोंका प्रयोग करके कुछ भोले मनुष्योंको अपने पक्षमें लेकर समस्त विश्वका नाश करना ही इसका उद्देश्य होता है। रावण प्रगट पापी होनेपर भी कूटनीतिज्ञ नहीं था, परन्तु वेणु अवश्य ही कूट नीतिज्ञ था। कारण कि उसने प्रजाके लोगोंको यह समझानेकी चेष्टा की थी, कि मेरे राज्यमें तुमको सब प्रकारका आनन्द है। अतः तुमलोग मुझको ही ईश्वर समझो। किसी अज्ञात शक्तिको ईश्वर मान·

कर मेरी अवज्ञा न करो, परन्तु यह कूटनीति उसकी प्रजाको मालूम हो गयी और वह अपनी करनीका फल पागया। सारांश यह है कि, कूटनीतिज्ञ मनुष्यकी कूटनीतिसे बचनेके लिये धर्मनीतिका ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।

राजनीति ।

धर्म और कूटनीतिसे राजनीति पृथक् है। त्रिगुणमयी सृष्टिमें शान्ति स्थापित करना राजनीतिका ही काम है। धर्मनीतिको कूटनीति नष्ट करती है और कूटनीतिको धर्मनीति नष्ट करती है, किन्तु राजनीति इन दोनोंको एक अवस्था तक स्थिर रखकर भी देशमें शान्ति स्थापित करती है। संस्कृतमें इस राजनीतिकी स्थिर सीमाका नाम मर्यादा है। इसी कारण भगवान् रामचन्द्रजी मर्यादा-पुरुषोत्तम कहे गये हैं। राजनीतिका वास्तविक तात्पर्य यह है, कि समाजमें शान्ति स्थिर रखनेके लिये जो मर्यादा बांधी गयी है, उसका जो भी व्यक्ति जितने अंशमें उल्लंघन करे, उसको उतना ही दण्ड दिया जाय। परन्तु वह दण्ड उसके कल्याणके और समाजकी शान्तिके निमित्त ही हो। यह नहीं, कि दण्ड देनेवाला अपना बदला लेनेको दण्ड दे। मनुजीने भी यही लिखा है, कि जिस राज्यमें दुष्टोंको दण्ड और शिष्टोंको पुरस्कार नहीं दिया जाता वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

भगवान् रामचन्द्रजीने राक्षसोंका वध अपने प्रयोजनके लिये नहीं, किन्तु उन राक्षसों और समाजके हितके लिये ही किया था। सबको विदित है कि जिस समय रावणने सीताको पञ्चवटीसे चुराया था, उस समय भगवान् रामने कोई प्रतिज्ञा नहीं की, किन्तु उससे प्रथम जब वनमें राक्षसोंसे भक्षित मुनि-अस्थिओंके ढेरको देखा था, तब प्रतिज्ञा की थी—

'निशिचर हीन करौं मही भुज उठाय प्रण कीन्ह'।

इससे मर्यादा-पुरुषोत्तमकी राजनीतिका अच्छा पता लगता है। यदि यही प्रतिज्ञा सीताहरणके समय की जाती तो बदला लेना ही उसका प्रयोजन होता, परन्तु भगवान्में वैसी कुवासनाका होना असम्भव था।

पाठक यह न भूल जायँ कि भगवान् रामचन्द्रजी धर्म और कूटनीतिके आदर्श न थे, उनका तो ध्येय केवल राजनीति था। यदि वे केवल धर्मनीतिके ही माननेवाले होते तो राक्षसोंको मारनेकी प्रतिज्ञा न करके उनके अन्यायोंको सहन करनेका ही उपदेश देते और कदाचित् भूलसे या अपने वानर स्वभावसे

भी उनका कोई अनुयायी किसी अत्याचारी राक्षसको मार डालता तो संभव है कि वे लंकाकी चढ़ाईके आन्दोलनको बन्द कर देते, परन्तु उनका तो दूसरा ही सिद्धान्त था, अतः वे पापीको दण्ड देना ही उचित समझते थे। इसी प्रकार भगवान् कूटनीतिज्ञ भी न थे, क्योंकि उन्होंने कहीं भी "गन्दुम नुमाई जौ फरोशी" का सौदा नहीं किया था। बालिको वृक्षकी ओटसे मारा इस घृत्तको लेकर कितने ही लोग उनको कूटनीतिज्ञ मानते हैं, परन्तु यह भूल है। बालिने तो छुपकर मारनेका कारण स्वयं पूछा है, उसका उत्तर उन्होंने यह दिया है।

अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुन शठ ये कन्या सम चारी।
इनही कुदृष्टि विलोकै जोई, ताहि वधे कछु दोष न होई।

अर्थात् इन चारोंको कुदृष्टिसे देखनेवाले महापापीको किसी भी प्रकारसे मारनेमें कोई पाप नहीं, प्रत्युत मर्यादाका रक्षण है। सारांश—भगवान् रामका अवतार राजनीतिके लिये ही था और वही धर्म कहा गया है।

किसी भी प्रजाके लिये यदि कोई बहुत बुरा शासन है, तो वह कूटनीतिका ही है, क्योंकि इसीका आश्रय करके वेणु आदि अत्याचारियोंने प्रजाको नष्ट करना चाहा था। इस कूटनीतिको नष्ट करनेके लिये ही धर्म और राजनीति हैं, परन्तु यह स्मरण रहे, कि यदि कूटनीतिज्ञ प्रजाकी शक्तिसे अधिक बलवान हो, तो ऐसी दशामें धर्मनीतिसे अपने दुःखको मिटाना उचित है और यदि प्रजाकी अथवा कूटनीतिको नष्ट करनेवालेकी शक्ति प्रबल हो, तो फिर राजनीति ही राजमार्ग है। भगवान् रामचन्द्रजी सर्वशक्तिमान थे इसी कारण रावण जैसे प्रबल शत्रुको राजनीतिसे ही परास्त किया और संसारकी मर्यादाको सुरक्षित रखा। इसी कारण उनका अवतार धर्मके लिये था।

५–हनुमज्जयन्ती।

शास्त्रीय स्वरूप।

धर्मसिन्धु एवं निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें तो हनुमज्जयन्तीके विषयमें विशेष विवरण नहीं आया है, परन्तु वाल्मीकि रामायण एवं अन्य पुराणोंमें अवश्य ही विस्तार सहित लिखा गया है। यही कारण है, कि भारतवर्षमें इस जयन्तीको भी बड़े ठाटसे मनाया जाता है।

इस जयन्तीको किस समय मनाया जाय, इसमें विवाद है। उत्सव सिन्धुमें लिखा है,—"महावीरजीका जन्म कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको स्वाति नक्षत्र, भौमवार और मेष लग्नमें हुआ था। यथाः—

"उर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेष लग्नेऽञ्जनीगर्भाच्छिवः प्रादुरभूत्स्वयम् ॥"

इसके सिवाय एक और भी हेतु मिलता है—अर्थात्, वाल्मीकि रामायणके उत्तरकाण्ड सर्ग ३५, श्लोक ३१ में लिखा हैः—

यमेव दिवसे ह्येष गृहीतुं भास्करं प्लुतः।
तमेव दिवसं राहुर्जिघृक्षति दिवाकरम् ॥

"जन्म होते ही महावीरको भूख लगी; इसलिये माता फल लेनेको गई थी। उस समय सूर्य्यका उदय हो चुका था। भूखसे व्याकुल होकर हनूमानने सूर्य्यको ही फल समझा और वे उसके खानेको आकाशमें कूदे। उसी दिन राहु भी सूर्य्यको ग्रसने आया था।"—इससे अनुमान होता है, कि स्वाती नक्षत्र, मंगलवार और कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको महावीरका जन्म रात्रिमें हुआ होगा। क्योंकि कार्तिकमें मेष लग्न रात्रिमें ही आता है। राहु उसी दिन सूर्य्यको ग्रसने आया—यह ठीक ही है, क्योंकि सूर्य्यग्रहण अमावसमें ही होता है।

उपर्युक्त व्यवस्थासे तो हनुमज्जयन्ती कार्तिकमें पाई जाती है, परन्तु पुराणोंके विशेष विवरण और पञ्चाङ्गोंके मतसे चैत्र शुक्ला १५ को ही हनुमज्जयन्ती मनाई जाती है; अतः उसीका यहां भी ग्रहण किया गया है। इस दो प्रकारकी व्यवस्थाको देखकर किसीको सन्देह न करना चाहिये। जहाँ जहाँ इस प्रकारका विकल्प हो, वहाँ वहाँ कल्प भेदसे व्यवस्था लगा लेनी चाहिये। यही पुराणोंमें लिखा हैः—

क्वचित्क्वचित्पुराणेषु विरोधो यदि लभ्यते ।
कल्पभेदादिभिस्तत्र व्यवस्था सद्भिरिष्यते ॥

"पुराणोंमें कहीं कहीं विकल्प देखकर विरोधका अनुमान होता है; परन्तु बुद्धिमानोंको कल्प भेदसे व्यवस्था लगा लेनी चाहिये ।"

अथ कथा ।

भगवान् रामचन्द्रजीके राज्याभिषेक हो जानेपर एक दिन अयोध्यामें अगस्त्य, चिमन, भरद्वाज, वशिष्ठ, धौम्य, वाल्मीक और नारद आदि मुनिवर पधारे। भगवान् रामने उनका यथाशास्त्र सन्मान किया। प्रसन्न होकर, सब मुनि कहने लगे,—"लंकाको विजय करके आपने देवताओंका और हमारा बड़ा उपकार किया है।" इसके पश्चात् भगवान् और अगस्त्य मुनिमें परस्पर कुछ सम्वाद हुआ, जिसको वाल्मीकि रामायणके उत्तरकाण्डके ३५ वें सर्गसे उद्धृत किया जाता है।

अपृच्छत तदा रामो दक्षिणाशाश्रयम्मुनिम् ।
प्राञ्जलिर्विनयोपेत इदमाह वचोऽर्थवत् ॥
अतुलम्बलमेतद्वै वालिनो रावणस्य च,
न त्वेताभ्यां हनुमता समन्त्विति मति र्मम ॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम् ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमतिकृतालयः ॥
दृष्ट्वैव सागरं वीक्ष्य सीदन्तीं कपिवाहिनीम् ।
समाश्वास्य महाबाहुर्योजनानां शतं प्लुतः ॥
धर्षयित्वा पुरीं लङ्कां रावणान्तःपुरं तदा, ।
दृष्टा संभाषिता चापि सीता ह्याश्वासिता तथा ॥
सेनाग्रगा मन्त्रिसुताः किंकरा रावणात्मजः ।
एते हनुमता तत्र एकेन विनिपातिताः ॥
भूयो बन्धविमुक्तेन भाषयित्वा दशाननम् ।
लङ्का भस्मीकृता येन पावकेनैव मेदिनी ॥
न कालस्य न शक्रस्य न विष्णो र्वित्तपस्य च ।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः ॥
एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः ।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः ॥

हनूमान् यदि मे न स्याद् वानराधिपतेः सखा।
प्रवृत्तिर्मयि को वेत्तुं जानक्याः शक्तिमान् भवेत्॥
किमर्थं वाली चैतेन सुग्रीवप्रियकाम्यया।
तदा वैरे समुत्पन्ने न दग्धो वीरुधो यथा॥
नहि वेदितवान् मन्ये हनुमानात्मनो बलम्।
यद्दृष्टा जीव तेपान्तु शयानं वानराधिपम्॥
एतन्मे भगवन्सर्वं हनूमति महामुने!
विस्तरेण यथा तत्त्वं कथयामरपूजित॥

दक्षिण-दिशामें निवास करनेवाले अगस्त्य-ऋषिसे हाथ जोड़कर अर्थवती वाणी द्वारा विनीत-भावापन्न भगवान् रामचन्द्रजीने पूछा,—भगवन्! वाली और रावण—इन दोनोंका यद्यपि अतुल-बल था, तथापि ये दोनों हनूमानके समान बली नहीं थे, ऐसा मेरा मत है। शूरता, चतुरता, बल, धीरज, बुद्धि, नम्रता, विक्रम और प्रभाव आदि गुणोंने तो हनुमानको अपना आश्रय ही बना लिया है। जिस सागरको देखकर प्रायः सब रीछ बन्दर हतोत्साह हो गये थे, उनको आश्वासन दिया और अनायास ही उस समुद्रका उल्लंघन किया। रावणकी राजधानी लङ्काको जलाकर सीताको धैर्य बँधाया। सेनाग्र-मंत्रीके पुत्र तथा रावणके पुत्र अक्षय-कुमारको मारडाला और स्वयं बन्धनमें आकर लङ्काको भस्म कर दिया। युद्धके समयमें जो कुशलता हनुमानने बतलाई, वह न कालमें है, न वरुणमें है और न कुबेरमें है। लङ्काका विजय, सीताकी प्राप्ति, लक्ष्मणका जीवन, राज्यका मिलना और बान्धवोंका सहवास यह सब मुझको हनुमानके प्रभावसे ही मिला है। यदि मेरा सहायक वानराधिप-सुग्रीवका सखा हनुमान न होता, तो सीताका पता लगाकर मुझको उनसे कौन मिलाता? सुग्रीवके प्रिय चाहनेवाले हनुमानने दग्ध-वृक्षकी भांति न मालूम वालीको क्यों न नष्ट कर दिया? विदित होता है, कि हनुमानको अपने अथाह बलका स्मरण नहीं था, नहीं तो सुग्रीवके वैरियोंका क्या पता लगता। इसलिये, हे मुनिवर! आप हनुमानकी कथाको विस्तार पूर्वक कहें।

अगस्त्य-ऋषिका उत्तर—

भगवान् रामके युक्ति-युक्त कथनको सुनकर, हनुमानकी उपस्थितिमें ही अगस्त्यजी बोले,—"रघुश्रेष्ठ! हनुमानके विषयमें जो आपने कहा है, वह सत्य है। क्योंकि और कोई न तो इनके बलमें, न चलनेमें और न बुद्धिमें

ही तुल्य है। यद्यपि इनके विषयमें यह शंका हो सकती है, कि फिर इन्होंने बालीको क्यों न मारडाला? परन्तु अमोघशाप देनेवाले मुनियोंने इनको बाल्य-कालमें ही शाप देदिया था,—"यद्यपि तुम्हारे समान कोई बलवान् न होगा, किन्तु तुम अपने बलको जान न सकोगे। समय पड़नेपर जितना कोई जना देगा, उतना ही जान सकोगे।" इस कारण ही बालीको न मार सके। अब मैं इनके बालक-पनका वृत्तान्त कहता हूं, आप ध्यान पूर्वक सुनें।

जिस प्रदेशमें हनुमानका पिता केसरी नामक वानर राज्य करता है, उस प्रदेश (पर्वत) को सूर्यने वरदान दिया है—जिससे वह स्वर्णका होगया है और सुमेरु उसका नाम है। केसरीकी भार्याका नाम अञ्जना है और उसी-में वायु देवने हनुमान्‌को उत्पन्न किया है। हनुमानके उत्पन्न होते ही अञ्जना अति-गहन वनमें फल मूल लेने चली गई। माताके वियोग और क्षुधाके दुःखसे दुखित होकर तथा प्रातः कालीन सूर्यको फल जानकर, हनुमान् उसके खानेको आकाशमें कूदे। बाल-कालकी चपलताके कारण हनुमान् जब आकाशमें चले, तो देवता, दानव और यक्ष—आदिको महान् विस्मय हुआ। क्योंकि उस समय हनुमान्‌की गति वायु, गरुड़ और मनको भी लज्जित करनेवाली थी। विस्मय होनेका यही कारण था कि जब बाल्यावस्थामें ही यह दशा है, तो तरुणाईमें न मालूम क्या करेगा। हनुमान् ज्यों २ सूर्यके समीप पहुँचता था, त्यों २ ओलेसे भी अधिक शीतल पवन सूर्यकी गरमीको निवारण करता जाता था। इस प्रकार अपने बल और पिताकी सहायतासे हनुमान् सूर्यके अत्यन्त निकट पहुँच गया। सूर्य-नारायणने यह समझ कर, कि प्रथम तो यह बालक है, इसलिए मेरी उत्तप्त किरणोंका प्रभाव नहीं जानता और दूसरे, समय पाकर श्रीरामचन्द्रजी-का कार्य करेगा; अतः हनुमान्‌को न जलाया।

जिस दिन हनुमान् सूर्यको पकड़ने दौड़ा था, उस दिन ग्रहणका समय था; अतः उस समय राहु भी सूर्यके पास ही विद्यमान था। महावीरने सूर्य-रथके पास आए हुए राहुको ऐसा झटका मारा, कि वह मूर्छित हो गया और बड़ी देरमें होश आनेपर क्रोध करके इन्द्रके पास चला गया। वहाँ जाकर इन्द्रसे कहा,—"आज पर्व था, इस कारण मैं सूर्य्यको ग्रसनेके लिये गया था; परन्तु वहाँ तो एक मुझसे भी बलवान् राहु देखा।" राहुके इन शब्दोंको सुनकर इन्द्र बहुत घबड़ाया और स्वर्णकी मालाको पँहन, आसन छोड़, कैलाश पर्वतके समान श्वेत चार दन्तवाले मदान्ध एवं सब प्रकारसे

भूषित स्वर्णके घंटे बँधे हुए तथा बल पूर्वक चिंघाड़ते हुए—ऐरावत हाथी पर सवार हो, राहुको आगे कर, जहाँ हनुमान्‌के सहित सूर्य्यनारायण थे, वहाँ पहुँच गया। इन्द्रने राहुको ही प्रथम हनुमान्‌के पास भेजा, किन्तु हनुमान्‌ने देखते ही राहुको फिर मारा और वह लौटकर इन्द्रके पास आगया। राहुके रोदनको सुनकर इन्द्रने कहा, कि तुम डरो मत, मैं अभी इसको मारता हूं। इन्द्र यह कह ही रहा था, कि हनुमान् उसके ऐरावत हाथीको ही बड़ा फल मानकर पकड़नेको दौड़ा। इस तरह दौड़कर आते हुए हनुमान्‌को देखकर और बालक जानकर इन्द्रने धीरेसे अपने वज्रका प्रहार किया। वज्रके लगनेसे हनुमान् पर्वतपर गिर पड़ा और बाईं हनु—ठोढ़ी—टूट गई। इन्द्रके मारनेसे जब हनुमान्‌की ठोढ़ी टूट गई, तो पवनदेवने बड़ा भारी क्रोध किया और समस्त प्राणियोंमें जो उनका सञ्चार है उसको बन्द कर तथा अपने प्रिय पुत्र हनुमान्‌को गोदमें लेकर, एक गुफामें जा बैठे। पवनके विना प्रजा-वर्गका मल मूत्र आदि सब बन्द हो गया और प्राण तथा श्वासके बन्द हो जानेसे सब लोगोंके शरीर काष्ठके समान हो गये; जिससे स्वाहा तथा स्वधा—आदि शब्दोंका उच्चारण बन्द होकर त्रैलोक्यमें हा हा कार मच गया। देवता, गन्धर्व, दैत्य और मनुष्य—अति दीन होकर फूले पेटसे ब्रह्माजीके पास पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रार्थना की,—"महाराज! आप ही ने हम लोगोंके जीवनार्थ वायुको बनाया है, परन्तु न जाने किस कारणसे वायुदेव हमारी रक्षा नहीं करते। वायुके विना दुखी हो कर ही हम लोग आपकी सेवामें आये हैं; अतः कृपाकर इस दुखको दूर कीजिये।" इस प्रकारकी प्रार्थनाको श्रवण कर, प्रजापतिने कहा,—"प्रजाके लोगो! आज राहुकी शिकायतसे इन्द्रने वायुके पुत्र हनुमान्‌को मारा है, अतः पवनदेवके कोपसे ही तुम्हारी यह दशा हुई है। चलो, तुम और मैं उस गुफामें चलें, जहाँ मूर्छित पुत्रको लेकर वायुदेव विराजते हैं।" जब ब्रह्माजीके सहित सब लोग वायुदेवके पास पहुंचे, तब पुत्रकी मूर्छासे म्लानमुख पवनदेवने ब्रह्माका स्वागत किया और उनके चरणोंमें गिर गये। वेद-वादी ब्रह्माजीने अपने हाथसे प्रथम तो वायुदेवको उठाया और पुनः उसी हाथसे हनुमान्‌को उठाया। उठनेके साथ ही हनुमान्‌की मूर्छा निवृत्त होगई और वायु भी पूर्ववत् सब प्राणियोंके शरीरोंमें सञ्चार करने लगा। इस प्रकार सब प्राणियोंके दुःखका नाश होगया।

तत्पश्चात् त्रैलोक्यके पति ब्रह्माजी पवनको प्रसन्न करनेकी इच्छासे इस

प्रकार बोले,—"हे इन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण और महादेव! यद्यपि हनुमान्‌के विषयमें आप सब जानते हैं, तथापि इस समय मैं कुछ कहना चाहता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें। यह पवनका पुत्र हनुमान् आप लोगोंका बड़ा काम करेगा; अतः इसको आप सब लोग ऐसा वरदान दें, जिससे पवनदेव भी सन्तुष्ट हों।" ब्रह्माजीके सार-गर्भित कथनको सुनकर सबसे प्रथम अपनी "कमल-माल" को हनुमान्‌के गलेमें पहना कर, इन्द्रने कहा,—"मेरे वज्रके लगनेसे जो इनकी हनु (ठोढ़ी) टूट गई है; अतः आजसे इनका नाम "हनुमान" होगा और अब मैं यह वरदान देता हूँ, कि भविष्यतमें यह मेरे वज्रसे कदापि न मरेगा।"

सूर्य—मैं अपने तेजका सौवां भाग देता हूँ और जब हनुमान् शास्त्रोंको पढ़ेगा तब मैं स्वयं सब शास्त्रोंको पढ़ा दूंगा; जिससे यह शास्त्रोंका प्रचण्ड वक्ता होजायगा।

वरुण—हमारी फाँसी तथा जलसे इनका कभी भी मरण न होगा और लाखों वर्षोंकी आयु होगी।

यम—हम अपने दण्डसे इसको अभयता देते हैं और सदैवके लिये आरोग्य प्रदान करते हैं।

कुबेर—समरमें हनुमान्‌को कभी भी विषाद न होगा और हमारी गदा-से इनकी मृत्यु न होगी।

महादेव—हमसे और हमारे समस्त-आयुधोंसे यह अवध्य है।

विश्वकर्मा—हमारे बनाये सब शस्त्रों और अस्त्रोंसे इनकी मृत्यु न होगी तथा बहुत दिन तक जीवित रहेंगे।

ब्रह्मा—यह दीर्घायु और महात्मा होगा और सब प्रकारके ब्रह्म-दण्डोंसे अवध्य रहेगा।

अन्तमें ब्रह्माजीने पवन-देवसे कहा,—"पवन देव! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंको भय-कारी तथा मित्रोंको अभय-कारी होगा और इसको कोई भी न जीत सकेगा। यह जैसा चाहेगा, वैसा रूप धारण कर लेगा और जहाँ चाहेगा, चला जासकेगा। इसकी रोक-टोक कहीं भी न होगी और बड़ा भारी कीर्ति-मान् होगा। समरमें रावणको भय-दायक तथा रामचन्द्रजीको हर्ष-दायक होगा। युद्धमें बड़े बड़े रोमहर्षण कार्य करेगा।"—यह कहकर ब्रह्मादि देव हर्षित होकर अपने २ लोकोंको चले गये। स्थानपर पहुँचकर जब पवनने सब वृत्तान्त अञ्जनासे कहा, तो माताको बड़ा हर्ष हुआ।

जिस समय हनुमानको सब देवताओंसे इस प्रकारका वरदान मिल गया, तब तो वह ऋषियोंके स्थानोंपर जाकर बड़ा उत्पात करने लगा। अर्थात् उन लोगोंके स्रुवा, पात्र, अग्निहोत्रके पात्र, वल्कल और चीर—आदिको तोड़ने-फोड़ने लगा। इस प्रकारके अनेक उत्पातोंको देखकर ऋषियोंने मनमें विचार किया, कि सब प्रकारके ब्रह्म-दण्डसे अवध्य तो इसको ब्रह्माजी ही कर चुके हैं, तो ऐसी दशामें अब हमको क्या करना चाहिये? इनके पिता केसरीने भी कितनी बार समझाया, कि तुम ऐसा उत्पात मत करो, परन्तु बाल-भावके कारण ये करते ही जाते हैं। अस्तु! इनकी यह दशा देखकर, भृगु—अङ्गिरा आदिके वंशवालोंने बड़ा भारी क्रोध किया; परन्तु बालक जान कर थोड़ासा ही शाप दिया। बोले,—"वानर! तुम बड़ा बल पाकर व्यर्थ ही हमको दुःख देते हो; इससे जब कोई जितना तुम्हारे बलको स्मरण करायगा उतना ही जान सकोगे, अन्यथा हमारे शापसे मोहित रहोगे।" जब इस प्रकारका शाप हो गया, तब ये तेजोहत होकर कोमलताके साथ ऋषियोंके स्थानोंमें विचरते रहे। इसी कारणसे हनुमान् अपने बलको नहीं जानता था; अतः वालीको न मारा।"

लौकिक स्वरूप।

चैत्र पौर्णिमाके दिन सूर्य्यके उदयसे प्रथम देवालयमें अथवा घरमें हनुमान्‌की मूर्त्तिकी पूजा करनी चाहिये, यह शास्त्रकी विधि है और इसी प्रकार इस उत्सवको लोकमें मनाया जाता है। हनुमान्‌के दो स्वरूप हैं,—(१) बाल-ब्रह्मचारी [वीर] और (२) दास। जिस मूर्त्तिके नीचे चण्डीकी मूर्त्ति दबी हो, वह वीर हनुमान् है। प्रायः इस वीर हनुमान्‌को स्त्रियाँ नहीं पूजतीं और न इसका प्रसाद ही लेती हैं। परन्तु दास हनुमान्‌की पूजा स्त्रियाँ भी करती हैं और प्रसाद भी लेती हैं। हनुमान्‌जीकी मूर्त्तियाँ और मन्दिर कन्याकुमारीसे लगाकर हिमालय तक सर्वत्र ही देखे जाते हैं। कहीं कहीं तो बहुत बड़े मन्दिर हैं और कहीं कहीं मूर्त्तियाँ भी नौ नौ हाथ तक लम्बी देखी जाती हैं। दक्षिण हिन्दुस्तानमें तो ऐसा एक भी ग्राम न मिलेगा जिसमें एक भी मन्दिर न हो। बल्कि एक ग्राममें अनेक मन्दिर तो मिलेंगे। और तो क्या, परन्तु जङ्गलमें भी कोई पत्थर या शिला महावीरजीके नामसे जरूर पूजी जाती है। रुद्र अथवा शङ्करका आधिपत्य जिस प्रकार भूत प्रेतों पर है, उसी प्रकार महावीरकी सत्ता भी भूत प्रेतों पर चलती है। किसी किसी देशके

ग्रामीण लोगोंमें तो भैरव भवानीके सदृश महावीरजीका भी भाव आता है। बहुतसे विद्वान् इस भावके प्रकरणको लेकर विचार करते हैं, कि अमुक मनुष्यको देवी अथवा देवताका भाव आता है इसका क्या कारण है? कुछ लोग तो स्पष्ट कह देते हैं,—"यह ठगी और बदमाशी है। ग्रामीण लोगोंको धोखा देकर ठगा जाता है। भैरव-भवानी हों भी तो इनके शरीरोंमें कैसे आसकते हैं?"

इसमें तो सन्देह नहीं, कि शिर हिलाकर देवी भैरव आदिके नामपर धोखा देनेवाले धूर्त लोग आजकल भारतमें विशेष बढ़ गये हैं, परन्तु भाव आनेका प्रकरण ही मिथ्या है, यह कहना ठीक नहीं। किसी मनुष्यमें किसी देवताका आवेश अथवा भाव आ जाना, यह विज्ञानसिद्ध बात है। हैण्ड-टाइप (हाथसे छापनेका यन्त्र) का इस समय भारतमें अधिक प्रचार है। उस यन्त्रके पिछले भागमें अँग्रेजीके अथवा हिन्दीके सब अक्षर तिरोहित रूपसे रहते हैं और उद्बोधन करनेवाले संकेत उसके आगे रहते हैं तथा बीचमें कागज रखकर छापा जाता है। कुशल कारीगरने इसमें यह विधि रक्खी है, कि जिस अक्षरका उद्बोधन करना हो, उसके संकेतका प्रचालन कर दिया जाय, तत्काल ही अभीष्ट अक्षरका आविर्भाव हो जायगा। ठीक इसी प्रकार संसार-रूप हैण्ड टाइपमें भी अनेक भाव (शक्तियाँ) अदृश्य रूपसे विद्यमान हैं, अर्थात् तिरोहित हैं। उन तिरोहित भावोंके सञ्चालक-संकेत प्रत्येक मनुष्यके अन्तःकरणमें विद्यमान हैं। इसी कारण कहा जाता है, कि "जो ब्रह्माण्डमें है, वही पिण्डमें है"।

जिस प्रकार हैण्डटाइपके संकेतोंको अङ्गुलीसे ताड़न करनेपर तिरोहित अक्षरोंका आविर्भाव हो जाता है; उसी प्रकार अन्तःकरणके संकेतोंको जब श्रद्धाकी अँगुलीसे चलाया जाता है, तब अदृश्य भाव भी दृश्य बन जाता है। इसी कारण वेदोंकी आज्ञा है, कि "श्रद्धा-वित्तो भव"—अर्थात् मनुष्यको सबसे प्रथम श्रद्धालु होना चाहिये। संकेतोंके ताड़न विना जिस प्रकार अक्षरोंका आविर्भूत होना कठिन है, उसी प्रकार श्रद्धाके विना अदृश्य शक्तियोंका प्रकट होना भी कठिन है। देवीके मन्दिरमें जानेवाले पुरुष यह कहते हैं, "आज रातको देवीका भाव आवेगा; अतः हम सब लोग मन्दिरमें जाते हैं।"—यहाँपर यह अवश्य स्मरण रहे, कि यात्री लोग "देवीका भाव आवेगा" ऐसा कहते हैं "देवी आवेगी" ऐसा नहीं कहते।

देवी भावका उद्बोधन किसी एक व्यक्तिमें किस प्रकार होता है इसको समझना चाहिये। यह तो निश्चय ही है, कि देवीमन्दिरमें श्रद्धासंयुक्त चित्तवाले पुरुष ही विशेष जाते हैं। जहाँ भाव आता है, वहां जाकर जगन्नियन्त्री देवी कोई एक ब्रह्मकी शक्तिविशेष जो मनुष्यमात्रके अन्तःकरणमें अदृश्य रूपसे निवास करती है—उसका श्रद्धासे उद्बोधन करके जिस पुरुषको देवीका भक्त बनाया है, उस पर देवी भावका आरोपण करते हैं। जिस प्रकार "मैस्मेरिज़म" के द्वारा एक आमिल किसी बालक पर अमल करता है—उसी प्रकार ये सौ दोसौ आमिल उस देवीपूजकपर अमल करते हैं और वह देवी-भक्त भी अपनी श्रद्धासे अन्तःकरणस्थ देवीभावका उद्बोधन करता है। अर्थात् वह देवीभक्त देवीके गुण-धर्मोंको धारण कर लेता है। इससे वह अदृश्य देवीभाव उद्भूत हो जाता है अथवा आवेश हो जाता है और इसीको देवीका भाव कहते हैं। यही बात महावीरके गुण धर्मोंकी भी हो सकती है, परन्तु यह क्रिया अत्यन्त धार्मिक पुरुषके करनेकी है, अन्यथा धोखा होना सम्भव है।

उपर्युक्त विधिसे किसी धर्मात्मा व्यक्तिमें महावीरके गुण धर्मोंका तादात्म्यभाव अवश्य हो सकता है, परन्तु इससे कुछ लाभ नहीं, कारण कि यह तादात्म्य-भाव अल्पकालके लिये आवेशके रूपमें होता है। इससे तो चिरकाल तक उस देवताकी भक्ति की जाय, तो अच्छा है। कारण कि सतत परिश्रम एवं भक्तिसे भक्तको जो तादात्म्य भाव होता है, वह स्थायी और शान्तिप्रद होता है। अस्तु किसी किसी देशमें लोग हनुमान्‌का भाव भी करते हैं।

दक्षिण देशमें महावीरजीकी विशेष मान्यताका यह कारण है, कि उस देशमें समर्थ रामदासजी महाराजने रामभक्तिके साथ साथ महावीरकी भक्तिको भी बढ़ाया था और महावीरजीके बड़े बड़े मन्दिर भी बनवाये थे। इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है। महावीर युद्धप्रिय देवता हैं; इस कारण युद्धप्रिय मराठोंके पूजनीय देव हो गये। यहाँ तक कि छत्रपति श्री-शिवाजी महाराजने राज्यप्रबन्धके लिये जहाँ जहाँ कोट, दुर्ग और गढ़ बनवाये थे, वहाँ वहाँ उनके द्वारोंपर महावीरजीकी गदा-पाणि एक एक मूर्ति भी बनाई। इससे भी महाराष्ट्र देशमें महावीर पूजाका अच्छा प्रचार हुआ। महाराष्ट्र देशमें कहीं कहीं तो मूर्त्तियाँ कुशल कारीगरोंके हाथकी होनेसे प्राचीन

भारतकी कला कौशलका स्मरण कराती हैं। छोटे छोटे ग्रामोंमें कहीं कहीं तो टोल अथवा शिलाको सिन्दूर लगाकर महावीर बना लिया है। हिन्दु लोग तो मारुतिके भक्त हैं ही; परन्तु बम्बई आदि स्थानोंमें पारसी लोग भी तेल सिन्दूर चढ़ाते हैं। कुश्ती लड़नेवाले मल्ल लोग भी हनुमान्‌जीके अनन्य भक्त होते हैं। अर्जुनके रथपर भी हनूमान आरूढ़ रहते थे, सारांश—भारतवर्षमें महावीरजीकी उपासना प्रायः सब देशोंमें है। महावीरजीकी भक्तिके ही कारण हिन्दूलोग बन्दरोंको नहीं मारते।

शिक्षा।

हनुमज्जयन्ती अर्थात् हनुमान्‌जीके जीवन चरित्रसे हमको क्या शिक्षा मिलती है, यह विचार करना प्रत्येक धर्मात्मा पुरुषका कर्त्तव्य है।

१ सेवाधर्म।

अपने स्वामीमें किस प्रकारकी निष्ठा होनी चाहिये इसका तो महावीर अवतार ही है। "सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः" अर्थात् सेवाधर्म परम गहन है और योगियोंको भी अगम्य है ऐसा भर्तृहरि महाराजने कहा है; परन्तु महावीरने इस वाक्यको निरर्थक बनाकर बतला दिया, कि सच्चा दास संसारमें दास्य भावके प्रभावसे अगम्य सेवाधर्मको भी गम्य बना सकता है। यही कारण था कि, भगवान् रामचन्द्रजीको भी मुक्त कण्ठसे यह कहना पड़ाः—

एतस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मणः।
प्राप्ता मया जयश्चैव राज्यं मित्राणि बान्धवाः॥

"हनुमान्‌के बाहुबलसे ही मैंने लङ्का, सीता, लक्ष्मण, जय, राज्य, मित्र और बान्धवोंको पाया है"।

भगवान् रामका तो यह कथन और उधर हनुमान्‌का प्रेम देखो! जिस समय रावणका वध होकर विभीषणको राज्य मिला; उस समय विभीषणने मोतियोंकी एक अमूल्य माला जनकनन्दिनीके चरणोंमें समर्पण की। सीताने बहुमूल्य और अति प्यारी वह माला परमप्रिय हनुमान्‌को दे दी। हनुमान्‌जीने पहले तो उसके सुन्दर मोतियोंको इधर उधर लौट फेरकर देखा और फिर एक एक मोतीको तोड़ तोड़कर फेंकना प्रारम्भ किया। विभीषणको हनुमान्‌की इस चेष्टासे बड़ा दुःख हुआ और क्रोधयुक्त होकर कहने लगे, "आखिर तो बन्दर ही हो, तभी तो इन अमूल्य मोतियोंको व्यर्थ तोड़ रहे हो"। विभीषणके इन वाक्योंको श्रवण कर परम रामभक्त हनुमान्‌जी हँसकर कहने लगे,

जिस वस्तुमें राम नाम न हो उसको अमूल्य कहना व्यर्थ है। मैं इनको तोड़कर यही देख रहा हूँ, कि देखें इनके भीतर रामनाम भी है? परन्तु जिस मोतीको रामनामसे शून्य देखता हूँ, उसीको फेंक देता हूँ।" यद्यपि यह युक्ति एक भगवद्भक्तके लिये प्रबल थी, परन्तु मालाका मूल्य अन्तःकरणमें होनेके कारण विभीषण उसको न समझ सका और कहने लगा,—"यदि राम नामके विना किसी वस्तुका ग्रहण नहीं करते, तो आपके शरीरके मांस तथा रक्तमें भी तो राम-नाम नहीं है? फिर इसको किस लिये धारण कर रहे हैं?" यह सुनते ही हनुमान्जीने अपने नखोंसे शरीरकी त्वचाको फाड़ डाला। मांसमें सर्वत्र "राम राम" के अक्षरोंको देखकर विभीषण घबराया और गिड़गिड़ाकर हनुमान्के चरणों पर पड़ा। इससे हनुमान्के दास्य भावकी महिमा जानी जाती है। हनुमान्के चरित्रमें स्वार्थत्याग कर मालिककी सेवा करनेका रहस्य कूट कूट कर भरा है। स्वार्थत्याग, अखण्डप्रेम, धैर्य्य और सामर्थ्य इन साधनोंका जिनके मनमें आदर हो, उनको प्रतिदिन हनुमान्जीके चरित्रोंका विचार करना चाहिये।

२ ब्रह्मचर्य्य।

उपर्युक्त सद्गुणोंका एकमात्र कारण हनुमान्का अखण्ड ब्रह्मचर्य्यही है, ब्रह्मचर्य्यके महत्वको जानकर और उसके द्वारा अपने शरीरमें दिव्य-सामर्थ्यको प्राप्त करकेही महावीरने असाध्य कार्य्योंको साध्य कर बताया। ब्रह्मचर्य्यके अभावमें शरीर शक्तिका ह्रास हो जाता है और फिर उस मनुष्यके हाथसे कोई भी प्रापंचिक अथवा पारमार्थिक कार्य्य अच्छी तरहसे नहीं होता। "ब्रह्मचर्य्यसे ही शरीरकी सामर्थ्य बढ़ती है" यह वेद, शास्त्र और पुराण सबकी आज्ञा है। इसलिये हिन्दु धर्ममें मनुष्यके जीवनको चार भागोंमें विभक्त किया है,—(१) ब्रह्मचर्य्य (२) गार्हस्थ्य, (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास। ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य्यरक्षाके ही हैं। एक गार्हस्थ्य आश्रम ही ऐसा है, जिसमें सन्तानके निमित्त मैथुनकी विधि है। उसमें भी मैथुनकी प्रवृत्ति कामोपभोगके लिये नहीं, किन्तु सन्तानोत्पत्तिके निमित्त ही रक्खी गई है। इसी कारण शास्त्रोंने कहा है, कि "ऋतौ भार्य्यामुपेयात्" ऋतुकालमें ही भार्य्याका संग करे। वहाँ भी षोडश रात्रियोंको ही विहित बतलाया है। उन षोडश रात्रियोंमें भी पहली चार रात्रियोंका निषेध किया है और अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस, व्यतीपात, पर्व, श्राद्ध तथा उपवास व्रत आदिमें निषेध

किया गया है। इससे पता लगेगा, कि हिन्दू धर्ममें ब्रह्मचर्य्य पर कितना ज़ोर दिया गया है। छान्दोग्य उपनिषद्के आठवें अध्यायमें ब्रह्मचर्यका माहात्म्य लिखा है:—

"तद्येवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।" "अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दते।" "अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते तद्ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दते।" "अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते तद्ब्रह्मचर्य्यमेव।"

"यज्ञ, इष्टा (पूजा), सत्रायण (मुनि और दीन जनोंको अन्नदान), मौन, अनाशकायन (उपोषण) और अरण्यायन (अरण्यवास) इन सबसे ब्रह्मचर्य्यके महत्त्व अधिक है।

ब्रह्मचर्य्यका महत्त्व दिखलानेवाले और भी अनेक प्रसंग पुराणोंमें आते हैं। मेघनादका वध वही वीर कर सकता था, जिसने बारह वर्ष पर्यन्त कठिन ब्रह्मचर्य्यका पालन किया हो। यह सौभाग्य श्रीसुमित्रानन्दन लक्ष्मणको प्राप्त हुआ। भीष्मपितामहने ब्रह्मचर्य्यके बलसे ही कालको जीत लिया था; इसी कारण उनका इच्छामरण हुआ, जो बड़े बड़े योगियोंको भी दुर्लभ था। चक्रव्यूहके अन्तमें अभिमन्यु जैसे वीरका कभी भी मरण न होता, परन्तु गमन समयके वीर्यदानने ही उनको सदैवके लिये भू-शायी बना दिया। हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रताका नाश उसी समय होगया था, जब यवनोंके साथ लड़नेको युद्धमें जानेवाले महाराज पृथ्वीराजकी कमरका शेला कामातुर होकर उनकी रानीने पकड़ लिया था। विषयवासना शौर्यरूप सर्पके लिये गरुड़का काम देती है। जो मनुष्य विषयवासनाको छोड़कर स्वदेश एवं स्वधर्म-उद्धारके लिये प्रयत्न करता है, उसीका जन्म सार्थक है। समय पाकर ब्रह्मचारी भी मरता अवश्य है, परन्तु कीर्तिरूपसे उसकी मृत्यु कभी भी नहीं होती। इसका जागता उदाहरण उन्हीं वीरोंका है, जिनका पूर्वमें नाम लिखा जा चुका है। श्रीमहावीरजीको त्रेतासे लगाकर आज पर्यन्त लाखों वर्ष हो गये, परन्तु आज भी रामभक्तोंकी गणनामें ब्रह्मचारीके नातेसे प्रथम नाम उन्हींका आता है। जब तक हमारे देशमें ब्रह्मचर्य्यका पुनरुद्धार न होगा, तब तक वास्तविक हनुमज्जयन्तीका त्यौहार न मनाया जा सकेगा।

इन व्रतोत्सवोंके अतिरिक्त बङ्ग और महाराष्ट्र देशमें चैत्र शु० ८ को

अन्नपूर्णापूजन और अशोक कलिका प्राशन, चैत्र शु० १३ (मदनत्रयोदशी) को दमनक समर्पण, चैत्र शु० १५ को वासन्ती पूजा और ब्रह्मपुत्रस्नानके उत्सव विशेषरूपसे मनाये जाते हैं। वङ्ग देशमें चड़क संक्रान्तिका भी उत्सव होता है। महाराष्ट्र देशमें चैत्र शु० १ को ब्रह्माकी नहीं, किन्तु ब्रह्मध्वजकी पूजा होती है। कहीं कहीं इन्द्रध्वजकी भी पूजा होती है।

वैशाख-मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

वैशाख मासमें गणेशचतुर्थी व्रत, विषवती पर्व, वसन्त प्रारंभोत्सव, अमाव्रत, परशुरामजयन्ती, त्रेतायुगोत्पत्ति, चन्द्रदर्शन व्रत, अक्षय्यतृतीया व्रत, गंगासप्तमी व्रत, मोहिनी व्रत, नृसिंहचतुर्दशी व्रत, पौर्णिमा व्रत, पौर्णिमा पर्व, कूर्मजयन्ती, वैशाख स्नान और स्नानसमाप्ति इत्यादि १५ त्यौहार होते हैं; परन्तु इनमें परशुरामजयन्ती, अक्षय्यतृतीया और नृसिंहचतुर्दशी ये तीन त्यौहार ही मुख्य हैं; अतः इनहीके विषयमें लिखा जाता है।

१—परशुरामजयन्ती।

—: * :—

शास्त्रीय स्वरूप।

परशुरामजयन्तीका विवरण प्रायः सभी पुराणोंमें लिखा गया है। इसका कारण यह है, कि विष्णुके अनेक अथवा असंख्य अवतारोंमेंसे शास्त्रोंने दशावतारको ही प्रधानता दी है। जैसा, कि बृहदारण्यकोपनिषद्में लिखा है:—

आद्यस्वै हरयो दश च सहस्राणि चानन्तानि बहूनि च।

"हरिके दश अवतार तो मुख्य हैं; सहस्र भी हैं, अनन्त भी हैं और बहुत हैं"। इसी कारण जहाँ जहाँ चौवीस अथवा दश अवतारोंका थोड़ा बहुत भी विवरण आया है; वहाँ वहाँ परशुराम अवतारका वर्णन अवश्य ही आया है। दश अवतारोंमें परशुरामजीका अवतार छठां है। वाल्मीकिरामायण और भागवतमें परशुरामका विशेष विवरण आया है, जो आगेके लेखमें आवेगा।

वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीयाको एक प्रहर रात्रि जानेपर परशुरामजीका अवतार हुआ है यह बात स्कन्ध पुराण और भविष्य पुराणके प्रमाणसे निर्णय-सिन्धुमें इस प्रकार कही गई है:—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥
स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहु-संस्थिते।
रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो स्वयं हरिः॥
सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या।

वैशाख मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको पुनर्वसु नक्षत्रमें एक प्रहर रात्रि जानेपर "परशुराम" नामक हरिका अवतार हुआ। उस समय स्वग्रही होकर छहों ग्रहोंसे युक्त मिथुन राशि पर राहु स्थित था। ठीक इसी समय श्रीहरिका रेणुकासे प्राकट्य हुआ। यह तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये।" इसके अतिरिक्त निर्णयसिन्धुमें भी आया है:—

इयं तृतीया प्रथमयामव्यापिनी ग्राह्या। तत्र प्रदोषसमये
परशुरामं संपूज्यार्घं दद्यात्। अयं मन्त्रोऽपि-
जमदग्निसुतो वीर! क्षत्रियान्तकर प्रभो!
गृहाणार्घं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥

"यह तृतीया प्रथम प्रहरव्यापिनी लेनी चाहिये और उसी समय परशुरामजीका पूजन करके अर्घ प्रदान करना चाहिये। उसका मन्त्र यह है—हे नाथ! तुम जमदग्निके पुत्र हो और क्षत्रियोंका नाश करनेवाले हो, अतः कृपया मेरे दिये अर्घको स्वीकार करो।"

अथ कथा।

परशुरामजीका जन्म वैशाख शुक्ल तृतीयाको रात्रिके प्रथम प्रहरमें हुआ था। इनके अवतारका प्रयोजन केवल "हैय हैय" वंशके पापी क्षत्रियोंको नाश करनेका ही था। भागवतमें लिखा है, कि पुरुरवाके वंशमें ऋचीक ऋषि थे। उनका विचार जब विवाह करनेको हुआ, तो गाधि नामक राजासे कन्याकी याचना की। महाराज गाधिने कुछ श्यामकर्ण घोड़े लेकर ऋचीकको अपनी कन्या दे दी। गाधि-राजकी कन्याने विवाह हो जाने पर अपने पतिकी इतनी सेवा की, कि जिससे प्रसन्न होकर ऋचीकने अपनी भार्यासे कहा,—

"प्रिये! तुम धन्य हो। तुमने अत्यन्त कष्ट उठाकर जो मेरी सेवा की है; उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। यदि तुमको किसी प्रकारकी इच्छा हो, तो कहो! मैं उसको पूरी करनेके लिये प्रस्तुत हूँ।" पतिके मनोहर भाषणको सुनकर ऋषिपत्नीने प्रार्थना की,—"प्रभो! इस संसारमें स्त्रीके दो ही परम कर्त्तव्य हैं,—(१) पतिका प्रसन्न हो जाना और (२) एक सन्तानकी प्राप्ति होना। इनमेंसे प्रथम कर्त्तव्य तो हो चुका कारण कि आप प्रसन्न हैं। अब द्वितीय कर्त्तव्य "पुत्रोत्पत्ति" अवशिष्ट है; अतः कृपाकर ऐसा वरदान दो, कि जिससे आपके समान ही पुत्ररत्नकी प्राप्ति हो। साथ साथ यह भी प्रार्थना है, कि गाधिराजकी स्त्री जो मेरी माता है उसको भी सन्तान नहीं है। यदि आपकी कृपा हो, तो एक पुत्र मेरी माताको भी प्राप्त हो जाय।" महर्षि ऋचीक अपनी भार्याकी इस प्रार्थनाको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उसी समय सन्तानके निमित्त दो चरु तयार किये,—(१) ब्राह्मणोचित, अपनी भार्याके लिये और क्षत्रियोचित, गाधिराजकी भार्याके लिये।

उपर्युक्त दो चरुओंको तयार कर ऋषि गंगातट पर चले गये और जाते समय अपनी भार्याको समझा गए, कि अमुक चरु तुम्हारे लिये है और अमुक तुम्हारी माताके लिए है। ऋषिके चले जाने पर गाधिराजकी स्त्री अपनी पुत्रीसे मिलने आई और जब दोनों चरुओंका हाल सुना तो मनमें विचारा,—"अपनी स्त्रीके लिये अच्छा तयार किया होगा" इसी भावको लेकर अपनी पुत्रीसे कहा,—कि बेटी! यदि तेरी इच्छा हो, तो यह जो तेरे लिये चरु बनाया है इसको मैं भक्षण कर लूँ। माताके वचनको सुनकर और विशेष विचार न करके माताको आज्ञा दे दी। पुत्रीकी आज्ञा पाते ही रानीने ब्राह्मणोचित चरुका भक्षण किया और बेटीने क्षत्रियोचितका भक्षण कर लिया। थोड़ी देरके बाद जब ऋचीक अपने आश्रमपर आये और स्त्रीकी ओर देखा, तो दुःखित होकर बोले,—"प्रिये! तुमने चरुका विनिमय करके बड़ा भारी अनर्थ कर डाला है। तुम्हारे गर्भसे क्षत्रियोचित कर्म करनेवाला और उग्र स्वभावका पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारी माताके गर्भसे ब्राह्मणोचित कर्म करनेवाला परम तपस्वी बालक होगा।" ऋचीककी भार्याने अपनी भूल पर खेद प्रकट करते हुए प्रार्थना की, कि नाथ! मेरे गर्भसे इस प्रकारका पुत्र न होना चाहिये। महर्षि बोले,—"मन्त्रकी शक्तिका निष्फल हो जाना असम्भव है, परन्तु कालान्तर हो जाना सम्भव है। अर्थात्—इस समय तो तुम्हारे गर्भसे ब्राह्मणोचित कार्य

करनेवाला ब्राह्मण कुमार ही होगा; किन्तु पौत्र निःसन्देह मन्त्रशक्तिके अनुसार ही होगा।"

ऋचीककी सासके गर्भसे विश्वामित्रकी उत्पत्ति हुई, जिसने अनेक वर्षोंकी कठिन तपस्या करके "ब्रह्मर्षि" पदवीको प्राप्त किया। खेद है, कि आज कलके कुछ साहसी लोग "विश्वामित्र क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये" यह उदाहरण देकर विचारे अनधिकारी लोगोंको ब्राह्मण बनानेके चक्करमें डालकर उभय लोकसे भ्रष्ट कर देते हैं। वे यह नहीं जानते कि विश्वामित्र तो मन्त्र-शक्तिके कारण प्रथमसे ही ब्राह्मण थे। केवल मातृगर्भके सम्बन्धसे जो क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ था—उसीसे क्षत्रिय कहलाए। परन्तु इस नाम मात्रके सम्बन्धको भी नष्ट करनेके लिए विश्वामित्रजीको हजारों वर्षों तक तपस्या करनी पड़ी थी। अस्तु, इस विषयमें "देशका भविष्य ही ऐसा है, कि धर्मका लोप हो" इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय।

ऋचीककी भार्याके गर्भसे जमदग्नि महाराजकी उत्पत्ति हुई, जिनकी स्त्री रेणुका थी। इसी रेणुकाके गर्भसे भगवान् परशुरामजीका अवतार हुआ, जो उस क्षत्रियोचित चरुका प्रभाव था। परशुरामजीका नाम वास्तवमें तो "राम" था, परन्तु परशु नामक आयुधको धारण करनेसे "परशुराम" हो गया। इनके सब गुण कर्म क्षत्रियोंकेसे थे। समयकी भी विचित्र महिमा है! यह किसी समय सत्त्वप्रधान होकर संसारमें परोपकारकी प्रवृत्ति कराता है और किसी समय तमःप्रधान होकर स्वार्थमय संसारको बनाता है। सत्त्वकी प्रधानतासे देशमें परम शान्ति स्थापित होती है और तमोगुणकी प्रधानतासे मनुष्योंमें स्वार्थकी मात्रा बढ़कर परम अशान्तिका अङ्कुर उत्पन्न होता है। उसी अङ्कुर अथवा स्वार्थमय प्रवृत्तिको रोकनेके लिये कोई न कोई विभूति अथवा अवतार होता है; जो स्वार्थी लोगोंको दण्ड देकर संसारमें शान्ति स्थापित करता है। इसी प्रकारकी एक घटनाने परशुरामका प्राकट्य कराया था।

भारतवर्षमें सदासे वर्णत्रयीकी ब्राह्मण जाति ही पूजनीया रही है; परन्तु कालके परिवर्तनशील स्वभावसे उस समयके अत्यन्त बलवान् हैय हैय जातिके क्षत्रियोंमें ब्राह्मण जातिके तिरस्कार करनेकी बुद्धि उत्पन्न होगई थी। हैयहैय जातिका मुख्य नेता कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन चक्रवर्त्ती राजा माहिष्मती नगरी (कुछ लोगोंका मत है, कि माहिष्मती नगरी नर्मदाके किनारे पर थी, जिसको आजकल महेश्वर कहते हैं) में रहता था और ब्राह्मण जातिका

बड़ा भारी द्रोही था। ब्राह्मण जातिके विषयमें वह इस प्रकार कहा करता थाः—

ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं न क्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम्।
श्रिता ब्रह्मणोपधा विप्राः खादन्ति क्षत्रियान् भुवि॥
क्षत्रियेष्वाश्रितो धर्मः प्रजानां परिपालनम्।
क्षत्राद् वृत्ति र्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः॥

वाल्मीकीय रामायण सर्ग १५३

"ब्राह्मण क्षत्रियोंके आश्रित हैं, क्षत्रिय ब्राह्मणोंपर अवलम्बित नहीं। क्षत्रिय ही ब्राह्मणोंके पालक हैं इससे क्षत्रिय ही श्रेष्ठ हैं। जब धर्मका परिपालन और प्रजाका संरक्षण ये दोनों काम क्षत्रिय ही करते हैं, तो ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ कहना धृष्टता है।" कार्त्तवीर्यका यह विचार जब परिपक्व हो गया, तब उसने ब्राह्मण एवं ब्राह्मणोंके नेता ऋषियोंको अनेक प्रकारसे दुःख देनेकी बात अपने मनमें ठान ली।

एक बार सहस्रार्जुन अपने सम्पूर्ण दल बलके सहित आखेट करनेको जाता हुआ, महर्षि जमदग्निके आश्रमपर पहुँच गया। जमदग्निने विचार किया कि, आज दैवयोगसे माहिष्मतीका राजा हमारे आतिथ्यमें आ गया है, अतः हमको इसका आतिथ्य करना चाहिये। यह विचार कर सहस्रार्जुनको निमन्त्रण दे दिया। और उसी समय नन्दिनीगायके द्वारा पहुनईका सब साहित्य एकत्र होनेपर राजाको दल बलके सहित नाना प्रकारके व्यँजनोंसे भोजन करा दिया। जब कार्त्तवीर्यको यह विदित हुआ, कि इस निर्जन वनमें यह सब पदार्थ ऋषिने नन्दिनीके प्रतापसे ही एकत्र किये हैं, तो राज्यमदसे उन्मत्त राजाने बलात्कारसे नन्दिनीका अपहरण किया। इस नीच कर्मको देखकर परशुरामजी क्षुभित हो गये और पिताकी आज्ञाके विना ही कार्त्तवीर्यके पीछे दौड़े। जब कार्त्तवीर्यने इनका भी तिरस्कार किया, तो फिर परशुरामने अपने परशुसे राजाकी समस्त सेनाको नष्ट कर दिया और अन्तमें राजाको भी मारकर, नन्दिनीको छुड़ा लिया। महाराज कार्त्तवीर्यको मारकर परशुराम नन्दिनीको लाया है यह खबर जब जमदग्निको पड़ी तब बहुत दुःखी होकर परशुरामसे कहने लगे—"पुत्र! तुम निस्सन्देह पराक्रमी हो; परन्तु देवताके स्थानापन्न राजाको मार दिया यह अच्छा नहीं किया। "अभिषिक्त राजा प्रत्यक्ष विष्णु है" यह वेदका सिद्धान्त है और गीतामें स्वयं भगवान्ने भी कहा है "नराणां च

नराधिपः" मनुष्योंमें राजा मैं हूँ—इत्यादि अनेक शास्त्रोंका मत होनेपर भी तुमने राजाको मारकर अच्छा न किया। ब्राह्मणोंके शरीरमें दया, क्षमा, सत्य और शान्ति आदि गुणोंका होना परम आवश्यक है। क्षमा तो ब्राह्मणोंका भूषण ही है, परन्तु इतनेपर भी तुमने राजाका वध किया, इस कारण तुमको समस्त तीर्थोंका पर्यटन करना चाहिये।"

पिताकी आज्ञाको मानकर परशुरामजी तो तीर्थयात्राको चले गये और इधर सहस्रार्जुनके पुत्रोंने अपने पिताका वैर लेनेके लिये गोष्ठमें हवन करते हुए जमदग्निजी महाराजके मस्तकका छेदन किया। उस समय जमदग्निकी भार्या और परशुरामजीकी माता रेणुकाने 'आह' भरकर पुत्रको पुकारा और इक्कीस बार वक्षस्थलको ताड़न किया। इतनेमें ही दैवयोगसे वहाँ परशुराम आगये और हैयहैय वंशके क्षत्रियोंसे २१ बार पृथिवीको निःक्षत्रिय करूँगा—यह दारुण प्रतिज्ञा की। इसी कारणसे परशुरामने २१ बार पृथिवीको क्षत्रियोंसे रहित किया। आजकल ब्राह्मणोंके विद्वेषी कुछ अदूरदर्शी लोग क्षत्रियोंका यह कहकर भंड़काते हैं,—"ये ब्राह्मण वे ही हैं, जिनके पुरुषा परशुरामने २१ बार पृथिवीको निःक्षत्रिय किया था। साँपका बालक भी सांप ही होता है, यदि अब भी क्षत्रिय जाति इन्हींको अपना नेता मानकर अपना और देशका आधार-स्तंभ मानेंगे, तो निश्चय ही ये परशुरामके वंशज फिर भी समय पाकर क्षत्रिय-वंशको नष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे।" किन्तु स्मरण रहे, कि ब्राह्मणोंसे द्वेष करने-वाले वे लोग हैं; जो हिन्दू जनताको ब्राह्मण नेताओंके हाथसे निकालकर और उसको पथभ्रष्ट कर, सदैवके लिये अनुचित गुलामीकी जञ्जीरमें जकड़ रखना चाहते हैं। वास्तवमें देखा जाय तो परशुराम ब्राह्मण ही नहीं थे और यदि थे तो जिस प्रकारके क्षत्रिय विश्वामित्र थे, उसी प्रकारके ब्राह्मण परशुराम थे। दूसरी बात यह भी है, कि परशुरामने समग्र जातिके क्षत्रियोंका नाश नहीं किया; किन्तु अत्यन्त मदान्ध, गर्विष्ठ, धर्ममार्गसे पतित, नीतिसे च्युत, उप-कारी तथा ब्रह्मनिष्ठ जमदग्निका अकारण वध करने वाले और अति क्रूर स्वभाव-वाले हैयहैय वंशके क्षत्रियोंका ही वध किया था। उनको यदि परशुरामजी न मारते, तो भी मरना ही था। क्योंकि उनको अकारण प्रजापीड़नकी सन्ता-पाग्नि भस्म कर चुकी थी, परशुराम तो निमित्तमात्र ही थे। यदि यदुवंशके नाशका भार श्रीकृष्णपर, कौरवोंके नाशका भार अर्जुनपर और रावण आदिके नाशका श्रीरामपर हो; तो इनके मरनेका भार परशुरामपर लगाया जा

सकता है; परन्तु इस बातको कोई भी सुविश स्वीकार नहीं करेगा। भगवान् कृष्णने तो गीतामें अर्जुनसे स्पष्ट ही कहा है,—

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्!

"हे सव्यसाची अर्जुन! यह कौरवोंका दल जो तुम्हारे आगे खड़ा है, अपनी दुष्ट करनीसे प्रथम ही नष्ट हो चुका है, तुमको तो निमित्त मात्र होनेकी आवश्यकता है।" इसी प्रकार रावणके मरनेपर भी गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है:—

रावण रावणको हन्यो दोष रामको नाहिं।
निज हित अनहित देख किन तुलसी आपहि माहि॥

"रावणका मारनेवाला राम नहीं, किन्तु उसका कर्त्तव्य ही है।" ठीक, इसी प्रकार कार्त्तवीर्यके वंशजोंको परशुरामने नहीं, किन्तु उनकी करनीने मारा था। इसके अतिरिक्त परशुराम-अवतारमें सब गुण और धर्म क्षत्रियोचित थे। यहांतक, कि उन्होंने पिताकी आज्ञानुसार अपनी माताके मस्तकको भी काट डाला था। यद्यपि पिताकी प्रसन्नतासे माताको पुनः जीवित करा लिया; परन्तु यह निश्चय है, कि वह कार्य क्षत्रियभावसे भावित चरुका ही था, ब्राह्मणका नहीं। इससे परशुरामजीके चरित्रमें लाञ्छन लगाना अथवा उनकी कृतिका बोझ ब्राह्मणोंके सिरपर मढ़ना मूर्खताका कार्य है। सारांश, हैयहैय वंशके अधर्मी क्षत्रियोंके वधार्थ ही परशुरामका अवतार था।

लौकिक स्वरूप।

जिस प्रकार राम और कृष्ण जयन्तीका उत्सव मनाया जाता है, उसी प्रकार परशुरामजीके उत्सव करनेकी भी शास्त्रोंमें आज्ञा है; परन्तु लोकमें इस जयन्तीका प्रचार बहुत थोड़ा है। दशावतारोंमें गणना होनेके कारण यों तो भारतके सभी मन्दिरोंमें इस जयन्तीको भी मनाया जाता है; परन्तु मथुरा और काशीमें कुछ अधिकतासे मनाया जाता है। सुना जाता है, कि आसामके आगे जहां "कामाख्या" देवी है—उस प्रान्तमें जमदग्निका भी आश्रम है। अतः उस देशमें परशुरामजीकी भक्ति विशेष है और वहां परशुरामके मन्दिर हैं। कोंकणपट्टी (दक्षिण देश) में एक आख्यायिका इस प्रकारकी प्रसिद्ध है, कि वहाँ परशुरामजीने अपने बाणके द्वारा समुद्रको हटाकर पृथिवी निकाली थी और ब्राह्मणोंको दान कर दी इसी कारण कोंकणपट्टीको आज भी "परशुरामक्षेत्र" कहते हैं। इस परशुरामक्षेत्रमें अकाल नहीं पड़ता ऐसी वहांके लोगोंकी धारणा है और वास्तवमें वहां अकाल पड़ता भी नहीं है।

दक्षिण देशके बहुतसे ब्राह्मण परशुरामके भक्त भी हैं। रत्नागिरी जिलेमें परशुरामजीका एक विशाल मन्दिर भी है। वहांपर यह जयन्ती बड़े ठाट बाटसे मनाई जाती है।

शिक्षा।

परशुराम अवतारके जितने चरित्र हैं, उनका सम्बन्ध अन्य लोगोंसे न होकर चरित नायकसे ही है; अतः वे अनुकरणीय नहीं। हाँ, इस जयन्तीसे इतना तो अवश्य ही बोध लेना चाहिये कि अधिकार अथवा सत्ताको पाकर किसीको भी उसका दुरुपयोग न करना चाहिये। अधिकारको पाकर ही सहस्त्रार्जुन एवं उसके वंशजोंने पाप करना प्रारम्भ कर दिया था और वह यहाँ तक बढ़ा, कि प्रजाके मुख्य नेता ब्राह्मणोंको कष्ट देना ही उन लोगोंने अपना कर्त्तव्य समझा।

यद्यपि, समयके प्रभावसे ब्राह्मणोंमें भी स्वार्थबुद्धिका उत्पन्न हो जाना सम्भव है; परन्तु ऐसे समयमें ब्राह्मणोंको सम्हालना राजा और प्रजा दोनोंका ही कर्त्तव्य है। नौका सदैव गांड़ी और मनुष्योंको नदीसे पार उतारती रहती है; किन्तु समय पाकर वह भी टूट जाती है। ऐसे समयमें क्या यात्रियोंका यह कर्त्तव्य होगा, कि उस टूटी हुई नौकाको एक और ठोकर मारकर डुबो दी जाय? यदि ऐसा होगा, तो निश्चय समझो, कि नावके नष्ट होनेके साथ साथ नदीका मार्ग भी रुक जायगा और फिर कोई भी यात्री पार न हो सकेगा। इस कारण नौकाके टूट जाने पर यात्रियोंको चाहिये, कि पानीमें कूदकर चारों तरफसे नौकाको सहारा देकर पार कर दें। इसी प्रकार, यह ब्राह्मण नौका भी अनादि कालसे भारतियोंको विपत्तिसागरसे पार करती रही है। यदि कारणविशेषसे किसी समय यह टूटती दीखे, तो राजा एवं प्रजाको चाहिये, कि उसको सहायता देकर असली हालत पर लावें। खेद है! कि हैयहैय वंशी क्षत्रियोंने ऐसा न करके उस नौकाको छिन्न भिन्न करना ही कर्त्तव्य समझा। इसी कारण विष्णु भगवान्‌को परशुराम अवतार धारण करना पड़ा। आजकल भी भारतवर्षमें उसी प्रकारकी कुवासनासे ब्राह्मण एवं नेताओंमें घृणाका अङ्कुर बढ़ रहा है। अतः इसके समूल उन्मूलनका प्रयत्न शीघ्रतासे कर देना चाहिये। अन्यथा, बढ़ जानेपर इसके अनिष्टका फल हमको ही भोगना होगा।

इसके अतिरिक्त इस परशुराम जयन्तीके "क्षत्रिय-वध" से शासक

जातिको भी यह शिक्षा लेनी चाहिये कि शासन सदैव प्रजाकी सुख समृद्धि बढ़ानेको होता है और उसी समृद्धिके संरक्षण तथा परिवर्धनके लिये ही शासकोंकी आवश्यकता होती है। यदि न्यायके विरुद्ध शासक-वर्ग प्रजाकी सम्पत्तिको हरण करने लग जायँ, तो फिर उस शासक एवं डाकूमें कुछ भी अन्तर नहीं रहता। राजा ईश्वरका अंश इसी कारणसे माना गया है, कि वह ईश्वरकासा कार्य्य करे अन्यथा ईश्वरांश न रहकर राक्षसांश रहेगा। नन्दिनीका अपहरण बलात्कारसे कर लेना और जमदग्नि जैसे महात्माको मार डालना—यह राजाका नहीं, किन्तु राक्षसका कर्त्तव्य था। वास्तवमें देखा जाय, तो राजा और प्रजाका सम्बन्ध पिता और पुत्रकासा है। पुत्रको समृद्धिशाली देखकर जो पिता प्रसन्न नहीं होता, मेरी सम्मतिमें वह पिता कहलानेका अधिकारी नहीं। इसी प्रकार जो राजा अपनी प्रजाकी सुख-समृद्धिको देखकर प्रसन्न नहीं होता; बल्कि उसकी सम्पत्तिको हरण करके आप विलासी बनता है, उसको राजा कहना महापाप है। जमदग्निके अतुल वैभवको देखकर कार्त्तवीर्यको प्रसन्न होना चाहिये था; परन्तु खेद है, कि वह वास्तविक राजा न होकर प्रजाका रक्त-शोषक खटमल था। राजाओंको इस प्रकारके अन्यायसे सावधान रहना चाहिये।

२—अक्षय्यतृतीया।

शास्त्रीय-स्वरूप।

व्रत-राजमें:—

तत्रैव वैशाखतृतीया या अक्षय्यतृतीया
सा च पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या।
या मन्वाद्या युगाद्याश्च तिथयस्तासु मानवाः।
स्नात्वा हुत्वा च जप्त्वा च दत्वानन्त-फलं लभेत्॥
श्राद्धेऽपि पूर्वाह्ण-व्यापिनी ग्राह्या।
पूर्वाह्णेतु सदा कार्याः शुक्लामनु युगादयः।
दैवे कर्मणि पैत्र्येच कृष्णे चैवाऽपराह्णिका॥
वैशाखस्य तृतीयाञ्च पूर्वविद्धां करोति वै।
हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथेति॥

वैशाखस्य तृतीयायां श्रीसमेतं जगद्गुरुम् ।
नारायणं पूजयेच्च पुष्पधूप-विलेपनैः ॥
यो यस्या-ददाति करकान् वारिव्यञ्जन-संयुतान् ।
स याति पुरुषो वीर ! लोकान्वै हेममालिनः ॥
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च ।
गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥

"वैशाखकी शुक्लतृतीया ही अक्षय्यतृतीया कहलाती है। इसको पूर्वाण्ह-व्यापिनी लेना चाहिए। जो मन्वादि और युगादितिथि हैं; उनमें स्नान, हवन और जप आदि अनन्तफलको देते हैं।

श्राद्धमें भी पूर्वाण्हव्यापिनी ही लेनी चाहिये।

मन्वादि और युगादि शुक्ल पक्षकी तृतीया सदैव पूर्वाह्णव्यापिनी ही लेनी चाहिए। देव और पितर इन दोनों कर्मोंमें कृष्णपक्षकी तृतीया अपराह्णव्यापिनी ही ग्रहण करने योग्य है। जो मनुष्य वैशाखशुक्ल तृतीयाको पराण्हव्यापिनी लेता है, उसके हव्यको देवता और कव्यको पितर ग्रहण नहीं करते। वैशाखशुक्लतृतीयामें लक्ष्मीसहित परमात्माको पुष्प और धूप आदिसे पूजना चाहिए। जो मनुष्य इस तृतीयामें ओलेके लड्डू और बीजना (पंखा) दान करता है; वह वैकुण्ठ लोकको प्राप्त करता है। इस वैशाखशुक्लतृतीयामें जो मनुष्य गङ्गास्नान करता है; वह अवश्य ही समस्त पापोंसे मुक्त होजाता है।"

इस अक्षय्यतृतीयाकी समस्त कथा भविष्यपुराणमें इस प्रकारसे लिखी है:—

कृष्ण उवाच।

बहुनात्र किमुक्तेन किं बह्वक्षरमालया ।
वैशाखस्य सितामेकां तृतीयामक्षय्यां श्रृणु ॥

श्रीकृष्णभगवान् राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं कि राजन्! बहुत अक्षरोंकी माला कहनेसे क्या मतलब है? एक वैशाखकी अक्षय्यतृतीयाको ही सुनो।" इसमें स्नान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृ तर्पण और दान आदि जो किया जाता है वह अक्षय्यपुण्यको प्रकट करता है। इस तृतीयाको "युगादि" तृतीया भी कहा जाता है, जिसका अभिप्राय यह है, कि इस दिनसे सत्ययुगका प्रारंभ होता है; अतः यह सम्पूर्ण पापोंकी नाशिनी है। युधिष्ठिर! पूर्व-कालमें अत्यन्त निर्धन, प्रियवादी, सत्यव्रत और देव ब्राह्मणोंका पूजनेवाला

तथा श्रद्धालु एक वैश्य था। वह, बहु कुटुम्बी होनेके कारण सदैव व्याकुल-चित्त रहता था। उसने वैशाख शुक्लपक्षकी अक्षय्यतृतीयाके माहात्म्यको सुना। अक्षय्यतृतीयामें दान, जप, हवन और स्नान आदिका महत्फल होता है इस माहात्म्यको सुनकर वह वैश्य गङ्गाजीको गया और वहां जाकर पितर तथा देवोंका पूजन किया। पुनः घर पर आकर वैश्यने ओलेके लड्डू और बीजनोंका, अन्न एवं जल पूरित घटोंका, जौ, गेहूँ और लवण आदिका, सत्तू दही और चावल आदिका, गुड़ आदि मिष्ठ पदार्थोंका और स्वर्ण आदि द्रव्योंका भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणोंके लिए दान किया। स्त्रीके निषेध करनेपर, कुटुम्ब चिन्तासे चिन्तित होनेपर, वृद्धावस्थाके कारण अनेक रोगोंसे ग्रसित होनेपर भी धर्मसे पराङ्मुख नहीं हुआ। इससे हे राजन्! समय पाकर उस वैश्यका आगामी जन्म कुशवती नगरीमें एक क्षत्रीके घरमें हुआ। पूर्वदत्तपुण्यके प्रभावसे वह बड़ा धनाढ्य हुआ; किन्तु इतने वैभव पाकर भी उसकी बुद्धि धर्मसे विचलित नहीं हुई, प्रत्युत अधिक धर्म कमाया। यह सब अक्षय्यतृतीयाका ही प्रभाव था।

श्रीकृष्णभगवान्‌ने कहा, हे राजन्! अब अक्षय्यतृतीयाकी विधिको श्रवण करो। तृतीयाके दिन स्नान करके और पितृ-तर्पण एवं देवताओंका पूजन करके वासुदेव भगवान्‌का पूजन करे तथा एकबार भोजन करे। यवों (जओं) का हवन करना, यवोंसे ही विष्णुका पूजन करना और ब्राह्मणोंके लिए यव, गेहूँ, उदककुम्भ (जल-पूरित घट) ओले, सर्वरस, बीजना, जव चनाका सत्तु, दधि, चावल और ग्रीष्मऋतुकी वस्तुओंका दान करना। इससे शिव-लोककी प्राप्ति होती है। घटदानके समयका मन्त्र यह है:—

"एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोऽपि पितामहाः॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुंभं सदक्षिणम्।
पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥

लौकिक-स्वरूप।

लौकिकमें भी यह व्रत केवल धार्मिकदृष्टिसे ही किया जाता है। इस कारण अन्य-व्रतोत्सवोंकी तरह ठाटबाटसे नहीं मनाया जाता, परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि यह त्यौहार एक प्रकारसे सर्वव्यापी है। अर्थात् सर्वत्र ही मनाया जाता है। मन्दिरोंमें भी इस दिन ठाकुरजीके भोगमें सत्तु रक्खा

जाता है और इसी दिनसे भगवान्‌को सफेद पोशाक धारण कराई जाती है। इसी दिनसे धर्मात्माओंकी ओरसे निर्जल मार्गमें प्रपा (प्याऊ) बिठलाई जाती है। शास्त्रीय-स्वरूपमें जिन वस्तुओंका दान लिखा है; वे प्रायः अब भी ब्राह्मणोंको दी जाती हैं।

शिक्षा ।

यद्यपि अक्षय्यतृतीया धार्मिक व्रत है, तथापि दो शिक्षाएँ इससे महत्त्वपूर्ण मिलती हैं,—(१) आहारशुद्धि और (२) देशसेवा ।

१—आहारशुद्धि ।

यह निर्विवाद है, कि मनुष्यके सूक्ष्म और स्थूल दोनों शरीर भोजनके अनुसार ही बनते हैं और इसी तथ्यको छान्दोग्योपनिषद्‌ने भी लिखा है:—

> अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातु
> स्तत्पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्त-
> न्मनः ।१ आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते, तासां यः-
> स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति, यो मध्यमस्तल्लो-
> हितं, योऽणिष्ठः सः प्राणः ।२ तेजोऽशितं त्रेता विधीय-
> ते, तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति, यो म-
> ध्यमः स मज्जा, योऽणिष्ठः स वाक् ।३ अन्नमयं हि
> सोम्य ! मनः आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति ।

"खाया हुआ अन्न तीन विभागमें विभक्त होता है,—(१) स्थूलभागका पुरीष, (२) मध्यमभागका मांस और (३) अति सूक्ष्मभागका मन होता है। पीया हुआ जल तीन भागमें विभक्त होता है,—(१) स्थूलभागका मूत्र, (२) मध्यमभागका रक्त और (३) अति सूक्ष्मभागका प्राण बनता है। तेज खाया हुआ तीन भागमें विभक्त होता है,—(१) स्थूलभागकी अस्थि, (२) मध्यमभागका मज्जा और (३) अति सूक्ष्मकी वाणी होती है। हे सोम्य ! अन्नका मन, जलका प्राण और तेजकी वाणी बनती है।"

उपर्युक्त छान्दोग्यके प्रमाण एवं वैद्यकके मतसे प्राण, मन और वाणी ये सब खाद्यपेय पदार्थोंसे ही बनते हैं। इससे स्पष्ट है, कि जीवात्माके अतिरिक्त हमारे शरीरमें जो भी है, वह सब खाद्यपेय पदार्थोंका ही है। यहाँतक कि धर्माधर्म भी खाद्यपेय पदार्थोंसे ही सम्बन्ध रखते हैं; क्योंकि आत्मा तो निर्धर्म ही है। इस शरीरसे जो कुछ धर्म अधर्म, कर्म-अकर्म किया

जाता है, वह सब खाद्य एवं पेयके अनुसार ही होता है। जो लोग यह कहते हैं, कि खानपान और धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं। मैं प्रथम ही कह चुका हूं, कि मनुष्योंकी आत्मा तो ब्रह्मांश होनेसे निर्धर्मक है; धर्म-कर्मका सम्बन्ध केवल लिङ्ग-शरीरसे है और लिङ्ग-शरीरमें मन ही प्रधान है। वह मन अन्नके सूक्ष्मभागसे बनता है; अतः भोजनसे धर्मका घनिष्ट सम्बन्ध है। जो लोग जिस प्रकारका अन्न खाते हैं और पानी पीते हैं, उनका मन और प्राण उसी प्रकारका बनता है। इसी कारण अन्तः-करणको सात्विक बनानेके लिये सात्विकपदार्थोंका भोजन करना ही श्रीकृष्णने अर्जुनको बतलाया है और संसारमें भी कहा जाता है,—"जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन।" इससे सिद्ध होता है, कि भोजनमें स्पर्शास्पर्श आदि बातोंका बड़ा भारी ध्यान रखना चाहिए। नीचकर्म करनेवाले तमोगुणी मनुष्यके हाथका भोजन खानेवालेको भी नीचकर्मा बनायगा। इसके अतिरिक्त संसारयात्राका मूलकारण भी शरीरकी आरोग्यता ही है और आरोग्यता भोजनकी शुद्धिपर निर्भर है। जो लोग बिना बिचारे अट्ट सट्ट वस्तुओंका भोजन करते हैं अथवा स्पर्शास्पर्शका विचार न करके भोजन करते हैं, वे अपने आप मृत्युको निमन्त्रण देकर अपने शरीरको अनेक रोगोंका अड्डा बनालेते हैं।

सनातनधर्मके धार्मिक ग्रन्थोंमें जितना आवश्यकीय धर्मकृत्यको माना गया है, उतना ही धर्मके मूलभूत शारीरिक आरोग्यताको भी आवश्यक माना गया है। इसी कारण धार्मिककृत्योंमें सबसे प्रथम आहारशुद्धि मानी गई है। यह बात अक्षय्यतृतीयाकी व्रत विधिसे स्पष्ट होजाती है। ग्रीष्मऋतु-में कालका प्रभाव बाहरसे हमारे शरीरपर कैसा पड़ता है; तथा उससे किस प्रकारके अनिष्टोंका होना संभव है और वह अनिष्ट किस प्रकारके खाद्य पेयसे निवृत्त होकर शरीरको आरोग्य रख सकता है इसको ध्यानमें रखकर ही ठंडा ओलेका पानी, यव, गेहूं चनाका सत्तु और दधि आदिके खानेपीनेकी व्यवस्था की है। यदि प्रत्येक ऋतुमें मनमाना आहार किया जायगा, तो वह सात्विक न होकर राजसिक या तामसिक होगा और बुद्धिको बिगाड़ देगा; अतः आहार शुद्धिकी शिक्षा अक्षय्यतृतीयाके त्यौहारसे ग्रहण करनी चाहिये।

२—देशसेवा।

बड़े आनन्दकी बात है, कि आजकल प्रायः हमारे देशके सुशिक्षित

समाजमें देशसेवाके भावोंकी जागृति हुई है। सत्य तो यह है, कि जिस एकताके लिये आजकल सब लोग अटूट परिश्रम कर रहे हैं, उसकी जड़ देश-सेवा (परोपकार) ही है। इस परम सत्यको न समझकर बहुतसे अदूरदर्शी लोग कहते हैं,—"धर्म बन्धनको तोड़कर जबतक सब मनुष्योंका खानपान, रोटी और बेटी एक न होगी, तथा एक जाति न बन जायगी; तब तक एकता कभी भी न होगी।" परन्तु यह इन लोगोंका निरर्थक प्रलाप है। यह इस बीशवीं शताब्दिमें सिद्ध होगया है, कि खानपान या रोटी बेटीकी एकतासे एकता कभी भी नहीं होसकती। यदि खानपान, रोटी बेटी और एक जातित्वसे ही एकता होती, तो जो विश्वव्यापी संग्राम तीन वर्ष तक योरुपमें रहा और जिसके कारण एशिया योरुपके अगणित नर रत्न युद्धाग्निमें स्वाहा हो चुके—वह कदापि न होता। क्योंकि, आष्ट्रिया, जर्मनी, रूस, इंगलेण्ड, फ्रांस इटली और अमरीका—आदि परस्पर लड़नेवाली शक्तियोंका खानपान, रोटी-बेटी और जाति एक ही थी। हिन्दुस्तानमें भी जिनकी रोटी बेटी और जातिपांति एक है, उनमें ही मुकद्दमेबाज़ी अधिक होती है; अतः यह कहना, कि रोटी बेटीकी एकतासे एकता होगी—निर्मूल और भ्रांतिसे भरा है। वास्तवमें देखाजाय, तो एकता परोपकार और प्रेमका फल है। जब हम किसीके साथ परोपकार करेंगे, तो वह भी दिलसे हमारी सहायता करनेको प्रस्तुत रहेगा। उपकार और प्रेमका प्रभाव मनुष्यपर तो क्या परन्तु पशु और पक्षियोंपर भी पड़ता है, जिनकी हमारे खानपान और जातिधर्ममें एकता जन्मान्तरमें भी होना असंभव है। चित्रकूटपर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने भाई भरतसे प्रेमके विषयमें दो चौपाई कही हैं, जिनसे पता लगेगा, कि उपकार और प्रेम ही एकताका मूल है।

तात! कुतर्क करहु जनि जाए। बैर प्रेम नहिं दुरहिं दुराए॥
मुनिगण निकट बिहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥

परोपकार और प्रेम ही ऐसी वस्तु है, कि जो मनुष्य और पशुपक्षियोंमें भी एकता उत्पन्न करा देती है। प्रेम और परोपकारको तो पालिसी और खुदगर्जीने नष्ट कर दिया; अब एकता किस प्रकार होसकती है। देशसेवाका मूल कारण परोपकार ही है; अतः उसी उपकारको लक्ष्यमें रखकर अक्षय-तृतीयाके धार्मिकव्रतकी सृष्टि हुई है। वैशाखशुक्लासे आषाढ़शुक्ला तक प्रायः नद, नदी, तलाव और कूप आदि सूख जाते हैं और आवागमनसे मार्ग प्रायः

निर्जल हो जाते हैं। गर्मीके कारण पशु, पक्षी और मनुष्योंको प्यास भी अधिक सताती है और पथिकोंकी व्यथाका तो ठिकाना ही क्या है। ऐसे समय पर प्रत्येक देशसेवकका कर्त्तव्य है, कि प्रपा (प्याऊ) के द्वारा लोकोपकार करे। यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है, कि अब भी कितने ही माईके लाल निर्जल स्थानोंमें प्रपाका प्रबन्ध करके सच्ची देशसेवा करते हैं और ग्रामोंके सामान्य लोग भी अपने अपने स्टेशनोंपर कहीं कहीं ठण्डा जल पिलाते हैं। बल्कि, कहीं कहीं तो ठण्डा शर्बत भी पिलाते हैं यह शिक्षा हमको अक्षय्य-तृतीयाके त्योहारसे ही मिलती है। अक्षय्य-तृतीयाका अधिकतासे प्रचार होना देशके अभ्युदयका कारण है।

३—नृसिंहचतुर्दशी ।

शास्त्रीय स्वरूप ।

इस नृसिंहचतुर्दशीव्रतका माहात्म्य व्रतराज, हेमाद्रि, नृसिंहपुराण और स्कन्दपुराणमें निम्न प्रकारसे लिखा है और कथा, भागवत एवं महाभारतके आधारपर लिखी है।

माहात्म्य—

अथ वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां नृसिंहचतुर्दशीव्रतम्,
तच्च प्रदोषव्यापिन्यां कार्यम्। तदुक्तं नृसिंहपुराणे हेमाद्रौ च—
वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे।
मज्जन्मसंभवं पुण्यं व्रतं पाप-प्रणाशनम्॥
वर्षे वर्षे च कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम्।

स्कान्देऽपि—

वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके।
अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजः॥

अनिलर्क्ष—स्वातिनक्षत्रम्।

अन्यदपि—

स्वातिनक्षत्रयोगे च शनिवारे महद्व्रतं।
सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा॥

पुंसां सौभाग्य-योगेन लभ्यते दैवयोगतः ।
एभिर्योगैर्विनाऽपि स्यान्मद्दिनं पाप-नाशनम् ॥
सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते ॥

"वैशाखशुक्लाचतुर्दशीमें नृसिंहचतुर्दशीका व्रत होता है। उसको प्रदोषव्यापी करना चाहिए; जैसा कि नृसिंहपुराण और हेमाद्रिमें लिखा है,—"वैशाखशुक्लचतुर्दशीकी रात्रिमें मेरा जन्म हुआ; अतः सब लोगोंको उसी दिन व्रत करना योग्य है।" प्रतिवर्ष किया हुआ व्रत समस्त पापोंका नाश करता है।"

स्कन्दपुराणमें भी लिखा है—

"वैशाखकी शुक्लाचतुर्दशी सोमवारको स्वातिनक्षत्रमें नृसिंहका अवतार प्रदोषके समय हुआ था।"

"स्वातिनक्षत्र, शनिवार और सिद्धियोगमें यह व्रत करना परमश्रेष्ठ है। मनुष्योंके भाग्यसे ही ऐसा योग आता है। यदि ऐसा योग न आवे, तो भी मेरी जन्मतिथिका व्रत अवश्य करना चाहिये। इस मेरे व्रतमें सब वर्णोंका अधिकार है।"

अथ कथा ।

अत्यन्त प्राचीनकाल सत्ययुगमें और स्वायंभुवमन्वन्तरमें कश्यप महाराज थे। उनके वीर्यसे दीतिमें दो पुत्र उत्पन्न हुए,-(१) हिरण्याक्ष और (२) हिरण्यकशिपु। यह लेख भागवतका है, महाभारतमें तो "एक एव दितेः पुत्रः"—यह कहकर एक हिरण्याक्षका ही जन्म बतलाया है और यह भी कहा है, कि इसी हिरण्याक्षके वंशमें वैवस्वतमनुके समय एक दूसरा कश्यप हुआ था। इसी कश्यपके यहां हिरण्यकशिपु लड़का उत्पन्न हुआ, जो हिरण्याक्षसे हजारों तथा लाखों वर्ष पीछे हुआ है। परन्तु भागवतके लेखसे विरुद्ध होनेके कारण महाभारतका यह लेख किसी अन्यकल्पका विदित होता है। भागवतमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ये दोनों समकालीन तथा एक ही कश्यपमहाराजके पुत्र बतलाए गए हैं। यही ठीक भी है; कारण कि एकबार सनकसनन्दन आदि चारों भाई भगवान्‌के दर्शनोंको वैकुण्ठमें गए थे। द्वार पर जय और विजय पौरियोंने इनको भीतर जानेसे रोक दिया, तब इन्होंने शाप दिया, कि तुम दोनों राक्षसका जन्म धारण करोगे। इतनेमें ही भगवान् भी आगए और सब वृत्तान्तको सुनकर कहा, "ब्राह्मणोंका शाप

अन्यथा तो होगा नहीं, परन्तु तीनजन्म तक मेरे हाथसे मारे जानेके कारण शीघ्र ही वैकुण्ठमें आजाओगे।" वे ही दोनों पौरिया एकवार हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु, द्वितीयवार रावण कुंभकर्ण और तृतीयवार शिशुपाल दन्तवक्र हुए; अतः भागवतका कथन ही संगत है। अस्तु, इसी हिरण्याक्षको वाराह अवतार धरकर विष्णुने मारा था।

भाईका वध करनेवाले विष्णुसे वदला लेनेकी इच्छा करके, हिरण्यकशिपुने ब्रह्मा और महादेवजीका घोर तप किया। उससे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी बोले, कि "वरं ब्रूहि"—वर मांगो। ब्रह्माजीके वचनको सुनकर और मनमें वदला लेनेकी इच्छासे हिरण्यकशिपु बोला,—"मैं रात्रि किम्वा दिनमें न मरूँ, सूखी अथवा गीली चीजसे न मरूँ और पशु अथवा मनुष्यसे भी न मरूँ" इत्यादि अनेक वरदानोंको पाकर पीछे मकान पर आगया और अपनेको सर्वथा अजेय मानकर देवता, गऊ और ब्राह्मणोंको दुःख देने लगा। हिरण्यकशिपु देहात्मवादी होनेके कारण अपनेसे पृथक् किसीको ईश्वर नहीं मानता था और जो लोग किसी अज्ञात तथा अदृश्य शक्तिको ब्रह्म मानते थे उनको वड़ा भारी दुःख देता था। इसका विवाह जंभासुरकी कन्या "कयाधु" के साथ हुआ था और अनुह्लाद, संह्लाद, ह्लाद, शिवि, वाष्कल, प्रह्लाद आदि छः पुत्र थे। उनमेंसे "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्" के न्यायानुसार प्रह्लाद नामक छोटा पुत्र जन्मसे ही परलोक एवं ईश्वरका विश्वासी था और समय समयपर यह वालक "छोटे मुंह वड़ी वात" को चरितार्थ करता हुआ देहात्मवादका खण्डन करके, ईश्वरवादकी स्थापना किया करता था। समय पाकर यह वात हिरण्यकशिपुने भी सुनी। सुनते ही तो वह आग वबूला होगया; परन्तु पुत्रस्नेहसे कातर होकर विचारने लगा, कि प्रह्लादको गुरुकी पाठशालामें भेजकर राजनीति और कुलनीतिकी शिक्षा दिलवानी चाहिये। गुरुके पुत्र शण्डामार्कने राजाकी आज्ञानुसार छःमास तक वड़े परिश्रमसे प्रह्लादको पढ़ाया; परन्तु उसने राजनीतिपर कुछ भी ध्यान न दिया, क्योंकि—

राजनीतिमें होत है, शत्रु मित्रका भेद।
समदर्शी प्रह्लादको, सुनत होत अति खेद॥

और तो क्या परन्तु प्रह्लादने अपने गुरु और पिताको भी समय समयपर यही समझाया, कि इस क्षणभङ्गुर संसारसे किसी न किसी दिन विवश

होकर अवश्य ही जाना पड़ेगा; इसलिए कृपया आप इस देहात्मवादके नास्तिकपक्षको छोड़कर ब्रह्मवादकी शरणमें आजायं, जिससे ईश्वरके दर्बारमें मुख न छिपाना पड़े।

एकबार प्रह्लादने पाठशालाके समस्त छात्रोंको ईश्वर और परलोकवादका सार गर्भित उपदेश दिया, जिसको सुनकर सब बालकोंने प्रार्थना की,—"प्रह्लाद! तुम और हम बाल्यावस्थासे इसी नगरमें रहते हैं और तुमने हमारी अपेक्षा अधिक नहीं, किन्तु थोड़ा ही पढ़ा है; फिर यह क्या कारण है, कि तुम्हारी बुद्धि इतनी पवित्र और विशाल है?" इस प्रकार उन बालकोंके वचनोंको सुनकर प्रह्लादने कहा,—"मित्रो! जिस समय मेरे पिता हिरण्यकशिपु तपोवनमें तपस्या कर रहे थे, तब मैं अपनी माता कयाधुके गर्भमें था। उस समय देवताओंका अधिपति इन्द्र मेरी माताको चुराकर लेगया। मार्गमें जाते हुए इन्द्रसे महर्षि नारदने पूछा, कि आप इस कयाधुको कहां और क्यों लेजा रहे हैं? इन्द्र बोला, कि यह पापी हिरण्यकशिपुकी स्त्री है। मैं इसको मारूँगा; क्योंकि इसके गर्भमें बालक है। एक हिरण्यकशिपुने तो संसारको त्रस्त कर रक्खा है और यह न मालूम क्या गजब ढहायगा; अतः कयाधुके सहित इस गर्भस्थबालकको मारूंगा। नारदने कहा, कि देवेन्द्र! तुम इसको मारो मत; किन्तु यहाँ ही छोड़ जाओ। इसके गर्भसे जो बालक उत्पन्न होगा, वह परमवैष्णव होगा और अपने पिताकी मृत्युका कारण होगा। यह सुनकर इन्द्र मेरी माताको नारदके आश्रमपर छोड़कर, स्वर्गलोकको चलागया और तत्पश्चात् बहुत दिन तक मेरी माता वहाँ ही रही। उस समय नारदजी प्रतिदिन मेरी माताको उपदेश देते थे; जिसको मैं भी गर्भमें सुनता था। इसी कारण मुझको गर्भमें ही गीता, वेद, वेदाङ्ग और उपनिषद् आदिका ज्ञान होगया था यही तुमसे मुझमें विशेषता है। अब, यदि तुमको जीवन सफल करना है, तो परमात्माकी नवधाभक्तिमें प्रेम करो।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम्॥

ईश्वरकथाका श्रवण करना, कीर्त्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्यभाव, सखा-भाव और आत्म-निवेदन यही नवधा भक्ति है।

प्रह्लादके उपर्युक्त उपदेशको सुनकर सब बालक विष्णुमें प्रीति करने लगे, जिससे गुरुकी पाठशाला खराब होने लगी, तब गुरुने हिरण्यकशिपुसे

प्रह्लादकी शिकायत की। हिरण्यकशिपुने क्रोधमें आकर यद्यपि अनेक ताड़नाएँ दीं, तथापि प्रह्लाद अपने मन्तव्यसे किञ्चिद् भी नहीं हटा, प्रत्युत अधिकाधिक अनुराग करने लगा। यहाँ तक, कि माताके द्वारा विष पिलाया गया, बहुत ऊंचे पर्वत परसे गिराया गया, शूली पर लटकाया गया, हाथीके पांवसे बँधाया गया और ढूंढाके द्वारा अग्निमें जलाया गया; तथापि अपने सत्याग्रहसे विचलित न हुआ। जब किसी प्रकारसे भी प्रह्लादने ब्रह्मवाद न छोड़ा, तब स्वयं हिरण्यकशिपुने अपने हाथमें खड्ग लेकर कहा, कि अरे, नीच प्रह्लाद! अनेक प्रकारसे समझानेपर भी तू ब्रह्मके गीतको नहीं छोड़ता; तो ले, सम्हल जा। आज मैं तेरा मस्तक इसी खड्गसे काटता हूँ। बतला, अब तेरा भगवान् कहां है? इस सम्वादको एक कविने इस प्रकार लिखा है:—

प्रह्लादाऽस्ति यदीश्वरो वद हरिः सर्वत्र मे दर्शय,
स्तंभे चैवमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राविरासीद्धरिः।
वक्षस्तस्य विदारयन्निजनखैर्वात्सल्यमापादयन्,
आर्त्त-त्राण-परायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः॥

"प्रह्लाद! यदि ईश्वर है तो कहां है! प्रह्लाद बोला, कि सब जगह है। हिरण्यकशिपुने कहा, कि मुझको बतलाओ? प्रह्लाद बोला, कि इसी खम्भेमें हैं। यह कहते ही उसी खम्भसे नृसिंहका अवतार हो गया।" यद्यपि वह समय सायङ्कालका था, परन्तु सूर्य्यके गर्भस्थ होनेसे न तो दिन कहा जा सकता था, न रात। इसी तरह नृसिंह होनेसे न मनुष्य कहा जा सकता था, न पशु। इस प्रकारका अद्भुतरूप धरकर भगवान्ने प्रलाप करते हुए हिरण्यकशिपुको न नीचे न ऊपर, किन्तु गोदमें रखकर, न गीले न सूखे शस्त्रसे किन्तु नखोंसे पेट चीरकर मार डाला और अपने भक्तकी प्रतिज्ञाको पूर्ण किया।

हिरण्यकशिपुके मर जानेपर भगवान्से प्रह्लादने जो प्रश्न किया और भगवान्ने जो उत्तर दिया, उसका वर्णन ब्रह्म-पुराण और हेमाद्रिमें इस प्रकारसे लिखा है:—

हिरण्यकशिपुं हत्वा देव-देवं जगद्-गुरुं।
सुखासीनं च नृहरिं शान्त-कोपं रमा-पतिम्॥
प्रह्लादो ज्ञानिनां श्रेष्ठो पालयन् राज्यमुत्तमं।
एकाकी च तदुत्संगे प्रियं वचनमब्रवीत्॥

"सूतजीने शौनकादिकोंसे कहा, कि हिरण्यकशिपुको मारनेके कारणसे बढ़ा हुआ, जो क्रोध, उसके शान्त होनेपर भगवान् नृसिंहसे उनकी ही गोदमें बैठे हुए, प्रह्लादने पूछा। भगवन्! बिना पूर्वपुण्योंके आपमें जीवकी प्रीति होना असम्भव है, फिर न मालुम मेरी प्रीति आपमें किस प्रकार हो गई। यदि पूर्व जन्मका कोई मेरा पुण्य हो, तो कृपया बतलावें। भगवान्ने कहा, "सौम्य! जिस कारणसे तुम्हारी मुझमें प्रीति हुई है, उसको मैं कहता हूं; सावधान होकर सुनो। प्राचीनकाल पूर्व जन्ममें तू वासुदेव नामक ब्राह्मण था और विद्यासे रहित होनेके कारण एक वेश्यामें आसक्त था। वह वेश्या नृसिंह चतुर्दशीका व्रत करती थी; अतः उसीकी संगतिसे तूने भी मेरे व्रतको किया, उससे ही तेरी प्रीति मुझमें हुई।" उपर्युक्त वृतान्तको सुनकर प्रह्लादने कहा, कि नाथ! वह व्रत किसका और किस प्रकारका है; जिससे वेश्या संसक्त मनवाले मेरी भक्ति आपमें हो गई? भगवान् नृसिंहने प्रसन्न होकर कहा,—"प्राचीन कालमें अवन्ती नगरीमें वेदका पारग एक ब्राह्मण था और उसका नाम सुशर्मा था। नित्य अग्निहोत्रके करनेसे और वेदानुसार अग्निष्टोम आदि द्वारा देवताओंको प्रसन्न करनेसे इसकी कीर्त्ति सर्वत्र फैल गई थी। सुशीला नाम्नी इसकी स्त्री भी पातिव्रत-धर्मके कारण तीनों लोकमें प्रसिद्ध थी। इस ब्राह्मणके पांच पुत्र थे; जो पितृ-भक्त, सदाचारी और विद्वान् थे। उन पांचोंमें तू सबसे छोटा और वेश्यागामी था। वेश्यागामी होनेसे ही सुरापान और स्वर्णकी चोरी भी करता था। एक दिन उस वेश्याके साथ तेरी लड़ाई हो गई, इससे तूने दिनभर कुछ नहीं खाया और रातभर जागरण किया। दैव-योगसे वह दिन मेरे व्रतका था; इसी—कारण तुमको यह परम लाभ प्राप्त हुआ। प्रह्लाद! इस व्रतके प्रभावसे आकाशस्थ देवता प्रसन्न हो जाते हैं, इसीके कारण ब्रह्माने सृष्टिका सृजन किया है और इसीके प्रभावके महादेवने त्रिपुरका नाश किया; अतः इसी व्रतके कारण तुमको यह पद मिला और वह वेश्या भी मेरी गतिको प्राप्त हो गई। कुछ कार्य्य शेष रहा है; उसको करके फिर तू भी मुझमें आ मिलेगा। जो मनुष्य मेरे इस व्रतको करेंगे, उनकी सौ कल्पमें भी पुनरावृति न होगी और अपुत्र पुत्रको तथा निर्धन धनको प्राप्त करेगा और दिव्य सुखकी प्राप्ति होगी। स्त्री हो, या पुरुष हो, इस मेरे व्रतके करनेसे भक्ति और मुक्ति दोनोंको प्राप्त होगा।

नृसिंहचतुर्दशीके माहात्म्यको सुनकर प्रह्लादने कहा, कि नाथ! आपने

व्रतके प्रभावको तो अच्छी प्रकारसे समझाया; परन्तु अब कृपाकर इसकी विधिको कहें। यह सुनकर भगवान्‌ने कहा:—

साधु-साधु महा-भाग ! व्रतस्यास्य परं विधिम्।
सर्वं कथयतो मेऽद्य त्वमेकाग्रमनाः शृणु॥

"तुमने यह प्रश्न अच्छा किया; अतः इसकी विधिको सावधान होकर सुनो।" बहुत पुण्यके देनेवाले मेरे इस व्रतको वैशाखशुक्लचतुर्दशीके दिन ही करना चाहिए। जो मनुष्य इसको नहीं करता, वह निश्चय ही नरकगामी होता है। कलियुगमें ज्यों ज्यों तमोगुणकी अधिकता होती जाती है त्यों त्यों पाप बढ़ता जाता है। उसको नष्ट करनेके लिये यह व्रत परम औषधि है। और तो क्या, परन्तु दुराचारी, सदाचारी और निर्बुद्धि, बुद्धिमान बन जाता है। वैशाख मासकी चतुर्दशीके प्रातःकाल दन्तधावनपूर्वक व्रतका निम्नलिखित संकल्प बोले—

"श्रीनृसिंह दयां कृत्वा महा-विष्णो ! ममोपरि।
अद्याऽहंते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय॥"

जो मनुष्य मेरे इस व्रतको करे, वह पापीकी संगति, मिथ्या-भाषण और दुष्टा स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे। मध्यान्हकालके समय स्वच्छ जलमें वैदिक मन्त्रोंसे स्नान करे। पश्चात्, मेरा स्मरण करता हुआ घर पर आवे और गोबरसे पृथ्वीको लीप कर, अष्टदल कमल बनाकर, उस पर कलश स्थापित करे एवं कलशमें ताम्बा और रत्न डाले। उस कलश पर चावलोंसे भरकर एक बांसकी डलिया रक्खे और मेरी तथा लक्ष्मीकी स्वर्णमयी मूर्त्तिको स्थापित करे। मूर्ति यथा शक्ति तो हो, परन्तु वित्त-शाठ्य अर्थात्—धनाढ्य होनेपर भी क्षुद्र मूर्त्ति न बनाये। मूर्त्तिको प्रथम पञ्चामृतसे स्नान कराकर पुनः पूजन करे; किन्तु यह स्मरण रहे, कि शान्त, जितेन्द्रिय और निर्लोभी आचार्य्यसे ही शास्त्रानुसार पूजन कराना चाहिये। पूजन, षोड़शोपचार पूर्वक और वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों द्वारा होना चाहिये। जितेन्द्रिय रहकर रात्रिमें जागरण करे तथा पुराणोंकी शुभ कथाओंको श्रवण करे। प्रातःकाल होते ही निर्दिष्ट विधिसे मेरी पूजा करे, मेरी सन्निधिमें बैठकर वैष्णव-मन्त्रोंका जप करे और दान दे। दानोंमें स्वर्णका सिंहासन बनवाकर दान करनेसे मुझको विशेष आनन्द होता है। जो लोग किसी कामनासे व्रतको करें उनको पृथ्वी, गाय, तिल सोना और वस्त्रों सहित शय्या दान देना

चाहिए। इसके पश्चात् सुपात्र ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा भी देनी चाहिये; क्योंकि बिना दक्षिणाके कराया हुआ ब्राह्मणभोजन निष्फल जाता है। तदनन्तर मेरी प्रार्थना करे एवं आचार्य्यको आचार्य्य दक्षिणाके साथ साथ नृसिंह और लक्ष्मीकी मूर्त्ति भी दे। मध्यान्हकालके पश्चात् बान्धवोंके सहित आप भी भोजन करे। जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक मेरे इस व्रतको करता है, उसके निश्चय ही अनेक जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

लौकिक स्वरूप।

यह उत्सव प्रायः सर्वत्र ही मनाया जाता है। कारण यह है, कि विष्णु-भगवान्के प्रायः सभी स्थानोंमें मन्दिर हैं और नृसिंहावतार विष्णुका ही अवतार है। साधारणतया तो प्रायः सब स्थानोंमें उत्सव होता ही है; परन्तु पंजाब और सिन्धुदेशके निकटवर्त्ती मुलतान नगरमें विशेष रूपसे होता है। इसका कारण यह है, कि प्रह्लादका पिता हिरण्यकशिपु इसी नगरका राजा था और उसका राजमहल अथवा प्रह्लाद गढ़ी वहाँ अब तक बनी हुई है।

दक्षिण हिन्दुस्तानमें भी वैष्णवमत प्रवर्त्तक आचार्यौंने स्थान स्थानपर विष्णुके मन्दिरोंकी स्थापना की है; अतः वहाँ सर्वत्र ही नृसिंह-चतुर्दशीका उत्सव ठाट बाटसे मनाया जाता है। दीपोत्सव किया जाता है और गायन वाद्यके साथ पालकीमें भगवान्की सवारी निकाली जाती है। सारांश, वहां भी यह उत्सव प्रेक्षणीय होता है।

मद्रास प्रान्तमें "घँटासाल" और "हंपी" में नृसिंहजीके बड़े बड़े विशाल मन्दिर बने हुए हैं तथा वहाँ पर प्रति वर्ष दूर दूरके अनेक यात्री लोग आते हैं और अपनी अपनी मान्यताओंको पूरी करते हैं। वहाँ कितने ही ब्राह्मण तथा अन्यजातिके लोग नृसिंहको अपना कुलदेव मानते हैं।

जयपुर राज्यके अन्तर्गत "खंडेला" ग्राममें नृसिंहजीकी एक द्वादशभुजी अपूर्वमूर्त्ति है और मथुरा तथा अयोध्यामें भी नृसिंह लीला बड़े ठाटसे की जाती है। मालवदेशमें भी नृसिंहजीकी सवारी पालकीमें निकाली जाती है।

शिक्षा।

नृसिंहावतार एवं उनकी जयन्तीसे अत्यन्त महत्वकी जो शिक्षा मिलती है, वह यह है—कि परमात्मा प्रत्येक अणु एवं परमाणुमें व्याप्त है और व्यापक

होनेपर भी भक्तोंके सङ्कटकालमें चाहे, जिस वस्तुसे प्रकट हो सकता है। इसके अतिरिक्त पापी लोगोंको यह भी बतला दिया है, कि पापका घड़ा पूर्ण भरते ही उनका नाश अकल्पित रीतिसे हो जाया करता है।

आनुवंशिक संस्कारोंके कारण दुष्टका पुत्र भी दुष्ट ही होता है—यह नियम है। परन्तु प्रत्येक नियमके साथ अपवाद भी रहता है, यह बात नृसिंह-जयन्तीसे स्पष्ट होगई है। हिरण्यकशिपुका पुत्र महादुष्ट होना चाहिये था, परन्तु वैसा न होकर प्रह्लाद जैसा नर-रत्न पैदा हुआ। प्रह्लादका धार्मिक-सत्याग्रह एवं कष्ट-सहिष्णुता इस भूतलपर सदैव स्वर्णाक्षरोंमें लिखी रहेगी। जिस किसी भी पुरुषने स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए, सुख तथा दुःखकी परवाह न की और सत्यके मार्गका ही अवलम्बन किया वही साधु पुरुष है। कर्मवीर एवं स्वाभिमानीको समय समयपर परीक्षार्थ अनेक विघ्न सताते हैं, किन्तु निवृत्तिपूर्वक विचारोंके द्वारा जो इन सुख दुःखोंका स्पर्श नहीं होने देता और ईश्वरपर भरोसा रखकर सत्यके लिये प्राणोंका भी लोभ नहीं करता, वही सच्चा आदर्श एवं धर्मात्मा है। कहते हुए हर्ष होता है, कि इस प्रकारके अनेक धर्मवीरोंके नाम हिन्दुओंके धार्मिक-साहित्यमें भूषणावह हो गए हैं। जिनमेंसे कुछ धर्मात्मा महानुभावोंके नाम ये हैं—"सत्यके मार्गको श्रेष्ठ मानकर पिताकी अवज्ञा करनेवाला प्रह्लाद, माताकी अवज्ञा करनेवाला भरत, बन्धुकी अवज्ञा करनेवाला विभीषण, गुरुसे युद्ध करनेवाला भीष्म और प्रत्यक्ष मामाका वध करनेवाला कृष्णावतार।" यद्यपि स्थूलदृष्टिसे देखनेपर ये बातें धर्मविरुद्धसी मालूम होती हैं, परन्तु सूक्ष्मदृष्टिवाले लोग जानते हैं, कि इन सब बातोंमें धर्म एवं सत्याग्रह कूट कूट कर भरा है और उसीको पालन करनेके लिये इन महानुभावोंने कायिक और मानसिक कष्टोंको झेलनेकी क्षमता अनेक बार दिखलायी है।

जो लोग सत्यके अनुसरण करनेमें थोड़ेसे ऐहिक स्वार्थकी हानि देख कर पथभ्रष्ट होजाते हैं, उनको आठ वर्षके बालक प्रह्लादकी ओर दृष्टिपात करना चाहिये। यह "सत्याग्रह" का ही कारण था, कि दैत्यकुलमें जन्म लेकर भी भक्तशिरोमणि प्रह्लाद देव-वन्द्य हुआ। जिसके पवित्र हाथमें सत्यका खड्ग है, उसको भौतिक शस्त्र और अस्त्रवाले बड़ेसे बड़े शत्रुसे किञ्चित् भी न डरना चाहिये। विश्वके मूलमें रहकर जो चित्‌शक्ति जगत्‌का नियन्त्रण कर रही है, उसका घर सत्य ही है। यदि आपके अन्तःकरणमें सत्य है, तो

निश्चय ही वहाँ ब्रह्मका निवास है। ऐश्वर्यके अभेद्य दुर्गको दहा देनेवाली और वेल्जियमके मैदानसे पेरिस तक गोला फेंकनेवाली तोपोंका विकाश होगया है और आगे चलकर कदाचित् एकही गोलेसे दुनियाको भस्मसात् करनेवाली तोपका भी आविष्कार हो सकता है, परन्तु सत्यनिष्ठ चित्शक्तिको नष्ट करनेवाला कोई भी शस्त्र न आज तक बना है और न बन सकेगा। इस-लिये अनेक व्याधियोंको सहकर भी सत्यके पथपर डटे रहना यह उपदेश प्रह्लादचरित्र एव नृसिंहजयन्तीसे लेना चाहिये।

अधिकारमदसे उन्मत्त होकर अपने अनुचित लाभको पूर्ण करनेके लिये, जब कोई अन्यायी पुरुष किसी न्यायपरायण निर्बल मनुष्यको सताता है अथवा उनको दण्ड देता है, तब वह मनुष्य अपनी निर्बलताके कारण या तो उस अन्यायीके अन्यायको सहन करके सदैव दुःख भोगता रहता है, अथवा प्रतिकारकी बुद्धिसे किसी सबलकी सहायता लेकर, उसको पराजित करना चाहता है; परन्तु प्रह्लादने इन दोनों विधियोंको व्यर्थ बतलाकर "सत्याग्रह" के राजमार्गका अवलम्बन करना ही श्रेष्ठ बतलाया है। अन्यायको सहन करते रहनेसे उस सहिष्णु व्यक्तिका ही अपकार नहीं होता, किन्तु समस्त देशको परतन्त्र बनानेका पाप होता है और प्रतिकार करनेसे हिंसाका पाप लगता है; इस कारण अनेक कष्टोंको सहन करते हुए भी प्रह्लादने अपनी सत्य-परायणतासे मुख नहीं मोड़ा। आज संसारमें भक्तशिरोमणि प्रह्लादका भौतिक शरीर नहीं है, तथापि सत्याग्रहरूप दिव्यकाचमें अब भी उनकी भव्य-मूर्तिके दर्शन हो रहे हैं।

—:o:—

३—ज्येष्ठके त्योहारोंका विवरण।

ज्येष्ठमासमें गणेशचतुर्थी, ग्रीष्मप्रारंभोत्सव, वटसावित्री, गङ्गादशहरा और निर्जलाएकादशी—ये पाँच त्योहार ही आते हैं। इनमें भी वटसावित्री एवं गङ्गादशहरा ये दो त्योहार ही मौलिक हैं। अतः इस मासमें इन दोनोंका ही विशेष विवरण किया जायगा। यद्यपि इस मासमें निर्जलाएकादशी भी बड़े महत्त्वका व्रत है, परन्तु एकादशियोंमें देवशयनी और देवोत्थापिनी इन दो पर ही लिखा जायगा। कारण कि इन दोनोंका सम्बन्ध अनेक घट-नाओंसे है।

१—वटसावित्री व्रत।

—:*:—

शास्त्रीय स्वरूप।

इस वटसावित्री व्रतका विवरण व्रतराजमें इस प्रकारसे आया है:—

इयं च पूर्वविद्धा ग्राह्या।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम्।
चीर्णं व्रतं महाभक्त्या कथितं ते महाऽनघे! ॥

(पूर्णिमायान्तु दाक्षिणात्या एवा चरन्ति पाश्चात्यादयस्तु अमावस्यायामाचरन्ति। तथोक्तं निर्णयामृते भविष्ये च)

अमायां च तथा ज्येष्ठे वट-मूले महा-सति।
त्रि-रात्र्युपोषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ॥
ज्येष्ठे मासि त्रयोदश्यां दन्त-धावन-पूर्वकम्।
दन्त-काष्ठं समं शुभ्रं जातीयं चतुरङ्गुलम् ॥
तस्याऽपराह्णसमये नद्यादौ विमले जले।
तिलामलक-कल्केन केशान्संशोध्य यत्नतः ॥
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिंचेद् बहूदकैः।
वृद्धि-क्षये तथा रोगे ऋतुमत्यां तथैव च ॥
कारयेद् विप्र-हस्तेन सर्वं सम्पद्यते शुभम् ॥
"इदञ्च त्रयोदशीमारभ्य पौर्णिमान्तं कर्त्तव्यं अमान्तम्वा ॥"

"वट-सावित्रीको पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये। ज्येष्ठमासके सित-पक्षमें ही वटसावित्रीका व्रत करना यह दाक्षिणात्योंका पक्ष है, पाश्चात्य तो अमावस्यामें ही करते हैं; जैसा कि भविष्यपुराण और निर्णयामृतमें लिखा है। ज्येष्ठमासकी अमावस्याके पूर्व तीन दिन तक उपोषण करके स्त्री वटके मूलमें इस प्रकारसे पूजन करे,—"ज्येष्ठमासकी त्रयोदशीको प्रातःकाल स्वच्छ दाँतनोंसे दन्तधावन कर उसी दिन दोपहरके बाद नदी तथा तालाब आदिके विमल जलमें तिल और आमलेके कल्कसे केशोंको शुद्ध करके स्नान करे और जलसे वटके मूलका सेचन करे। प्रसूति, रोगिणी और ऋतुमती स्त्री ब्राह्मणके द्वारा भी समग्र व्रतको यथाविधि करानेसे उसी फलको प्राप्त होती है। यह व्रत त्रयोदशीसे पूर्णिमा अथवा अमावस्या तक करना चाहिये।"

भविष्य और स्कन्दपुराणमें व्रतविधि।

वटके समीपमें जाकर और जलका आचमन लेकर "मासानां ज्येष्ठ-मासे कृष्णपक्षे...वारे...तिथौ मम भर्तुः पुत्राणां चायुरारोग्य-प्राप्तये जन्मजन्मनि अवैधव्य-प्राप्तये च सावित्री-व्रतमहं करिष्ये"—अर्थात् ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष त्रयोदशी अमुक वारमें मेरे पुत्र और पतिकी आरोग्यताके लिये एवं जन्म-जन्मान्तरमें भी मैं विधवा न होऊँ, इसलिये सावित्रीका व्रत करती हूं। इस सङ्कल्पके बाद निम्नलिखित श्लोकोंसे प्रार्थना करे,—

वट-मूले स्थितो ब्रह्मा वट-मध्ये जनार्दनः।
वटाग्रे तु शिवो देवो सावित्री वट-संश्रिता॥
वट! सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।
सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्ध-पुष्पाक्षतैः शुभैः॥
नमो वटाय सावित्र्यै भ्रामयेच्च प्रदक्षिणम्।
सावित्रीञ्च वटं सम्यगेभिर्मन्त्रैः प्रपूजयेत्॥
एवं विधिं बहिः कृत्वा सम्यग्वैग्रहमागतः।
हरिद्राचन्दनेनैव गृहमध्ये लिखेद्वटम्॥

"वटके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें जनार्दन, अग्रभागमें शिव और समग्रमें सावित्री हैं। हे, वट! अमृतके समान जलसे मैं तुमको सींचती हूं। भक्ति-पूर्वक एक सूतके डोरेसे वटको बांधे और गन्ध, पुष्प तथा अक्षतोंसे पूजन करके वट एवं सावित्रीको नमस्कार कर प्रदक्षिणा करे; परन्तु पूजन स-मन्त्रक करना चाहिये। इस प्रकारसे वहां वटका पूजन करे और घरपर आकर हलदी तथा चन्दनसे घरकी भीतपर वटका वृक्ष लिखना चाहिये।" हस्त-लिखित वटकी सन्निधिमें बैठकर पूजन करे और उपर्युक्त-सङ्कल्प कह कर प्रार्थना करे। इसके अनन्तर वटके सामने यह नियम करे,—"तीन रात्रि तक मैं लंघन करके चौथे दिन चन्द्रमाको अर्घ्य देकर तथा सावित्रीका पूजन कर, यथाशक्ति मिष्ठान्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, पुनः भोजन करूंगी; अतः हे सावित्री! तू मेरे इस नियमको निर्विघ्न समाप्त करना।" इसके अनन्तर विशेष विधिसे पूजन करना हो, तो व्रतराज, धर्मसिन्धु और निर्णय-सिन्धुमें बतलायी पद्धतिसे करना चाहिये। वट तथा सावित्रीका पूजन करनेके बाद सिन्दूर, कुमकुम और ताम्बूल आदिसे प्रतिदिन सुवासिनी स्त्रीका भी पूजन करे। पूजाके समाप्त हो जानेपर व्रतकी साङ्गता-सिद्ध्यर्थ ब्राह्मणको

फल, वस्त्र और सौभाग्यप्रद द्रव्योंको बांसके पात्रमें रखकर दे और प्रार्थना करे—

उपायनमिदं द्रव्यं व्रत-सम्पूर्णहेतवे ।
वाणकं द्विज-वर्याय स-हिरण्यं ददाम्यहम् ॥

"यह स्वर्णयुक्त उपायन द्रव्य वटसावित्री व्रतकी समाप्तिके अर्थ ब्राह्मणको देती हूं ।"

स्कन्दपुराणकी कथा ।

सनत्कुमार ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं,—"हे, देव ! स्त्रियोंके वैधव्य-दुःखको नष्ट करनेवाले, सौभाग्यके देनेवाले और पुत्र पौत्रादिके देनेवाले वट-सावित्री व्रतको कृपाकर कहो ।" ईश्वर बोले, कि हे सनत्कुमार ! मद्र देशमें परम-धार्मिक, वेदवेदाङ्गका पारगामी और ज्ञानी एक अश्वपति नामक राजा था । समग्र वैभव होनेपर भी राजाको पुत्र नहीं था । इस कारण दम्पतीने पुत्रके देनेवाली सरस्वतीका जप किया । उस जप यज्ञके प्रभावसे स्वयं सरस्वतीने शरीरधारण कर राजा और रानीको दर्शन दिया । जब दम्पतीने साक्षात् सरस्वतीका दर्शन किया, तो प्रसन्न होकर राजा पृथ्वीपर गिर गया । उस समय सन्तुष्ट होकर सरस्वती बोली,—"राजन् ! वर मांगो ।" राजाने प्रार्थना की, कि आपकी कृपासे मुझको सब प्रकारका आनन्द है, केवल एक पुत्रकी ही कमी है । आशा है, कि अब वह पूर्ण हो जायगी । सावित्रीने कहा,—"राजन् ! तुम्हारे भाग्यमें पुत्र तो नहीं है, किन्तु दोनों कुलोंकी कीर्ति-पताकाको बढ़ानेवाली एक कन्या अवश्य होगी, परन्तु उसका नाम मेरे नामपर रखना ।" यह कहकर सावित्री तो अन्तर्धान होगई और इधर मद्राधिपति भी प्रसन्न होगया । कुछ कालके उपरान्त रानीके गर्भसे साक्षात् सावित्रीका जन्म हुआ और नाम भी उसका सावित्री ही रक्खा गया । राजा और रानीके देखते ही देखते वह कन्या अल्पकालमें ही युवती होगई । राजा उस अमानुषिक बाढ़को देखकर विचार करने लगा, कि यदि यह कन्या मानुषी होती, तो मैं अवश्य ही इसके लिये वर ढूंढता; परन्तु यह तो ठहरी, देवी ! मेरी सामर्थ्य नहीं, कि मैं इसके योग्य वर ढूंढ सकूं, यह विचार कर सावित्रीसे ही कहा,—"बेटी ! अब तुम विवाहके योग्य गोगई हो; अतः अपने योग्य वरको तुम स्वयं खोज करलो । मैं तुम्हारे साथ अपने वृद्ध सचिवको भेजता हूं ।"

जब सावित्री वृद्ध-सचिवके साथ वरके खोजनेको गई हुई थी, तब एकदिन मद्राधिपतिके स्थानपर अकस्मात् नारदजी आगये। नारदजीके आनेसे महाराजको बड़ा भारी आनन्द हुआ और वह अपने भाग्यकी सराहना करने लगा, इतनेमें ही वरको पसन्द करके कमलेक्षणा सावित्री भी आगई और नारदजीको देखकर प्रणाम करने लगी। कन्याको देखकर नारदजी कहने लगे,—"राजन्! सावित्रीके लिये अभीतक वर ढूंढा या नहीं?" राजा बोला, कि वरके लिये मैंने स्वयं सावित्रीको ही भेजा था और वह वरको पसन्द करके इसी समय आई है। तब तो नारदजीने सावित्रीसे ही पूछा,—"बेटी! तुमने किस वरको विवाहनेका निश्चय किया है?" हाथ जोड़कर अति नम्रतासे सावित्री बोली,—"द्युमत्सेनका राज्य रुक्मीने हरण करलिया है और वह अन्धा होकर रानीके सहित वनमें रहता है। उसके इकलौते पुत्र सत्यवान्‌को ही मैंने अपना पति स्वीकार किया है।" सावित्रीके वचनको सुनकर अश्वपतिसे नारदजी बोले,—"राजन्! आपकी कन्याने बड़ा परिश्रम किया है। सत्यवान् वास्तवमें बड़ा गुणवान् और धर्मात्मा है। वह स्वयं सत्य बोलने वाला है और उसके माता पिता भी सत्य ही बोलते हैं। इसी कारण उसका नाम सत्यवान् रक्खा गया है। सत्यवान्‌को घोड़े बहुत प्यारे हैं। यहाँतक कि वह मिट्टीके बने और चित्रलिखित घोड़ोंसे भी काम लेता है। इसीकारण सत्यवान्‌का दूसरा नाम चित्राश्व भी है। सत्यवान्, रूपवान्, धनवान्, गुणवान् और सब शास्त्रोंमें विशारद है। विशेष क्या कहूं, उसके तुल्य संसारमें दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। जिस प्रकार रत्नाकरमें रत्नोंका कोश है, उसी प्रकार सत्यवान्‌में सद्गुणोंका कोश है; परन्तु दुःखसे कहना पड़ता है, कि उसमें एक दोष भी बड़ा भारी है। अर्थात् वह एक वर्षकी समाप्तिपर मर जायगा।"

"सत्यवान् अल्पायु है" यह सुनते ही अश्वपतिके सब विचार बालूकी भीतकी तरह नष्ट होगये और सावित्रीसे कहा, कि बेटी! तुमको और वर ढूंढना चाहिये, क्षीणायुके साथ विवाह करना कदापि श्रेयस्कर नहीं। पिताके इस कथनको सुनकर सावित्री बोली,—

नान्यमिच्छाम्यहं तात! मनसाऽपि वरं प्रभो।
यो मया च वृतो भर्ता स मे नान्यो भविष्यति॥
विचिन्त्य मनसा पूर्वं वाचा पश्चात्समुच्चरेत्।
क्रियते च ततः पश्चात् शुभं हि यदि वाऽशुभम्॥

तस्मात्पुमांसं मनसा कथं चान्यं वृणोम्यहम् ॥
सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पंडिताः ।
सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत् ॥
पतिं मत्वा न मे बुद्धिर्विचलेच्च कथंचन ।
सगुणो निर्गुणो वापि मूर्खः पण्डित एव वा ॥
दीर्घायुरथ चाल्पायुः स वै भर्त्ता मम प्रभो !
नान्यं वृणोमि भर्त्तारं यदि वा स्याच्छचीपतिः ॥

"तात ! अब मैं शारीरिक सम्बन्धके लिये तो क्या, परन्तु मनसे भी अन्य पतिकी अभिलाषा नहीं करती। जिसको मैंने मनसे स्वीकार कर लिया है, मेरा पति वही होगा, अन्य नहीं। कोई भी संकल्प प्रथम मनमें आता है और फिर वाणीमें। वाणीके पश्चात् करना ही शेष रहता है। चाहे वह शुभ हो, या अशुभ। इसलिये अब मैं दूसरेको कैसे वरण कर सकती हूँ, यह आप ही कहें ? राजा एक बार ही कहता है, पंडितजन भी एक बार ही प्रतिज्ञा करते हैं जिसको आजीवन निवाहते हैं और "यह कन्या तुमको दी" यह भी एक बार ही कहा जाता है। अर्थात्—ये तीनों बातें एक बार ही कही जाती हैं। सगुण हो या निर्गुण, मूर्ख हो या पंडित जिसको मैंने एकवार भर्त्ता कह दिया, फिर मेरी बुद्धि विचलित न हो यही परमात्मासे प्रार्थना है। चाहे वह दीर्घायु हो, चाहे अल्पायु मेरा वही पति है। अब मैं अन्य पुरुषको तो क्या परन्तु तेंतीस कोटि देवोंके अधिपति इन्द्रको भी स्वीकार न करूँगी। सावित्रीके इस दृढ़ निश्चयको देखकर नारदजीने अश्वपतिसे कहा कि, अब तुमको सावित्रीका विवाह सत्यवान्‌के साथ ही कर देना चाहिये।

नारदजी अपने स्थानको चले गये और राजा अश्वपति विवाहके समस्त साहित्य और कन्याको साथ लेकर वृद्ध सचिवके सहित उसी वनमें गया, जहाँ राज्य-श्रीसे भ्रष्ट, अपनी रानी एवं राजकुमारके सहित एक वृक्षके तले राजा द्युमत्सेन निवास करते थे। सावित्रीके सहित अश्वपतिने महाराज द्युमत्सेनके चरणोंको छूकर अपना नाम बतलाया। द्युमत्सेनने आगमनका कारण पूछा, तो अश्वपति बोले, "मेरी पुत्री सावित्रीका विचार आपके पुत्र सत्यवान्‌के साथ पाणिग्रहण करनेका है और साथ ही मेरी भी सम्मति है। इस कारण विवाहोचित सकल साहित्यको लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ।" राजा द्युमत्सेन कुछ उदाससे होकर बोले,—"आप तो सम्प्रति राज्यासीन राजा

हैं और मैं राज्य-श्रीसे भ्रष्ट राजा हूँ। मैं तथा मेरी रानी दोनों अन्धे हैं, वनमें रहते हैं और सर्वथा निर्धन हैं। तुम्हारी कन्या वनके दुःखोंको न जानकर ही ऐसा कहती है।" अश्वपति बोले,—"नाथ! मेरी कन्या सावित्रीने ये सब बातें प्रथम ही विचार ली हैं और यह कहती है, कि जहां मेरे सास श्वशुर एवं पति-देव निवास करेंगे, वह स्थान चाहे और किसीके लिये वन हो परन्तु मेरे लिये तो वह वैकुंठ ही होगा।" इस प्रकारके दृढ़ प्रणको सुनकर द्युमत्सेनने भी उस सम्बन्धको स्वीकार कर लिया। यथाशास्त्र सावित्रीका विवाह करके महाराज अश्वपति तो अपनी राजधानीमें आगये और उधर सावित्रीने सत्यवान्को पति पाकर बड़ी भारी सेवा की, तथा दोनों परस्पर इन्द्र एवं इन्द्राणीकी तरह विहार करने लगे।

नारदजीने जो कहा था, सावित्री उससे बेखबर नहीं थी, किन्तु उनके कथनानुसार एक एक दिन गिन रही थी। जब पतिके मरणकालको समीप आते देखा, तो तीन दिन प्रथमसे उपोषण किया और तीसरे ही दिन पितृ-देवोंका पूजन किया। यही दिन नारदजीका बतलाया हुआ था। नित्यके अनुसार प्रातःकाल हाथमें कुठार और टोकरीको लेकर वनको जानेके लिये जब सत्यवान् तयार हो गया, तब हाथ जोड़कर सावित्रीने प्रार्थना की,—"भगवन्! आपकी सेवामें रहते रहते मुझको एक वर्ष हो गया; परन्तु मैंने इस समीप-वर्त्ती वनको कभी नहीं देखा। आज तो आपके साथ मैं भी अवश्य ही चलूँगी।" यह सुनकर सत्यवान् बोला,—"प्रिये! तुम जानती ही हो, कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। यदि मेरे साथ चलना है, तो वृद्ध माता पितासे आज्ञा ले आओ।" सावित्रीने अति नम्रभावसे सास एवं श्वशुरके पास जाकर आज्ञा ली और अपने पतिके साथ वनमें चली गई।

वनमें जाकर सत्यवान्ने प्रथम तो फलोंको तोड़ा और फिर लकड़ियोंको काटनेके लिये एक वृक्ष पर चढ़ा। वृक्षके ऊपर ही सत्यवान्के मस्तकमें वेदना हो गई, जिससे नीचे उतर कर और सावित्रीके पैरपर सिरको धरकर लेट गया। थोड़ी देरके बाद सावित्रीने देखा, कि पाशको हाथमें लेकर यमराज अनेक दूतोंके सहित खड़ा है। प्रथम तो यमराजने सावित्रीको ईश्वरीय नियम यथावत् कहकर सुनाया और फिर अंगुष्ठ-मात्र जीवको लेकर दक्षिणदिशाको प्रयाण किया। यमराजके पीछे पीछे जब सावित्री बहुत दूर वनमें आगई, तब यमराजने कहा,—"पतिपरायणे! जहाँ तक मनुष्य मनुष्यका साथ दे सकता है,

वहांतक तुमने अपने पतिका साथ दिया। अब मनुष्यके कर्त्तव्यसे आगेकी बात है; अतः तुमको पीछे लौट जाना चाहिये।" यह सुनकर सावित्री बोली,—

यत्र मे नीयते भर्त्ता स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं एष धर्मः सनातनः॥

"यमराज! जहाँ मेरा पति ले जाया जाय या स्वयं जाय, मुझको भी वहाँ पर ही जाना चाहिये यह सनातन धर्म है।" तपसे, गुरुवृत्तिसे, पति-स्नेहसे, व्रतसे और आपके अनुग्रहसे मेरी गतिको रोकनेवाला कोई नहीं है।

सावित्रीके धर्ममय उपदेशको श्रवणकर यमराज बहुत प्रसन्न होकर कहने लगे,—

निवर्त्त तुष्टोऽस्मि तवाऽनया गिरा स्वराक्षर-व्यंजन-हेतु-युक्तया।
वरं वृणीष्वेह विनास्य जीवितं ददामि ते सर्वमनिन्दिते वरम्॥

"हे सावित्री! स्वर, अक्षर और व्यंजन आदिसे ठीक तथा हेतु सहित तेरी इस वाणीसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। इस कारण तू ठहर और सत्यवान्के जीवनको छोड़कर चाहे, सो वर माँग ले। जो तू माँगेगी, वह दूँगा।" यमराजके वाक्योंको श्रवण कर सावित्रीने विचार किया,—संसारमें धर्म-परायण स्त्रीका यही कर्त्तव्य हो सकता है, कि प्रथम तो वह अपने श्वशुर-कुलका, फिर पिताके कुलका और तदुपरान्त अपना हित साधनेमें तत्पर हो—इसी परम तथ्यको दृष्टिमें रखकर सावित्रीने कहा,—

च्युत-स्वराज्याद्वन-वासमाश्रितो अलब्ध-चक्षुः श्वशुरो ममाश्रमे।
सलब्ध-चक्षुर्बलवान्भवेन्नृपस्तवप्रसादाज्ज्वलनार्क-संभव!॥

"यमराज! अपने राज्यसे भ्रष्ट होकर एवं दोनों आंखोंसे अन्धे होकर मेरे श्वशुर वनाश्रममें रहते हैं; अतः वे आपकी कृपासे सचक्षु हो जायँ—यह वरदान दें।" इसपर यमराज सावित्रीसे कहते हैं,—

ददामि ते सर्वमनिन्दिते वरं यथा त्वयोक्तं भविता च तत्तथा।
तवाध्वनोग्लानिमिवोपलक्ष्यये निवर्त्त गच्छस्व न ते श्रमो भवेत्॥

"अनिन्दिते! तुझको सब दिया जो तूने कहा है, वह उसी प्रकार होगा; परन्तु तुझको मार्गका जो कष्ट है, उससे मुझको ग्लानि होती है। अतः तू यहाँ ही ठहर, जिससे श्रम न हो।" यमराजके इस कृपापूर्ण आशयको समझ-कर सावित्री कहने लगी,—"भगवन्! जहां मेरे पति-देव जाते हों, वहां और

उनके साथ चलनेमें मुझको परिश्रम नहीं होता, प्रत्युत यही मेरा कर्त्तव्य है और तदुपरान्त आप धर्मराज एवं सज्जन हैं, अतः ऐसे सत्पुरुषोंका समागम भी थोड़े पुण्यका फल नहीं है। इसलिये मेरा चलना ही श्रेष्ठ है।" सावित्रीके धर्म तथा श्रद्धायुक्त वचनोंको सुनकर यमराजने फिर कहा,—"सावित्री! तेरे धार्मिक तथा न्याययुक्त वचनोंको सुनकर चित्तमें प्रसन्नता हुई है; इसलिये यदि तुम चाहो, तो एक और भी वरदान माँग सकती हो।" यह सुनकर सावित्री फिर कहती है—

हृतं पुरा मे श्वशुरस्य धीमतः स्वमेव राज्यं स लभेत पार्थिवः।
न च स्वधर्मं प्रजहीत मे गुरुर्द्वितीयमेवं वरयामि ते वरम्॥

"बुद्धिमान् द्युमत्सेन मेरे श्वशुरका राज्य हरण हो गया है, वह उनको मिल जाय और उनकी सदैव धर्ममें प्रीति रहे यही प्रार्थना है।" यमराज बोले, कि जो तुमने कहा है, वह अवश्य होगा; परन्तु अब तुम आगे न चलकर यहां ही ठहर जाओ। यह सुनकर सावित्रीने आर्त्तस्वरसे कहा,—प्राणीमात्रमें अद्रोह तथा मन, वाणी और कर्मसे सब पर अनुग्रह—यह सज्जनपुरुषोंका वेद-विहित धर्म है, फिर न मालूम आप अद्रोह और अनुग्रहको भूलकर मुझको क्यों पीछे लौटाते हो? यह मेरी समझसे सज्जनोंका धर्म नहीं है।

सावित्रीके इस पाण्डित्य-पूर्ण भाषणको सुनकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर यमराजने तीसरा वर देनेकी इच्छा प्रगट की। उस समय सावित्रीने पितृ कुलकी भलाईको लक्ष्यमें रखकर यह कहा,—

ममानपत्यः पृथिवीपतिः पिता भवेत्पितुः पुत्रशतं च औरसं।
कुलस्य सन्तानकरस्य तद्भवे तृतीयमेवं वरयामि ते वरम्॥

"धर्मराज! अनपत्य मेरे पिताको सौ पुत्र औरस मिलें, यही मेरी तीसरी कामना है।" यमराजने "तथास्तु" कहकर कहा, कि सावित्री! तुम जो इस कंटकाकीर्ण मार्गमें बहुत दूर तक आगई हो, इसका मुझको बहुत दुःख है; अतः पीछे लौट जाओ। सावित्रीने कहा,—नाथ! दूर और समीप ये दोनों बातें अपेक्षाकृत हैं। जहां मेरे पतिदेव हों, मेरा तो वहां ही घर है, फिर मैं दूर किससे हूं, यह मेरी समझमें नहीं आया। आप सन्त हैं। सन्त न कभी दुःखी होते हैं और न सुखी, वे तो अपने सत्यके बलसे सूर्य्यको जोतते हैं, तपोबलसे पृथ्वीको धारण करते हैं और शरीरको क्षणभंगुर समझकर सदैव सब प्राणियोंमें दया ही करते हैं आश्चर्य है, कि आप अपने धर्मको भूलकर मुझपर दया नहीं करते।" सावित्री-

की युक्ति प्रतियुक्तियोंने यमराजके अन्तःकरणमें एक अद्भुत-भाव उत्पन्न कर दिया और उसी भावसे भावित होकर यमराज फिर भी कहने लगे,—

यथा यथा भाषसि धर्म-संहितं मनोऽनुकूलं सुपदं महार्थवत्।
तथा तथा मे त्वयि भक्तिरुत्तमा वरं वृणीष्वाप्रतिमं पतिव्रते!॥

"पति व्रते! तुम ज्यों ज्यों मनोऽनुकूल, धर्मयुक्त, अच्छे पदोंसे अलंकृत और बड़े अर्थ देनेवाला भाषण करती हो; त्यों त्यों तुममें मेरी उत्तम प्रीति बढ़ती जाती है, अतः सत्यवान्‌के जीवनको छोड़कर एक और भी वरदान मांग सकती हो।"

श्वशुर-कुल और पितृ-कुलकी भलाई हो जानेपर अब अपनी ही भलाई शेष थी; परन्तु एक पति-परायणा स्त्रीको अपने पतिकी आयु-वृद्धिके अतिरिक्त और क्या मांगनेकी आवश्यकता है, सावित्री थोड़ी देर इस प्रकारकी उलझनमें उलझी रही। किन्तु दूसरे ही क्षणमें सावित्रीने अपने अन्तिम वरदानकी भूमिका इस प्रकारसे रची।

न कामये भर्तृ-विना कृतं सुखं न कामये भर्तृ-विना कृतां दिवम्।
न कामये भर्तृ-विना गतां श्रियं न भर्तृ-हीना व्यवसामि जीवितम्॥

अर्थात्—मुझको पतिके विना न तो सुखकी इच्छा है, न स्वर्ग-लोककी, न गतवैभवकी और न विना पतिके इस तुच्छ जीवनको ही रखना चाहती हूँ; तथापि आपकी आज्ञाका उल्लंघन दोष समझकर एक वरदान मांगती हूँ,—

ममात्मजं सत्यवतस्तथौरसं भवेदुभाभ्यामिह यत्कुलोद्भवम्।
शतं सुतानां बलिनां महात्मनामिमं चतुर्थं वरयामि ते वरम्॥

"सत्यवान्‌के वीर्य्यसे मुझमें बलवान् सौ पुत्र हों, परन्तु किसी वरदान आदिसे न होकर सत्यवान्‌के वीर्य्यसे औरस ही हों।" इस वरदानको देते हुए यमराजने सत्यवान्‌को अपनी पाशसे मुक्त करके सावित्रीसे कहा,—"सत्यवान्‌के वीर्य्यसे तुमको अवश्य ही सौ पुत्र होंगे और तुम दोनों चार सौ वर्षतक पृथिवी पर राज्य करके वैकुण्ठको जाओगे।"

इतना कहकर यमराज तो अदृश्य हो गये और जिस वटवृक्षके नीचे सत्यवान्‌का निस्तेज शरीर पड़ा था, उसमें जीवका सञ्चार होते ही सत्यवान् उठ कर बैठा। सावित्रीने समस्त वृत्तान्त कहा और दोनों वहांसे उठकर आश्रमको चल दिये। इधर सत्यवान्‌के वृद्ध माता-पिता पुत्र और पुत्रवधुके वियोगसे हाहाकार कर रहे थे, कि दैवयोगसे उन दोनोंकी आंखे खुल गई—

इतनेमें सत्यवान् और सावित्री भी पहुंच गये। समस्त देशमें सावित्रीके अनुपम व्रतकी बात फैल गई और राजधानीके लोगोंने महाराज द्युमत्सेनको ले जाकर राज्यसिंहासनपर बिठला दिया। राजा अश्वपतिको भी वरदानके अनुसार १०० पुत्रोंकी प्राप्ति हो गई। सावित्री और सत्यवान्ने शतपुत्र युक्त होकर चार सौ वर्ष तक राज्य किया और पुनः वैकुण्ठको चले गये। हे सनत्कुमार! इसी वटसावित्री-व्रतके कारण सत्यवान् फिर जीवित हो गया; इस लिये प्रत्येक स्त्रीको यह अवश्य करना चाहिये।

व्रत-विधि।

नियमित रीतिसे सालभर तक एक-भुक्त रहे और ज्येष्ठ वदी १३ से उपवास रखकर ज्येष्ठशुक्ला प्रतिपदाको उद्यापन करे। चौथे दिन चन्द्रमाको अर्घ देना, सुवासिनी तथा सावित्रीका गन्ध-पुष्प आदिसे पूजन करना और यथायोग्य जोड़ोंको भोजन कराना—इत्यादि कार्य्य करके पुनः स्वयं भी भोजन करे। जिन बारह महीनोंमें एक-भुक्त रहनेका विधान है, उनमें प्रतिदिन जलसे वटको सींचनेका भी विधान है।

इसके अतिरिक्त उन ही चार दिनोंमें करने योग्य और भी कार्य्य लिखे हैं,—"यथाशक्ति बांस तथा बालुकाके पात्र बनवाकर और उनमें सात प्रकारके धान्योंको भरकर एवं वस्त्रसे ढांपकर ब्राह्मणोंको देने चाहिये। एक पात्रपर ब्रह्माके सहित देवी सावित्रीकी और दूसरे पर सत्यवान्के सहित सावित्रीकी रजतमयी मूर्त्ति बनवाकर रक्खे। एक बांसकी टोकरी तथा चान्दीका कुल्हाड़ा भी रक्खे। सामयिक फलोंका दान करना, हलदीसे रंगे हुए कण्ठसूत्रोंको देकर सुवासिनी-पतिवाली-स्त्रियोंका पूजन करे और प्रतिदिन सावित्रीकी, सती स्त्रियोंकी एवं पुराणोंकी कथाको श्रवण करे।

चतुर्थ अर्थात् शुक्ल प्रतिप्रदाके दिन आचार्य्य तथा उनकी स्त्रीका पूजन करना चाहिये। सावित्रीने भी कहा है,—"जो स्त्री मेरे इस व्रतको करेगी, वह पतिके सहित सदैव आनन्द भोगेगी। इस मेरे व्रतमें गौरी, प्रमुग्धा, वृद्धा, अपुत्रा, सभर्तृका और सपुत्रा चाहे, जैसी स्त्री हो, सबका अधिकार है।" चौथे दिन जो उद्यापन किया जाता है, उसकी प्रायः संक्षेपसी विधि इसमें आगई है। यदि विस्तार सहित करनी हो, तो स्कन्दपुराण तथा व्रतराजमें देखनी चाहिये।

लौकिक–स्वरूप ।

इस व्रतका राजस्थानमें तो सामान्य प्रचार है, परन्तु हिन्दुस्तान यू० पी० के किसी किसी भागमें अधिकतासे पाया जाता है। महाराष्ट्र देशमें साधारणतया तो प्रायः सब लोगोंमें कुछ कुछ प्रचार है ही, परन्तु स्मार्त्त-सम्प्रदायके दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंमें विशेष है। वहां वट-सावित्रीके दिन स्त्रियाँ उपोषित रहकर वट-वृक्षकी (जिसके नीचे सावित्रीके पतिका पुनर्जन्म हुआ था) पूजा करती हैं। ब्राह्मणोंके अतिरिक्त अन्य वर्णोंकी स्त्रियोंमें भी कुछ कुछ प्रचार है। यह है भी ठीक; क्योंकि केवल ब्राह्मणोंकी ही स्त्रियाँ करें और वर्णोंकी न करें, ऐसा लेख मूलकथामें नहीं है।

बङ्गालदेशमें भी बटसावित्रीका पूजन होता है, परन्तु अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा प्रकारान्तरसे किया जाता है। अर्थात् उस दिन स्त्रियाँ वट और सावित्रीका पूजन न करके अपने पतिका ही पूजन करती हैं। पतिके शरीरमें उबटना लगाकर तैलाभ्यंग स्नान कराती हैं। नवीन वस्त्रोंको पहना कर गलेमें पुष्पोंका हार डालती हैं और हाथमें फूलोंके गुच्छा तथा तुर्रा देती हैं। पति-पूजाके अनन्तर यमराजकी भी पूजा करती हैं और उनको पुष्प, फल तथा वट-वृक्षकी डाली समर्पण करती हैं। यह व्रत वहाँ "सावित्री-व्रत" के नामसे प्रसिद्ध है। सारांश—वटसावित्री व्रतके कारण ही सावित्रीका नाम समस्त भारतमें बड़े प्रेमसे लिया जाता है।

यह सावित्रीका व्रत एक प्रकार कौटुम्बिक व्रत है। पति-देवकी आयुष्यडोरी अकालमें न टूट जाय, इसी कारण स्त्रियाँ मृत्यु-देवताका पूजन करती हैं। कहीं कहीं सावित्रीकी कथाका श्रवण भी किया जाता है। तात्पर्य्य यह है, कि सब देशोंकी स्त्रियाँ इस व्रतको बड़ी भारी श्रद्धासे करती हैं और वट-पत्रके दोने बनाकर उनमें ऋतु-फल तथा सौभाग्य-सूचक वस्तुओंको भर कर आसपासकी सौभाग्यवती स्त्रियोंको वायनकी तरहसे देती हैं। इसके सिवाय प्रत्येक घरोंमें स्त्रियाँ वटवृक्षकी डालीका भी पूजन करती हैं। छोटे छोटे ग्रामोंकी स्त्रियाँ किसी वटवृक्षके नीचे बैठकर पूजन करती हैं।

शिक्षा ।

एक ही धर्म एक व्रत-नियमा। काय-वचन-मन पतिपद प्रेमा॥

इस सावित्रीके इतिहास एवं व्रतसे नारी-समाजके अनेक विषयोंपर बड़ा भारी प्रकाश पड़ता है। आज कल हमारे समाजमें सगाई छोड़नेकी

भयङ्कर कुरीति बहुत बढ़ गयी है। प्रथम तो सगाई कर देते हैं और फिर बिना किसी विहित-कारणके क्षुद्र बातोंसे छोड़ देते हैं और अन्य वरके साथ कर देते हैं। लघुपाराशरीमें सगाई छोड़नेके कारणोंको बतलाकर यह स्पष्ट कर दिया है, कि इसके अतिरिक्त सगाईको छोड़ने वाला पापी होता है:—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतितेऽपतौ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

"बेपता हो जाय, मर जाय, संन्यासी हो जाय, नपुंसक निकल जाय और सदैवके लिये जातिसे पतित हो जाय इन पांचो अवस्थाओंमें ही सगाई छूट सकती है।" अकारण सगाई छुड़ानेवालोंको सावित्रीके इतिहास पर ध्यान देना चाहिये। सावित्रीने नारदजीसे यह सुनकर कि सत्यवान् एक वर्षमें मर जायगा और पिताके यह कह देनेपर कि बेटी! अन्य वरको वरना चाहिये, अपनी सत्य प्रतिज्ञासे मुँह नहीं मोड़ा; बल्कि संसारके समस्त सुखों-पर लात मारकर और स्वधर्मको ही भवसागरका कर्णधार जानकर एक छोटीसी सारगर्भित एवं ओजस्विनी वक्तृता दी है, कि जो अनादि काल तक संसारके स्त्री-समाजमें सावित्रीके अटल धर्मप्रेमका स्मरण कराती रहेगी। सावित्री अपने पितासे कहती है,—

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्श-गुणं त्यजेत्॥
विक्रमं वृत्रहा जह्याद् धर्मं जह्याच्च धर्म-राट्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन॥

"पृथिवी गन्धको, जल रसको, अग्नि रूपको, वायु स्पर्शको, वृत्रासुरका मारनेवाला इन्द्र अपने पराक्रमको और धर्मराज धर्मका छोड़ दे; परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूंगी। मैंने जिस मनसे सत्यवान्‌को स्वीकार किया है, यदि उसी मनसे अन्यको स्वीकार कर लूँ, तो निश्चय ही यह मनका व्यभि-चार होगा। इस कारण हे पिता! चाहे सत्यवान् अल्पायुषी है; परन्तु मेरे भाग्यकी डोरी तो अब सत्यवान्‌के साथ बँध गयी, जो कोटि उपाय करनेपर भी न खुलेगी।"

इस प्रकारके इतिहासोंसे हिन्दु-साहित्य ठसा ठस भरा पड़ा है। सम्वत् १७३४ में कृष्णगढ़-नरेश हरिसिंहजीकी कन्याको ब्याहनेके लिये जो वर आया था, वह दैवात् लग्नके दिन ही मर गया। जब यह वृत्तान्त

राजकुमारीको विदित हुआ, तो विना सप्त-पदीके ही उस कन्याने महलमें नारीयल उछाल दिया (नारीयल उछालनेका तात्पर्य्य यह है, कि मैं अपने वाग्दत्त पतिके साथ ही सती होऊँगी)। महाराजने एवं समस्त रनवासने कन्याको अनेक प्रकारके उपदेशों द्वारा समझाया, परन्तु किसीकी वात न मान कर वह देवी अपने मनःसंकल्पित पतिके साथ ही सुरपुरको सिधार गयी। उस दिनसे कृष्णगढ़में यह रिवाज ही होगया है, कि सगाईका नारीयल वरके मकानपर न भेज कर विवाहके समय कृष्णगढ़में ही दिया जाता है।

जानकीके विवाह सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी घटना लिखी है। जब बड़े बड़े योद्धाओंसे भी शिवका धनुष नहीं चढ़ा, तो सब नगरके लोगोंमें, सीताकी माताके मनमें और महाराज जनकको चित्तमें सन्नाटासा छा गया। कुछ सहचरियोंने सीताजीके पास जा कर कहा,—"सीते! दुःख है कि शिव-धनुषको कोई भी राजकुमार न उठा सका।" सखियोंकी बातको सुन कर जानकीजीने कहा है,—

बात कहूं सो सुनों सजनी...अब तातहु ते पन मोर महा है,
मैं वर-माल सुडार दई...मुख भाख चुकी अपनो दुलहा है।
सुन्दर-श्याम स्वरूप शिरोमणि...मो मनमें बस राम रहा है,
चाप निगोड़ो अभी जरि जाय...तने तो तने न तने तो कहा है॥

"मैं तो मनसे भगवान् रामचन्द्रजीको वर चुकी, अब चाहे धनुष तने चाहे न तने, मेरा सम्बन्ध तो हो चुका।" अकारण सगाई तोड़नेवालोंको सावित्री आदि साध्वियोंके चरित्रसे अवश्य ही शिक्षा लेनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त आजकलके वीमा पालिसी वालोंको भी सावित्रीके चरित्र-से शिक्षा लेनी चाहिये। वीमा पालसीवाले वे लोग हैं, जो विवाह करनेसे प्रथम कुछ रुपया वर वालोंसे वेङ्कमें इसलिये जमा करा देते हैं, कि दैवात् वर मर जाय, तो हमारी कन्याकी चैनमें किसी प्रकारकी न्यूनता न आजाय। इन लोगोंको सावित्रीके सदाचारसे शिक्षा लेनी चाहिये; कि जो यह जानकर भी अपने सत्य-व्रतसे न हटी, कि एक वर्षके उपरान्त मेरा भावी पति मर जायगा।

"विपत्ति कालमें पतिको सहायता देना" यह स्त्रीका परम धर्म है, परन्तु आज तो इसके विपरीत हो रहा है। दैवात् यदि पतिपर किसी प्रकारकी विपत्ति आ जाय, तो आज कलकी स्त्रियाँ उस बिचारे दैव-हतको और भी

दुःख देती हैं। विपत्तिमें किस प्रकारकी सहायता दी जाय इसको देवी सावित्रीने चरितार्थ कर दिया है। संसारमें मृत्युसे बढ़ कर और कौनसी विपत्ति होगी; परन्तु सावित्रीने ऐसी भयानक स्थितिमें भी पतिका कैसा अच्छा साथ दिया इसको वटसावित्री-व्रत करनेवाली ललनाओंको विचार अवश्य ही करना चाहिये। जो स्त्री इस ओर कुछ भी ध्यान न देकर केवल व्रतको ही करती हैं; उनको व्रतका पूरा फल नहीं होता।

बहुतसी स्त्रियाँ अपने पतिमें तो प्रेम करती हैं, परन्तु पतिके माता पितामें अनुराग न कर उलटी उनसे द्रोह करती हैं, यह उनकी मूर्खता ही नहीं, किन्तु महा पाप भी है। जो पतिके भी पूज्य हैं, उनमें पूज्य-भाव न रख कर प्रत्युत द्रोह करती हैं, वह त्रिकालमें भी पतिव्रता नहीं हो सकती। देवी सावित्रीने ऐसी स्त्रियोंको कैसा अच्छा उपदेश दिया है,—जब यमराजने वरदान मांगनेको कहा, तब सावित्रीने अपने या पतिके कल्याणार्थ वरदान न माँग कर अन्धे सास श्वशुरकी आँखोंके और नष्ट वैभवके मिल जानेका ही वरदान मांगा था। सावित्रीने भली भांति जान लिया था कि, संसारमें मेरा प्रथम कर्त्तव्य सास श्वशुरकी प्रसन्नता सम्पादन करना ही है। जिसने घरके देवोंको प्रसन्न न कर पाया वह बाहरके देवोंको क्या प्रसन्न कर सकती है?

बहुतसी स्त्रियाँ ऐसी भी होती हैं, कि कंगाल मातापिताके घरसे विदा होकर ऐश्वर्य्यशाली श्वशुरालमें गईं, कि वे माता पिताका स्मरण भी नहीं करतीं। वे जानती नहीं, कि पुरुषके सिरपर तो एक अपने ही कुलके उद्धारका भार है। परन्तु कन्यापर दोनों कुलोंके उद्धारका भार है। बेटी चाहे कैसी भी समर्थ हो जाय, परन्तु पितृकुलका स्मरण उसको अवश्य रखना चाहिये। इस बातको सावित्रीने क्या ही अच्छा निभाया है—जब यमराजने तीसरा वरदान देनेको कहा, तो सावित्रीने अपने पिताके लिये सौ पुत्रोंका वरदान माँगा।

इसके अतिरिक्त सावित्री व्रतके दिन वटवृक्षकी पूजा करनेके लिये एकत्र होनेवाली स्त्रियोंको पूजासे प्रथम अपने मनमें यह सोचना चाहिये,—"गतवर्षमें हमारे द्वारा पतिको कितना सुख मिला और हमने पतिकी आज्ञा मान कर कितना श्रम किया। किसी प्रकार कुटुम्बमें कोई बीमारी या सङ्कट उपस्थित होनेपर पति अथवा दूसरे बड़े पुरुषोंको धीरज देकर उनके संकटमें कमी करनेका कितना उद्योग किया।" यदि इन बातोंको न किया हो, तो पश्चात्ताप करके आगेको प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

२—गङ्गा-दशहरा।

शास्त्रीय स्वरूप।

ज्येष्ठशुक्ला १० के व्रतका विधान स्कन्दपुराणसे और गङ्गाप्रागट्यकी कथा श्रीमद्वाल्मीकीरामायणके बालकाण्डसे लिखी जाती है।

जेष्ठस्य शुक्ला दशमी सम्वत्सर-मुखा स्मृता।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानंचैव विशेषतः॥
यां काश्चित्सरितां प्राप्य प्रदद्याच्च तिलोदकम्।
मुच्यते दशभिः पापैर्विष्णुलोकं स गच्छति॥
ज्येष्ठ-शुक्ल दशम्यान्तु भवेत्सौम्यदिनं यदि।
ज्ञेया हस्तर्क्षसंयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥
दशमी शुक्लपक्षेतु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि॥
अवतीर्णा यतः स्वर्गात् हस्तर्क्षे च सरिद्वरा।
हरते दश-पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥

अर्थात्—ज्येष्ठशुक्लादशमी यह सम्वत्सरका मुख है। इसमें स्नान और विशेष करके दान करना चाहिये। या तो गङ्गामें अथवा किसी अन्य नदीमें तिलोदक देनेका विधान है, जिससे मनुष्य दश महा पापोंसे निवृत्त हो कर विष्णुलोकको जाता है। ज्येष्ठशुक्ला १० को यदि सौम्यवासर हो और हस्त-नक्षत्र हो तो वह तिथि सब पापोंको हरण करनेवाली होती है। ज्येष्ठमासकी शुक्ला १० को बुधवारके दिन हस्तनक्षत्रमें गङ्गाजी भू-तलपर अवतीर्ण हुई हैं इसकारण यह शुभदिन माना गया है। गङ्गास्नान दश पापोंको हरण करता है, इसकारण इसको दशहरा कहा गया है।

ज्येठ दशहराके दिन गंगामें स्नान करे और निम्नलिखित स्तोत्रका पाठ करे।

चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च सर्वावयवशोभिताम्।
रत्नकुंभसितांभोज वरदाभयसत्कराम्॥
श्वेतवस्त्र-परीधानां मुक्तामणिविभूषिताम्।
एवं ध्यायेत्सुसौम्यांश्च चन्द्रायुतसमप्रभाम्॥
चामरैर्वीज्यमानाञ्च श्वेतच्छत्रोपशोभिताम्।
सुप्रसन्नाञ्च वरदां करुणार्द्रां निरन्तराम्॥

सुधाप्लावित भूपृष्ठां दिव्यगन्धानुलेपनाम् ।
त्रैलोक्यनिर्मितां गङ्गां सर्वदेवैरधिष्ठिताम् ॥
दिव्यरत्नविभूषाञ्च दिव्यमालानुलेपनाम् ।

आगमोक्त पंचोपचार पुष्पाञ्जलि श्रीगंगाजीके निमित्त देकर यह मन्त्र बोले,—

"ओम् नमो भगवति हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा"

तदनन्तर पुष्प, धूप, गुग्गल और घृतका दीप अर्पण करे और ज्येष्ठ-शुक्ला प्रतिपदासे दशमी तक नित्य स्नान करके इस स्तोत्रका पाठ करे ।

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः ।
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः ॥
नमस्ते ब्रह्मरूपिण्यै शाङ्कायै ते नमो नमः ।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्त्तये ॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।
स्थाणुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोस्तु ते ॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते ।
तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः ॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्त्तये ।
सर्वसंसिद्धकारिण्यै नमः पापारिमूर्त्तये ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः ।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते ॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः ।
नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः ॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ।
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः ॥
नमस्ते विश्वमुख्यायै नमो देव्यै नमो नमः ।
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमो नमः ॥
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ।
पृथिव्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः ॥
परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः ।
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमो नमः ॥

शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः।
उग्रायै सुखजग्ध्यै च संजीविन्यै नमोऽस्तु ते॥
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः।
प्रणतार्त्तिप्रभंजिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः।
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे॥
सर्वस्यार्त्ति हरे देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते।
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः॥
परापरपरायै च गङ्गे! निर्वाणदायिनी।
गङ्गे मामग्रतो भूयाद् गङ्गे मे देवि! पृष्ठतः॥
गङ्गे मे पार्श्वयोर्देवि! त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः।
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्ग ते शिवे॥
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥

इससे आगे इसी स्तोत्रका महात्म्य बतलाया गया है,—"जो मनुष्य इसको पढ़ता है, या श्रवण करता है, उसको गङ्गा-स्नानके समान ही फलकी प्राप्ति होती है। जिसको रोग हो, वह रोगसे मुक्त होता है और मोक्षाभिलाषीको मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है तथा दश महा पातकोंकी निवृत्ति हो जाती है। शास्त्रोंने जो विधि गौरीपूजाकी बतलाई है, वही गंगा पूजनकी भी है; क्योंकि गङ्गा और गौरी इनमें तथा लक्ष्मीमें केवल औपाधिक भेद है, वास्तवमें ये तीनों एक ही हैं। जिस प्रकार शिव और विष्णुमें अभेद है, उसी प्रकार गंगा और गौरीमें भी अभेद है।" इसी प्रकरणको शास्त्रकारोंने भी लिखा है:-

गंगा गौर्योरन्तरञ्च यो ब्रूते स च मूढ़धीः।
रौरवादिषु घोरेषु नरकेषु पतत्यधः॥

"गंगा और गौरी इन दोनोंमें जो मूर्ख अन्तर बतलाता है, वह घोर रौरव नरकमें गिरता है।"

यद्यपि गंगादशहराके व्रतकी सम्पूर्ण व्यवस्था समाप्त हो चुकी इसमें गंगाके आनेकी अपेक्षा प्रतीति नहीं होती तथापि प्रसंग वश उसका यहाँ लिखा जाना परमावश्यक है; इसलिये वाल्मीकीय रामायणसे लिखी जाती है।

पृथ्वीपर श्रीगङ्गाका पधारना।

अयोध्याके महाराज सगरकी दो रानियां थीं,—(१) केशिनी और (२) सुमति। केशिनीका असमञ्जस नामक एक पुत्र और अंशुमान नामक एक पौत्र था तथा सुमतिके साठ हज़ार पुत्र थे। ये साठ हज़ार पुत्र राजा सगरके यज्ञीय घोड़ेको ढूंढनेके लिये गये और कपिलदेवजीकी क्रोधाग्निमें भस्म होगये। जब अंशुमान कपिलदेवजीके आश्रमपर गया, तब महात्मा गरुड़जीने कहा,—"अंशुमान! तुम्हारे साठहजार काका जो अपने पापाचरणके ही कारण भस्म होगये हैं। यदि इनकी मुक्ति चाहते हो, तो यहाँपर गङ्गाको लाओ। क्योंकि ये सब अप्रमेय कपिलकोपसे भस्म हुए हैं; इसलिये इनको लौकिक जल न दीजिये, किन्तु हिमवान् पर्वतकी बड़ी कन्या गङ्गाके जलसे ही इनकी जलक्रिया करनी चाहिये। यह भी न हो, कि आप ब्रह्मलोकमें ही जाकर तर्पण कर आवें, किन्तु गङ्गाको ही यहाँ लाइये, जिससे इनकी मोक्षके साथ साथ लोककल्याण भी हो। इस समय तो घोड़ेको लेजाकर पितामहके यज्ञको समाप्त करो, तदनन्तर गंगा लानेका प्रयत्न करना।" अंशुमान घोड़ेको लेकर यज्ञस्थानमें आगया और सगर महाराजको समस्त वृत्तान्त सुना दिया। वेदविधिसे यज्ञको समाप्त कर और तैंतीसहजार वर्ष तक राज्य कर महाराज सगर वैकुण्ठको पधार गये।

महाराजके मर जानेपर मन्त्रियोंने उचित जान राज्यसिंहासनपर अंशुमानको अभिषिक्त किया। राज्यको प्राप्त कर अंशुमानने अच्छा यश कमाया और ईश्वरकृपासे इनका पुत्र दिलीप भी बड़ा प्रतापी हुआ। राजा अंशुमान दिलीपको राज्य देकर गङ्गाको लानेके लिये हिमालयपर्वतके कङ्गूरा पर दारुण तपस्या करने लगा और गंगाको लानेके लिये बत्तीसहजार वर्ष तक तपस्या करके अन्तमें स्वर्गतिको प्राप्त होगया; परन्तु गंगाको न लासका। राजा दिलीपने भी बत्तीसहजार वर्ष राज करके अनेक अश्वमेध यज्ञ किये और गंगाको लानेके लिये भी बड़ा भारी प्रयत्न किया, परन्तु पिताके समान वह भी विफल-मनोरथ हो रहा। अन्तमें परम प्रतापी भागीरथको राज्य देकर सुरपुरको प्रयाण करगया।

महाराज भागीरथ बड़ा धार्मिक राजा था। वह चाहता था, कि एक सन्तान हो जाय तो मैं गङ्गा लानेका यत्न करूँ, परन्तु जब कोई सन्तान न होती दीखी, तो मन्त्रियोंको राज सौंप कर गंगा लानेके लिये गोकर्ण तीर्थमें तपस्या

करने लगा। इन्द्रियोंको जीत कर पञ्चाग्नि तापसे तापना, ऊर्ध्ववाहु रहना और मासमें एक वार आहार करना इस प्रकारकी घोरतपस्या करते करते जव हजारों वर्ष वीत गये, तव सव देवताओंको साथ ले कर प्रजाओंके स्वामी ब्रह्माजी भगीरथके पास आकर वोले,—राजन्! तुमने अभूतपूर्व परिश्रम किया है, इसलिये मैं प्रसन्न हो कर तुमको वर दान देने आया हूँ। इच्छानुकूल वर मांग सकते हो।" राजा भागीरथ हाथ जोड़ कर वोला,—"नाथ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो महाराज सगरके साठहजार पुत्रोंके उद्धारके लिये गंगाजीको दीजिये क्योंकि विना गंगाके इनकी मुक्ति होना कठिन है। इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकुवंशियोंमें आजतक कोई भी राजा अपुत्रक नहीं रहा, इसलिये मुझको एक सन्तानका भी वरदान दीजिये।" राजाकी इस विनयको सुनकर ब्रह्माजीने कहा, कि राजन्! तुम्हारे कुलको प्रकाशित करनेवाला एक पुत्र अवश्य होगा और सगरात्माजोंको मुक्ति प्रदान करनेवाली गंगा भी निःसन्देह पृथ्वीपर आयगी, परन्तु महादेवके अतिरिक्त यहाँपर वेगवती गंगाको धारण करनेकी शक्ति किसी औरमें नहीं है; इसलिये तुम गंगाधरको प्रसन्न करो। इतना कह कर देवोंके सहित ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको चले गये और जाते समय गंगाको आज्ञा कर गये, कि सगरात्मजोंकी मुक्तिके निमित्त तुमको भूलोकमें जाना होगा।

इधर राजा भागीरथभी पैरके एक अँगूठेपर खड़ा होकर महादेवका आराधन करने लगा। एक वर्ष व्यतीत होजानेपर महादेवजीने वरदान दिया, कि मैं अवश्य ही गङ्गाको सिर पर धारण करूँगा। ब्रह्मलोकसे ज्यों ही गंगाकी धारा भूतलपर आई, कि महादेवकी जटाओंमें विलीन हो गई (पुराणान्तरका मत है, कि राजा वलिके यहां जव भगवान्‌ने अपने वढ़े हुए चरणोंसे तीनो लोकोंको नापा, उस समय ब्रह्माजीने भगवान्‌के चरणका चरणोदक अपने कमण्डलुमें भर लिया। उसीका नाम गंगा था; इसीलिये गंगाको विष्णुपादोद्भवा कहते हैं।) आते समय गंगाने अहंकार करके मनमें विचार किया, कि मैं महादेवकी जटाओंको भेदन करके पातालमें चली जाऊँगी, इससे महादेव जीने अपने जटाजूटको ऐसा विस्तृत किया, कि कितने ही वर्ष वीत जानेपर भी गंगाको वाहर निकलनेका मार्ग न मिला। महाराज भागीरथने जव फिर आराधना की, तव प्रसन्न होकर महादेवजीने हिमालयमें ब्रह्माके वनाये हुए "विन्दु-सर" तालावमें गंगाको छोड़ दिया। उस समय गङ्गाकी सात धारा होगई। उनमेंसे ह्रादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएँ तो विन्दु-सरसे

पूर्व-दिशाको वहीं और सुचक्षु, सीता तथा सिन्धु ये तीन महानदियाँ पश्चिम दिशाको वहीं। सातवीं धारा राजा भागीरथके पीछे पीछे चली। महाराज भागीरथ दिव्य रथपर चढ़कर आगे आगे चलते थे और गङ्गा उनके पीछे पीछे जाती थी। (पुराणान्तरमें यह भी लिखा है, कि श्रीगङ्गाजीने राजा भागीरथसे कहा, कि तुम रथपर बैठकर जिस ओरको चलोगे, मैं तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगी। इसपर भागीरथीने विचार किया कि यह कार्य सामान्य रथका तो है नहीं, कि मैं बड़े बड़े पर्वतों और नदियोंको उलंघन कर सकूँ। इसके लिये सूर्य्यके रथकी आवश्यकता है। अतः सूर्य्यसे रथ मांगकर और उसमें बैठकर भागीरथीजी जहाँ गये, वहाँ होकर ही गंगाकी धारा गई। यह सूर्य्यका रथ एक प्रकारका वायुयान ही था। इस प्रकारसे जब गंगा पृथिवीपर आई, तो बड़ा भारी कोलाहल हुआ। गंगाजी जहां जहाँ जाती थीं, वहाँ वहाँकी पृथिवी अपूर्व शोभावाली बन जाती थी। कहीं नीची, कहीं ऊँची और कहीं समतल भूमिपर बहनेके कारण गंगाकी अपूर्व शोभा होती थी। उस अलौकिक शोभाको देखनेके लिये विमानोंपर बैठकर देवता भी आते थे। जहाँ जहाँ होकर गंगाका प्रवाह चलता था, वहाँ वहाँ पापी लोग आकर और स्नान करके मोक्षको प्राप्त करते थे। आगे भागीरथ और पीछे गंगा तथा उनके पीछे देवता, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, सर्प और अप्सरा आदि चले जाते थे। महाराज जन्हु मार्गमें तपस्या कर रहे थे, जब गंगा उनके पाससे होकर निकली, तो उन्होंने पान करली। देवता, गन्धर्व और ऋषि लोग यह देखकर महाराज जन्हुकी प्रशंसा करने लगे और कहा,—"कि भगवन्! आजसे गंगा तुम्हारी कन्या कहलायगी। कृपया अब इसको अन्य जीवोंके कल्याणार्थ छोड़ दो!" जन्हुने गंगाको अपने कर्ण-विवर द्वारा निकाल दिया; तबसे गंगाका नाम जान्हवी हो गया। गंगा इस प्रकारसे अनेक स्थानोंको पवित्र करती हुई, उस स्थान पर पहुंची जहाँ सगरके साठ हजार पुत्रोंके भस्मका ढेर था। गंगाके पहुंचते ही वे सब मुक्तिको प्राप्त होगये और उसी समय स्वर्गलोकके अधिपति ब्रह्माजी भी वहां प्रकट हो गये। ब्रह्माजी अति प्रसन्न होकर भागीरथजीसे कहने लगे,—"राजन्! तुमने यह कार्य अपूर्व किया है। इससे तुम्हारा नाम अमर होगया और गंगाका एक नाम 'भागीरथी' होगा, जो सदैव तुम्हारा स्मरण कराता रहेगा। सगरके साठ हजार पुत्रोंका उद्धार होगया, अब तुम मकान पर जाकर धर्मसे प्रजाका पालन करो।"—यह कह कर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकको

तथा भागीरथ अपने राज्यको चले गये और अनेक वर्षों तक प्रजाका पालन किया।

लौकिक स्वरूप।

गंगा दशहरा अथवा गङ्गोत्सव कृष्णा, वेणी, गोदावरी, यमुना, नर्मदा और गंगाके समीपवर्त्ति ग्रामोंमें अधिक समारोहसे होता है। काशी, हरिद्वार, नासिक, वाई, प्रयाग और मथुरा आदि नगरोंमें भी बड़े ठाटसे होता है। कहीं कहीं श्रीगङ्गाके मन्दिर भी हैं और उनमें गङ्गाकी प्रतिमा भी हैं, जिनकी पूजा विधिवत् की जाती है। उत्तर हिन्दुस्तानमें गङ्गाको गंगा या गंगामाता कहते हैं। गङ्गोत्सवके दिन दान, कथा, कीर्त्तन और ब्राह्मण भोजन भी होता है। गङ्गा-स्नानका माहात्म्य सनातन धर्ममें दश पातकोंकी निवृतिके लिये माना गया है, जिससे पुनर्जन्मका भय नहीं रहता और यही कारण है, कि गंगा दशहराके दिन गङ्गाके प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों पर अनेक मेला होते हैं। इसी प्रकारकी एक बहुत बड़ी यात्रा मकरकी संक्रान्तिको हुगली और गंगाके समागम पर भरती है, जिसको गंगा-सागर कहते हैं। हिन्दुओंमें धर्मश्रद्धा कैसी होती है यह इन यात्राओंसे ही स्पष्ट हो जाता है। यही कारण है, कि योरुपका प्रचण्ड नास्तिकवाद आज तक भी हिन्दुओंको अपनी ओर नहीं खींच सका है। बेङ्गाल, उडीसा, दक्षिण, नैपाल, पंजाब और उत्तर हिन्दुस्तानके एक लक्ष यात्री गङ्गासागरकी यात्रामें एकत्र होते हैं और आसपासके अनेक व्यापारी भी वहाँ आते हैं। यह मेला तीन दिन तक रहता है और असंख्य यात्री उस समय गंगाको फल तथा रत्न भेट करते हैं। बहुतसे लोग सन्तानके अभावमें मान्यता करते हैं,—"यदि पुत्र हो जायगा, तो हम इतना धर्म करेंगे।" उनकी यह मान्यता गंगाकी कृपासे सफल भी होती है। बहुतसे लोग इस अवसर पर मुण्डन कराकर पितरोंको पिण्ड दान भी देते हैं। इसी गङ्गासागर पर भगवान् कपिलदेवजीका मन्दिर भी है, जिससे जाना जाता है, कि यह वही स्थान है जहाँ सगरके साठ हजार पुत्र भस्म हुए थे। परन्तु बहुत लोगोंका मत है, कि वह स्थान कासगंजके पास सोरोंमें है, अस्तु। कपिलदेवजीके मन्दिरकी व्यवस्था इस तरह है,— "कार्त्तिकके मेलेमें वैष्णव महन्त प्रबन्धकर्त्ता होते हैं और माघ मेलेके प्रबन्धकर्त्ता शैव महन्त होते हैं तथा माघके मेलेकी सब आमदनी पाँच रामानन्दी मठोंको मिलती है।" देवालयके सामने राम, हनुमान् और कपिलदेवकी चार ८।८ हाथ ऊँची मूर्त्ति हैं और देवालयके पीछे "सीताकुण्ड" नामक तलाव है।

उसका पानी मीठा है और बारह मास रहता है, लोग चरणामृतकी भाँति पान करते हैं तथा थोड़ीसी दक्षिणा भी महन्तको देते हैं।

वारुणी नामक स्नानयात्राका उत्सव चैत्र वदी १३ को उत्तर देशमें होता है। शतभिषा और शुभन्युज्—इन नक्षत्रोंका योग यदि किसी समय हो, तो वह महावारुणी होता है। ऐसे अवसर पर दश लक्ष ग्रहणोंके समान गंगास्नान का फल होता है और श्राद्ध करनेसे पितरोंका उद्धार होता है। बंगाल और उडीसा प्रान्तके हजारों मनुष्य इस योगके समय चिनसुरासे दो कोस दूर पर त्रिवेणी संगम है, जिसको छोटा प्रयाग भी कहते हैं—वहाँ जाते हैं। यहां दश-हरेके दिन बड़ी भारी यात्रा भरती है और हस्त नक्षत्रके योगमें भी भरती है। कितने ही भावुक लोग संगमके किनारेपर फूलोंकी बहुत लम्बी माला बाँधकर अपने अन्तःकरणकी भक्तिको प्रकट करते हैं। इस प्रकारकी यात्रा संयुतप्रान्तमें भगवती गङ्गापर गढ़मुक्तेश्वरमें भी होती है तथा राजस्थानके मुख्य नगर अज-मेरके पास पुष्कर क्षेत्रमें भी होती है। ऐसी यात्राएँ गुर्जर देशके भी अनेक स्थानोंपर होती हैं, परन्तु भगवान् कपिलकी जन्मभूमि "सिद्धपुर पाटन" में अधिक समारोहसे होती है। काठियावारके मुख्य तीर्थ "द्वारका" में भी होती है।

उडीसा प्रान्तकी जगदीशपुरीमें ज्येष्ट पौर्णिमाको प्रचण्ड स्नानयात्रा होती है और उसी समय वहाँपर बड़ा भारी रथोत्सव होता है। सम्पूर्ण भारतसे प्रायः दो डेढ़ लाख मनुष्य इस रथोत्सवके समयपर आते हैं, उस समय सब यात्रियोंके मुखसे निकली हुई "जय जगन्नाथ"की ध्वनिसे आकाश गूँज उठता है। इस रथोत्सवमें जगदीशके दर्शन करनेका लाभ एक पंडितसे लगा-कर एक चाण्डाल तकको भी मिलता है। इसी कारण जगदीशमें बड़े बड़े पण्डितोंके अतिरिक्त शूद्र तथा अन्त्यज भी अत्यन्त प्रेमसे जाते हैं। साम्प्रदा-यिक आचार्य और सनातन धर्मके उपासना काण्डकी यह बड़ी उदारता है, कि वहाँ भक्तिमें सबका समान अधिकार है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है:—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुष्कसः आभीरकङ्कायवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयात् शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभुविष्णवे नमः॥

"हे, प्रभो! किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुष्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि तथा और भी अनेक पापी जो आपकी शरणमें आते हैं, आप सबको शुद्ध करते हैं, अतः आपको नमस्कार है।" साराँश—भक्तिमें जाति

पाँतिका विचार नहीं है। जगदीशके पुजारी इस रथोत्सवके समय प्रथम तो जगन्नाथजीकी मूर्त्तिको सुगन्धित तैल लगाते हैं और फिर स्नान कराकर तथा दिव्य पोशाक पहनाकर विशाल रथपर विठलाते हैं। इस यात्राका नाम कदाचित् इसी कारणसे स्नानयात्रा है। वहाँ लाखों यात्री भी इस अवसरपर स्नान करते हैं। हरिद्वारमें भी कुम्भका मेला माघ मासमें भरता है। "गोसहस्री" नामक स्नानयात्रा आशाढ़ वदी अमावसको बङ्गालमें भरती है, उस समय गङ्गास्नानका पुण्य एक सहस्र गौओंके दानके पुण्यसे भी अधिक होता है।

इसके अतिरिक्त लाखों यात्री सप्तर्षियोग, कपिलाषष्ठियोग और सिंहस्थपर्व आदि अवसरोंपर अनेक तीर्थ और क्षेत्रोंमें स्नान करनेको जाते हैं। इन सब स्नानयात्राओंका मूल गङ्गादशहरा ही है। गङ्गाजीको सुरसरिता या देवनदी भी कहते हैं और उसकी तीन धारा होनेसे त्रिपथगामिनी भी कही जाती है। उत्तर हिन्दुस्तानमें गङ्गामाई कहते हैं और गङ्गाकी शपथ भी खाते हैं। जो चमत्कार हरिद्वार, प्रयाग और काशी इन तीनों स्थानोंमें है, वह गङ्गामूलक ही है। अनेक सङ्कटोंको सहन कर जो लोग बद्रीनाथ, केदार और गङ्गोत्तरीकी यात्राको जाते हैं, वे गङ्गाकी शुद्धभक्तिके कारण ही जाते हैं। सब नदियाँ मुख्य मुख्य देवताओंके अंशोंसे बनी हैं ऐसी पुराणकी कथा है,—"एक बार ब्रह्मदेवसे लगा कर सब देवताओंने किसी शुभकार्यके प्रारंभमें सावित्रीका अपमान किया। सावित्रीने "तुम सब देवता नदी हो जाओ"—यह शाप दे दिया। जिसके कारण विष्णुसे कृष्णानदी, महादेवसे महानदी, ब्रह्मासे ब्रह्मपुत्रा और सब देवताओंसे अनेक नदियाँ बन गईं।"

इसके अतिरिक्त काशीविश्वनाथके दर्शन कर तथा वहाँके गङ्गाजलसे भरा हुआ लोटा लेकर हिन्दुस्तानके दक्षिण किनारेपर रामेश्वरमें भक्तिपुरःसर चढ़ानेवाले और वहाँसे सेतुबन्धके पासकी वालुका लेकर १५०० माईलकी दूरीपर गङ्गामें डालने वाले भक्त लोग भी वर्त्तमानकालमें देखे जाते हैं। आज भी सब लोग गङ्गाके दर्शनोंको पुण्यकारक मानते हैं और धनिक लोग अन्न तथा शर्करा आदि पदार्थ गङ्गामें डलवाते हैं एवं अपनी भक्ति प्रकट करते हैं। कितने ही धनिक लोग तो शतावधि माईलकी दूरी होनेपर भी पीनेके लिये हरिद्वारसे ही गङ्गाजल मंगाते हैं और निर्धन लोग कमसे कम मरते समय तो अवश्य ही एकाध बिन्दुका पान करते हैं। मरनेके बाद साधारण लोग केवल नख दन्त आदिकी हड्डियोंको और धनिक लोग हड्डियाँ तथा भस्मको गङ्गामें

डालते हैं। पञ्चाङ्गवालोंने कुछ दिन पूर्व ऐसी प्रसिद्धि कर दी थी, कि कलियुगके पांच हजार वर्ष बीत जानेपर गङ्गा भूतलसे चली जायँगी, परन्तु जब विद्वन्मण्डलीने शास्त्रोंमें अन्वेषण करके पता लगाया, तो विदित हुआ कि, श्रीगङ्गाजी यावच्चन्द्रदिवाकर भूतलमें विराजेंगी।

शिक्षा।

गंगादशहरेके शास्त्रीयस्वरूपमें यही बतलाया गया है, कि गङ्गाकी अलौकिक शक्तिको जानकर और गंगाको मोक्षदा पहचान कर उसमें भक्ति करना ही मनुष्योंका कर्त्तव्य है, परन्तु इसके लिये श्रद्धा और विश्वासकी आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने रामायणके मङ्गलाचरणमें लिखा है,—"भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।" और वेदोंने भी कहा है,—"श्रद्धावित्तो भव।" इसलिये सबसे प्रथम हमको श्रद्धालु होनेकी आवश्यकता है। श्रद्धासे गंगास्नान किया जाय और गङ्गामाहात्म्यप्रतिपादक शास्त्रोंमें पूर्णविश्वास हो, तो निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है। अति प्राचीन कालसे इस विषयमें एक किम्वदन्ती प्रसिद्ध है, उसको मनोरञ्जनार्थ यहाँ पर लिखा जाता है।

गङ्गातटपर पार्वती और महादेव।

गंगाजीके माहात्म्यका प्रसंग एकबार कैलास पर्वतपर महादेवजीके समक्षमें चल रहा था। उस समय पार्वतीजीने महादेवजीसे पूछा,—"प्राणनाथ! अगणित मनुष्य गङ्गाजीमें स्नान करते हैं, क्या उन सबका मोक्ष हो जाता है?" "महादेवजीने कहा,—"प्रिये! इन जीवोंमें विरलेही गंगास्नानको जाते हैं, बाकी तो लौकिक-वस्तुओंके ही दर्शन करने जाते हैं।" यह सुनकर पार्वतीजीको विस्मय हुआ और कहने लगी, कि नाथ! मैं प्रत्यक्ष देखना चाहती हूं। पार्वतीजीके बड़े भारी आग्रहसे शङ्कर गङ्गातटपर गये और वहाँ जा कर वृद्ध एवं रोगाक्रांत शरीरको धारण कर लिया। महादेवजीके शरीरपर अनेक मक्खियां लिपट रहीं थी और अल्पवयस्का परमसुन्दरी पार्वती हाथमें पंखा लेकर हवा कर रही थी। गंगास्नानको आने जाने वाले लोग इस दृश्यको देखकर वहाँ खड़े हो गये और उनमेंसे कितने ही पार्वतीजीसे कहने लगे,—"सुन्दरी! यह वृद्ध रोगी तुम्हारा क्या लगता है?" पार्वतीजी बोली, "ये मेरे पतिदेव और प्राणवल्लभ हैं।" यह सुनकर वे सब अत्यन्त दुःखी होकर कहने लगे, कि हा, दैव! कहाँ तो यह वृद्ध डोकरा और कहाँ यह परमसुन्दरी स्त्री! इतना ही कह कर चुप नहीं रहे, किन्तु पार्वतीजीसे कहने लगे,—"इस बुड्ढे डोकरेको तो गङ्गामें डुबादे

और तू हमारे साथ चल। हम तुझको सब प्रकारसे सुखी रक्खेंगे।" कितने ही लोग तो ऐसी चेष्टा करते थे, कि जिससे कामुकता टपकती थी। इतनेमें कोई एक भला मनुष्य भी वहां आया और पार्वतीकी उस दैन्यावस्थासे द्रवित होकर कहने लगा, कि देवि! तुम यहां इस वृद्धको लेकर किस लिये आई हो? यह सुनकर पार्वतीजी बोलीं,-"मेरे पतिदेवको शाप होनेके कारण रोग हो गया है। कोई गंगास्नानका यात्री यदि इनके शरीरका स्पर्श करे, तो आराम हो सकता है, परन्तु वह यात्री सच्ची भक्तिसे यहां आया हो।" पार्वतीजीके कथानु-ऽनुकूल अनेक यात्रियोंने उस वृद्धके शरीरका स्पर्श किया, परन्तु किसीसे आराम नहीं हुआ। सच्चे मनसे गङ्गास्नानको आई हुई एक बुढ़ियाने ज्योंही शिवजीके शरीरका स्पर्श किया, कि सबके देखते देखते वह वृद्ध कामदेवके समान कमनीयताको प्राप्त होकर कैलाशपर चले गये। वहाँ जाकर महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा है, कि तुमने देखा किस प्रकारके मनुष्य किस भावनासे गङ्गास्नानको आते हैं, यही कारण है कि सबका मोक्ष नहीं होता। इन लक्षावधि मनुष्योंमें यह अत्यन्त निर्धन और बूढ़ा डोकरी ही सच्ची श्रद्धा एवं भक्तिसे गङ्गास्नानको आई थी।

गङ्गाजलकी श्रेष्ठता।

नवीन सभ्यताके पक्षपाती कुछ लोग गङ्गाजलको भी शोडावाटरकी भाँति हजम करने वाला जल मानते हैं, परन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। वेदमें गङ्गाकी अलौकिकशक्तिका वर्णन करते हुए लिखा है,-"इमम्मे गङ्गे यमुने सरस्वती शतद्रु०।" इसी प्रकार मनुजी महाराजने भी गङ्गाजलको पापनाशक मानकर लिखा है,—"मा गङ्गां मा कुरून् गमः०।" वाल्मीकि रामायणमें त्रिकालदर्शी विश्वामित्रजीने भगवान् रामचन्द्रजीसे कहा है,—"गंगादेवी और उमादेवी ये शैलराज हिमालयकी दो कन्याएँ हैं। जो देवलोकमें निवास करनेवाली हैं और पापनाशक हैं।" इसके अतिरिक्त पाश्चिमात्य और पौर्वात्य डाक्टरोंने भी सायन्स (विज्ञानके) आधारसे लिखा है,—"गङ्गाजलमें अन्य जलोंकी तरह कृमी नहीं होते।" सो ठीक ही है; क्योंकि कृमियोंका होना वहाँ ही सम्भव है, जहाँ केवल जलत्व हो। गंगामें तो केवल जलत्व ही नहीं, किन्तु देवीत्व भी है।

संसारके समस्त पदार्थोंको भस्मसात् करनेकी शक्ति अग्निमें है, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है, परन्तु धनञ्जयवायुके कारण अस्थियोंको जलानेकी शक्ति अग्निमें भी नहीं है। यही कारण है, कि हजारों वर्षोंके बाद गौतमबुद्ध महाराजकी अस्थियां अब उपलब्ध हुई हैं। जिन अस्थियोंको अग्नि जला

नहीं सकता और पानी गला नहीं सकती, वे गङ्गाजलमें पड़कर तद्रूप हो जाती हैं। अनादि कालसे असंख्य मनुष्योंकी अस्थियां हरिद्वारके गङ्गाजलमें पड़ती हैं, परन्तु वे वहां पड़ी न रह कर गंगाजलरूप बनकर गंगाके अध्यात्मभावको प्राप्त हो जाती हैं। यदि ये अस्थियाँ गंगाजलरूप न हो जातीं, तो आजतक हरिद्वारमें अस्थियोंके पहाड़ हो गये होते। इसके अतिरिक्त गंगाजलमें एक और भी चमत्कार है। अर्थात् सामान्य जलको बोतल अथवा लोटेमें भर कर रक्खोगे, तो अल्प कालमें ही सूख जायगा और कृमी पड़ जायंगे, परन्तु भगवती जान्हवीका जल सैकड़ों वर्ष न तो सूखता और न उसमें कृमी पड़ते।

यद्यपि श्रीगंगाजीका माहात्म्य ऋषि महर्षियोंने बहुत कहा है, वह चाहे आज कलके हिन्दूनामधारियोंकी समझमें न आया हो, परन्तु थोड़े दिन पहले दिल्लीके नवाब "खानखाना" ने उसको समझ कर अपनी कवितामें इस प्रकार कहा है:—

जलं हि गाङ्गं त्यजतामिहाङ्गं पुनर्न चाङ्गं यदि वापि चाङ्गम्।
करे रथाङ्गं शयने भुजङ्गं याने विहङ्गं चरणे च गाङ्गम् ॥

सुरधुनि ! मुनिकन्ये ! पुण्यवन्तं पुनीषे,
स तरति निजपुण्यात्तत्र ते किं महत्त्वम्।
यदिह यवनजातं पापिनं मां पुनातु,
तदिह तव महत्त्वं तन्महत्त्वं महत्त्वम्।

"गंगाजल ऐसा अद्भुत पदार्थ है, कि जिसके स्पर्शमात्रसे शरीर ही खो जाता है। अर्थात्—गंगाजलमें स्नान करनेसे फिर शरीर नहीं मिलता और कदाचित् मिल भी जाय, तो सामान्य न मिलकर अलौकिक मिलता है। जिसमें चार भुजा, हाथमें चक्र, शयनमें शेष, सवारीमें गरुड़ होता है और चरणोंसे गंगा बहती है। सारांश पुनर्जन्म नहीं होता और होता है, तो विष्णु हो कर आता है। हे गंगे ! पुण्यवान्को मोक्ष मिल जाय, इसमें आपकी क्या बड़ाई है। यवनकुलमें जन्म लेने वाला, यह तुम्हारा शरणागत पापी खानखाना पवित्र हो जाय तो तेरा महत्त्व है।"

रसखानका वृत्तान्त।

मुसलमानवंशमें जन्म लेनेवाला कविवर रसखान जब रोगसे बहुत दुःखी हुआ और अनेक वैद्य, हकीमोंकी दवा लेनेसेभी आराम न हुआ, तब एक ब्राह्मणसे पूछा, कि अब मैं क्या औषधि करूँ ? उस समय अकस्मात् ब्राह्मणने यह कहा:—

औषधं जान्हवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः

"संसारमें हरिसे बढ़कर वैद्य और गंगासे बढ़कर औषधि नहीं है।" रसखानने ब्राह्मणकी आज्ञानुसार उसी दिनसे गंगाजलका सेवन करना प्रारम्भ कर दिया। गंगाजलको सेवन करता हुआ रसखान निम्नलिखित पद्यको बोला करता था:—

वैद्यकी औषधि खाऊँ कछु न करूँ व्रत संयम री सुन मोसे,
तेरे ही पानि पिये "रसखान" सजीवनलाभ लहै सुख तोसे।
ऐरी सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य लहै तुव पोसे,
आक धतूरे चबात फिरे विष खात फिरे शिव तेरे भरोसे॥

गङ्गाजलके सेवनसे रसखान अचिरकालमें ही रोगमुक्त हो गया।

उद्योग और सफलता।

इस गंगादशहरेके उत्सवसे "उद्योग और सफलता" की शिक्षा अवश्य लेनी चाहिये। भगीरथ महाराजके अविश्रान्त उद्योगका ही यह फल है, कि हिन्दी-साहित्यमें "भागीरथप्रयत्न" यह शब्द भूषणास्पद होगया है। उद्योगी पुरुषको सफलता नहीं मिलती, इस सिद्धान्तपर महाराज भगीरथने सदाके लिये हरताल लगा दी है। इस विषयको विशेष स्पष्ट करनेके लिये महाराज भर्तृहरिका एक श्लोक और बाबू हरिदासजीकी व्याख्या लिखी जाती है:—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति॥

"संसारमें तीन तरहके मनुष्य होते हैं,-(१) नीच, (२) मध्यम और (३) उत्तम। नीच मनुष्य विघ्न होनेके भयसे कामको आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम मनुष्य कामको आरम्भ तो कर देते हैं, किन्तु विघ्न होते ही उसे बीचमें छोड़ देते हैं। उत्तम मनुष्य जिस कामको आरम्भ कर देते हैं, उसे विघ्नपर विघ्न होनेपर भी पूरा करके ही छोड़ते हैं।"

उत्तम मनुष्य विचारवान् और धैर्य्यवान् होते हैं। वे जिस कामको करना चाहते हैं, पहले उसे सब पहलुओंसे विचार लेते हैं। जब खूब अच्छी तरहसे समझ लेते हैं, तभी उसमें हाथ डालते हैं और जब हाथ डाल देते हैं-(अर्थात्) आरम्भ कर देते हैं, तब बारम्बार विघ्न होने, बारम्बार सफलता न

होनेपर भी उसे किये ही जाते हैं और शेषमें उसको पूरा करके ही दम लेते हैं। देवताओंने अमृतके लिये समुद्र मथना आरम्भ किया। मथते-मथते उसमें ऐसा हलाहल विष निकला, जिससे सब जलने लगे; परन्तु देवताओंने धैर्य्य न त्यागा, विषसे घबराये नहीं, मथनकार्य्य किये ही गये। उनके दृढ़ अध्यवसायसे उन्हें सिद्धि होही गई–अमृत निकल आया और वे उसको पीकर अमर हो गये।

महाराज भगीरथने गङ्गाको स्वर्गसे पृथिवीपर लानेके लिये कठोर तपश्चर्या आरम्भ की। उनकी तपस्याको भंग करनेके लिये इन्द्रने वर्षा की, अग्नि-प्रज्वलित की, वज्र छोड़ा, उससे पृथिवी कांप उठी, दशों दिशायें थर्राने लगीं, पर वे आसनसे न उठे, जरा भी विचलित न हुए। उन्होंने दृढ़प्रतिज्ञा करली कि चाहे मरण ही क्यों न हो, कार्य्य सिद्ध करके ही उठेंगे। सुरपति जब डराकर हार गये, तब उन्होंने जिस प्रकार विश्वामित्रके तपोभंगको अप्सरा भेजी थी, उसी प्रकार इनका तप भङ्ग करनेको भी अप्सरा भेजी, पर महाराज भगीरथको अप्सरा भी काबूमें न ला सकी। शंकर भगवान् उनकी कठोर-तपस्या और दृढ़ अध्यवसायसे परम सन्तुष्ट हुए। आपने महाराजको दर्शन देकर गंगाको अपने सिरपर धारण करनेका वचन दिया। ब्रह्माजी पहले सन्तुष्ट हो ही चुके थे, इसलिये गङ्गाजी स्वर्गसे आईं। महाराजको सिद्धि हुई। असम्भव सम्भव हुआ। अगर महाराज घबरा कर बीचमें ही तप करना छोड़ देते, तो क्या गङ्गा स्वर्गसे आतीं? रघुवंशी राजाओंमें कामको आरम्भ करके, बिना पूरा किये, अधूरा छोड़नेका स्वभाव नहीं था; इसीसे वे ससागरा पृथिवीके अधीश्वर हो सके थे। रघुवंशमें लिखा है:—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्॥

"सूर्य्यवंशी राजा अपने जन्मसे ही शुद्ध थे। जब तक उन्हें सफलता नहीं हो जाती थी, तब तक दृढ़तासे काम किये जाते थे। सफलता प्राप्त किये बिना कामको अधूरा न छोड़ते थे, इसीसे ससागरा पृथिवीके स्वामी थे। और तो क्या, स्वर्ग तकमें उनका रथ बेरोकटोक चलता था।

हमारे राजा अङ्गरेजोंमें भी यह गुण है। ये भी जिस कामको आरम्भ कर देते हैं, उसे हजार विक्षेप होनेपर भी सफल किये बिना नहीं छोड़ते। इसी उत्तमगुणके कारण बारम्बार हारनेपर भी विश्वव्यापी समरके अन्तमें इनकी ही जीत हुई—इनके इस गुणपर मुग्ध हो कर ही, विजयलक्ष्मीने इनके ही गलेमें

विजयमाला डाल दो। रघुवंशियोंकी तरह ये भी ससागरा पृथिवीके मालिक हैं।

महात्मा विदुरने कहा है,—"जो मनुष्य खूब सोचविचारकर कामको आरम्भ करता है, आरम्भ किये कामको समाप्त किये विना नहीं छोड़ता, किसी समय भी काम करनेसे मुँह नहीं मोड़ता और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, वही पण्डित कहलाता है।"

धीलेण्ड नामक एक पाश्चात्य विद्वान्ने कहा है,—"उत्तम पुरुषोंकी यह रीति है, कि वे किसी कामको अधूरा नहीं छोड़ते।" इसी प्रकार "एनन" नामक एक यूरोपीय विद्वान्ने कहा है,—"काममें सफलता न होनेसे चेष्टाको परित्याग कर देना महा मूर्खता है। चरित्रविकाशमें असफलतायें अद्भुत उपादान सामग्री हैं।" अल्काट महाशयने भी लिखा है,—"सफलता मीठी है, परन्तु वह यदि बड़ी बड़ी तकलीफों और पराजयोंके बाद बड़ी देरसे प्राप्त हो, तो और भी मीठी है।"

सारांश यही है, कि मनुष्य जिस कामको आरम्भ करे, उसे विना पूरा किये न छोड़े। हारपर हार, असफलतापर असफलता और विघ्न होनेपर भी जो हतोत्साह हो कर कामको न छोड़े, वही उत्तम पुरुष है। उसे दृढ़-अध्यवसायके कारण अवश्य ही सफलता होगी। संसारमें जिन्होंने रेल, तार और हवाई जहाज प्रभृतिका आविष्कार किया है अथवा बड़े बड़े मत चलाये हैं, उनको बड़ी बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी है, अर्थात् बड़े बड़े विघ्नोंका सामना करना पड़ा है। लोगोंने उनकी खूब दिल्लगियाँ कीं, परन्तु वे तो अपने आरम्भ किये कामको पूरा करके ही उठे। यह उत्तमगुण प्रत्येक सिद्धि-अभिलाषी मनुष्यको ग्रहण करना चाहिये। मध्यम पुरुषोंकी भांति घबराकर कामको अधपर छोड़ देना अथवा नीचोंकी तरह असफलता या विघ्नोंके भयसे आरम्भ ही न करना, अच्छा नहीं। ऐसे पुरुषोंके कोई काम सिद्ध नहीं होते और वे दूसरोंका भी कुछ भला नहीं कर सकते।

यूरोपविजयी वीरशिरोमणि फ्रान्ससम्राट् नेपोलियन "असम्भव" शब्दको नहीं मानते थे। उनका कहना था, कि संसारमें कोई भी काम असम्भव नहीं। उनका कहना यथार्थ है। स्वर्गीय गंगाको लानेसे अधिक क्या असम्भव होगा? एक दृढ़ अध्यवसायीने वह असम्भव भी सम्भव कर डाला। मनुष्य परमात्मापर भरोसा करके डटा रहे, कोई भी काम हुए विना न रहेगा। डाक्टर नारमेन मेकलियडने कहा है,—"राह चाहे जैसी ही खतरनाक हो और

अन्धकार पूर्ण हो, उसका अन्त दूर और दृष्टिसे बाहर क्यों न हो, आपमें बल हो और चाहे आप थकेहुए हों, साहसपूर्वक चले जाइये, परमात्मापर भरोसा रखिये और न्यायसे काम करते रहिये। आपको सफलता होगी और होगी।" इसी प्रकार शेखसादी साहबने भी कहा है:—

मुशकिले नेस्त कि आसाँ न शवद्।
मर्द बायद् कि हिरासाँन शवद्॥

"ऐसी कोई मुशकिल नहीं, जो आसान न होजाय; पर यह अवश्य है, कि मर्द घबरावे नहीं। और भी कहा है,-"हिम्मते मर्दां मददे खुदा।" साहसी की मदद खुदा करता है।"

छप्पय—

करहि न कार्यारम्भ, विघ्न भय अधम अनारी।
मध्यम काजहिं छेड़, विघ्न भय देहिं विसारी॥
उत्तम त्यागहिं नाहिं, करे जो काज अरम्भा।
परे अनेकनि विघ्न, तदपि रहै अडिग अथम्भा॥
धन जन वैभवमें पाप बिन, रहैं ऐसे जन सूर हैं।
ते है मूलन पै तावको फिर, जगत सुख पूर हैं॥ १॥

इन व्रतोत्सवोंके अतिरिक्त वङ्गदेशमें वैशाख शु० १२ को पिपीलकी द्वादसीका व्रत किया जाता है और महाराष्ट्र देशमें अक्षय्य तृतियाके दिन उद-कुम्भ दान करनेकी प्रथा प्रचलित है।

ज्येष्ठमासमें वङ्गदेशमें रम्भा तृतीया, उमा चतुर्थी और अरण्य षष्ठीके भी व्रत प्रचलित है। उत्तर हिन्दुस्तानमें सावित्रीव्रत आषाढ़ व० ३० को किया जाता है। वङ्गदेशमें ज्येष्ठ शु० १४ को और महाराष्ट्रदेशमें ज्येष्ठ शु० १५ को यह व्रत करते हैं। त्रिरात्रव्रत करनेवाली महिलाएँ ज्येष्ठ शु० १३ से ही उपोषण आरम्भ करती हैं। इसी मासमें निर्जला एकादशीका व्रत प्रायः देश भरमें किया जाता है। मासान्तमें चन्द्रार्ध्य दानकी विधि भी कहीं कहीं देख पड़ती है।

आषाढ़ मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

आषाढ़, यह मास अंग्रेज़ी जून मासके आसपास आता है। इस मासमें कर्ककी संक्रान्ति होती है और मकरसंक्रान्ति तक सूर्य्य दक्षिणायन रहता है। इस संक्रान्तिके दिन दान तथा उपोषण करनेकी शास्त्रोंमें आज्ञा है। आषाढ़ मासमें एकभुक्त रहनेसे धन-धान्य और पुत्रकी प्राप्ति होती है और जूता जोड़ा, छत्री, लवण तथा आँवलेका दान करनेसे वामनावतार विष्णुकी सेवा करनेके समान फल होता है। पुष्य नक्षत्रसे युक्त तथा साधारणतया भी आषाढ़शुक्ल २ के दिन श्रीरामचन्द्रजीका रथोत्सव करना चाहिये। आषाढ़-शुक्लपक्षकी दशमी और पौर्णिमा—ये मन्वादि हैं। आषाढ़ शुक्ला ११ में विष्णुशयनोत्सव करना और इसी दिन चातुर्मास्यव्रतका संकल्प करके शैव, सौर और वैष्णवों-को चातुर्मास्यव्रतका पालन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त तप्त-मुद्रा धारण, कोकिला-व्रत, शाक-व्रत, शिव-शयनोत्सव और व्यास-पूजा आदि कार्य इसी मासमें होते हैं; परन्तु इन सबोंमेंसे मैं केवल देव शयनी महाएकादशी और चातु-र्मास्यव्रतको ही लिखूँगा।

१—विष्णु-शयनी एकादशी।

शास्त्रीय स्वरूप।

दुग्धाब्धि-वीचि-शयने भगवाननन्तो
यस्मिन्दिने स्वपिति चाथ विबुध्यते च।
तस्मिन्ननन्यमनसामुपवास-भाजां
पुंसां ददाति च गतिं गरुडासनोऽसौ॥

कृष्ण तथा शुक्ल-पक्षकी ग्यारवीं तिथि एकादशी कही जाती है और उस तिथिका जो अभिमानी देवता है, वह एकादशीके नामसे ही गृहीत होता है। उसी एकादशी देवताके प्रीत्यर्थ इस दिन वैष्णव और शैव मतानुयायी उपोषण करते हैं। आषाढ़शुक्ला एकादशीको महा एकादशी कहते हैं। इस दिन विष्णुभगवान् क्षीरसागरमें शयन करते हैं। पुराणान्तरमें अथवा भाद्रपदकी एकादशीके माहात्म्यमें यह भी लिखा है, कि विष्णु-भगवान् इस दिनसे चार मासतक

बलिके द्वारपर पातालमें रहते हैं और कार्तिक-शुक्ला एकादशीको पीछे पधारते हैं। इसी कारण इसको देव-शयनी और उसको देव-प्रबोधिनी एकादशी कहते हैं। इस एकादशीका माहात्म्य ब्रह्मवैवर्त्तपुराण और महाभारतमें विशेषरूपसे आया है। प्राचीनकालमें पाण्डव, राजा-रुक्माङ्गद और महाराज अम्बरीष आदि महानुभावों-पर बड़े बड़े सङ्कट आए; परन्तु एकादशीव्रतके करनेसे भगवान्‌ने रक्षा की।

एकादशीकी उत्पत्ति ।

एकादशीकी उत्पत्ति महाभारतमें इस प्रकारसे लिखी है:—प्राचीन कालीन देव और दानवोंमें परस्पर प्रखर विरोध रहा करता था। एक समय प्रह्लादके पौत्र मृदुमान्यदैत्यने शङ्करकी उग्र आराधना की। जिससे प्रसन्न हो कर शिवने मृदुमान्यसे वर मांगनेको कहा। तब उसने ब्रह्मा, विष्णु और आपसे मेरा पराजय न हो, यह वर मांगा। थोड़े दिनके पीछे उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव, तीनोंसे लड़ाई प्रारम्भ कर दी। उस लड़ाईका फल यह हुआ, कि शङ्कर तो स्वयं वर देनेसे उसको मारनेमें असमर्थ हो गए। क्योंकि विषवृक्षको लगाकर भी लगानेवाला फिर छेदन नहीं करता और "अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति"के न्यायानुसार भी महादेव अन्यथा करनेमें असमर्थ थे। शम्भूके वचनोंका उल्लंघन करना ब्रह्मा एवं विष्णुको भी अभीष्ट नहीं था; इस कारण समग्र देवों सहित ये तीनों देव त्रिकूट-पर्वतपर धात्रीवृक्षके नीचे एक गुफामें छुपकर बैठ गए। वहां सहजमें ही अन्नके अभावसे उपोषण और वृष्टिसे स्नानका योग हो गया। इन सबकी एकतासे एक बड़ी भारी शक्ति उत्पन्न होगई और देवताओंकी प्रार्थनासे इसी शक्तिने गुहाके द्वारपर बैठे हुए मृदुमान्य दैत्यका वध किया। इसी शक्तिका नाम एकादशी है। इसमें सब देवताओंका तेज है, इस कारण वैष्णव और शैव सभी मानते हैं।

देव-शयनीका माहात्म्य ।

ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें इस महाएकादशीका माहात्म्य इस प्रकार लिखा है:—

युधिष्ठिर उवाच—आषाढस्य सिते पक्षे किन्नामैकादशी भवेत्।
को देवः को विधिस्तस्या एतदाख्याहि केशव ! ॥

श्रीकृष्ण उवाच—कथयामि महीपाल ! कथामाश्चर्य-कारिणीम्।
कथयामास यां ब्रह्मा नारदाय महात्मने ॥

नारद उवाच—कथयस्व प्रसादेन विष्णोराराधनाय मे।
आषाढ-शुक्ल-पक्षे तु किन्नामैकादशी भवेत्॥

ब्रह्मा उवाच—वैष्णवोसि मुनि-श्रेष्ठ ! साधु पृष्टं कलि-प्रिय !
नातः परतरं लोके पवित्रं हरि-वासरात् ॥

महाराज युधिष्ठिर भगवान कृष्णसे पूछते हैं,—"आषाढ़के शुक्ल-पक्षकी एकादशीका नाम क्या है ? "श्रीकृष्णने कहा—"महिपाल ! ब्रह्माजीने जो आश्चर्य-कारिणी कथा नारदको सुनाई थी, वह मैं कहता हूँ, श्रवण करो।" नारदने ब्रह्मासे पूछा, कि विष्णुका आराधन करनेके लिये आषाढ-शुक्ला एकादशीका क्या नाम है ? यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा,—"कलि-प्रिय,नारद ! तुम वैष्णव हो, तुमने अच्छी बात पूछी। हरि-वासरसे बढ़कर और कोई वस्तु नहीं।"इस एकादशीका व्रत सर्वथा पापोंका नाश करनेवाला और इच्छित-वस्तुका दाता है। जो लोग इसको नहीं करते, वे अवश्य ही नरकगामी होते हैं। इस पद्मा नामकी एकादशीको करनेसे हृषीकेश भगवान् प्रसन्न होते हैं। सूर्य्यवंशी मान्धाता राजा चक्रवर्त्ती था और धर्मानुसार पुत्रवत् प्रजाका पालक था। उसके राज्यमें न तो कभी आधि-व्याधिका भय हुआ और न उसके कोशमें कभी अन्यायका द्रव्य ही आया। परन्तु एक समय किसी पूर्व-पापके कारण उसके राज्यमें तीन वर्ष पर्यन्त अनावृष्टि रही। अतः क्षुत्पिपासाके कारण प्रजामें हाहाकार मच-गया और स्वाहा स्वधाका शब्द भी बन्द हो गया। ऐसी दशामें समस्त प्रजा महाराजके पास जाकर पुकारी और अपना दुःख राजाको श्रवण कराया। राजन् ! आप नाम जलका है और उसीको नारा कहते हैं तथा जलमें परमात्माका निवास होनेसे नारायण कहते हैं। उस जलके बिना आज आपकी प्रजा नष्ट होरही है; सो कृपया इसका कुछ प्रबन्ध शीघ्र ही करें। महा-राज यह सुनकर बोले,—"आप लोगोंने ठीक कहा है। अन्न ब्रह्म-मय है, इसीसे सब प्रजा अन्नमें प्रतिष्ठित है, अन्न ही प्राणोंका आधार है—यह सब पुराणोंका मत है। यद्यपि समष्टि प्रजाको राजाके ही पाप अथवा कुप्रबन्धसे कष्ट होता है, परन्तु मैंने अपनेमें इस प्रकारका पाप नहीं पाया तथापि मैं इसके लिये प्रयत्न करता हूं।" राजा तपोवनमें महर्षियोंके पास गया और वहां जाकर महर्षि अंगिराको देखा। उसी समय वाहनसे उतरकर दण्डवत् किया और महर्षिने राज्यके सप्तांगोंकी व्यवस्था पूछी। राजाने अनावृष्टिके कारण होनेवाले प्रजाकीय कष्टको समझाया और अतिनम्रभावसे उसके कारणको पूछा। महर्षि बोले,—"राजन् ! सब युगोंमें उत्तम सत्य-युग है। इसमें धर्म चार पाद रहता है; अतः थोड़ेसे पापका भी बड़ा भारी फल होता है। तेरे राज्यमें एक

वृषल–वर्णसङ्कर तप कर रहा है। यदि प्रयत्न करके वह न मारा गया, तो यह उपद्रव अधिक बढ़ेगा।" यह सुनकर राजाने कहा, कि भगवन्! तप करनेवाले वृषलको मैं मारना नहीं चाहता; इस लिये इसके परिहारका यदि अन्य मार्ग हो तो अच्छा है। विचार करके महर्षिने कहा,—"यदि ऐसी बात है, तो पद्मा नामकी एकादशीके व्रतको करना चाहिये, जिससे अवश्यही वृष्टि हो कर सुभिक्ष होगा, परन्तु प्रजाके सहित करें।" यह सुनकर राजा अपने राज्यमें आया और प्रजाके सहित पद्माके व्रतको किया, जिससे वृष्टि हो कर सुभिक्ष हो गया। अतः यह व्रत अवश्य ही करने योग्य है।

लौकिक–स्वरूप।

यद्यपि धर्मके सब कार्योंमें स्मार्त्त और वैष्णव–ये दो मत अतिप्राचीन-कालसे चले आते हैं, परन्तु एकादशी-व्रतको दोनों ही करते हैं। इसी कारण सब वर्णोंके लोगोंमें एकादशी-व्रतका आदर होता है। यहां तक, कि शूद्र-श्रेणीमें भी एकादशीको उपोषण करनेका प्रचार है। कितने ही लोग जो उपवास नहीं कर सकते, वे एकभुक्त ही करते हैं और जो एकभुक्त करनेमें भी असमर्थ हैं, वे एकादशीको चाँवल तो बिलकुल नहीं खाते। बंगाल-आदि देशोंमें भी चाँवल न खाकर गेहूंकी रोटी खाते हैं। हां, जगदीश पुरीमें सब लोग एकादशीको भी चाँवल खाते हैं। वहांके लोग कहते हैं, कि यहां जगदीश भगवान्ने एकादशीको बाँध रक्खा है; इस लिये चाँवल खानेका निषेध नहीं। अस्तु, समग्र भारतमें चाँवलोंको न खाने वाले लोग बहुत हैं। एकादशीके व्रतमें यद्यपि स्वल्पाहार करनेका विधान है, परन्तु वर्त्तमानकालमें अनेक प्रकारके गरिष्ठ पदार्थोंका एवं फलोंका पुष्कलाहार किया जाता है। कहीं-कहींके लोग शास्त्रीय-व्यवस्थाके अनुसार दशमी और द्वादशीको एकाहार करते हैं और एकादशी निराहार रहकर दिनमें भजन और रात्रिको जागरण करते हैं। यद्यपि हिन्दू तैंतीस-कोटि देवताओंको मानने वाले हैं; परन्तु उन सबको ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अन्तर्गत ही मानते हैं और उनमें भी विष्णुको ही प्रधानता है। एकादशीको हरिवासर; अर्थात् विष्णुका दिन कहते हैं; इसी कारण भारतमें एकादशीका अधिक प्रचार है। उपर्युक्त विष्णु-शयनी एकादशीको पण्ढरपुर दक्षिणमें प्रेक्षणीय उत्सव होता है। अनेक महात्माओंकी पालकियाँ वहां आती हैं और वारकरी सम्प्रदायके लोग बड़े ठाटसे विट्ठल भगवान्का कीर्त्तन

करते हैं । उस समय ऐसा ज्ञात होता है, कि मानो साक्षात् एकादशी विट्ठल भगवान्से मिलने आई है ।

शिक्षा ।

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ गीता

जिस विष्णुकी यह आज्ञा हो, कि "अर्जुन ! जब-जब धर्मका ह्रास होता है, तब-तब मैं अवतार लेकर धर्म-ग्लानिको हटाता हूँ" उस हरिके वासरको यदि हम उपवास अथवा व्रत न करें, तो हमसे बढ़कर कृतघ्न एवं पापी कौन हो सकता है । इस एकादशीके व्रतसे हमको दो शिक्षाएँ लेनी चाहिये, –(१) दृढ़ प्रतिज्ञा और (२) संघशक्ति ।

(१) दृढ़-प्रतिज्ञा ।

संसारमें मनुष्य जब-तक दृढ़प्रतिज्ञ नहीं बनता, तब-तक उसकी संसार-यात्रा शान्तिमयजीवनके साथ नहीं चल सकती । जगत्के जितने कार्य हैं, सत्यप्रतिज्ञापर ही निर्भर हैं । सत्य-प्रतिज्ञ-मनुष्य चाहे निर्धन क्यों न हो, परन्तु द्रव्य सम्बन्धी उसका कोई भी कार्य रुका नहीं रहता । और तो क्या, परन्तु सत्य-स्वरूप परमात्मा उसके अन्तःकरणको छोड़कर एक क्षणके लिये भी विलग नहीं होते । यदि हम सत्य-प्रतिज्ञ होंगे, तो समस्त–जगत् हमारे साथ होगा । समयके हेर-फेर और दैवप्रकोपसे आज-कल हमारे देशमें यह बात चल पड़ी है, कि "मनुष्यकी जबान और गाड़ीका पहिया फिरता ही रहता है ।" परन्तु इसके साथ हमको यह भी स्मरण रखना चाहिये, कि समय समयपर वह पहिया रुकना भी रहता है और उससे चिमटनेवाली मिट्टी बार बार छोड़ती रहती है । जो मनुष्य अपनी प्रतिज्ञापर अटल नहीं रहता, वह समय समयपर ठोकरें खाता रहता है और लोग उसका विश्वास न कर उसको छोड़ते रहते हैं ।

आज कल देशोन्नतिकी इच्छा करनेवाले लोगोंको इसपर बहुत ध्यान देना चाहिये । जब तक देशका जन समुदाय हमारे साथ न होगा, तब तक देशोन्नति होना दुष्कर है और जनसमुदाय हमारे साथ तभी रहेगा, जब हम दृढ़-प्रतिज्ञ होंगे । वामनावतार विष्णुने राजा बलिसे यही कहा था, कि मुझको त्रिपादभूमिकी आवश्यकता है, जिसमें रहकर भजन किया करूँ । जब बलिको भगवान् द्वीपान्तर भेजने लगे, तब बोले, कि तुमको कुछ मांगना

हो, तो मांग सकते हो ? इसपर बलिने कहा,—"आपकी प्रतिज्ञा मेरे पास रह कर जीवन वितानेकी है; अतः जहां मैं रहूं वहां आपको भी रहना चाहिये।" यह बात विष्णुने स्वीकार की और क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आज-तक 'चार-चार मास निवास करते हैं। आषाढ़शुक्ला एकादशीसे कार्त्तिकशुक्ला एकादशी तक विष्णु भगवान्‌के रहनेका समय है। अनन्त काल चले जानेपर भी भगवान् अपने प्रणको निवाह रहे हैं, इसी प्रकार हमको दृढ़-प्रतिज्ञ रहना चाहिये।

संघ-शक्ति—अर्थात् एकता।

"संघ-शक्तिः कलौ युगे"—यह महर्षि पराशरका वाक्य है। इसमें महर्षि स्पष्ट आज्ञा देते हैं, कि कलियुगमें प्रत्येक कार्य्यके मूलमें एकताका होना परम आवश्यक है, अन्यथा कोई भी कार्य न हो सकेगा। यद्यपि एकताके सूचक अनेकशास्त्रोंके अनेक वाक्य हैं, परन्तु उन सबका यहाँ एकत्र करना निरर्थक है, क्योंकि एकताकी महिमाको अब भारतका बच्चा बच्चा भी जान गया है। आवश्यकता इस बातकी है, कि उस एकताका प्रचार हममें किस प्रकार हो। धर्म कर्मके बन्धनोंको तोड़कर एक जाति, एक धर्म और एक खानपानसे एकता होगी, ऐसा कितने ही भद्रपुरुषोंका विचार है, परन्तु वह निरर्थक है। जिस प्रकार भोग विलास आदिके सामान पूर्व कर्मानुसार और ऐहिक उद्योग द्वारा प्रत्येक मनुष्यके भिन्न भिन्न होते हैं, उसी प्रकार आचार और विचार भी भिन्न भिन्न होते हैं; अतः उनकी एकता त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। यदि जगत् केवल सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुणसे बना होता, तो उपर्युक्त एकता संभव थी, परन्तु जगत् ठहरा त्रिगुणात्मक, फिर एकता कैसे हो सकती है। इस कारण व्यक्तियोंकी एकताके व्यर्थ परिश्रममें न पड़कर लक्ष्य (निशान) या ध्येयमें एकता उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

जो विश्व-व्यापी समर सन् १६१४ से १६१७ तक योरपमें हुआ था, उसमें बृटानियोंकी तरफसे लड़ने वाले समस्त योद्धाओंमें एकता उत्पन्न करनेको एक खान-पान या एकजाति बनानेका व्यर्थपरिश्रम नहीं किया गया; कारण कि युद्ध-भूमिकी एक-एक लाइनमें कुछ लोग घोड़े वाले, कुछ पैदल, कुछ बैलूनपर चढ़नेवाले, और कुछ मोटरोंपर चढ़नेवाले थे। उनमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र तथा म्लेच्छ आदि अनेक जातिके और सनातनधर्म, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज थियासोफिष्ट-आदि अनेक धर्मोंके लोग थे। इन सब लोगोंको जाति या धर्मसे

एक करनेका विचार सरकारने नहीं किया, किन्तु "शत्रुको विजय करना" इस लक्ष्य अथवा धैर्यमें ही एकता रहनेका प्रयत्न किया था। ठीक इसी प्रकार भारतके नेताओंको खान-पान, धर्म और जातिकी एकताके व्यर्थ उपायमें न पड़कर देशोन्नति-रूप ध्येयमें ही सबकी एकता करवानी चाहिये। जब-तक हमारी एकता लक्ष्यमें न होगी, ध्येयकी सिद्धि असम्भव है। साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या है, किन्तु वरदान देनेके कारण मृदुमान्य दैत्यको मारनेमें जब विष्णु शिव और विरिंचि भी असमर्थ हो गए, तब यह प्रस्ताव नहीं किया गया, कि तमोगुणको शिव, रजोगुणको ब्रह्मा और सत्वगुणको विष्णु छोड़कर एक गुणमयी एकता कर लें। हां, ध्येयमें एकता अवश्य की गई। यदि सब देवता मिलकर मृदुमान्यके वध-रूप ध्येयमें एकता न करते, तो सबकी संघ-शक्ति-रूप एकादशीका उत्पन्न होना असम्भव था और बिना एकादशीके मृदुमान्यका मरना भी दुष्कर था। अतः विष्णु-शयनी एकादशीसे संघशक्तिका पाठ अवश्य लेना चाहिये।

२—चातुर्मास्य—व्रत।

शास्त्रीय-स्वरूप।

इस चातुर्मास्य व्रतका विवरण ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें इस प्रकारसे आया है,—

आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः।
चातुर्मास्यव्रतानान्तु कुर्वीत परिकल्पनम्॥
एवं च प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा युधिष्ठिर!
स्नापयेत्प्रतिमां विष्णोः शंखचक्रगदाधराम्॥

भगवान् राजा युधिष्ठिरसे कहते हैं,—"राजन्! आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपोषण करके चातुर्मास्यके व्रतोंकी कल्पना करनी चाहिये।" शंख, चक्र, गदा और पद्मवाली पिताम्बरधारिणी भगवान्की मूर्त्तिको स्नान करा कर और शुभ वस्त्र पहनाकर सौम्य आसनपर स्थापित करना चाहिये। इतिहास, पुराण और वेदको जाननेवाले ब्राह्मणसे प्रतिमाको दही, दूध, घृत, शहद और मिश्रीमें स्नान कराकर शुभ्र गन्धका लेपन कर धूप, दीप और पुष्प आदिसे निम्न लिखित मंत्र द्वारा पूजन करावे।

शायितस्त्वं हृषीकेश ! पूजयित्वा श्रिया सह।
प्रसादं कुरु देवेश ! लक्ष्म्या सह जनार्दन ॥

तदनन्तर स्थापितमूर्तिके आगे बैठकर और सन्ध्यावन्दनसे निवृत्त हो कर नियमोंको धारण करनेकी प्रतिज्ञा करे। जबसे चातुर्मास्य व्रतका प्रारंभ करे, तबसे एकादशी, द्वादशी, पौर्णिमा, अष्टमी, कर्कटा और संक्रान्तिको उपोषण करके परमात्माकी मूर्त्तिका पूजन करे तथा कार्त्तिकशुक्ला द्वादशीको समाप्त करे। इस प्रकार करनेसे मनुष्यके बाल्य, युवा और वार्धक्य-कालके किये पाप निवृत हो जाते हैं। परन्तु असंक्रान्ति मास तथा अशौच आदिमें न करे। जो मनुष्य प्रतिवर्ष चातुर्मास्य व्रतको करता है और भगवद्भजन करता है, वह मरनेके बाद दिव्य विमानमें बैठ कर विष्णुलोकको जाता है तथा आनन्दसे रहता है।

चातुर्मास्यके व्रतीको नित्य विष्णु-मन्दिरका मार्जन करना चाहिये और गोरवसे लीपकर रंगवल्ली करनी चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराने वाला मनुष्य सात जन्म पर्यन्त सत्यधर्मका अनुष्ठान करने वाला होता है। राजाको पृथ्वी तथा काञ्चन दान भी करना चाहिये, जिससे राजा इन्द्रके समान सुखोंको प्राप्त करता है। जो मनुष्य स्वर्णकी तुलसी बनाकर ब्राह्मणको देता है, वह काञ्चनके विमानमें बैठकर वैष्णवी गतिको प्राप्त करता है। जो मनुष्य कार्त्तिकमें विष्णु या पीपलको प्रदक्षिणा करके नमस्कार करता है और विष्णुके मन्दिर या ब्राह्मणके घरपर दीपक जलाता है, वह तेजस्वी होता है तथा गन्धर्व और अप्सराओंसे सेवित हो कर स्वर्गकी सम्पदाको भोगता है। जो ब्राह्मण वेद-माता गायत्रीका लोगोंमें प्रचार करता है, सन्तुष्ट हो कर व्यास भगवान् उसे अनेक सम्पदाएँ प्रदान करते हैं, परन्तु इस व्रतके उद्यापन कालमें शास्त्रका दान करके सरस्वतीकी निम्न-लिखित प्रार्थना करे—

"सर्व-विद्यासमं शास्त्रकरणं ललिताक्षरम्।
पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ॥"

जो चातुर्मास्यका व्रती नित्य-प्रति शास्त्रको सुनता है, वह धनवान् तथा पुत्रवान् होता है। चातुर्मास्यमें नाम जप भी करना चाहिये। चाहे वह जप शिवका हो या विष्णुका हो, परन्तु उसके अन्तमें जाप्य देवताकी सौवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ब्राह्मणको दान करे और यह प्रार्थना करे—

त्वया सुराणाममृतं विहाय हालाहलं संहृतमेव यस्मात्
तथा सुराणां त्रिपुरं च दग्धमेकेषुणा लोकहितार्थमीश ॥
तद्रूपदानाद् बहु पुण्यवाँश्च दोषैर्विमुक्तश्च गुणालयोऽहम् ।
तथा कुरु त्वां शरणं प्रपद्ये मम प्रभो ! देववर ! प्रसीद ॥"

प्रातःकाल दन्तधावन पूर्वक स्नान करके सूर्यको अर्घ-प्रदान करे और सूर्यमण्डलस्थ ब्रह्मज्योतिको नमस्कार करे तथा समाप्तिके समय काञ्चन, रक्त वस्त्र और गायका दान करे; इससे आरोग्यकी वृद्धि होती है और मनुष्य आयुष्यमान् एवं लक्ष्मीवान् होता है । जो मनुष्य चातुर्मास्यमें नित्य-प्रति गायत्री अथवा व्याहृतियोंसे तिलका हवन करता है और समाप्तिपर १०८ या २८ तिलपात्रोंका दान करता है, वह कायिक, वाचिक और मानसिक पापोंसे छूट जाता है। दान करते समय यह मन्त्र बोलना चाहिये,—"

देव ! देव !! जगन्नाथ !!! वाञ्छितार्थ-फल-प्रद ।
तिल-पात्रं प्रदास्यामि तेन पापं व्यपोहतु ॥"

इससे अतुल-कान्तिसम्पन्न पुत्रकी प्राप्ति होती है और शत्रुओंका नाश होता है। चातुर्मास्यमें अमृतके समान दूर्वाको मस्तकपर धारण करके यह मन्त्र बोले—

"त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः ।
सौभाग्यं सन्ततिं दत्त्वा सद्यः कार्यकरी भव ॥"

इस मन्त्रको बोलकर और स्वर्णकी दूर्वाका दान करने वाला कभी भी रोगी नहीं होता और मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। जो मनुष्य शिव अथवा केशवका नित्य कीर्त्तन करता है, वह जागरणके फलको प्राप्त करता है; परन्तु व्रतके अन्तमें एक घंटाका दान करके सरस्वतीकी यह प्रार्थना करे—

"सरस्वती जगन्नाथा जगज्जाड्यापहारिणी ।
साक्षाद्ब्रह्म-कलत्रं च विष्णु-रुद्रादिभिः स्तुता ॥"

हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य चातुर्मास्यमें नित्य-प्रति ब्राह्मणके चरणोंको धोकर पीता है, वह मानसिक, कायिक और वाचिक पापोंसे छूट जाता है और किसी भी प्रकारकी व्याधि उसको नहीं सताती; क्योंकि ब्राह्मण मेरे ही स्वरूप हैं, परन्तु व्रतकी समाप्तिपर दो गायोंका दान करना चाहिये। जो मनुष्य सूर्य्य तथा गणेशको नित्य नमस्कार करता है, वह आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य्य, कान्ति और गणेशकी कृपासे मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करता है तथा उसकी

सर्वत्र विजय होती है। इस नियमकी समाप्तिमें गणेश और सूर्यकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर तथा अष्टाङ्ग नमस्कार कर ब्राह्मणको दे। अष्ट-अङ्ग ये हैं,—(१) उर (२) मस्तक (३) दृष्टि (४) मन (५) वचन (६) कर (७) जानु (८) पैर। इनसे किया हुआ प्रणाम अष्टाङ्ग प्रणाम कहलाता है। इस नियमके करनेसे मनुष्य जिस उत्तमगतिको प्राप्त करता है, उसको इन्द्र भी नहीं पा सकता। जो मनुष्य शिवके प्रीत्यर्थ चार मास तक प्रति दिन एक रुपयाका दान करता है, अथवा अशक्ततामें कुछ पैसा दान करता है और समाप्ति पर चान्दीका एक पात्र शहदसे भरकर अथवा ताम्बेका पात्र गुडसे भरकर दान देता है, वह अति शुभगतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य भगवान्‌के शयन कालमें प्रतिदिन यथाशक्ति स्वर्ण-दान करता है, वह श्रेष्ठगतिको प्राप्त करलेता है और इस लोकमें अनेक भोगोंको भोगकर अन्तमें शिव-सायुज्यको प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त चातुर्मास्यमें सोना, चाँदी, ताम्बा, धान्य और वस्त्र आदिका भी दान देना चाहिये और नित्य-श्राद्ध तथा देव-पूजा भी करनी चाहिए। शय्या एवं पट्टिका देनेका भी माहात्म्य है। जो मनुष्य नित्य गोपी-चन्दन देता है, वह भी विष्णुकी कृपासे भक्ति एवं मुक्तिको प्राप्त करता है। विष्णुके शयन-कालमें जो मनुष्य दक्षिणा सहित गुड़ या शर्करा दान देता है, उस पर सूर्य प्रसन्न होते हैं और वाञ्छितफल प्रदान करते हैं, परन्तु समाप्तिपर ताम्बेके पात्रोंमें शर्करा स्वर्ण भरकर तथा कपड़ेमें लपेट कर दान करनेसे सूर्य-देव नीरोगता और सद्गति देते हैं। राजा राज्यको, पुत्रार्थी पुत्रको, धनार्थी धनको और निष्काम मोक्षको प्राप्त करता है। जो मनुष्य नित्य प्रति चार मास तक ब्राह्मणोंको शाक, फल, मूल आदि देता है, अन्तमें दक्षिणा सहित दो वस्त्रोंका दान करता है, वह राज-भोगी होकर नानासुखोंको प्राप्त होता है। जो मनुष्य सोंठ, मिर्च और पीपलका नित्य दान करता है और उद्यापन-कालमें सोंठ, मिर्च और मागधीको स्वर्णकी बनाकर वस्त्र और दक्षिणा सहित बुद्धिमान् तथा शोत्रज्ञ विद्वान् ब्राह्मणोंको देता है, वह सौ वर्षकी आयु वाला होता है और जो मनुष्य मोतियोंका दान करता है, वह अन्नवान् तथा कीर्त्तिमान होता है।

चातुर्मास्यमें प्रति दिन पानी अथवा दुग्धका घड़ा भरकर और अच्छे वस्त्रसे ढाँपकर फल और दक्षिणाके सहित सुवासिनीस्त्रीको साक्षात् लक्ष्मी

मान कर दान करे और एक जोड़ा अर्थात्—एक स्त्री और पुरुषका गन्ध तथा पुष्प आदिसे पूजन कर श्रीपतिके उद्देशसे ताम्बूल और फलका दान करे। इस दम्पति-पूजनसे स्त्री पुरुषको और पुरुष स्त्रीको प्राप्त करता है। दक्षिणा सहित ताम्बूल, रक्त वस्त्र और ओलेके लड्डू देनेसे भी महान् पुण्य होता है। यह बोडी दान है, जिसके विषयमें कहा गया है,—

"पूगे ब्रह्मा हरिः पत्रे चूर्णे साक्षान्महेश्वरः।"

अर्थात्—सुपारीमें ब्रह्मा, पत्तोंमें हरि और चूर्णमें साक्षात् महादेवजीका निवास है। यह बोडी सौभाग्यवती स्त्री या ब्राह्मणको देनी चाहिये। जो मनुष्य हल्दीका दान करता है, वह स्त्री सुखको प्राप्त करता है। गौरी और शिवके निमित्त जो मनुष्य नित्य प्रति ब्राह्मण दम्पतिको भोजन कराकर स्वर्णका दान देता है, वह स्त्री अथवा पुरुष, इस लोकमें अनेक कामनाओंको प्राप्त कर अन्तमें शिवपुरमें निवास करता है। यदि कारण विशेषसे फिर जन्म हो, तो बड़ा भारी राजा अथवा योगी होता है। जो मनुष्य भगवान्के शयनकालमें वामन भगवानके उद्देशसे स्वादु तथा षड्रसयुक्त भोजन ब्राह्मणोंको कराता है, एकादशी-को उपवास करता है, ग्रहण आदिमें दान करता है और इसकी समाप्तिमें भूमि-दान, गऊदान, वस्त्रदान आदि दान करता है, वह अक्षय्यपुण्यको प्राप्त करता है।

जो मनुष्य सालङ्कार गऊका दान करता है, वह ज्ञानी हो कर अनेक वर्षों-तक परलोकमें पितरोंके साथ भोगोंको भोगता है और जो चार मास तक प्राजा-पत्य व्रतको करता है तथा समाप्तिपर दो गऊओंका दान एवं ब्राह्मणभोजन कराता है, वह सनातनब्रह्मको प्राप्तकर मनुष्यजन्मको सफल करता है। जो मनुष्य शाक, मूल, फल और फूल खाकर चातुर्मास्यको बिताता है तथा समाप्ति-पर गोदान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। इसी प्रकार पयोव्रती भी सनातनब्रह्मको प्राप्त करता है, परन्तु व्रतके अन्तमें एक गऊका दान अवश्य करना चाहिये। जो मनुष्य चार मास तक केला तथा पलाशके पत्रमें भोजन करे, वह समाप्तिपर काँसके पात्रमें रखकर दो वस्त्रोंका दान करे, जो मनुष्य नित्य ही पलाशके पत्तपर भोजन करता है और तैलाभ्यंग रहित स्नान करता है, वह जिस प्रकार अग्नि रूईको जला देती है, उसी प्रकार सब पापोंको जला देता है, परन्तु समाप्तिमें कांसका पात्र एवं सालङ्कार-सवत्सा गऊका दान करे। जो मनुष्य स्वर्ण एवं चन्दनसे मण्डित बैलको अयाचक ब्राह्मणके लिये दान करता है और षड्रसयुक्त भोजनोंसे ब्राह्मणभोजन कराता है, वह परागतिको

प्राप्त होता है। जो मनुष्य एक ही अन्न-चावलोंका भोजन करता है; मिताशी एवं दृढ़-व्रत हो कर भगवान्-वासुदेवका पूजन करता है और समाप्तिपर ब्राह्मण-भोजन करा कर दक्षिणा देता है, वह अत्यन्त पुण्यका भागी होता है। जो मनुष्य पृथिवीपर सोनेके नियमका पालन कर उद्यापनमें शय्याका दान तथा ब्राह्मणभोजन कराता है, वह भगवान्‌की सन्निधिमें पहुंचता है।

जो मनुष्य गौरी शङ्करके प्रसन्नतार्थ क्षीर, लवण, मधु, घृत और समस्त फलोंको छोड़ता है तथा कार्त्तिक शुक्लमें ग्रहण करनेसे प्रथम उनका दान करता है, निःसन्देह वह रुद्रलोकको जाता है। जो मनुष्य जौ और चाँवल मात्रको खाकर रहता है, वह पुत्र-पौत्रको प्राप्त करता है और जो शाकान्नको नहीं खाता वह विष्णु-भक्त होता है। जो मनुष्य पूआको छोड़नेका नियम ले, वह कार्त्तिक-शुक्लमें ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वर्णके पूआका दान करे, जिससे पुण्यकी वृद्धि हो। जो मनुष्य आषाढ़-आदि चार मासमें बैंगन और कारवल्लीके फलोंको नहीं खाता और निम्न-लिखित चार वस्तुओंको तत्तन्मासमें नहीं खाता, वह निश्चय ही स्वास्थ्य लाभ करता है,—

श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्र-पदे तथा।
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्त्तिके द्विदलं त्यजेत्॥

"श्रावणमें शाक, भादोंमें दही, आश्विनमें दूध और कार्त्तिकमें दालको न खाना चाहिये।

इसके अतिरिक्त कूष्माण्ड, राजउड़द, मूली, गाजर, करौंदा, गन्ना, मसूर, बैंगन, बेर, आमले और इमली आदि पदार्थोंको न खाना चाहिये, परन्तु इमली और आमले पुराने हों तो खानेमें हानि नहीं। नखोंका छेदन, खाटपर शयन और बिना ऋतुके भार्या-सेवन कदापि न करे। जिस मनुष्यके उदरमें बैंगन, तरबूज, बेल और गूलर पचते हैं; वहां परमात्माका निवास असंभव है। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें सब प्रकारके तेल-फुलेलोंको और अभ्यंग-स्नानको वर्जन करता है तथा नख-रोम नहीं कटाता, वह चिरजीवी हो कर स्वर्गके सुखको भोगता है। रात्रिके भोजन-त्यागसे स्वर्गमें जाता है, पराम्न-भोजनके न करनेसे देवता बनता है, कृच्छ्र और चान्द्रायणसे दिव्य देह पाकर शिवलोकको जाता है और जो दुग्ध पान मात्र करके रहता है, उसके कुलका उच्छेद नहीं होता। प्रति दिन पञ्च-गव्य लेनेसे चान्द्रायणका फल होता है और तीन दीन जलका त्याग करनेसे रोगोंको विजय करता है।

लौकिक स्वरूप।

इस चातुर्मास्य-व्रतमें अनेक व्रत एवं नियमोंका वर्णन जिस प्रकारसे आया है, उस प्रकारसे तो लोकमें प्रचलित नहीं हैं, परन्तु किसी देशमें कुछ और किसीमें कुछ—इस प्रकार अब भी भारतमें प्रचार है। जबसे भारतवर्षमें भक्तिकी अधिकता हुई है, तबसे चातुर्मास्यमें भक्तिके भी अङ्गोंका प्रवेश हो गया है। इसी चातुर्मास्यमें भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे लाखों मनुष्य व्रजमण्डलमें जाते हैं। श्रावणमासमें मथुरा और वृन्दावनकी अपूर्व शोभा देखते ही बनती है। मन्दिरोंमें रङ्गवल्ली अर्थात्—सांजीकी छटा दर्शकोंके मनको मोहनेवाली होती है और साथ ही हिण्डोलोंका महोत्सव तो मानो गोलोककी सम्पूर्ण सम्पदाको दृग्गोचर करा देता है। स्थान स्थानपर रासका आनन्द भी सोनेमें सुगन्धिकी कहनावतको चरितार्थ कर देता है। प्रायः मन्दिरोंमें पुराणोंकी कथाओंका भी लाभ अपूर्व रहता है। यह आनन्द केवल व्रजमण्डलमें ही नहीं, किन्तु भारतके सभी मन्दिरोंमें होता है और कथा पुराणोंका तो चौमासेमें प्रायः प्रचारसा ही हो गया है। बहुतसे मनुष्य जो वर्ष भरकी २४ एकादशियोंको नहीं करते, वे भी चातुर्मास्यकी एकादशियोंको अवश्य करते हैं और जिन पदार्थोंका चातुर्मास्यमें त्याग बतलाया गया है, उनमेंसे बैंगन, बेर आदि कितनी ही चीजोंको नहीं खाते। कितने ही लोग इन चीजोंको अन्नकूट और कितने ही देवोत्थापिनी एकादशीको करके खाते हैं। कहीं कहीं दान देनेकी प्रणाली है, परन्तु बहुत थोड़ी। इसी चातुर्मास्यमें व्रज-चौरासी कोसकी परिक्रमाका समारोह भी होता है, जिसमें लाखों मनुष्य भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे आते हैं। इस यात्रामें भगवान् कृष्णने अपने अवतार-कालमें व्रजके जिन जिन स्थानोंमें जो जो चरित्र किये थे, उनकी नकल बतलाई जाती है और इसके प्रबन्धक श्रीमद्वल्लभाचार्य्यजी महाराजके वंशज गोस्वामी ही होते हैं।

शिक्षा।

(१) कर्मकाण्ड—

वैदिक संहिताएँ और उनके अङ्गोंसे विदित होता है, कि भारतवर्षमें अतिप्राचीन कालसे कर्मकाण्डका बड़ा भारी प्रचार रहा है और प्रायः सभी ऋषि महर्षि कर्मठ थे। छः शास्त्रोंमें सबसे प्राचीन "पूर्वमीमांसा" कर्मकाण्डका ही संस्थापक है। प्राचीनभारतमें वैदिककर्म बहुत होते थे, परन्तु वे सकाम थे।

सकामकर्मकी गति यजमानको स्वर्ग तक पहुँचानेको होनेसे पूर्वमीमांसाकार स्वर्गको ही ध्येय मानते थे और उनका वही परम पुरुषार्थ था। यह कर्मकी प्रधानता मनमाने सिद्धान्तपर नहीं, किन्तु संहिता भाग, ब्राह्मण भाग, सूत्र और धर्मशास्त्रोंके आधारपर थी। इसी कारण शास्त्रकारोंने भारतभूमिको भक्ति-भूमि या ज्ञान-भूमि न कह कर कर्म-भूमि कहा है। महाराजा भर्तृहरिजी कहते हैं:—

स्थाल्यां वैडूर्य्यमय्यां पचति तिलकणाश्चन्दनैरिन्धनाद्यैः
सौवर्णैर्लाङ्गलाद्यैर्निखनति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः।
छित्त्वा कर्पूरखण्डान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात्
प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्ततो मन्दभाग्यः॥

"वैडूर्य्यमणिकी स्थालीमें तिलोंको डालकर और चन्दनकी लकड़ियोंको जलाकर तेल निकालने वाला पहला मूर्ख, कपूरके टुकड़ोंको बोकर कोदोंकी खेती करने वाला दूसरा मूर्ख और सोनेके हलसे पृथ्वीको जोतकर आकके वृक्षोंकी खेती करने वाला तीसरा मूर्ख है; परन्तु जो मनुष्य भारत जैसी कर्म-भूमिको पाकर कर्म नहीं करता, वह निःसन्देह महामूर्ख है।"

जिस समय भारतमें कर्मकाण्डका अधिक प्रचार था, उस समय चातुर्मास्य-व्रतके पौराणिक-कार्य्य तो होते ही थे; परन्तु इनके अतिरिक्त वैदिक यज्ञ भी होते थे। प्रत्येक गृहस्थको गृह्यसंस्कार, पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ करना पड़ता था। इनमें भी बौधायनके मतानुसार हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ विशेष आवश्यक माना गया था। इन सब वैदिक कार्योंका प्रचार चातुर्मास्यमें ही अधिक था; परन्तु जबसे कर्मकाण्डके अन्तिम आचार्य मण्डनमिश्रको श्रीशङ्कराचार्य्यजीने विजय किया, तबसे कर्मकाण्डका ह्रास हो गया। यद्यपि श्रीशङ्कराचार्य्यजीने कर्मका सर्वथा खण्डन नहीं किया है; किन्तु पहली मुख्यता नष्ट हो कर गौणता तो अवश्य ही प्राप्त हो गई और वह भी निष्कामकर्मको। सकामकर्मका तो एक प्रकारसे देश-निकाला हो गया। इसी कारणसे अत्यन्त प्राचीन वैदिक चातुर्मास्यका ह्रास हो गया। यद्यपि कुछ दिन तक पौराणिक तथा धर्मशास्त्रीय चातुर्मास्यका प्रचार रहा, परन्तु साम्प्रदायिकोंके भक्तिकाण्डने उसका भी नाम शेष कर दिया।

इसमें सन्देह नहीं कि शङ्कराचार्यजीके समयमें सकाम कर्मने-मोक्ष धर्म-को छुपा दिया था; परन्तु यह आतिशय्य था। आतिशय्यमें मर्यादाका उल्लंघन

हो ही जाता है। क्या वर्त्तमान कालमें ज्ञानकाण्डने कर्मकाण्डको नष्ट करके भारतीय जनताको अकर्मण्य नहीं बना दिया है? परन्तु यह भी आतिशय्य है। आतिशय्यके समयमें दोनोंके बैलेन्सको बराबर कर देना ही बुद्धिमानी है। अतः वैदिक तथा पौराणिक कर्मकाण्डके उद्धार करनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

(२) शरीर स्वास्थ्य—

जिस प्रकार राजयोगमें मानसिक और हठयोगमें शारीरिक श्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार ज्ञानकाण्डमें मानसिक तथा कर्मकाण्डमें शारीरिक श्रम करना होता है और शारीरिक श्रम विना शरीरकी आरोग्यताके हो नहीं सकता; इसी लिये शास्त्रकारोंने कहा है,—

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं मूलकारणम्।

"धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों उसीको मिलते हैं, जिसका शरीर नीरोग रहता है।" जो लोग शरीरकी अवहेलना करके भवसागरके पार जाना चाहते हैं, वे मानो जीर्ण नौकाके द्वारा एक असीम समुद्रको पार करना चाहते हैं, जिसका होना महदसम्भव है। इसीको लक्ष्यमें रखकर शास्त्रोंने जितने कर्म मनुष्यको बतलाये हैं, उनमें सबसे प्रथम शारीरिक स्वास्थ्यका विचार रक्खा है। इसके प्रमाणमें चातुर्मास्यके वे नियम हैं, जिनमें खाद्य-पेयके पदार्थोंका विधि-निषेध है। चरक एवं सुश्रुतके देखनेसे ज्ञात होता है, कि मनुष्यको ऋतुके अनुसार ही भोजन करना चाहिये। एक ऋतुमें जो वस्तु पथ्य होती है, अन्य ऋतुमें वही कुपथ्य होजाती है। इसको प्रायः सभी लोग जानते हैं और गीतामें भी कहा है:—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

"जो योगी आहार, विहार, सोना और जागना आदि कर्मोंको योग्य रीतिसे करता है, उसीका योग दुःखका नाशक है।" धर्मशास्त्रोंके प्रणेता महर्षि त्रिकालज्ञ थे; उन्होंने दक्षिणायन तथा उत्तरायण सूर्यके होजानेसे किरणोंके द्वारा वायुमें क्या क्या परिवर्त्तन होते हैं और उसका प्रभाव ऋतुओंके द्वारा खानेपीनेकी वस्तुओंपर तथा शरीरोंपर क्या पड़ता है—इन बातोंको वैज्ञानिक रीतिसे जानकर ही चातुर्मास्यमें खाद्यपेयका निषेध और विधान किया है। जबसे इन बातोंको हमने ढकोसला माना है, तभीसे चातुर्मास्यको रोगोंने

अपना घर बना लिया है। यदि हम सबल होकर कर्मयोगी बनना चाहते हैं; तो शास्त्रीय विधि-निषेधका हमको अवश्य ही पालन करना चाहिये।

(३) दान—

शास्त्रोंमें प्रत्येक मनुष्यका प्राण धर्म बतलाया है। वह धर्म चार चरण-वाला है—(१) सत्य (२) दया (३) तप और (४) दान। इनमेंसे सत्य दया और तप—ये तीन चरण तो युगके प्रभावसे ही टूट गये, अब कलियुगमें केवल दान ही शेष रह गया है। खेद है कि, आजकल भारतके लोग दानकी प्रथाको भी नष्ट कर रहे हैं। दानमें दो बातें मौलिक हैं,—(१) ममता नाश और (२) देशोन्नति।

ममताका नाश।

दान करनेवाला निःसन्देह ममताके भारसे हलका होता है। एक मनुष्यके पास १० मकान हैं। उनमेंसे उसने दोको दान कर दिया। दान करनेसे प्रथम वह दश मकान मेरे हैं—यह मानता था; परन्तु दान करनेके पश्चात् आठको ही अपने मानता है। इससे सिद्ध है, कि मनुष्य जितनी सम्पदाको दान करता है, उसकी उतनी ही ममता कम हो जाती है और ममताके साथ साथ ही अहन्ताका भी क्षेत्र छोटा होता जाता है। अहन्ता और ममता ही नरकके साधन हैं; अतः इनके नाशसे निश्चय ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

देशोन्नति।

यह मानी हुई बात है, कि दान करनेसे ही देशोन्नति होती है। जब हम गुणवान् तथा शास्त्रज्ञ लोगोंको दान देंगे, तो निश्चय ही देशमें गुणवानोंकी वृद्धि होगी—देशमें सद्गुणोंका प्रचार होगा। इसी कारण चातुर्मास्यमें अनेक प्रकारके दान करनेको लिखा है। जिस देशके बुद्धिमान् लोगोंको अपने गार्हस्थ्यकी आजीविकाके करनेमें ही समस्त शक्तिका व्यय करना पड़ता है, उनमें गुणोंका आविष्कार नहीं हो सकता। यद्यपि आजकल भारतमें दान प्रथाका ह्रास हो गया है, तथापि अन्य देशोंकी अपेक्षा अब भी अधिक है। इसमें सन्देह नहीं, कि अन्य देशोंके दानसे उन उन देशोंमें गुणवान् पुरुषोंकी वृद्धि हो रही है और हमारे दानसे मूर्ख, आलसी, अकर्मण्य, जवानी जमाखर्च करनेवाले वेदान्ती, कायर, स्त्री-लम्पट, अजितेन्द्रिय और चडस गांजा पीने वालोंकी वृद्धि हो रही है; जिससे देश दिन प्रतिदिन रसातलको चला जा रहा है।

है। यदि हमारी दानप्रणाली इसी प्रकारकी रही, तो बहुत सम्भव है, कि यह आर्य्यजाति नामशेष हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो अयोग्य दान करने वाले लोग इस नीलके टीकेको कल्पान्तमें भी न धो सकेंगे। यदि हमारे देशके दानी लोग यह सङ्कल्प करलें,—"कि हम जो भी दान करेंगे, वह किसी न किसी सुपात्रमें ही करेंगे" तो अचिरकालमें ही देश गुणाकर हो जाय और प्राचीन समयकी भांति अष्ट सिद्धि तथा नव-निधिका क्रीडा-स्थल बन जाय। हमारा दान अयोग्य व्यक्तियोंमें दो प्रकारसे जाता है-(१) सेवा और (२) दया। सेवा-दानकी प्रणाली भारतमें अधिकतासे चल पड़ी है। सेवा-दानमें योग्यायोग्यकी परीक्षा न रहनेसे यह दान प्रायः निर्गुण और मूर्खोंमें ही जाता है; जिससे मूर्खोंको पुरस्कार मिलता है और गुणवानोंका तिरस्कार होता है। यही कारण है, कि देशमें गुणियोंकी न्यूनता और मूर्खोंकी अधिकता हो रही है। आनन्द यह है कि इस प्रकारके दानसे दाताका भी कोई लाभ नहीं, कारण कि "सेवादानन्तु निष्फलं" यह कह कर शास्त्रोंने स्पष्ट कर दिया है, कि सेवा-दान व्यर्थ है। "धर्मदत्त आज-कल बहुत दुःखी है, अतः उसको दान देना चाहिये" जो लोग इस दयादृष्टिसे दान करते हैं; वे भी दानके मर्मसे अनभिज्ञ हैं। इस प्रकारकी दयादृष्टि अनाथ-रक्षाकी सीमा तक तो ठीक है; किन्तु दानप्रणालीकी विरोधिनी है। दयासे आकृष्ट हो कर दाता परवश हो जाता है और फिर वह गुणावगुणकी परीक्षा नहीं कर सकता; अतः यह दान भी गर्हित है। दान लेनेवालेकी दृष्टिसे दान नहीं करना चाहिये, किन्तु अपना सहज कर्त्तव्य समझ कर और पात्रापात्रका विचार कर करना चाहिये। यही बात गीतामें कही है:—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः॥

"दान देना यह मेरा कर्त्तव्य है, इस प्रकारका दान अनुपकारी—सेवकमें नहीं किन्तु देश, काल और पात्रमें दिया जाता है, वह सात्त्विक दान है।"

इन व्रतोंके अतिरिक्त तिथिपालन व्रत, गोपद्मव्रत भी इसी माससे आरम्भ किया जाता है। कहीं कहीं शुक्ला २ को श्रीजगन्नाथजीका रथोत्सव किया जाता है और शुक्ला १५ को व्यासपूजा अथवा गुरुपूजा देश भरमें की जाती है।

———:o:———

श्रावण मासके व्रतोत्सवोंका विवरण ।

चातुर्मास्यके अन्तर्गत होनेसे श्रावण मासमें अनेक धर्म कार्य्य होते हैं; परन्तु उनमें कुछ तो धार्मिक हैं और कुछ दैशिक हैं। जो धार्मिक हैं, इस पुस्तकमें उनका ही वर्णन होगा।

प्रायः सिंह-राशिपर सूर्य्य श्रावण अथवा भाद्रपदमें ही आता है। सिंह राशि-गत सूर्य्यमें यदि गऊको बच्चा उत्पन्न हो, तो गायत्रीके साथ सरसोंसे हवन कराकर दक्षिणाके सहित उसी गायको ब्राह्मणके लिये देना चाहिये और यदि उसी सूर्य्यमें रात्रिके समय गाय चिल्लाय, तो मृत्युञ्जयका जप कराना चाहिये। इस विषयमें धर्मसिन्धुकारकी यह सम्मति है:—

माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकः॥

"माघ-मास बुधवारमें भैंस, श्रावण-मासमें दिनको घोड़ी और सिंहके सूर्य्यमें यदि गायको बच्चा उत्पन्न हो, तो मालिकको मृत्युके समान कष्ट होता है।"

श्रावणमें जितने भी सोमवार हों, उनमें धर्मसिन्धुकारने व्रत या उपवास करना बतलाया है और मङ्गलवारको मङ्गला नामक गौरीका व्रत किया जाता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ सौभाग्यवर्धनके निमित्त करती हैं। राजपूतानेके प्रायः नगरोंमें सोमवार और मङ्गलवारोंको मेला होता है तथा स्त्रियाँ व्रत भी करती हैं। श्रावण-शुक्ला ३को चैत्री गणगौरीके समान मेला भी होता है; बल्कि "बूँदी" स्टेटको तीजें प्रसिद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त श्रावणशुक्ला पंचमी नागपंचमी कहाती है और शुक्ला द्वादशीको शाक-दान होता है, अर्थात् चातुर्मास्यके व्रती जिन शाकोंको न खानेका नियम करते हैं, उनका द्वादशीको दान किया जाता है। श्रावण शुक्ला द्वादशीको विष्णु पवित्रा और शुक्ला चतुर्दशीको शिव पवित्रा होती है। पवित्रा धारणकी विधि इस प्रकार है, "कपासका सूत कातकर उसकी नव सूत्री बनावें। इस प्रकारकी नव सूत्रियाँ १०८ हों। प्रत्येक नव सूत्रीमें चौबीस गाँठ दे। जब ये सूत्रियाँ तयार हो जांय, तब पञ्चगव्य—घृत, दूध, दही, गोबर और गोमूत्रमें

भिगोकर कुमकुमसे रंगे और बाँसकी टोकरीमें रखकर अपने इष्टदेवके सामने रख दे। प्रथम तो षोडशोपचार पूर्वक भगवान्का पूजन करे। और फिर चित्राओंको धारण करावे, तदनन्तर आप धारण करे श्रावण शुक्ला पौर्णिमाको भी तीन उत्सव होते हैं,—"(१) उपाकर्म, (२) हयग्रीवावतार और (३) रक्षा बन्धन।" उपर्युक्त त्यौहारोंमेंसे यहां केवल तीन त्यौहारोंका वर्णन किया जायगा,—नागपंचमी, श्रावणी और रक्षाबन्धन।

१—नागपञ्चमी ।

शास्त्रीय स्वरूप ।

श्रावण-शुक्ला पञ्चमीको नागपूजा होती है, इसलिये इसको "नाग-पञ्चमी" कहते हैं। नागपंचमी षष्ठि-विद्धा लेनी चाहिये, क्योंकि नागोंकी प्रसन्नता षष्ठि-विद्धामें ही होती है। हेमाद्रिके प्रभासखण्डमें लिखा है,—

महादेव उवाच—श्रावणे मासि पंचम्यां शुक्लपक्षे तु पार्वति !
द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्वणाः ॥
सा तु पुण्यतमा प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा ।
कुर्याद् द्वादशवर्षाणि पंचम्यां च वरानने ॥

"हे पार्वति ! श्रावण शुक्ला पंचमीको घरके दरवाजेकी दोनों ओर गोबरसे नागकी मूर्त्ति लिखे। यह नागपंचमी मनुष्योंको तो क्या, परन्तु देवोंको भी दुर्लभ है। जो मनुष्य बारह वर्ष तक इसको करता है, वह महत्फलका भागी होता है।" चतुर्थीके दिन एक बार भोजन कर पुनः पञ्चमीको रातको भोजन करना चाहिये। चांदी, स्वर्ण, काष्ठ अथवा मृत्तिकाकी लेखनीके द्वारा हल्दी तथा चन्दनसे पांच फण वाले पांच सर्प लिखे। पञ्चमीके दिन खीर, पञ्चामृत, करीर और कमलके पुष्पोंसे तथा गन्ध और धूप आदिसे पांचों नागोंका पूजन करे। पूजनके पश्चात् लड्डू और खीरसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। नागोंमें बारह नाग प्रधान हैं,—"अनन्त, वासुकी, शेष, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालीय, तक्षक और पिङ्गल। इनमेंसे एक-एक नागकी एक-एक मासमें पूजा करनी चाहिये। प्रति मास क्षीरसे ब्राह्मण-भोजन कराने चाहिये और पूजा करानेवाले व्यासको गऊ और स्वर्णका नाग देना चाहिये। नागपञ्चमीके दिन भक्ति-पूर्वक नागका पूजन करे और पृथिवी नहीं खोदे।

लौकिक-स्वरूप ।

नागपञ्चमीके शास्त्रीय-स्वरूपसे यह नहीं जाना जाता, कि नागपञ्चमी किस समय और किस कारणसे हिन्दू-समाजमें प्रचलित हुई । यद्यपि इस विषयमें अनेक मनुष्योंने अनेक बातें लिखी हैं, परन्तु उनमें शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक प्रमाण न होनेसे विश्वास नहीं किया जा सकता। हाँ, राजपूताना और यू० पी० के कुछ भागकी स्त्रियाँ नागपञ्चमीके दिन एक कहानी कहा करती हैं,—"एक कृषक सकुटुम्ब मणिपुर नामक नगरमें रहता था। उसके दो लड़के और एक कन्या थी। इसने एक समय अपने खेतको जोतनेके लिये, जब हल जोता, तो हलके अग्रभागसे एक नागिनीके तीन बच्चे मर गये । नागिनीने प्रथम तो शोक किया और फिर बच्चोंको मारनेवाले कृषकसे बदला लेनेका सङ्कल्प किया। (सर्प बदला लेता है, यह बात प्रसिद्ध है। मेरा भी पूर्ण विश्वास है, कारण कि मैंने स्वयं इस प्रकारकी घटनाको देखा है । सर्पकी तरह ऊँट भी बदला लेता है, परन्तु मस्तीके दिनोंमें। "सर्प बदला लेता है"—यह बात जब मैंने गारुडियोंसे पूछी, तो वे कहने लगे, कि सब सर्प बदला नहीं लेते, किन्तु द्विजन्मा ही लेता है। जो जीव देवयोनिको छोड़कर सर्पयोनिमें आता है, उसको द्विजन्मा कहते हैं। पुराणोंमें भी देव-योनि और सर्प-योनिका घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है; बल्कि कोशमें तो सर्पोंका नाम देव-योनिमें ही आया है। किसी-किसी सर्पका कर्त्तव्य भी देव-योनिके समान देखा जाता है। जनमेजयके सर्पयज्ञसे निकल कर तक्षक नामक सर्प इन्द्रकी शरणमें गया और अपनी रक्षा कराई। इसके अतिरिक्त नाग-कन्याओंके साथ क्षत्रियोंका विवाह भी हुआ है। सर्पोंने किसीको अमृत और किसीको धन दिया, यह भारतमें भी लिखा है। इससे विदित होता है, कि सर्प अवश्य ही द्विजन्मा होता होगा और बहुत सम्भव है, कि यह नागिनी उसी योनिकी हो ।—अस्तु,) रात्रिके समय उस नागिनीने उस कृषक तथा उसकी स्त्री और दोनों लड़कोंको डसा, जिसके कारण वे चारों मर गये । दूसरे दिन जब वह सर्पिणी लड़कीको डसने गई, तो लड़कीने डरके मारे उसके आगे दूध रख दिया और प्रार्थना करने लगी। यद्यपि लड़कीको विदित नहीं था तथापि वह दिन नागपञ्चमीका था, जिससे नागिनी प्रसन्न हो गई और लड़कीसे वर माँगनेको कहा। लड़कीने वर लेकर अपने माता, पिता और भाइयोंको जीवित करा लिया। उस दिनसे ही नागपञ्चमीके व्रतका लोकमें प्रचार हुआ।"

राजपूताना और यू० पी० के अतिरिक्त यद्यपि यह कहानी बङ्गाल, दक्षिण और उत्तर भारतमें भी प्रसिद्ध है, तथापि पुराणोंमें इसका आधार नहीं मिलता। शास्त्रीय-स्वरूपमें-"नाग पञ्चमीको हलका जुता न खाना तथा पृथिवी न खोदना, यह लिखा है, परन्तु न खानेका कारण नहीं लिखा। यदि दन्तकथाका सम्बन्ध इससे मान लिया जाय, तो पृथिवी न खोदनेका भी समाधान हो जाय और दन्तकथाका मूल पुराणमें भी मिल जाय। मणिपुर नगर बङ्गाल प्रान्तमें है। वहाँपर भी दक्षिणके समान नाग-पंचमीका प्रचार अधिक है और कमलके पुष्पपर बैठी हुई विषहरा नामकी देवी सर्पोंकी अधिष्ठात्री मानी जाती है तथा उसके नामसे सर्प-जन्य व्याधिकी निवृत्ति होती है, ऐसा वहाँके लोग मानते हैं। उपर्युक्त कहानीका एक और भी आधार पुराणोंमें मिलता है,—"अर्जुनका विवाह वासुकी नागकी कन्याके साथ मणिपुरमें हुआ था। यदि बङ्गाल प्रान्तका यह वही मणिपुर है तब तो यहाँ सर्पोंका राजा वासुकी रहता था, जिसको विभूति अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने अपना ही स्वरूप बतलाया है। इससे यह निश्चय होता है, कि इस दन्तकथाका आधार पुराणोंमें अवश्य है। 'परन्तु यह मिथ्या है, कि उसी दिनसे संसारमें नागपूजाका प्रचार हुआ। अति प्राचीन वैदिक कालमें श्रावणी-पूर्णिमाके दिन "पाक यज्ञ" किया जाता था और वह उन मन्त्रोंसे किया जाता था, कि जिनमें सर्पोंकी स्तुति की गई है। इस पाकयज्ञका विवरण गृह्यसूत्रकार गौतमने भी अपने सूत्रोंमें किया है; इसलिये यह अनादि कालसे चला आता है। अस्तु, आज कल भी प्रायः सब देशोंमें नाग-पूजा होती हैं, परन्तु वैदिक पाकयज्ञकी विधिसे नहीं, किन्तु न्यूनाधिक प्रमाणसे हेमाद्रिके अनुसार होती है। पञ्जाब प्रान्तीय काङ्गड़ा स्थानमें भी नाग पूजा होती है। राजपूतानामें नाग-पूजा अच्छी प्रकारसे होती है। वहाँ तेजाजी नामक एक प्राचीन व्यक्ति सर्पोंका अधिपति माना जाता है और उसके नामकी डसी बाँधनेसे सर्पका काटा हुआ नहीं मरता, ऐसी प्रसिद्धि है। इस तेजाजीकी स्वतन्त्र पूजा भाद्रपद-शुक्ला दशमीको होती है। किसी किसीका मत है, कि श्रीकृष्णने कालीय सर्पको यमुनासे निकालकर रमणक द्वीपको भेजा, तबसे नाग पूजा होती है, परन्तु यह निर्मूल है। वैदिक व्यवस्थाके मिलनेसे इसके अनादित्वमें सन्देह नहीं रहा।

"नाग-पूजा देवोंको भी दुर्लभ है"—यह कथाभागमें लिखा है। इससे अनुमान होता है, कि नाग-पूजाके मूलमें कोई मौलिक बात अवश्य है। मेरी

समझमें वह मौलिकता यह है,—"परमात्माका नारायण नाम सृष्टिके पूर्वका है; कारण कि नारा—जलका और अयन—घरका नाम है; अतः नारायण यह नाम उस अवस्थाको प्रकट करता है, जब जलके अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उस जलमें शेषनागकी शय्यापर विष्णु शयन कर रहे थे और लक्ष्मीजी चरणोंको दबा रहीं थीं तथा नाभिके कमल-नाल पर ब्रह्माजी थे। इससे विदित होता है, कि ब्रह्माकी उत्पत्तिसे भी शेषनाग पहले था। अब देखना यह है, कि वह नाग क्या है, जो सब सृष्टिके पूर्वमें था। सत्त्व रज और तम प्रकृतिके ये ही तीन गुण हैं और इनका ही मिश्रण यह जगत् है सत्त्वगुण प्रकाश-स्वरूप है, तमोगुण अन्धकार-स्वरूप है और रजोगुण इनका मिश्रण है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों पृथक् पृथक् तब तक ही रहते हैं, जब तक कि प्रकृतिमें क्षोभ-आन्दोलन-नहीं होता। क्षोभ होनेपर एकमें दूसरेका सञ्चार हो जाता है और उस समय वे मिश्रित गुण कहलाते हैं। मिश्रित सत्त्वगुण विष्णुका स्वरूप, मिश्रित रजोगुण ब्रह्माका स्वरूप और मिश्रित तमोगुण शेषनागका स्वरूप है। मिश्रित-गुणोंकी योग्यतानुसार ही ब्रह्मकी चिदादि शक्तियोंका विकाश हुआ है। सत्त्वगुणसे विष्णु और रजोगुणसे ब्रह्माकी उत्पत्ति तो हो गई, परन्तु तमोगुण शेष रहा, उससे ही वर्तमान जगत्की उत्पत्ति हुई है; इसी लिये किसी किसीके मतमें अज्ञानको ही जगत्का मूल माना गया है। इससे स्पष्ट है, कि त्रिगुणात्मक जगत्का आधार तमोगुण ही है, जिसको सर्पकी आकृतिमें बतलाया गया है। यही कारण है, कि जगत्के लय हो जानेपर शेष ही शेष रहता है और शेषके फणपर ब्रह्माण्ड स्थित है, इसका भी यही मूल कारण है। सारांश, आदिकारण तमोगुणमें ब्रह्मकी सत्ताका विकाश ही शेषनाग है।" इसी ईश्वरीय-सत्ताके दो जन्म मानुषीयोनिमें भी हुए हैं;—"रघुकुलमें लक्ष्मण और यदुकुलमें बलराम।"

उपर्युक्त विवरणसे पाठकोंको विदित हुआ होगा, कि नाग यह सृष्टिके आदिकी योनि है, परन्तु सामान्य नागोंकी नहीं; शेष-नागकी है। सामान्य नागोंकी सृष्टि तो कश्यप महाराजकी कद्रू नामक धर्म-पत्नीसे हुई है। यद्यपि शेषनाग दैवी सृष्टिका नाग है, इससे सामान्य नाग तथा शेषनागमें पृथ्वी आकाशका अन्तर है; तथापि योनि-तादात्म्यका लाभ तो सभीको मिलता है। यादवोंमें कृष्ण और सूर्य्य-वंशियोंमें रामका अवतार हुआ, जिससे यादव वंश और सूर्यवंश आज-तक आदरकी दृष्टिसे देखे जाते है। वास्तवमें देखा जाय

तो कृष्ण और राम ब्रह्मावतार हैं, सामान्य क्षत्रियोंसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं; परन्तु योनि-तादात्म्यसे दोनों वंशोंको लाभ हुआ। इसी प्रकार शेषनागके अलौकिक होनेमें सन्देह नहीं, परन्तु योनि-तादात्म्यसे सब नागोंको लाभ हुआ। तभी तो सर्पदेव परम-पावन भगवान् भवके मस्तकपर अलङ्कार-रूपसे विराजे और भगवान् कृष्णको "वासुकी मैं हूं"—यह गीतामें कहना पड़ा। सम्भवतः इसी प्रबल कारणको लेकर पाकयज्ञके द्वारा वेद भगवान्ने सर्प-पूजाका विधान किया और इसी कारणसे पुराण तथा इतिहासोंने "नागपूजा देवोंको भी दुर्लभ है"—यह कहा।

शिक्षा।

नागपञ्चमीकी पूजासे दो मौलिक शिक्षाएँ हमको मिलती हैं,—(१) विभूतिपूजा और (२) साम्य-दृष्टि।

(१) विभूति-पूजा।

संसारके और आस्तिक लोगोंकी तरह सनातन-धर्मी ब्रह्मकी तो पूजा करते ही हैं, परन्तु अधिकता यह है, कि ब्रह्मकी विभूतियोंका भी उतनाही आदर करते हैं, जितना कि विभूतिमानका। बहुतसे लोगोंको यह सन्देह होता है, कि सनातन-धर्मी लोगोंके पास विभूतिको जाननेकी क्या कसौटी है? परन्तु इस शंकाका यहां अवकाश नहीं है; क्योंकि गीताके विभूति-अध्यायमें स्वयं भगवान्ने सब विभूतियोंका वर्णन करदिया है और अन्तमें विभूतियोंको पहचाननेकी कसौटी बतलाते हुए कहा है,—

यद्यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥

"विभूति वाला, श्रीमान् और प्रतापी जीव संसारकी स्थावर तथा जङ्गम किसी भी योनिमें क्यों न हो, वह मेरे ही तेज तथा अंशसे उत्पन्न है।" इसी कसौटीके अनुसार हमारे महर्षियोंने विभूति-पूजाकी आज्ञा दी है। विभूति-पूजाका अभिप्राय उस शरीरकी पूजाका नहीं है, किन्तु उस शरीरके द्वारा परमात्माके अंशका जितना विकाश हुआ है, उसकी पूजा है। यही सिद्धान्त वासुकी आदि द्वादश नागोंकी पूजाका है। नाग-पञ्चमीकी पूजाका चरित-नायक विभूतिमान् सर्प था—यह उसके पांच-फणोंसे जाना जाता है। इस कारण नागपूजा अन्ध-परम्परा नहीं, किन्तु विभूति पूजा है। भगवत्पूजाका

करने वाला यदि विभूति-पूजाको न करे, तो उतने अंशमें उसको हम नास्तिक कह सकते हैं।

२—साम्य-दृष्टि।

धर्म रक्ष्य है और नीति रक्षिका है; परन्तु पाश्चात्य-शिक्षाके कुसंस्कारोंके कारण कुछ लोग इस परम सिद्धान्तको भूल कर धर्म और नीतिको एक ही बतलाते हैं और जब कोई धर्मकी बात उनके सामने आती है, तो "यह धर्म ठीक है, या नहीं।" इसकी कसौटी नीतिको बताते हैं। यदि इस जांचमें धर्म, नीतिके साथ तुल गया, तो ठीक है, वरना ये महानुभाव उस धर्मको एकदम देशनिकाला देनेके लिये प्रस्तुत हो जाते हैं और अनायास ही कह देते हैं, कि यह अधर्म है। मैं नीति और धर्मको नितान्त दूर तो नहीं मानता, परन्तु नीतिसे धर्मकी जांच की जाय इसको अवश्य ही अनुचित मानता हूँ। हां, धर्मसे नीतिकी परीक्षा की जाय, इसको श्रेष्ठ मानता हूं। सामान्य-धर्म और नीति-ये दोनों अवश्य ही साथ-साथ चलते हैं; परन्तु धर्म जब सामान्यावस्थाको छोड़ कर विशेषावस्थाको ग्रहण कर लेता है, तब नीतिको बहुत पीछे छोड़ देता है। देखो; एक मनुष्यने हमसे दुष्टता की। नीति बतलाती है:—

शठे शाठ्यं समाचरेत्।

"दुष्टके प्रति दुष्टता करो।"—डण्डाका जवाब डण्डासे दो; परन्तु धर्म यह नहीं बतलाता; क्योंकि दुष्टके प्रति दुष्टता करनेके लिये जब तक हम अपनी वृत्तियोंको मलिन किम्बा रजोगुणी न बनायंगे, तब तक काम नहीं चल सकता और धर्मात्मा मनुष्यका अन्तःकरण सदैव शान्ति-रससे भरा रहता है; उसमें एक छोटीसी कंकरी डाल देनेसे भी अशान्ति उत्पन्न हो सकती है, जिससे अनेक वर्षोंका परिश्रम निष्फल चला जाता है; अतः धर्मात्मा पुरुष अपनी वृत्तियोंको बाह्य विघ्नोंसे सुरक्षित रखना चाहता है। इसी सिद्धान्तको लक्ष्य करके श्रीकृष्णने कहा है:—

समः शत्रौ च मित्रे च।

"शत्रु और मित्रमें समान दृष्टि रखनी चाहिये।" इस उच्च आदर्शको सामने रख कर जब लोग नागपंचमीको देखेंगे, तो उनको आर्योंकी सभ्यता तथा धर्मपरायणताका पता लगेगा। दूधके देनेवाली गऊका पूजन करनेवाली तो जाति कदाचित् मिल सके, परन्तु जहर उगलने वाले सर्पका पूजन करने वाली तो आर्यजाति ही है।

२—उपाकर्म—श्रावणी।

शास्त्रीय-स्वरूप।

उपाकर्म—श्रावणीका विधिवत् वर्णन विशद रीतिसे नहीं पाया जाता। हाँ निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धुमें कालनिर्णयपर बहुत विवाद चला है। यद्यपि आन्हिकसूत्रावलीमें उपाकर्मको साङ्गोपाङ्ग लिखा है; परन्तु वहाँ एक यज्ञकी तरह आचार्य और ब्रह्मा आदिका वरण करना बतलाया है। पं० शिवदत्तजीने यजुर्वेदियोंकी उपाकर्म-पद्धतिका पृथक् संग्रह किया है, जो नारायणप्रेस कलकत्तामें छपा है। इसमें प्रायः सब शाखावालोंकी प्रक्रिया आगई है। इस पद्धतिमें अग्निहोत्र आदिपर विशेष जोर न देकर किसी नदी अथवा तलावपर जाकर अनेक वार स्नान करनेकी और नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी समस्त विधि लिखी है। आन्हिकसूत्रावली और उपाकर्मपद्धति इन दोनोंके मन्थनका सार यह है,—"उपनीत ब्रह्मचारी और द्विजोंको चाहिये, कि ग्रामके समीप अच्छे तलाव या नदीके किनारे पर जाकर उपाध्यायकी आज्ञानुसार शास्त्रोक्त विधिसे श्रावणीको करें।" प्रारम्भमें शरीरकी पवित्रताके लिये दुग्ध, दधि, घृत, गोबर और गोमूत्रको पान करें और यथाशास्त्र तयार की हुई वेदीपर हविष्यान्नसे आहुतियाँ दें—इसी कार्य्यको उपाकर्म कहा जाता है। तदनन्तर जल-प्रवाहके सामने जलमें खड़े हो कर और हाथ जोड़ कर सूर्य्यकी स्तुति करे तथा निम्नलिखित श्लोकसे जलकी भी प्रार्थना करे,—

केवलं पावनार्थाय मादृशामकृतात्मनाम्।
कृतस्थिते त्वयि स्नामि प्रसीद च पुनीहि माम्॥

इसके अनन्तर अरुन्धति और सप्तर्षियोंका पूजन करे इसके पश्चात् दधि तथा सत्तूकी आहुतियाँ दे—इसीको उत्सर्जन कहते हैं।

आज कल उपाकर्म और उत्सर्जनविधि उसी समय कर ली जाती है, परन्तु यह प्राचीन विधि नहीं है। धर्मसिन्धुमें लिखा है:—

उत्सर्जनकालस्तु नेह प्रपंच्यते सर्व-शिष्टानामिदानीमुपाकर्म-दिन एवोत्सर्जन-कर्मानुष्ठानाचारेण तन्निर्णयस्यानुपयोगात्।

"यहां उत्सर्जन कालका निर्णय नहीं किया जाता है; क्योंकि आज-कल सब लोग उपाकर्मके दिन ही उत्सर्जन भी कर लेते हैं; अतः उसके कालका निर्णय करना व्यर्थ है।" धर्मसिन्धुकारका यह कटाक्ष ही बतलाता है, कि उपाकर्म और उत्सर्जनमें काल-भेद है। प्राचीन कालीन पाठशाला (स्कूल), विद्यालय (हाई स्कूल) और महाविद्यालय (यूनीवर्सिटी) की पढ़ाई और प्रकारसे होती थी और आज-कल और प्रकारसे होती है। अन्तर इतना ही है, कि आज-कलकी पढ़ाईसे उत्तीर्ण हुआ लड़का पूर्णस्वार्थी और कूट-नीतिज्ञ बन जाता है और प्राचीन ढँगकी पढ़ाईसे परार्थी एवं धर्मनीतिवाला होता था। एक और भी अन्तर है—आज-कल जिन पुस्तकोंके द्वारा जो ज्ञान छात्रोंको होता है, वे उन्हें रटकर उत्तीर्ण हो जाते हैं। अभ्यसित ज्ञानका न तो अनुभव ही होता है और न वह ज्ञान क्रियारूपमें आता है। प्राचीन कालके छात्र ज्ञान, अनुभव और क्रिया तीनोंमें उत्तीर्ण होते थे। उसका क्रम यह था—महर्षि लोग श्रावण-शुक्ला पौर्णिमाके दिन छात्रोंसे उपाकर्म कराकर पढ़ाना प्रारम्भ कराते थे और माघ-कृष्णमें उत्सर्जन हो कर पढ़ाई बन्द की जाती थी। शेष महीनोंमें अभ्यसित ज्ञानको अनुभव और क्रियामें परिणत करनेका प्रबन्ध था। इसी आशयको लेकर उपाकर्म और उत्सर्जनकी प्रथा थी, जिसको श्रावणी कहते हैं। आज-कलकी श्रावणीको उस प्राचीन प्रणालीका स्मारक समझना चाहिये और जब तक प्राचीन प्रणालीकी पुनः प्रतिष्ठा न हो जाय, तब तक बीजरक्षाके लिये इसका करना परमावश्यक है। अस्तु, उसके बाद गायत्रीको दश बार जप कर यज्ञोपवीतको धारण करे और यह मन्त्र बोले,—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

गुरु तथा पूज्यपुरुषोंको नमस्कारपूर्वक यज्ञोपवीत देकर और जीर्ण यज्ञोपवीतको त्याग कर नवीनको धारण करे। इसके बाद मृत-पुरुषोंके लिये तिल-तर्पण करनेका भी विधान है; परन्तु जो लोग तर्पण करें, वे एक-भुक्त रहें।

किस वेदके अनुयायीको उपाकर्म किस कालमें करना चाहिये, इसका पूर्ण विवरण तो धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धुमें है, परन्तु स्थूलदृष्टिसे यहां भी थोड़ासा लिखा जाता है, जिससे विशेष कठिनाई नहीं रहेगी। ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और

सामवेदियोंने अपना अपना काल पृथक् पृथक् निर्वाचित किया है। ऋग्वेदियोंने श्रवण और हस्त नक्षत्र तथा पंचमीको उत्तम माना है; परन्तु प्रधानता श्रवण नक्षत्रकी ही है। यदि पौर्णिमाको श्रवण नक्षत्र न आया, तो पंचमी या हस्तको लेना चाहिये। यद्यपि यजुर्वेदियोंने पौर्णिमाको ही लिया है, तथापि शाखा-भेदके कारण पौर्णिमा कौनसी हो? यह विवाद चलपड़ा है। किन्हींने आषाढ़ी और किन्हींने भाद्रपदी पौर्णिमाको उत्तम माना है। सामवेदियोंकी श्रावणीका काल भाद्रपदके शुक्लपक्षका हस्त नक्षत्र है; परन्तु धर्मसिन्धु-कारका मत है, कि इस कालको भी बदलनेकी आवश्यकता हो, तो बदल दिया जाय।

लौकिक स्वरूप।

श्रावणी-कर्म प्रायः सब देशोंमें प्रचलित है; परन्तु शोक है, कि इसको केवल ब्राह्मणोंका ही मान कर क्षत्रिय और वैश्य द्विजन्मा हो कर भी नहीं करते। श्रावणी ब्राह्मणोंकी, दशहरा क्षत्रियोंका, दीपावली वैश्योंकी और होलिका शूद्रोंकी है, यह निराधार कल्पना चलपड़ी है। श्रावणीका प्रचार दक्षिण, गुजरात, उड़ीसा और बङ्गालमें विशेष है। उत्तरभारत, संयुक्तप्रान्त, पंजाब और राजपूतानेमें कम है। आज कल हवन तो क्वचित् ही होता है; परन्तु श्रावणीके दिन प्रायः लोग नदी तथा तलावपर जाकर, पंचगव्य-प्राशन तथा स्नान करके उपाकर्मकी समाप्ति करते हैं। कितनेही धनिक लोग तो घरपर ही कर लेते हैं। श्रावणी पौर्णिमाके दिन स्त्रियाँ श्रवणकी भी पूजा करती हैं और समझती हैं, कि यह पूजा माता पिताके परमभक्त उस श्रवणकी है, जिसका वध महाराजा दशरथके हाथसे हुआ, परन्तु यह उनकी भूल है। श्रावणी-पौर्णिमाको श्रवण-पूजा—यह श्रवण नामक व्यक्तिकी न हो कर वैदिक पाकयज्ञ है, जो नागपंचमीमें बतलाया जाचुका है और सर्पोंकी प्रसन्नताके लिये किया जाता है। इसका सम्बन्ध रक्षाबन्धन तथा उपाकर्मसे नहीं, किन्तु स्वतन्त्र है।

शिक्षा।

उपाकर्म स्वतन्त्र त्योहार नहीं, किन्तु अध्ययनाङ्ग है। अर्थात्—उपाकर्मके दिनसे गुरु-गृहमें रहने वाले ब्रह्मचारियोंको पढ़ानेका आरम्भ हो कर माघमासमें समाप्तिके समय उत्सर्जन किया जाता था; अतः प्रतिवर्ष उपाकर्म हुआ करता था और जो छात्र ब्रह्मचर्यको समाप्त करके गार्हस्थ्यमें प्रवेश करते थे, वे भी श्रावणीके दिनसे नित्य वेद-पाठका प्रारंभ करके माघमें समाप्त करते

थे । मनुष्यकी परमायु सौ वर्षकी मानी है । ये सौ वर्ष आनन्दसे व्यतीत हो जायँ और अन्तमें भगवत्सायुज्य प्राप्त हो जाय, इस प्रकारके नियमोंको मनुष्य-समाजमें प्रचलित करना ही शास्त्रोंका उद्देश्य है । इसी उद्देश्यका लक्ष्यमें रख कर शास्त्रोंने मनुष्यकी आयुके दो विभाग किये हैं,—(१) पूर्वार्द्ध और (२) उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्धमें निवृत्ति-मूलक प्रवृत्तिकी शिक्षा और उसका अनुभव तथा उत्तरार्द्धमें निवृत्तिकी शिक्षा और उसका अनुभव । प्रवृत्तिके दो भागोंका नाम ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य तथा निवृत्तिके दो भागोंका नाम वानप्रस्थ एवं संन्यास है । इस प्रकारसे मनुष्यकी आयुके ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार विभाग होते हैं ।

उपर्युक्त चारों अवस्थाओंकी मूल-भित्ति ब्रह्मचर्यावस्थाही है । जिस पुरुषका ब्रह्मचर्य विगड़ गया उसकी शेष तीन अवस्थाएँ भी विगड़ जाती हैं । उतारमें गाड़ी नीचेकी तरफ स्वयं लुड़कती चली जाती है; परन्तु चढ़ाईमें कितना कष्ट होता है, यह बैलोंसे पूछो । विषय-भोग नीचेका और निवृत्ति ऊपरका प्रवाह है; अतः विषयोंके साथ बहनेमें पुरुषको विशेष वीर्य (बल)की अपेक्षा नहीं है, परन्तु निवृत्तिकी विकट चढ़ाई-पर चढ़नेके लिये बलवान् होनेकी बड़ी भारी आवश्यकता है । अथवा इसी बातको यों भी दुहरा सकते हैं, कि संसारके भोगोंका गुलाम बननेमें किसी प्रकारके प्रबल पुरुषार्थकी आवश्यकता नहीं; परन्तु भोगोंपर विजय प्राप्त करनेमें अवश्य ही बड़े भारी बलकी अपेक्षा है । इसी कारण सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्में बलकी महिमा इस प्रकार लिखी है:—

> बलं बलविज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते । स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन् परिचिता भवति । परिचरन्नुपसत्ता भवति उपसीदन् द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति, बोद्धा भवति, कर्त्ता भवति, विज्ञाता भवति । बलेन वै पृथ्वी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वताः बलेन देव-मनुष्या बलेन पशवश्च ।

"सौ विज्ञानवालोंको एक बलवान् कम्पित कर सकता है, बलसे ईश्वरके भी पहुंच सकता है और बलसे श्रोता, ज्ञानी तथा विज्ञानी हो सकता अन्तरिक्ष, स्वर्ग और पर्वत ये सब बलपर ही ठहरे हैं और बलसे ही देव;

मनुष्य तथा पशु अपने अपने कार्योंको करते हैं; अतः बलको ही ईश्वर मान कर उसका स्राश्रय करना चाहिये।"

उपनिषद्के उपर्युक्त प्रमाण और संसारके प्रत्यक्ष अनुभवसे बलकी आवश्यकता प्रतीत होती है; इसलिये बली होना यह पुरुषका आद्य कर्त्तव्य है। यद्यपि बलप्राप्तिके लौकिक तथा वैदिक अनेक साधन हैं, परन्तु परम साधन ब्रह्मचर्य ही है; अतः योगशास्त्रमें लिखा है,—

ब्रह्मचर्याद् वीर्य-लाभः।

"वीर्य्यका लाभ ब्रह्मचर्य्यसे ही होता है।" इसी ब्रह्मचर्यावस्थाका सूचक यह उपाकर्म है, जिसकी नकल मात्र अब रह गई है। परमात्मा करे, कि उसी प्राचीन प्रणालीका प्रचार फिर भी देशमें हो जाय। प्राचीनकालीन ब्रह्मचर्य्याश्रममें जिन विषयोंको ज्ञान, अनुभव और क्रियामें परिणत कराया जाता था, उनका थोड़ासा वर्णन तैत्तरीयोपनिषद्में इस प्रकारसे आया है:—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। देव-पितृ-कार्याभ्यान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यान्न प्रमदितव्यम्। मातृ-देवो भव। पितृ-देवो भव। आचार्य-देवो भव। अतिथि-देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्।श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजा-तन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।

"सत्य बोलो। धर्मानुकूल चलो। पढ़नेमें भूल मत करो। सत्य बोलनेमें प्रमाद मत करो। धर्माचरणमें प्रमाद मत करो। अपने कल्याणमें प्रमाद मत करो। प्रतापी बननेमें प्रमाद मत करो। देवकार्य्य और पितृ-(मृत-पितरोंका श्राद्ध अथवा तर्पण) कार्य करनेमें प्रमाद मत करो। स्वाध्याय और प्रवचन व्याख्यान करनेमें प्रमाद मत करो। माताको देवताकी तरह मानो। पिताको देव-सदृश समझो। आचार्य्यको देव समान मानो। अतिथिको देवता मानो। हमारे जो कर्म निन्दनीय न हों, उनका ही सेवन करो, दूसरोंका नहीं। हमारे जो सत्कर्म हैं उनका ही आचरण करो, निन्द्योंका नहीं। जो हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हों,

आसन देकर उनके श्रमका परिहार करो। जो देना हो, श्रद्धासे दो। अश्रद्धासे दो मर्यादासे दो। पर-लोकके डरसे दो। समझ कर दो। आचार्य्यको धन देकर गार्हस्थ्यका उपभोग करो।"

ये वेही उपदेश हैं, कि जिनको पढ़कर और आचरणमें लाकर भारतीय-विद्यार्थी राष्ट्रोन्नतिके पात्र बनते थे। उपाकर्म करनेवाले सज्जनोंको चाहिये, कि प्रतिवर्ष श्रावणीके उत्सवको करते हुए अपने बालकोंको ब्रह्मचर्य्याश्रममें प्रविष्ट करा कर सच्चा उपाकर्म करायें।

३—रक्षाबन्धन ।

शास्त्रीय-स्वरूप ।

श्रावण-शुक्ल-पौर्णिमाके दिन उपाकर्म और श्रवण-पूजाका विवरण पूर्वमें किया जा चुका है। दक्षिणमें इसी दिन "पोवती-पौर्णिमा" का भी उत्सव किया जाता है। पोवती-पौर्णिमामें पवित्रा बनाकर, विष्णु, शिव, गणेश और देवीको धारण करा कर स्वयं पहननेकी रीति है, जो पवित्रा द्वादशीके विवरणमें लिखी जा चुकी है। बम्बई आदि बन्दरोंमें इस दिन "नारली-पौर्णिमा" का भी उत्सव किया जाता है। इस नारलीपौर्णिमामें वरुण-देवताके प्रसन्नतार्थ समुद्रकी पूजा की जाती है। इससे कितने ही लोग अनुमान करते हैं; कि श्रावण सुदी पौर्णिमाके बाद समुद्रमें थोड़ी थोड़ी शान्ति स्थापित हो जाती है और नौकाओंका आना जाना प्रारम्भ हो जाता है। अतः प्राचीन कालमें विलायतोंको माल ले जानेवाले भारतीय व्यौपारी लोग समुद्रका पूजन करके यात्रा करते थे। हिन्दुओंमें यह असाधारण-नियम सदैवसे रहा है, कि वे जब किसी कार्यका प्रारम्भ करते हैं, तब उसमें ईश्वरकी सहायता लेनेके हेतु किसी-न-किसी भगवद्विभूतिका पूजन अवश्य करते हैं। उसी आस्तिक प्रथाके अनुसार प्राचीन-हिन्दु प्रथम वरुणदेवका पूजन कर फिर द्वीपान्तरको माल ले जाते थे या वहांसे लाते थे। इस पूजामें यज्ञोपवीत और नारियल समुद्रको भेंट किया जाता था, इस कारण इसका नाम नारलीपौर्णिमा पड़ गया। प्रत्येक-पौर्णिमाको समुद्रके लिये नारियलकी भेंट करना धर्मसिन्धुमें लिखा है। कदाचित् इसी आधारसे नारलीपौर्णिमाके पूजनका सूत्र-पात हुआ हो। अस्तु, इस प्रणालीसे इतना तो अवश्य ही समझमें आता है, कि प्राचनी-

कालमें हमारे पूर्वज समुद्रोल्लंघन और द्वीपान्तरकी यात्रा करते थे। वेदोंमें तो ऐसे कितने ही मन्त्र हैं, जिनमें द्वीपान्तरका आवागमन स्पष्टरूपसे लिखा है। अनेक आर्य राजा द्वीपान्तरवासी थे यह पुराणोंमें भी आया है। मनुजीने द्वीपान्तरमें गये हुए क्षत्रियोंका वर्णन करते हुए लिखा है,—"वृषलत्वं गताः सर्वे—अर्थात्, वहां ब्राह्मणोंके न मिलनेसे क्रियाकलाप-रहित "वृषल" बनगये।" भारतीय लोग बड़ी बड़ी नौकाओंके द्वारा समुद्रमें आते-जाते थे यह ऋग्वेदमें लिखा है :—

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम्।
ये यस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रेन श्रवस्य वः॥

"सुसज्जित-रथोंको चलनेके लिये प्रेरणा करनेवाली ऊषा-देवीने प्रातः-काल किया और धन प्राप्त करनेकी इच्छासे धनिकों द्वारा तयार की हुई नौकाओंको भी प्रेरित किया।" यद्यपि इस मन्त्रमें जहाजोंका इशारा मात्र है; परन्तु यह अवश्य जाना जाता है, कि प्राचीन-कालमें हमारे पास ऐसे जहाज थे, कि जिनके द्वारा हम अनायास द्वीपान्तरको आते-जाते थे।

मसीहके जन्मसे भी प्रथम जावा, सुमित्रा और सीलोन-आदि द्वीपोंमें हिन्दुओंकी वस्तियाँ थीं और अबतक हैं। प्राचीन-कालमें इन द्वीपोंके साथ भारतका घनिष्ठ सम्बन्ध था। यहाँ तक, कि हिन्दुस्तानका वकील भी सीलोनमें रहता था—यह राजतरङ्गिणीमें लिखा है। महाभारतके उद्योगपर्वमें लिखा है,—"कुरुक्षेत्रके संग्राममें द्वीपान्तरके भी आर्य्य तथा अनार्य राजा आये थे। भगवान् रामचन्द्रजीने भी लङ्का-द्वीपमें जा कर रावणको विजय किया था। इससे विदित होता है, कि प्राचीन-कालमें आर्य लोगोंका जिस प्रकार स्थलमें आधिपत्य था, उसी प्रकार जलमें भी था, उस समय आर्योंके लिये जल तथा स्थलके सभी मार्ग खुले थे, परन्तु किसी विशेष कारणसे मयूख, निर्णयसिन्धु तथा बृहन्नारदीय पुराण आदिके आधारपर पण्डितोंने द्वीपान्तरित होनेका निषेध कर दिया। निःसन्देह इस निषेधका उस समयकी परिस्थितिके अनु-सार कोई न कोई मौलिक कारण होगा; परन्तु समय अधिक हो गया और निषेधकर्त्ताओंने कोई कारण लिखा नहीं, इसलिये हम उसको जान नहीं सकते। बहुत सम्भव है, कि यह उस समयका राष्ट्रीय ध्येय हो। अस्तु, इस समय हमारा देश इङ्गलैण्डकी सत्ताके अधिकारमें है और स्वराज्य मिलनेपर भी द्वीपान्तरोंसे विच्छेद नहीं, किन्तु अधिक सम्बन्ध होगा। ऐसी दशामें देशके लक्षावधि

साहूकार, व्यापारी, राजा और महाराजा आदिका द्वीपान्तरमें आना जाना रुक नहीं सकता; इसलिये समस्त-भारतके पण्डितोंकी अनुमतिसे एक महती-सभाके द्वारा इसका निर्णय हो जाना चाहिये, अन्यथा धर्म और धर्म-गुरुओंमें लोगोंका और भी अविश्वास बढ़ेगा। सारांश—जब हमारे पूर्वज व्यापार करनेके लिये जहाजोंको तयार कर द्वीपान्तर जानेकी तयारी करते थे, उस समय श्रावणी-पौर्णिमाके दिन समुद्रको नारियल और यज्ञोपवीत भेंट देते थे। बम्बई आदि बन्दरोंके अतिरिक्त और कहीं न तो यह उत्सव मनाया ही जाता और न मनानेकी आवश्यकता है। अस्तु, श्रावणी-पौर्णिमाका सबसे बड़ा त्यौहार रक्षाबन्धन ही है; इसलिये भविष्योत्तर और हेमाद्रिसे उसको लिखा जाता है।

रक्षाबन्धन ।

इसमें महाराजा युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण भगवान्‌का सम्वाद है,—

सर्वरोगोपशमनं सर्वाशुभ-विनाशनम् ।
सकृत्कृतेनाब्दमेकं येन रक्षाकृतो भवेत् ॥
शृणु पाण्डव-शार्दूल ! इतिहासं पुरातनम् ।
इन्द्राण्या यत्कृतं पूर्वं शक्रस्य जय-वृद्धये ॥
देवासुरमभूद्युद्धं पुरा द्वादश-वार्षिकम् ।
तत्रासुरैर्जितः शक्रः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥

"महाराज युधिष्ठिर श्रीकृष्णचन्द्रसे पूछते हैं,—"भगवन् ! समस्त रोग और अशुभोंको नष्ट करनेवाला कोई ऐसा उपाय बतलाओ, कि जिसके एक बार कर लेनेसे वर्ष भरकी रक्षा हो जाय।" यह सुनकर भगवान् बोले,—"पाण्डव ! इन्द्राणीने इन्द्रकी विजयकामनासे पूर्वयुगमें जो किया था, उस इतिहासको सुनो। देवता और असुरोंमें बारह वर्ष तक सतत युद्ध होता रहा, जिसमें असुरोंने सम्पूर्ण देवताओं सहित इन्द्रको विजय कर लिया। पराजित इन्द्र एक समय गुरु बृहस्पतिसे कह रहे थे, कि इस समय न तो मैं यहां ठहरनेको समर्थ हूं और न भागनेका ही अवसर है; अतः अब मुझको लड़ना अनिवार्य हो गया है। इन्द्राणी इस प्रकार दोनोंके वार्त्तालापको सुनकर बीचमें ही बोल उठीं,—'पतिदेव ! आप निर्भय रहें, मैं ऐसा उपाय करती हूँ, जिससे अवश्य ही आपको विजय होगी।' प्रातःकाल ही श्रावणी पौर्णिमा थी, इस लिये इन्द्राणीने ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन करा कर इन्द्रके हाथमें पोटली रक्षा बाँध दी।

रक्षावन्धनसे सुरक्षित इन्द्रने जब दैत्योंपर चढ़ाई की, तो कालके समान इन्द्रको देखकर सब दैत्य भाग गये। युधिष्ठिर! यह सब प्रभाव रक्षावन्धनका था।

महाराजा युधिष्ठिरने रक्षावन्धनके माहात्म्यको सुनकर श्रीकृष्णसे फिर प्रार्थना की,—

क्रियते केन विधिना रक्षावन्धः सुरोत्तमैः।
कस्मिन्तिथौ कदा देव! ह्येतन्मे वक्तुमर्हसि॥

"इन्द्र-आदि देवोंने किस विधिसे कब और किस तिथिको रक्षा-बन्धन-व्रत किया, कृपा कर कहो।" यह सुनकर भगवान् रक्षा-बन्धनकी विधिको कहते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य श्रावण-शुक्ल-पौर्णिमाके दिन प्रथम तो स्नान करे, पुनः देवता, पितर और सप्तर्षियोंका तर्पण करे। दुपहरके बाद ऊनी या सूती पीतवस्त्र लेकर उसमें चाँवल रखकर गांठ लगाय और स्वर्णके रंगके समान हल्दी अथवा केसरसे रंगकर एक पात्रमें रख दे। घरको गोवरसे लिपाकर और चांवलोंके चौक पुरवाकर घटकी स्थापना करे। घटमें अन्न भरा हो और पीत-वस्त्रमें लच्छेसे लिपटी हुई एक या अनेक चाँवलकी पोटलियोंको रखदे। यजमान स्वयं पाटा अथवा चौकीपर बैठे और घटका पूजन शास्त्रोक्त विधिसे पुरोहितके द्वारा कराये। पूजनके पश्चात् पुरोहित उस पोटलीको यजमानके हाथमें बाँधे, और और लोगोंके भी हाथोंमें बाँधे। परन्तु इस रक्षावन्धनको वेदपाठी ब्राह्मणके ही द्वारा करानां चाहिये। रक्षावन्धनके समय ब्राह्मण यह मन्त्र बोले,—

"येन बद्धो बलीराजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥"

जो मनुष्य इस प्रकारसे रक्षावन्धन-व्रतको करेगा वह एक साल तक किसी प्रकारकी आधिव्याधिसे दुखी नहीं होगा। श्रावणी रक्षिका और फाल्गुनी होलिका ये दोनों भद्रामें नहीं करनी चाहिये।

लौकिक स्वरूप।

राखीका त्यौहार प्रायः समस्त हिन्दुस्तानमें मनाया जाता है। परन्तु जो पद्धति भविष्यपुराण एवं हेमाद्रिमें लिखी है, उसके अनुसार रक्षा अथवा पोटलीबन्धनका प्रचार नहीं। रक्षिकाको ही राखी कहते हैं। बहुधा ब्राह्मण ही राखी बांधते हैं, परन्तु कहीं कहीं बहन, भानजी और बेटी भी बाँधती हैं; बल्कि इसी प्रथाका प्रचार अधिक है। ब्राह्मणोंके हाथसे राखी

बँधाना इतना आवश्यक नहीं समझा जाता, जितना कि बहन-बेटीके हाथसे। भिक्षा करनेवाले ब्राह्मण स्वयं यजमानके घरपर जाकर राखी बाँधते हैं; परन्तु बहन-बेटी यदि घरपर न भी आये, तो उसके घरपर ही जाकर बंधाते हैं। साधारणतया ब्राह्मणोंको पैसा दो पैसा देते हैं; परन्तु बहन-बेटीको कुछ वस्त्र अथवा रुपया-दो रुपया देते हैं और जो धनाढ्य हैं, वे अधिक भी दिया करते हैं। जिनकी सगी बहन नहीं होती, वे सगोत्रा, सजातिया और समीप रहनेवाली किसी भी कन्याको बहन बनाकर उसके हाथसे रक्षा-बन्धन कराते हैं, और फिर यावज्जीवन सगी बहनकी तरह उसका मान करते हैं। अर्वाचीन इतिहासमें देखा जाता है, कि परस्पर लड़नेवाले दो राजाओंके संग्राम-कालमें यदि राखीका त्यौहार आगया, तो हीन-बलवाले राजाकी कन्याने सबलके हाथमें राखी बाँध दी। उससे प्रसन्न हो कर सबल राजाने लड़ाई बन्द करदी और दक्षिणामें कुछ भूमि देकर उस कन्याको सदैव अपनी बहन माना। अस्तु आज-कलकी राखियाँ पोटलीके स्वरूपमें नहीं होतीं, किन्तु रुई, कपड़ा, रेशम, भोडर, चांदी अथवा सोनेकी बनती हैं। राखी हिन्दुस्तानमें सब प्रान्तोंसे बुन्देलखण्डकी अच्छी होती है और उसका व्यास भी एक फुटसे कम नहीं होता। एक तथा दो रुपयाको आती है। अस्तु, बहन-बेटियाँ उत्तम थालमें राखी, नारियल, रुपया, मिठाई, अक्षत, गन्ध और पान लाती हैं। पहले भाईके मस्तकपर तिलक करती हैं, फिर राखी बाँधती हैं, तदनन्तर मिठाई, रुपया और नारियल हाथमें देकर और पान खिलाकर बलैय्याँ लेती हैं। उस समय भाई बहनको जो भी द्रव्य देना चाहता है, उसी थालीमें डाल देता है और कपड़ा हो तो पँहना देता है। दक्षिण देशके किसी-किसी भागमें स्त्री भी पुरुषके हाथमें राखी बाँधती है। इस प्रथाको देखकर हमारे देशके कुछ लोग हँसते हैं; परन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो हास्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। कारण कि कथाभागमें भी तो इन्द्राणीने इन्द्रके हाथमें राखी बाँधी है। कहीं कहीं छोटे भाई बड़े भाईके हाथमें और भानजा मामाके हाथमें राखी बाँधा करता है। नन्द भाबीके हाथमें और बेटी माताके हाथमें भी राखी बाँधती है। राजपूतानेमें राखीका अधिक प्रचार है।

शिक्षा।

दो शिक्षा हमको राखीके त्यौहारसे मिलती हैं— (१) शास्त्रीय-स्वरूपसे और (२) लौकिक-स्वरूपसे। शास्त्रीय-स्वरूपमें लिखा है,—"जब

इन्द्रकी राज्य-लक्ष्मी असुरोंके हाथमें चली गई, तब रक्षा-बन्धनके द्वारा ही प्राप्त हुई।" आज कल भी भारतकी वही दशा हो रही है। जो भारत-वर्ष किसी समय अपने कला-कौशलमें संसारसे चढ़ा-बढ़ा था और विदेशी लोग कला-कौशल एवं धर्मकी शिक्षा लेनेको यहां आते थे, आज भारतके वेही लोग विदेशियोंके मुखकी ओर देखते हैं। यहां तक, कि अपने निर्वाहकी वस्तुओंको भी आप न बनाकर क्रोड़ों रुपया वैदेशिक-व्यापारियोंके हाथमें देकर देशको लक्ष्मी-हीन बना रहे हैं। इसका मुख्य कारण पुरुषार्थका शत्रु आलस्य ही है और वही असुर है। जिस प्रकार प्राचीन-कालमें स्वर्ग-सम्पत्तिका अधिपति असुर बनगया था, उसी प्रकार इस समय आलस्य ही भारत-सम्पत्तिका अधिपति बन गया है। राखी बँधाते समय आपको इसका स्मरण अवश्य रहना चाहिये, कि राखीको बाँधकर जिस प्रकार इन्द्रने अपनी साँगसे असुरको मारा और स्वर्ग-सम्पदाको भोगा, उसी प्रकार हम भी अपने हाथमें राखी बँधाकर आलस्य-रूप असुरको पुरुषार्थरूप आयुधसे मारकर भारत-सम्पदाका फिर भी प्राप्त करें।

इसके अतिरिक्त दूसरी शिक्षा जो राखीके त्यौहारसे मिलती है, वह यह है,—"जो राजा पहले दिन अपरिमित जन और धनका व्यय कर अपने शत्रु राजाको सर्वथा नष्ट करनेपर सन्नद्ध था, वही शत्रु राजाकी कन्याके हाथसे राखी बँधाकर, अपने पिछले वैरको भूलकर तथा नष्ट धन और जनकी परवाह न कर अपने दुश्मन को भी मित्र बना लेता था और उसके सुख दुःखमें सदैव सहायक रहता था।" पाठक, विचार करें, कि उस समय राखीमें कैसा अद्भुत असर था। यदि अब भी हम राखीमें उसी प्रकारका असर भर दें, तब तो हमारा राखी बाँधना अथवा बँधाना सार्थक है। अन्यथा सोने, चाँदी और रेशमकी राखी बना कर कङ्गाल भारतको और भी कङ्गाल बनाना है। राखी हमको अपने देशभाइयोंके लिये बड़ा भारी स्वार्थत्यागका उपदेश देती है। जब तक हम देश और भाइयोंके लिये स्वार्थत्याग करनेको तयार न होंगे, तब तक केवल राखी बाँधनेसे कुछ भी लाभ न होगा। भारतके वीरो! आओ, आज हम सब मिलकर राखीका त्यौहार मनायें और व्यक्तिगत लाभको लात मारकर भारतमाताके सच्चे पूत बन जांय, जिससे देशमें राखीका त्यौहार राष्ट्रीय-त्यौहार हो जाय।

इन व्रतोंके अतिरिक्त महाराष्ट्र देशमें रविवारको आदित्यव्रत, सोमवारको

प्रदोषव्रत, मङ्गलवारको मङ्गलागौरीव्रत, बुध गुरुवारोंको बुध-गुरु-पूजा, शुक्रवारको जीवन्तिका व्रत और वरलक्ष्मीव्रत और शनिवारको शनि, हनूमान और नृसिंह-पूजा की जाती है। सूपोदन दान, दध्योदन दान, पवित्रारोपण और सभादीप दान भी इसी मासमें होता है। बंग देशमें अशून्य शयन व्रत और शीतलासप्तमीका व्रत विशेषरूपसे किया जाता है।

भाद्रपदमासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

धर्मसिन्धुमें लिखा है, कि जो मनुष्य भाद्रपद मासमें एकान्न-व्रत करके भगवान्‌की अर्चापूजा करता है, वह धन, धान्य और आरोग्यकी प्राप्ति करके इस लोकमें सुख और परलोकमें निःश्रेयस-मुक्तिका अधिकारी होता है। जो मनुष्य भाद्रपद-मासमें हृषीकेश भगवान्‌के निमित्त खीर, गुड़-मिश्रित भात अथवा लवणका दान करता है, वह परमात्माकी प्रसन्नतासे ऐहिक एवं पारलौकिक भोगोंको प्राप्त करता है। जन्माष्टमी, हरितालिका, ऋषिपञ्चमी, गणेशचतुर्थी, ज्येष्ठागौरी और वामन-द्वादशी आदि त्यौहार तथा व्रत इसी भाद्रपद-मासमें होते हैं, जिनको क्रमशः लिखा जाता है।

श्रीकृष्ण जयन्ती।

भगवान् कृष्णचन्द्रका अवतार पूर्णावतार है और कलियुगके प्रारम्भ तथा द्वापरके अन्तमें होनेके कारण हमारे अत्यन्त समीपका है। प्रथम तो पूर्णता और फिर समीपता इन दो कारणोंसे आज भी इस हीन-दीनदशामें भगवान् कृष्णचन्द्रके नामपर २२ करोड़ हिन्दू अपने प्रिय-प्राणोंको न्योछावर करनेके लिये प्रस्तुत हैं। हिन्दूजातिका पथ-प्रदर्शक सदैव स्वयं परमात्मा अथवा उसका अंश ही रहा है; साधारण मनुष्य नहीं। क्योंकि साधारण मनुष्य चाहे जितना त्यागी और देशरक्षक हो; परन्तु जीवके साथ अल्पज्ञत्व रहता ही है; यही कारण है, कि जो नेता एक तरफ आत्मबली करके अपने समस्त सुखोंपर लात मार कर देश-सेवाके लिये कटिबद्ध हो जाता है, वही दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था एवं सतीत्व आदि धर्मोंको नष्ट-भ्रष्ट करके स्वतःप्रमाण वेद-का भी निरादर कर देता है। यह उस देशभक्तका प्रमाद नहीं; किन्तु स्वाभा-विक रीतिसे जीवोंमें रहनेवाली अल्पज्ञताका कार्य है। इस कारण हिन्दुओं-

की पथ-प्रदर्शिका सदैव ईश्वर कोटी ही रही है और हिन्दू उसीको आदर्श मान कर संसारयात्राको समाप्त करते रहे हैं। श्रीकृष्णभगवान् भारतके अन्तिम पथ-प्रदर्शक थे। उनकी जन्म-तिथि भाद्रपद कृष्णाष्टमी है। यह जन्माष्टमीका त्यौहार वास्तवमें हिन्दूजातिका राष्ट्रिय त्यौहार है और गीता जैसे राष्ट्रीय गीतका स्मारक है।

जन्माष्टमी।

शास्त्रीय-स्वरूप।

यद्यपि जन्माष्टमीके त्यौहारका विषय वेदोंमें नहीं आया है, तथापि श्रीकृष्ण भगवान्का वर्णन अनेक मन्त्रोंमें आया है, इसलिये कुछ मन्त्रोंका उद्धरण यहाँ किया जाता है।

ऋग्वेद—४।७।१।६

कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः॥

पद—

कृष्णं, ते, एम, रुशतः, पुरः, भाः, चरिष्णुः, अर्चिः, वपुषाम्, इत्, एकम्, यत्, अप्र, वीता, दधते, ह, गर्भम्, सद्यः, चित्, जातः, भवसि, इत्, उदूतः।

टीका—

"हे, भूमन्! आपका जो सत्यानन्द चिन्मात्र रूप है, उसको तथा रुद्र-रूपसे तीन पुरको नाश करने वाला अथवा स्थूल, सूक्ष्म और कारण देहको ग्रसने वाला रूप तुरीयात्मा उस कृष्ण भा रूपको हम प्राप्त हों; जिस आपके रूप-की एक ही अर्ची ज्वाला अंशमात्र समष्टि जीव अनेक देहोंमें चिरष्णुभोक्तृ रूपसे वर्त्तमान है और जिस कृष्णभाको अप्रवीता निगड-ग्रस्त देवकीने गर्भ-रूपसे धारण किया।" ऋग्वेदके और भी मन्त्रोंमें कृष्णका वर्णन है:—

कृष्णादुदस्था दर्पः० व्रजं च विष्णुः सखि वां अयोर्गुते०
गोवर्धनधारण अहश्च० कृष्णमहरर्जुनं च०।

"इन मन्त्रोंमें कृष्ण नाम, व्रज और सखियोंका नाम, गोवर्धनका धारण करना और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनका नाम स्पष्ट आया है।" यजुर्वेदमें लिखा है,—

"ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु—अर्थात् हमारी ब्रह्मा और कृष्ण रक्षा करें।" अथर्ववेदमें "नक्तं जाता स्योषधे रामकृष्णे असिक्नि च" कह कर श्रीकृष्ण और बलरामजीकी चर्चा की है। ऋग्वेदके परिशिष्टमें तो कालीयनागकी कथा और यमुना ह्रदका पूरा वर्णन आया है,—

"कालिको नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः।
यमुना ह्रदेह सो जातो यो नारायणवाहनः॥"

गोपालतापिनी उपनिषद्में भी लिखा है:—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

"कृष् पृथ्वी वाचक और ण कार निर्वृत्ति वाचक है—इन दोनोंको मिला कर परब्रह्म कृष्ण होता है।" इसके अतिरिक्त छान्दोग्य (३-३) में देवकीका भी वर्णन आया है,—"तद्धैतत् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकी-पुत्रायोक्त्वा वाचा०।" छान्दोग्यके इस प्रमाणसे तो जन्माष्टमीका त्यौहार भी वैदिक सिद्ध हो गया। अब जन्माष्टमीके व्रतका समय-विवरण धर्मशास्त्र एवं पुराणोंसे बतलाया जाता है।

जन्माष्टमीव्रतका विवरण।

तिथि-निर्णय।

रात्रिमें अष्टमी हो और रोहिणी नक्षत्र हो, तो कृष्णजयन्ती होती है। यदि रोहिणी नक्षत्रका अभाव हो, तो केवल जन्माष्टमी व्रतका ही योग समझना चाहिये; जयन्ती योग नहीं हो सकता। धर्मसिन्धुकारके मतमें उदयव्यापिनी अष्टमीको भी ग्रहण किया है,—

व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत्।
उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके॥"

परन्तु यह पक्ष गौण है, मुख्य तो निशीथव्यापिनीका ही है।

व्रत-विधि।

अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्य-कृत्यसे निवृत्त हो कर और पूर्वाभिमुख बैठ कर, देश, काल और पात्र आदिका नाम उच्चारण करके "श्रीकृष्णप्रीत्यर्थ

जन्माष्टमीव्रतं जयन्तिव्रतं च करिष्ये" इस प्रकारका सङ्कल्प करे तथा ताम्रपात्रमें जल भर कर, नीचेके मन्त्रोंको पढ़कर पृथ्वीपर छोड़ दे,—"

वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।
उपवासं करिष्यामि जन्माष्टम्यां नभस्यहम्॥
आजन्ममरणं यावद् यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
तत्प्रणाशाय गोविन्द! प्रसीद पुरुषोत्तम!॥"

तदनन्तर सोनेकी, चांदीकी, मृत्तिकाकी अथवा चित्रमयी यथा कुलाचार प्रतिमाएँ बनाय। मुख्य-प्रतिमा इस प्रकारकी हो,—"पलङ्गपर लेटी हुई श्रीदेवकीजीके स्तनोंको बालमुकुन्द भगवान् पान कर रहे हों।" दूसरी तरफ देवकीकी एक और प्रतिमा बनाय, जिसके चरण लक्ष्मी दाब रही हो। सामने वसुदेव और नन्द बाबाकी प्रतिमाएँ हों और उनके आस पास गोप, गोपी और गऊओंकी प्रतिमाएँ होनी चाहिये। द्वितीय-स्थानमें एक मञ्चपर कन्याके सहित श्रीयशोदाजीकी और तृतीयस्थानमें वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, श्रीकृष्ण, बलराम और चण्डिका ये सात प्रतिमाएँ बनाय। अथवा जैसा कुलाचार हो, वैसा करे। रात्रिके प्रवेशसे प्रथमही स्नान आदि करके सपरिवार "श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं सपरिवारं श्रीकृष्ण-पूजां करिष्ये" यह सङ्कल्प करे। प्रथम तो न्यास आदिसे शंख पर्यन्त नित्यके पूजनको करे, तदनन्तर मञ्चपर विराजमान और किन्नरादिकोंके सहित श्रीदेवकी तथा बालमुकुन्द भगवान्‌का ध्यान करे। श्रीकृष्णाय नमः, देवक्यै नमः वसुदेवाय नमः, यशोदायै नमः, नन्दाय नमः, बलरामाय नमः, चण्डिकायै नमः—इस प्रकार आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य आचमन, अभ्यङ्ग–स्नान और पञ्चामृत–स्नानके बाद चन्दनानुलेपन तथा शुद्धोदकस्नान कराकर वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप और दीप करे, एवं—

"जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन।
जगदीश्वराय देवाय भूतानां पतये नमः॥"

इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पण करके ताम्बूल, नमस्कार, प्रदक्षिणा और पुष्पाञ्जली तक सब कार्य करने चाहिये।

द्विजोंको यह पूजा वैदिकी–रीतिसे करनी चाहिये।

देवा ब्रह्मादयो ये च स्वरूपं न विदुस्तव।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गवासिनम्॥

यह संकल्प कर "पुरुष एवेदं" इस वेद-मन्त्रसे आसन दे और-

अवतार सहस्राणि करोषि मधुसूदन ।
न ते संख्यावताराणां कश्चिज्जानाति तत्त्वतः ॥

इसको बोल कर "एतावानस्य महिमा०" इस मन्त्रसे पाद्य दे, तथा-

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च ।
देवानाञ्च हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥
कौरवानां विनाशाय पाण्डवानां हिताय च ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे ! ॥

कहकर "त्रिपादूर्ध्वं०" इस मन्त्रसे अर्घ्य-प्रदान करना चाहिये और "तस्माद्विराड०" से आचमन, "यत्पुरुषेण०"से स्नान, "तं यज्ञम्०" से वस्त्र-प्रदान, "तस्माद् यज्ञात्०"से यज्ञोपवीत, "तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचा०"से गन्ध तथा "तस्मादश्वा०" से पुष्प चढ़ाने चाहिये । इसके बाद अङ्गपूजाका विधान है; परन्तु स्मरण रहे, कि यह द्वितीय पूजा व्रतके उद्यापन कालकी है ।

अष्टमीके सायंकालको उपर्युक्त पूजा करनेके पश्चात् जो कुछ किया जाता है, उसका विवरण अग्नि-पुराणमें इस प्रकारसे लिखा है:—

इत्येवं पूजयित्वा तु पुरुष-सूक्तैः स-वैष्णवैः ।
स्तुत्वा वादित्र-निर्घोषैः गीत-वादित्र-मङ्गलैः ॥
सुकथाभिर्विचित्राभिस्तथा प्रेक्षणकैरपि ।
पूर्वेतिहासैः पौराणैः क्षिपेत्तां शर्वरीं नृप ! ॥

"उपर्युक्त विधिसे पूजन करके पुरुष सूक्तके द्वारा, समस्त वैष्णवोंके सहित गीत तथा बाजोंके निर्घोषसे उस रातमें जागरण करे और भगवान् कृष्णचन्द्रकी जन्म सम्बन्धिनी कथाको सुनाय तथा श्रवण करे ।" तदनन्तर नवमीको पारणासे प्रथम ब्राह्मणोंको भोजन तथा दक्षिणासे सन्तुष्ट करे । किसी किसी ग्रन्थमें यह भी लिखा है, कि प्रतिमासकी कृष्णअष्टमीको करता हुआ बारह मास तक इस व्रतको करे ।

लौकिक स्वरूप ।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँचो विषय वैषयिक प्रवृत्ति करानेवाले हैं, इसलिये निवृत्तिवालोंकी दृष्टिमें घृणित समझे जाते हैं; परन्तु वास्तविक रहस्य कुछ और ही है । वह यह, कि जहाँ इन शब्द आदिक विषयोंकी अपूर्णता होती है, वहां तो इनमें मलीनता अवश्य ही रहती है; परन्तु

जहां इनकी पूर्णता होती है, वहां ये मलिनताकी कांचलीको उतार शुद्ध-स्वरूप धारण कर लेते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि जिस व्यक्तिविशेषमें इनकी पूर्णता होती है, वह अलौकिक-व्यक्ति व्यक्ति नहीं, किन्तु समष्टि होता है; जिसको दूसरे शब्दोंमें पूर्णावतार कहा जाता है। जिस अलौकिक व्यक्तिमें शब्दादिकी पूर्णता होती है, उसमें शृंगारादि नव रसोंकी भी पूर्णता हो जाती है; क्योंकि शब्दादि जनक और शृङ्गारादि जन्य हैं। अथवा जिस अलौकिक शक्तिमें शृङ्गारादिकी पूर्णता होती है, उसमें शब्दादिकी भी पूर्णता होती ही है; अतः उसको पूर्णावतार समझना चाहिये। गीता और भागवत आदि ग्रंथोंके पठनसे जाना जाता है, कि श्रीकृष्ण भगवान्‌में शृंगारादि नव-रसोंकी पूर्णता थी; अतः वे पूर्णावतार थे। इसी कारणसे श्रीकृष्णकी मान्यता एक देशी नहीं, किन्तु सर्व देशी है और उनका जन्माष्टमी त्यौहार भी न्यूनाधिक प्रमाणसे प्रायः समस्त भारतवर्षमें पाया जाता है। श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णावतार थे, इसी कारण उन्होंने अपने उपदेश—गीतामें किसी एकदेशी धर्मका वर्णन न कर सार्व-जनीन धर्मका ही किया है। गीताशास्त्रमें तीनों योगोंका वर्णन किया गया है,—(१) कर्म, (२) ज्ञान (३) भक्ति। गीताकी पूर्णताने ही श्रीकृष्णकी भक्तिके क्षेत्रको योरोप तक विस्तृत कर दिया है। यही कारण है, कि अमेरिका जैसे सुधरे हुए देशमें भी प्रतिवर्ष जन्माष्टमीको कृष्ण-जन्मोत्सव मनाया जाता है। भारतके भी सिन्धु, गुजरात, काठियावार, दक्षिण, तैलङ्ग, तामिल, मद्रास, उड़ीसा, आसाम, रङ्गून, बेङ्गाल, नेपाल, तिब्बत, भूटान, काश्मीर, पहाड, बिलूचिस्तान, पञ्जाब, यू० पी०, सी० पी० और राजपूताना—आदि समस्त प्रान्तोंमें भगवान् कृष्णकी जयन्तीका उत्सव मनाया जाता है। मथुरा, वृन्दावन और गोकुल व्रजके इन प्रधान स्थानोंमें जो श्रीकृष्ण-जयन्त्युत्सव—नन्दमहोत्सव—बड़े ठाटसे मनाया जाता है, उसके दो कारण हैं,—(१) व्रजमें श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारक साधु, सन्त, महात्मा और आचार्य्य अधिक हुए हैं तथा (२) व्रज भगवान् कृष्णकी जन्मभूमि है।" यही कारण है, कि जन्माष्टमीके समय मथुरा, गोकुल और वृन्दावनमें देश-देशसे लाखों मनुष्य प्रतिवर्ष व्रज-यात्राके लिये आते हैं।

जन्माष्टमीका चरितनायक कृष्ण हैं और कृष्णकी जन्म-भूमि मथुरा तथा वृन्दावन है; इसलिये व्रज कबसे और कैसे बसा इसका निर्णय होना आवश्यक जान कर यहां लिखा जाता है।

व्रज तथा मथुराकी उत्पत्ति।

यों तो कितने ही शास्त्रोंमें मथुरा तथा वृन्दावनका वृत्तान्त अनेक प्रकार से लिखा है, परन्तु यहाँ ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके आधारपर लिखा जाता है। सत्ययुगमें बड़ा तेजस्वी क्षात्रधर्मपरायण केदार नामका एक राजा था। वह जैगीषव्य ऋषिके उपदेशसे आयुके तृतीय भागमें अपने पुत्रको राज्य दे कर तपोवनमें चला गया। इसी राजाकी वृन्दा नाम्नी एक कन्या थी, जिसने आजन्म अविवाहित रह कर यमुनाके पवित्र तटपर घोर तपश्चर्या करना प्रारंभ किया। जब उसकी तपश्चर्या पराकाष्ठाको पहुँची, तो भगवान् प्रगट हो कर कहने लगे,—"वर माँग !" कन्याने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की,—"यदि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हुए हैं तो कृपया मेरे पति होनेको स्वीकार करें।" भगवान्ने वृन्दाकी प्रार्थना स्वीकार की और उसको अपने साथ ही ले गये। व्रजके जिस वनमें राजकुमारीने तप किया था, उसका नाम वृन्दावन पड़ गया।

मधु नामक एक असुरने यमुनाके दक्षिण तटपर एक नगर बसाया था; जिसका नाम मधुपुरी था, इसी मधुपुरीको आज कल मथुरा कहते हैं। भगवान् रामचन्द्रजीके समय इसी मधुको शत्रुघ्नने विजय किया था और उसी समयसे मधुपुरी शत्रुघ्नजीके वंशजोंके अधिकारमें रही। यही मधुपुरी द्वापरमें समग्र सूरसेन देशकी राजधानी हो गई और इसमें क्रमशः यादव, अन्धक, भोज, भोम, कुकुर, दाशाई और वृष्णि—इन चन्द्रवंशियोंके सात कुलोंने राज किया। इनमेंसे यादवोंका घराना मुख्य था।

वसुदेवजी यादव ही थे। और उग्रसेनके यहाँ प्रधान सरदार माण्डलिक थे। इनकी स्त्रीका नाम देवकी था, जिनके गर्भसे श्रीकृष्ण भगवान्का प्राकट्य हुआ। वृन्दावन श्रीकृष्णके समयमें यमुनाके किनारे-पर बहुत विस्तृतरूपसे बसा हुआ था। उस समय नन्दघाट और चीरघाट—ये दोनो यमुनाके किनारेपर थे, परन्तु यमुनाके प्रवाहके स्थानान्तरित होनेसे आजकल उनमें कोसोंका अन्तर पड़ गया है। वृन्दावनसे आजकी मथुरा केवल ६ मील है, परन्तु श्रीकृष्णके समयमें १२ मील अर्थात् ६ कोसका अन्तर था—यह श्रीमद्भागवतमें लिखा है।

वृन्दावन और मथुरा—आदि व्रजके प्रधान प्रधान नगरोंकी जैसी प्राचीन समयमें रचना थी, अब वैसी नहीं रही—इसके कारण अनेक हैं। प्रथम, तो कुरुक्षेत्रके युद्धका ही असाधारण असर हुआ और फिर विधर्मियोंकी

अनेक चढ़ाइयोंने भी व्रजके नकशेको बदल डाला। बौद्धधर्मके लोगोंने भी व्रजभूमिको अपने हाथमें लेनेका प्रयत्न किया और हजारों भिक्षुक वहां नियत किये, परन्तु हस्तगत न कर सके—यह चीनके प्रवासी फाहीयान और हुइनात्सिआंगने अपने अपने भ्रमणवृत्तान्तोंमें लिखा है। सन् १०१७ ई० में २० दिन तक मोहम्मदगज़नीने मथुरापर चढ़ाई करके उसको और भी विध्वस्त किया। ई० स० १५००में सुल्तान सिकन्दरलोदीने मथुराका नाश करना चाहा, परन्तु उस समय केशव काश्मीरी भट्टाचार्य निम्बार्कसम्प्रदायी साधुने सुल्तानको अपनी अलौकिकशक्तिका परिचय देकर मथुराकी रक्षा की। इसके बाद औरङ्गजेबने भी व्रजके अनेक मन्दिरोंको नष्ट किया; परन्तु धन्यवाद है, उस ईश्वरका, जिसकी अलौकिक सामर्थ्यसे आज भी व्रजके अगणित मन्दिरोंकी शोभा दर्शकोंके मनको मोहित कर रही है—यह भगवान् कृष्णकी भक्तिका ही प्रभाव है। जन्माष्टमीकी सच्ची शोभा यहां ही है।

यद्यपि जन्माष्टमीके शास्त्रीय-स्वरूपमें निराहार उपवास करना ही मुख्यपक्ष माना गया है, तथापि लोकमें आजकल प्रायः फलाहार करनेकी ही रीति अधिक है, जो श्रीकृष्णजन्मके पश्चात् किया जाता है। कहीं कहींके लोग तो जन्म हो जानेके बाद पक्वान्न भोजन—खीर और पूरी भी खा लिया करते हैं। सनातनधर्ममें सम्प्रदायोंकी विभिन्नता द्वेषमूलक नहीं, किन्तु उपासनाकी अधिकारके लिये है; अतः श्रीराम और नृसिंह आदि सभी अवतारोंके मन्दिरोंमें श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका त्यौहार मनाया जाता है।

शिक्षा।

जन्माष्टमीका चरितनायक भगवान् कृष्ण हैं; अतः उनके चरित्रोंसे शिक्षा लेना ही जन्माष्टमीसे शिक्षा लेना है। किसी भी अवतारके चरित्रोंसे शिक्षा ग्रहण करते समय इस बातको न भूल जाना चाहिये, कि अवतारोंके चरित्र लौकिक एवं अलौकिक भावोंसे मिश्रित होते हैं। अवतारोंके चरित्रोंमें यदि अलौकिक-भाव कुछभी न हों, तो उस समयकी जनता अवतारको अवतार न जान सके। ऐसी दशामें अवतार जो कार्य्य उस समयकी जनतासे लेना चाहता हो, वह न लेसके; अतः अवतार लेनेका हेतु व्यर्थ हो जाय। इस कारण अलौकिक-भावसे मिश्रित कार्य करनेकी अवतारको बड़ी भारी आवश्यकता है। परन्तु सब कार्योंको अलौकिक भावात्मक भी न करना चाहिये; क्योंकि अवतार जनताका पथ-प्रदर्शक होता है—यह गीताका कथन ही व्यर्थ हो जाय

और उस प्रकारके अवतारसे देशका कुछ भी कल्याण न हो; अतः लौकिक-कार्य करना भी अवतारका मुख्य कर्त्तव्य है।

लौकिक और अलौकिक—इन दोनों भावोंका स्पष्टीकरण श्रीमद्भागवतमें भली प्रकारसे किया है। वहां राजा परीक्षितने श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न किया है,—"श्रीकृष्णचरित्रोंमें गोपियोंके साथ जो रास-विहार-आदि कार्य्य देखे जाते हैं; वे निश्चय ही चित्तको व्यामोह उत्पन्न करते हैं। अवतार तो लोगोंको अच्छे चरित्र सिखाने वाला शिक्षक होता है, फिर समझमें नहीं आता, कि इस परदाराभिमर्षणसे लोगोंको क्या शिक्षा लेनी चाहिये?" इस पर श्रीशुकदेवजीने कहा है,—

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमाँस्तत्समाचरेत्॥

"राजन्! ईश्वरों-अवतारोंके वचन ही सत्य हैं—हमारे मानने और करनेके योग्य हैं, उनके कर्त्तव्य तो लौकिक और अलौकिक-भावोंसे मिश्रित होते हैं। उनमेंसे जो लौकिक चरित्र हैं, वे ही अनुकरणीय हैं। बुद्धिमान वही हैं, जो अवतारोंकी आज्ञाको मानते हैं और उनके अलौकिक चरित्रोंसे अलौकिकत्वको जान कर कर्त्तव्यका अनुकरण नहीं करते।" "न देवचरितं चरेत्"—यह विष्णुपुराणका वाक्य भी इसीका साक्षी देता है। व्रजकी गोपियाँ, गाय, बछड़ा, ग्वाल और वृक्ष आदि क्या थे, इसको श्रुतियोंने भली भाँति बतलाया है-इसको लक्ष्यमें रख कर जब आप श्रीकृष्णके महारास एवं चीरलीला आदिपर विचार करेंगे, तो आशा है कि भगवान्‌का अलौकिक भाव आपकी समझमें आकर भगवन्निष्ठाको दृढ़ बना देगा।

अब श्रीकृष्णचन्द्रके लौकिक चरित्रोंसे और उनके कथनसे क्या शिक्षा लेनी चाहिये, इसका वर्णन किया जाता है। चरित्र भागवतसे और कथन गीतासे लिया जायगा।

१—कृष्ण चरित्रोंसे लाभ और अवतारका तात्पर्य।

यद्यपि संसारमें मनुष्य अनेक प्रकारके उद्योग करता है, परन्तु उन सबका लक्ष्य एक ही है—दुःखका परिहार और सुखकी प्राप्ति। इसीको मनुष्य-जातिका ध्येय समझना चाहिये। अपने ध्येयको सिद्ध करनेके निमित्त संसारके लोग अनेक प्रयत्न करते हैं। सुख किसमें है—इसकी कल्पना अपनी अपनी समझके अनुसार करते हैं, इससे ध्येय एक होनेपर भी उसकी प्राप्तिके मार्ग

"सुखप्राप्ति किसमें है" इस निश्चयमें मनुष्यसमाजके तीन विभाग होते हैं;—(१) विषयी, (२) संन्यासी और (३) कर्मयोगी। "सच्चा सुख विषयभोगमें ही है"—यह विचार कर विषयभोगकी प्राप्ति हुई कि उसीमें संलग्न हो गये, यह विषयी मनुष्योंका प्रथम भाग है। मनुष्यके इस मूल्यवान् जीवनका साफल्य केवल इन्द्रियोंके ही भोगोंमें है, ऐसी इनकी भ्रान्त समझ हो जाती है, उसके कारण ये लोग जो भी प्रयत्न करते हैं, वह भ्रममूलक ही होता है—पैसा, कीर्त्ति और मान, इनके लिये ही अहर्निश परिश्रम करते हैं। खाना, पीना और मौज उड़ाना इसके अतिरिक्त इनका दूसरा कुछ भी ध्येय नहीं। ईश्वरने मनुष्यके लिये जो विवेक शक्ति दी है यदि मनुष्य चाहे, तो उसके बलसे नरका नारायण बन सकता है किन्तु खेद है कि इन लोगोंने उस ईश्वर-दत्त शक्तिको विफल कर दिया है; अतः ये लोग आकारसे तो मनुष्य ही हैं, परन्तु वास्तविक गणना इनकी पशु-कोटिमें ही है। इनके वास्तविक सुखका प्रोग्राम प्रथमसे ही बिगड़ जानेके कारण जन्म भर परिश्रम करके भी असली सुखको प्राप्त नहीं कर सकते। अग्निमें घृतकी आहुतियाँ डालनेसे जिस प्रकार ज्वालाकी शान्ति दुष्प्राप्य है, वैसे ही विषयोपभोगसे विषय-वासनाकी तृप्ति होना भी असम्भव है। हाँ, अपने मिथ्यासुखके चक्करमें पड़ कर ये लोग और लोगोंको दुःख देनेवाले अवश्य ही बन जाते हैं; बल्कि काम' क्रोध और लोभ आदि षड् रिपुओंके बिना मोलके चेले हो जाते हैं, जिससे इनकी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर पाप कर्मोंमें अधिकाधिक बढ़ती जाती है। विषयोंसे मदोन्मत्त हुए ये लोग जिस समय किसी भी प्रकारकी सत्ता अधिकारको प्राप्त कर लेते हैं; तो उस समय धार्मिक मार्ग पर चलनेवाले मनुष्योंको सताना ही इनका कर्त्तव्य हो जाता है। यदि इस अवस्थाको गीताके शब्दोंमें कहें, तो "धर्मकी ग्लानि और अधर्मकी प्रबलता" कह सकते हैं। ऐसी ही दशामें दुर्जनोंका नाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये सत्पक्षका धारक तथा भक्तोंका रक्षक ईश्वर स्वयं रूप धरकर इस जगत्‌में आता है और उसके इसी रूपको हम अवतार कहते हैं।

प्रभुके ऐसे अनेक अवतार अब तक हुए हैं और भविष्यत्‌में होंगे। जो अवतार अब तक हो चुके हैं, उनमेंसे पुराणप्रसिद्ध दश अवतारोंकी ख्याति विशेष है। उन दश अवतारोंमें "श्रीकृष्ण" पूर्णावतार हैं; जिसके दिव्य और पवित्र चरित्रोंका स्मरण जन्माष्टमीको करना ही हमारा ध्येय है। वैसे तो

प्रायः सभी अवतारोंके चरित्र स्मरणीय और पावन होते हैं, परन्तु पूर्णावतार तथा अंशावतारके कारण किसी-किसीके चरित्रोंमें अन्योंकी अपेक्षा विशेषता रहती है। भगवान् कृष्णचन्द्र पूर्णावतार हैं; अतः इनके चरित्र विशेष मननीय और उदाहरणीय हैं।

"दुष्टोंका निर्दलन और सज्जनोंका संरक्षण" प्रत्येक अवतारका यही सामान्य लक्षण है। समदृष्टि ईश्वरमें दुष्टोंके मारनेकी क्रिया विषमसी तो अवश्य ही प्रतीत होती है, परन्तु उनका वध ईश्वरकी अपेक्षासे नहीं, किन्तु पापीकी पापनिवृत्ति तथा अन्योंकी पराङ्मुखताके लिये है, किसीको भी पाप करनेका साहस न करना चाहिये एतदर्थ है। परन्तु यह शिक्षा निषेधरूपसे है, विधि-रूपसे नहीं। नदीके तटपर खड़ा हो कर एक मनुष्य कहता है, कि जो मनुष्य इस नदीमें हाथोंके बलसे तैरेगा, वह डूब जायगा; परन्तु उसका यह कथन केवल निषेध सूचक है। यदि वह तैर कर न डूबनेकी रीति बतला देता, तो विधि हो जाती। ठीक, इसी प्रकार भगवान्के नृसिंहादि अवतारोंसे निषेध-रूप शिक्षा मिलती है; किन्तु उससे यह ज्ञान नहीं होता, कि मनुष्यको किस मार्गपर चलनेसे शाश्वत सुखकी प्राप्ति होती है। श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतारोंमें यही विशेषता है; कि उन्होंने दुष्टोंको मारकर निषेधरूपसे और स्वयं धार्मिक मार्गपर चलकर विधिरूपसे शिक्षा दी है।

सुखके पीछे लगे हुए तीन भागोंमेंसे एक भागके मनुष्योंका वर्णन हो चुका, किन्तु दो भाग शेष हैं। उन दोनोंके वर्णनसे भी पाठकोंको श्रीकृष्णकी विशेषता विदित होगी; अतः आगेके प्रकरणमें उनका वर्णन किया जाता है, पाठक ध्यान दें।

सात्विक सुख अथवा ब्रह्मानन्दकी उपासना करनेवाले द्वितीय दलमें संन्यासी और योगी है। प्रथम कक्षाके लोग विषयोंके जितने समीप हैं, ये लोग उतने ही दूर हैं। सत्य तो यह है, कि मनुष्य-जीवनको सार्थक बनानेके लिये इन लोगोंने संसारके भोगोंपर तुलसी दल ही रख दिया है। इन लोगोंका मन्तव्य है,—"सांसारिक कार्य, कामिनी और काञ्चनमें बिल्कुल ही सुख नहीं है; अतः आत्म-स्वरूपके ज्ञानार्थ उद्योग करना और उसके सिद्ध हो जानेपर आत्मानन्दमें जीवनको बिताना—यही मनुष्यका इति कर्त्तव्य है।" यद्यपि इन लोगोंके सुखका मार्ग प्रथम वर्गके लोगोंसे बहुत अच्छा और वास्तविक है, तथापि यह मार्ग निवृत्तिकी चरम-सीमापर ले जाने वाला और

सृष्टिके विपरीत है। "सृष्टि उच्छिन्नसे बचे और निवृत्ति-जन्य सुखका आस्वादन भी मिले" सृष्टि-कर्त्ताका यही नियम है। यद्यपि संन्यासी और योगियोंके सुखका मार्ग अच्छा है, परन्तु सर्वसाधारणका अनुकरणीय नहीं है। यदि सर्व-साधारण इनका अनुकरण करने लगें, तो सृष्टिका उच्छेद हो सकता है; अतः दूसरे दलवालोंका भी मार्ग हमारे लिये पथ-प्रदर्शक नहीं।

अब शेषमें तृतीय कक्षाके लोग ही रहते हैं, जो सृष्टि-कर्त्ताके उद्देश्यको पालन करते हुए भी कामादिकोंके मोहमें नहीं फँसते। इस वर्गके लोग सत्य-निष्ठ तथा ज्ञानी होते हैं और विचारपूर्वक काम करनेवाले होते हैं तथा इनकी दृष्टि दिव्यदृष्टि होती है, जिससे संसारके सच्चे स्वरूपको देख लेते हैं। ये लोग विषयोंका मूल्य और उनकी निःसारताको भी भली भांति जानते है। निःसार समझ कर विषयोंका त्याग नहीं करते, किन्तु विवेककी मन्थानीसे मथ कर उनको ससार बना लेते हैं—संसारमें रह कर संसारसे अलग और विषयोंको भोग कर भी उनसे अलिप्त रहते हैं। विषयोंका अन्धकार उनकी दृष्टिको स्पर्श तक नहीं करता; अतएव वे अपने कर्त्तव्यको अच्छी प्रकारसे जानते हैं। जिस प्रकार द्वितीय वर्गके लोग संन्यासमें आनन्दकी झलक देखते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी कर्त्तव्यपालनमें आनन्दकी झलक देखते हैं। वहां ये तृतीय कक्षा वाले अपने सुखकी अपेक्षा दूसरेके दुःखको निवृत्त करना ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं तथा इसीमें अपने जीवनकी सफलता भी मानते हैं। कुटुम्बके सम्बन्धसे, समाजके सम्बन्धसे, और देशके सम्बन्धसे; यहां तक कि प्राणीमात्रके सम्बन्धसे हमारा क्या कर्त्तव्य है—इसको ये लोग अच्छी प्रकारसे जानते हैं। सत्य तो यह है, कि ये लोग स्वकर्त्तव्यसे अधिक दैहिक सुख, धन, मान और कीर्त्ति आदि किसीको भी नहीं मानते। सारांश—दूसरोंके सुखमें सुखी और दुखमें दुखी होना ही इनका कर्त्तव्य है। इसी कारणसे तृतीय कक्षाके लोगोंके चरित्र ही आदरणीय तथा अनुकरणीय होते हैं। इनके चरित्रोंका अनुकरण ही सुख-प्राप्तिका राजमार्ग है। जिस देशमें इस प्रकारके पुरुषरत्नोंका जन्म हो जाता है, वह देश तत्कालही उन्नतिके शिखपर पहुंच कर अन्य देशोंका मार्ग-दर्शक बन जाता है। श्रीकृष्णचन्द्रके अवतारमें यही विशेषता थी, उन्होंने हमको विषय-भोग या कर्म-संन्यासका पाठ न पढ़ाकर कर्मयोगी बनाया था। दण्ड्योंको दण्ड देकर सज्जनोंका रक्षण तो सभी अवतारोंने किया है और उसी प्रकार भगवान् कृष्णने भी किया

था; परन्तु शिष्ट सम्प्रदायके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको संसारमें किस प्रकार चलना चाहिये—यह शिक्षा हमको श्रीकृष्णके चरित्रोंसे ही मिली; अतः वे हमारे सच्चे पथ-प्रदर्शक तथा पूर्णावतार थे।

२—श्रीकृष्णका उपदेश और गीता।

जिस भगवद्गीतापर सैकड़ों टीकात्मक ग्रन्थ बन गये और बनते जाते हैं, जिसका अर्थ सुबोध करनेको मनुष्योंका उद्धार करनेके लिये श्रीशङ्कराचार्य, श्रीवल्लभाचार्य्य, श्रीरामानुजाचार्य्य, श्रीमध्वाचार्य्य और श्रीनिम्बार्काचार्य्य—आदि आचार्योंने परिश्रम करके भाष्य बनाये और जिसकी महत्ताको आज हिन्दुस्तान ही नहीं, किन्तु बीसवीं शताब्दिका बाबा आदम—योरोप भी मुक्तकंठसे गा रहा है, उसका विस्तृत कथन तो इस छोटेसे निबन्धमें हो नहीं सकता। परन्तु थोड़ासा सारांश यह दिया जाता है। आशा है, कि जन्माष्टमी त्यौहारके मनाने वाले सज्जन इसीसे उपदेश ग्रहण कर मनुष्य शरीरको सार्थक बनायेंगे।

(१) देह तथा देही।

हमारे इस पाञ्चभौतिक शरीरको गीताकी भाषामें "क्षेत्र" कहते हैं और शरीरमें जो इसका जाननेवाला चैतन्य है, उसको "क्षेत्रज्ञ" कहते हैं। क्षेत्रसे क्षेत्रज्ञ पृथक् है। परमेश्वर ही क्षेत्रज्ञ है, इसी कारण क्षेत्रको देह और क्षेत्रज्ञको देही अथवा आत्मा कहते हैं। आत्मा नित्य, अविनाशी और अप्रमेय—पूर्ण रीत्या समझमें न आनेवाला है। आत्मा अजन्मा और पुराण पुरुष है। मनुष्य जिस प्रकार जीर्ण वस्त्रको त्याग कर नवीनको धारण कर लेता है, उसी प्रकार यह देही भी जीर्ण देहको त्याग कर नवीन देहको धारण कर लेता है। अर्थात्—आत्मा अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकारी है। देहको इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना, धैर्य्य, जन्म और मरण—आदि विकार होते हैं, परन्तु आत्मा इन सबसे मुक्त है।

(२) कर्मयोग।

कर्मको आजन्म करते ही रहना चाहिये। कर्मसे कोई भी नहीं छूटा है। परन्तु यह अवश्य ध्यानमें रहे, कि कर्म करने मात्रमें ही पुरुषका अधिकार है, फलमें नहीं; अतः योगयुक्त—अहङ्कार त्याग करनेवाला—अहङ्कारको त्याग कर सदैव कर्मोंका आचरण करे। लाभ-अलाभ तथा सिद्धि-असिद्धिमें समान बुद्धि रखना चाहिये—इस समान बुद्धिको ही योग कहते हैं और यही गीता

शास्त्रका परमध्येय है। कहना न होगा कि उपर्युक्त तृतीय वर्गके 'आदर्श-जीवन पुरुषोंका यही कर्त्तव्य है। कर्म-फलकी आसक्तिको छोड़नेवाला पुरुष निश्चय ही जनन मरणके बन्धनसे मुक्त होकर सायुज्य-पदको प्राप्त करता है। नियत कर्मोंको करते रहना ही सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है। कर्म करनेकी अपेक्षा तथा आवश्यकता न होनेपर भी इतर जनोंके शिक्षार्थ—लोकसंग्रहके लिये—कर्म करना चाहिये; क्योंकि श्रेष्ठ लोगोंके निर्दिष्ट मार्गपर ही सर्वसाधारण लोग चलते हैं। यदि श्रेष्ठ-पुरुष कर्म न करें, तो उनके पीछे चलने वाली प्रजा लक्ष्य-भ्रष्ट होकर अवनतिके खड्डेमें गिर सकती है और इस दशामें वे आदर्श पुरुष ही इस पापके भागी होंगे।

(३) कर्मत्याग और मनो विजय।

कुछ लोग शुभाशुभ कर्मोंका त्याग करना ही श्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु वे यह नहीं जानते. कि कर्म न करना—यह कर्म त्याग नहीं है, किन्तु फलेच्छा रहित कर्म करना ही कर्म त्याग है। कर्मोंके फलकी आसक्तिको छोड़कर जो मनुष्य कर्म करता है, वही सच्चा संन्यासी और योगी है। जिसने लौकिक और वैदिक कर्मोंका त्याग कर दिया, वह संन्यासी और योगी नहीं। जो मनुष्य निष्काम हो गया हो और जिसकी दृष्टिमें ब्रह्म-तत्त्वका आभास हो गया हो,उसीको ब्रह्म-पदकी प्राप्ति होती है। पुरुषको अपना उद्धार स्वयं ही करना चाहिये, कारण कि अपना हितकर्त्ता और अहितकर्त्ता पुरुष आपही होता है। जिसने विवेकद्वारा मन जीत लिया, उसने अपना हित कर लिया और अविवेकके कारण जिसको मनने जीत लिया; उसने अपना अहित कर लिया। अन्तःकरणको शान्त, रखना निर्भय रहना, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना, मनका उत्तम प्रकारसे निरोध करना, परमेश्वरमें उत्तम प्रकारसे चित्त लगाना और जगत्को परमेश्वररूप ही देखना—ये सब लक्षण चित्त निरोध करनेवाले पुरुषके हैं? इसका करने-वाला पुरुष अन्तमें निर्वाणपदको प्राप्त कर लेता है। स्वभावसे चंचल मनको अभ्यास और वैराग्यके द्वारा जीतना ही मनुष्यका कर्त्तव्य है। बुद्धिको धैर्यसे अपने अधीन रखकर धीरे धीरे विषयोंसे हटाना और मनको व्यर्थके सङ्कल्प-विकल्पोंसे बचाकर आत्मानन्दमें स्थिर करना ही पुरुषका पुरुषत्त्व है।

(४) ज्ञानयोग।

जो मनुष्य श्रद्धा वाला है, जिसकी ज्ञानमें सम्यक् निष्ठा है और जिसने इन्द्रियोंका संयम किया है, उसीको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। ऐसे पुरुषको

अचिरकालमें ही ज्ञान प्राप्त होनेपर शान्तिका लाभ होता है। जो अज्ञानी है, जिसको श्रद्धा नहीं है और जिसका मन सदा संशयी रहता है, वह तत्काल नष्ट हो जाता है। उसको न यह लोक न परलोक और न सुख—कुछ भी नहीं है। जिस आत्म-ज्ञानसे अज्ञान दूर हो जाता है, वह आत्म-ज्ञान शीघ्र ही परमात्म-तत्वको प्राप्त कर लेता है। जो लोग परमेश्वरमें अपनी बुद्धि एवं मनको लगाते हैं, उसमें निष्ठा रखते हैं और सर्वदा ब्रह्म-ज्ञानमें निमग्न रहते हैं; उनके समस्त पातक निवृत्त हो जाते हैं और वे सदैवके लिये जनन मरणके चक्रसे छूट जाते हैं। ज्ञानी पुरुषको यह अपना और यह पराया—इस प्रकारका उच्च-नीच भाव स्पर्श भी नहीं कर सकता, कारण कि आत्म-दृष्टिसे सब एक ही तत्व-मूलक हैं। जिनके मनमें समताका साम्राज्य उत्पन्न हो गया है, वे लोकमें रहकर भी सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त हैं।

(५) भक्ति-याग।

जो मनुष्य परमेश्वरको जिस प्रकारसे भजता है, परमात्मा उसको उसी प्रकारका फल देता है। ईश्वरप्राप्तिके लिये मनुष्य किसी भी विहित-मार्गसे उसका पूजन करे, परन्तु वह अपने नियमानुकूल अवश्य ही उसको आकर मिलेगा। आर्त्त (दुखी), जिज्ञासु (आत्मतत्वका अभिलाषी), अर्थार्थी (सांसारिक-भोगोंकी अभिलाषावाला) और ज्ञानी—ये चार प्रकारके भक्त ईश्वरको भजते हैं, उनमें ज्ञानी भक्त ही सबसे श्रेष्ठ होता है। वृद्धावस्था तथा मृत्युके दुःखोंसे छुटकारा पानेका प्रबल साधन ईश्वरप्राप्ति ही है, परन्तु जाने बिना ईश्वरकी प्राप्ति असम्भव है; अतः ज्ञान-पूर्वक भगवद्भक्ति करना ही मनुष्य जन्मका ध्येय है। जो मनुष्य अन्तकालमें ईश्वरको स्मरण करता हुआ प्राण छोड़ता है, वह निश्चय ही परमात्म-तत्वमें लीन हो जाता है। अनन्य भावसे सदा सर्वदा ईश्वर-स्मरण करने वाला तथा निरन्तर समाधान-युक्त योगी ही परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। जिसमें प्राणी मात्रका अन्तर्भाव होता है, जिसकी सामर्थ्यसे समस्त संसारका चक्र चल रहा है, वह परम पुरुष अनन्य भक्तिसे ही प्राप्त होता है। जो मनुष्य परमेश्वरमें चित्त लगाकर सर्व साधारणका हित साधन करता है और उसीमें सर्वदा सन्तोषी रहता है, वह सदैव शान्तचित्त रहता है तथा भजनके द्वारा प्रीति-पूर्वक ईश्वरको प्राप्त करता है। जो अनन्य-भावसे ईश्वरका भजन करता है, उसके योगक्षेमको—सांसारिक व्यवहारको—परमात्मा चलाता है। जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरणसे भक्तिपुरःसर थोड़ा

सा भी उपहार परमात्माको अर्पण करता है, प्रभु उसको बड़े प्रेमसे स्वीकार करते हैं। हम जो कुछ खाँय, कर्म करें, दान दें, वह सब ईश्वरार्पण-बुद्धिसे करना चाहिये; क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त होता है, जिससे अनायास ही ईश्वरकी प्राप्ति हो जाती है। यों, तो परमात्मा सब प्राणियोंमें समान ही भावसे है, परन्तु जो अनन्य-भक्त हैं, वे ईश्वरमें हैं और ईश्वर उनमें है। ईश्वरप्राप्तिका सरल मार्ग भक्तियोग ही है। पुरुष चाहे, श्रेष्ठ हो या कनिष्ठ, भक्तियोगसे ईश्वरकी प्राप्ति हो ही जाती है—भक्तिमें उच्च नीच भाव नहीं है।

(६) माया और उसकी शक्ति।

जड़पदार्थोंके मूल तत्त्वको प्रकृति कहते हैं और उसके नियन्ता चैतन्यको पुरुष अथवा परमात्मा कहते हैं तथा जीव परमात्माका ही अंश है। वास्तवमें जीव, प्रकृति और पुरुष—ये तीनों एक ब्रह्म ही है। प्रकृति और पुरुष—ये दोनों प्रवाहरूपसे अनादि हैं और ब्रह्म वास्तविकरूपसे अनादि है। प्रकृतिमें तीन शक्तियाँ हैं,—"(१) सत्त्वगुण, (२) रजोगुण और (३) तमोगुण। सत्त्वगुणमें प्रौढ़ता, रजोगुणमें चञ्चलता और तमोगुणमें मन्दता होती है। प्रकृतिके सत्वादि गुणोंमें ज्यों ज्यों उत्कर्ष और अपकर्ष होता है, त्यों त्यों ही ब्रह्माण्डके उच्च नीच कार्य होते हैं। प्रकृतिके सत्वादि गुणोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष क्यों होता है। इसके अनुसन्धानकर्त्ताओंने एक विशेष प्रकारके पदार्थका पता लगाया है, जिसे ब्रह्मशक्ति, माया अथवा इच्छा कहते हैं—यही परमेश्वरकी अगाध माया है। ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमालामें मणिकी तरह परमेश्वरमें गुथे हुए हैं—यह त्रिगुणात्मिका ईश्वरीय मायाका ही चमत्कार है। यद्यपि प्रकृति ब्रह्मके आश्रयसे ही चराचरको उत्पन्न करती है, परन्तु जीवके जनन मरणका चक्र सर्वथा मायाके ही अधिकारमें है। जो मनुष्य अनन्यभावसे ईश्वरको भजता है, वही मायाके चक्रसे छूट सकता है, अन्य नहीं। मूर्ख मनुष्य अहन्ता-ममताके फन्देमें फँसकर" मैंने यह किया, वह किया,,— इत्यादि मिथ्या अभिमान किया करता है; वास्तवमें देखा जाय तो प्रकृतिके उत्कर्षापकर्षसे ईश्वरीय इच्छा ही सब कुछ कराया करती है। यद्यपि इन्द्रियाँ और विषय, इनका आपसमें सम्बन्ध है और उस सम्बन्धको लेकर ही मनुष्यके सब कार्य होते हैं, तथापि परमात्माने मनुष्यको बुद्धिकी स्वतन्त्रता दी है, इसकारण अपने पुण्य और पापका स्वयं भोक्ता होता है। परमात्माके चारों तरफ योगमायाका पर्दा पड़ा है; अतः वह हमारे देखनेमें नहीं आता। सारांश—

मनुष्यको अपनी सच्ची स्थितिका ज्ञान करलेना चाहिये, फलाभिकांक्षारहित अपने कर्त्तव्य कर्मोंको करना चाहिये और कर्म-जन्य दोषोंसे बचनेके लिये ऐसे कर्म करने चाहिये, जिनका विनियोग ईश्वर अथवा देशमें हो। अपने स्वार्थवश किया हुआ काम सकाम और ईश्वर तथा देशके निमित्त किया हुआ काम निष्काम होता है; अतः मनको वशमें रखकर निष्काम कर्म करना चाहिये और ज्ञानके द्वारा परम श्रेष्ठ, परमाक्षर तथा अविकारी परमात्माको जानकर परमाभक्तिसे उसको प्राप्तकर लेना चाहिये—यही मनुष्योंका तरणोपाय तथा अन्तिम ध्येय है।

——:०:——

६—राजनीति और धर्मका उद्धारक कृष्णावतार।

राजनीति और धर्मका उद्धारक कृष्णावतार। इस शीर्षकको पढ़कर पाठकोंके चित्तमें यह विचार अवश्य होगा, कि आज पर्यन्त श्रीकृष्णावतारको धर्मोद्धारक ही माना जाता था और गीतादि ग्रन्थोंमें भी यही लिखा है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

"जब जब धर्मका ह्रास होने लगता है तब तब मैं अवतार धर अधर्मको हटाकर धर्मकी स्थापना करता हूं।" परन्तु राजनीतिके उद्धारार्थ ईश्वरका जन्म होता है—यह किसी भी ग्रंथमें नहीं आया है। फिर न जाने आप कृष्णावतारको राजनीति एवं धर्मोद्धारक किस प्रकार लिखते हैं?

पाठक वर्ग! इसमें तो किसी प्रकारका सन्देह नहीं, कि प्रायः साधारण लोग भगवान् कृष्णके अवतारको अब तक केवल धर्मोद्धारक ही मानते आये हैं, परन्तु जब आप इस विषयपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे, तो प्रतीत होगा, कि केवल कृष्णावतार ही नहीं वरन् ब्रह्मके सभी अवतार राजनीति तथा धर्मके उद्धारक हुए हैं। धर्म क्या वस्तु है और किस प्रयोजनके लिये कब उत्पन्न हुआ है? इस विषयपर स्वस्थ चित्तसे हमने आज तक विचार ही नहीं किया। यदि करते तो पता लग जाता कि धर्मकी रक्षा बिना राजनीतिका होना किसी

प्रकार भी सम्भव नहीं है। राजनीति ही एक इस प्रकारका साधन है, जो कि धर्मके अस्तित्वको सदैव सुरक्षित रख सकता है।

धर्म—

यह विद्यमान जगत् किन आधारोंपर स्थिर है? जब आप इस विषयपर विचार करेंगे तो पता लगेगा, कि एक प्रकृति और दूसरा धर्म इन दो आधारोंपर ही समस्त संसारकी प्रगति निर्भर है। प्रकृति, जगतकी रचनाका घटकावयव है और धर्म, शांतिपूर्वक संसारके प्रवाहको चलानेवाली शक्ति है। सत्य, दया, परोपकार, अस्तेय, शौच, धैर्य, आत्मनिग्रह, बुद्धि और इन्द्रियनिग्रह ये संसारप्रचालक धर्मके ही प्रभेद हैं। इन दोनों साधनोंकी जगत्को कितनी अपेक्षा है, यह बात आपको इनके स्वरूपविवेचनसे ही विदित हो गई होगी। इन दोनोंमेंसे यदि एकको भी संसारसे पृथक् कर दिया जाय तो संसारके स्वरूपकी रक्षा होना असम्भव है। मनुजी महाराजने द्वितीय साधन धर्मके विषयमें अपने धर्मशास्त्रमें इस प्रकार लिखा है—

नैव राज्यं न राजासीन्न च दण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्॥

"संसारके आदिमें न तो कोई राज्य (शासन) था और न राजा (शासक) ही था; इसी प्रकार न किसी तरहका दण्ड (सज़ा) था और न दण्ड देने वाला ही था, कारण कि सब प्रजाके लोग धर्म-पूर्वक चलते थे।" मनुजीके कथनसे विदित होता है, कि पूर्वकालमें कोई राजा नहीं था, केवल धर्मके आधारसे ही प्रजा सानन्द जीवन व्यतीत करती थी। यह नियम संसारकी रचनाके पश्चात् बहुत दिन तक अबाधितरूपसे चलता रहा; अतः किसी प्रकारकी भी गवर्नमेण्टकी आवश्यकता न पड़ी, किन्तु ज्यों ज्यों अधिक समय व्यतीत होने लगा त्यों त्यों प्रजाके लोगोंके चित्तमें कुछ कुछ स्वार्थका प्रवेश होने लगा। स्वार्थने धार्मिक बन्धनोंको ढीला कर दिया, जिससे एक मनुष्य दूसरेकी स्वतंत्रताका अपहरण करने लगा और अन्यको गुलाम बनाना ही मनुष्यका कर्त्तव्य समझने लगा।

राज्यकी स्थापना—

पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं, कि इस प्रकारके अन्धेर होनेपर प्रजा किस प्रकार सुखी रह सकती थी। अतः उस समयकी सोसाइटीके लोगोंने परामर्श करके यह नियम बनाया,—"एक राज्यकी स्थापना होनी चाहिये और

उसके निर्वाहार्थ प्रजानुमोदित एक धार्मिक राजा होना चाहिये। राजाको अधिकार हो, कि वह धर्म विरुद्ध चलनेवाले अधर्मी लोगोंको दण्ड देकर धर्म पथपर चलावे, जिससे कि कोई भी सबल किसी निर्बलको बल-पूर्वक गुलाम न बना सके।"

उपरोक्त नियमके अनुसार प्रजामेंसे ही और प्रजानुमोदित एवं धार्मिक पुरुषको राजा बनाया गया और दुष्टोंके ऊपर शासन करनेके उपयोगी समस्त अधिकार भी उसको दिये गये।

मुझको यह लिखते हुए अत्यन्त आह्लाद होता है, कि आदिम-कालके अनेक राजाओंने उपरोक्त नियमका पालन यथार्थ रीतिसे किया और उनमें महाराज सगरका नाम उल्लेखनीय है। महाराज सगरने "मैं प्रजाके लिये हूं" यह समझ कर ही सदैव प्रजाका पालन किया था। उनको स्वप्नमें भी "प्रजा मेरे लिये है" यह कुबुद्धि नहीं हुई थी। इसका प्रबल प्रमाण यह है, कि महाराज सगरका प्यारा पुत्र 'असमंजस' संसर्गज दोषोंके कारण असभ्य बन गया था और समस्त प्रजाके बालकोंको पानीमें डुबोकर मारने लगा था। कुछ समय तक तो प्रजाने राजकुमार समझ कर उसके अत्याचारोंको सहन किया, परन्तु जब अति हो गई तो समस्त प्रजाने महाराजके पास जाकर प्रार्थना की। प्रजाके द्वारा अपने पुत्रके घृणित कार्यको सुनकर महाराजने पुत्र-मोहको दूर कर और "मैं प्रजाकी अपेक्षा पुत्र दारादिकोंको प्रिय नहीं मानता"—यह कहते हुए अपने प्रिय पुत्रको देशनिकालेकी कठिन यातना दी। सारांश—महाराज सगरने यह अच्छी प्रकारसे बतला दिया, कि मैं प्रजाका स्वतन्त्र अधिपति नहीं हूँ; किन्तु धर्मकी रक्षाके निमित्त ही राजा बनाया गया हूं।

पाठकोंने उपर्युक्त विवरणसे अनुभव किया होगा, कि धर्मको स्थिर रखनेके लिये राजनीतिका जन्म हुआ है।

उस समय सगर महाराजके सदृश और भी अनेक राजा भारतवर्षमें हुए थे, कि जिनका पूरा पूरा वृत्तान्त पुराणोंके अवलोकनसे जाना जा सकता है। दुःखसे लिखना पड़ता है, कि यह प्रक्रिया विशेष समय तक स्थिर न रह सकी और अचिरकालमें ही उसका स्वरूप बदल गया—अर्थात्, राजा लोगोंके मनोंमें भी धीरे धीरे स्वार्थ महाराजका सिंहासन बिछ गया, जिससे राजा लोगोंका "हम प्रजाके लिये हैं" यह सिद्धान्त निर्बल होकर "प्रजा हमारे लिये है" यह पक्ष सबल हो गया। इसी प्रजानाशक निकृष्ट सिद्धान्तने राजनीतिके उज्वल ध्येयको कलंकित बना दिया।

इस कुटिल नीतिका फल स्वरूप ही वेणु जैसा महा अधर्मी राजा पैदा हुआ, कि जिसने समस्त भारतीय-प्रजाको परतन्त्र बनानेमें ही अपना इति कर्त्तव्य समझा। श्रीमद्भागवत महापुराणमें जब हम इस महापापी वेणुकी कथाको पढ़ते हैं, तो रोमांच खड़े हो जाते हैं और अतीत काल, वर्तमानमें परिणत हो जाता है। इस पापात्मा वेणुने ईश्वरके अस्तित्वको तुच्छ मानकर अपने कर्त्तव्यको ही प्रबल माना था। इसी कारण अनेक प्रकारकी असह्य यातनाओं द्वारा प्रजाको सदैवके लिये परतन्त्र बनानेमें ही इसने अपनी संपूर्ण शक्ति लगा दी थी। यह तो निश्चय ही है, कि अत्याचारकी भी कोई अवधि अवश्य होती है। उस अवधिके समाप्त हो जानेपर अत्याचारीकी आयु भी समाप्त हो जाती है, वेणुका ठीक यही हाल हुआ। जिस प्रजापर वेणुने असह्य अत्याचार किये थे, अन्तमें उसी पीड़ित-प्रजाकी आहोंसे उसका जीवन समाप्त हुआ।

यद्यपि पापी वेणुको अपने कियेका दण्ड (सज़ा) मिल गया; तथापि उसके असह्य अत्याचारसे पीड़ित प्रजाके अन्तःकरणकी सन्तापाग्नि शान्त नहीं हुई; अतः वेणुके मरनेपर भी सब प्रजाने एक स्वरसे परमात्माको पुकारा और प्रार्थना की, कि भगवन्! जब कभी इस प्रकारका दुराचारी राजा उत्पन्न हो जाया करे, तब राजनीति और धर्मके बैलेन्सको बराबर करनेके लिये आपका अवतार अवश्य ही होना चाहिये। अन्यथा यह आपकी क्रीड़ाभूमि नष्ट भ्रष्ट हो जायगी।

इसके बाद जब कभी कोई अधर्मी राजा हुआ और उसने धर्म-स्थितिके लिये राजनीतिको काममें न लाकर निर्बलोंको सताने और निजकी स्वार्थसिद्धिके लिये काममें लाया, कि तत्काल किसी भी प्रकारके स्वरूपमें उस महान् आत्माने अपनेको उत्पन्न करके धर्म और राजनीतिके बैलेन्सको ठीककर प्रजाको सुखी बनाया। हिरण्याक्षके बाद बराह अवतारने और हिरण्यकश्यपुके बाद नृसिंहावतारने इसी कार्य्यको किया था। सारांश—जितने भी भगवान्के अवतार हुए हैं, उनमें अधिकतरने धर्म और राजनीतिके उद्धार करनेमें ही अपनी शक्तिको लगाया था।

श्रीकृष्ण भगवान्।

श्रीकृष्ण भगवान्का अवतार भी इसी उद्देश्यको लेकर हुआ था, कारण कि आजसे पाँच हजार वर्ष प्रथम भारतकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। उस समय संसारसे धर्मकी सत्ताको नष्ट करनेवाले और आश्रित प्रजाको

परतन्त्रताकी बेड़ियोंमें जकड़कर स्वयं सुख-भोक्ता बननेवाले अनेक पापी राजा उत्पन्न हो गये थे। दन्तवक्र, शिशुपाल, पौण्ड्रक, जरासन्धादि माण्डलिक मिलकर विजयी होनेकी अभिलाषासे भारतको उद्ध्वस्त कर ही रहे थे, परन्तु इन सबसे प्रबल पापी कंस था। उसने भारतको नष्ट करनेका जो उपाय सोचा था, वह अत्यन्त घृणास्पद और राक्षसी कर्म था। वह चाहता था, कि गऊ और ब्राह्मणोंको सबसे प्रथम मारना चाहिये, कारण कि भारत कृषि-प्रधान देश है और कृषिका सब भार गोवंशपर निर्भर है; अतः गोवंशके नाशसे यह देश अनायास ही नष्ट हो सकता है। रहा, धर्म कर्मका ढकोसला सो ब्राह्मणोंके नाश होते ही रसातलको चला जायगा। यदि प्रजाके लोग इस कार्यमें विघ्न करें, तो उनको बहुत बड़े बड़े जेलखानोंमें कैद कर देना चाहिये।

पाठक महोदय! इस निरंकुश और पापीके राज्यमें दमन करनेका इतना जोर बढ़ा कि अपने बाप और बहन बहनोई तक को भी इसने जेल भेजनेमें आनाकानी नहीं की। इसी प्रकार गऊ और ब्राह्मणोंके वध-कार्यको भी इसने प्रबल वेगसे चलाना प्रारम्भ कर दिया। इसी कारणसे उस समयकी समस्त जनतामें हाहाकार मच गया और सब लोग दुःखी होकर परमात्मासे अवतार धारण करनेकी प्रार्थना करने लगे। अतः समस्त प्रजाकी पुकारको श्रवण-कर और राजनीति एवं धर्मके बैलेन्सको बराबर करनेके लिये भाद्रपद कृष्णाष्टमीके दिन पापी कंसके जेलखानेमें वसुदेवजीकी भार्या देवकीजीके गर्भसे श्रीकृष्ण भगवान्का जन्म हो गया।

पाठकोंके चित्तमें यह आश्चर्य अवश्य हुआ होगा, कि भगवान् कृष्णका प्राकट्य किसी बहुत बड़े सुविख्यात राजाके घरमें न होकर एक साधारण गृहस्थके घरमें और वह भी जेलखाना जैसी अपवित्र जगहमें क्यों हुआ? परन्तु यह आश्चर्य करनेकी बात नहीं है। श्रीकृष्णके जन्मका यही वास्तविक रहस्य था। भगवान् कृष्ण जानते थे, कि पापी कंसके पास प्रजाके पीड़न करनेका सबसे बहुत बड़ा अस्त्र जेलखाना ही है। समस्त प्रजा इसीसे कंपित होनेके कारण अपने असह्य दुःखको किसीके सामने प्रकट करनेकी सामर्थ्य नहीं रखती। इसलिये सबसे प्रथम इस जेलखानेकी व्यर्थ भीति (भय) को प्रजाके चित्तसे निकालना मेरा आद्य कर्त्तव्य है। यह बात जेलखानेमें जन्म लिये बिना नहीं हो सकती थी; अतः भगवान्ने जेलमें जन्म लिया। जेलखानेमें जन्म लेकर सब प्रजाके लोगोंको यह बतला दिया कि बिना चोरी आदि पाप करनेके जेलमें

जाना कोई बुरी बात नहीं है, प्रत्युत् अनाथ और निर्बलोंकी रक्षार्थ यदि तुमको *जेल जाना पड़े तो उस स्थानको जेल न समझकर मेरे जन्मका मन्दिर समझना* चाहिये। भगवान्‌के इस कृत्यका परिणाम यह हुआ, कि प्रजाके चित्तसे जेल-खानेकी व्यर्थ भीतिका सिंहासन सदैवके लिये उठ गया और सब लोग देश एवं धर्मके लिये जेल जाना पुण्य समझने लगे। इसके बाद भगवान् जेलमें न रह कर बाबा नन्दके घर गोकुलमें पधार गये और गोकुलमें जाकर उस गोवंशकी रक्षा की, जिसके कारण भारतका अस्तित्व स्थिर है।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णकी बाल लीलाओंका प्रारम्भ हुआ था कि जिनको देख कर एक देशके समस्त मनुष्योंको फैमिली सिस्टम (Family System) से किस प्रकार रहना चाहिये इसका अच्छा उपदेश मिलता है। यह चरित्र भगवान्‌की ग्यारह वर्षकी अवस्थाका था। इसके उपरान्त युवाकालका प्रारम्भ हो गया। युवावस्थाका समग्र वृत्तान्त श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धसे मिलता है। उस समयके जो जो राजा प्रजापर जुल्म करके राजनीतिसे स्वार्थकी सिद्धि करते थे, उनको भगवान्‌ने मार मार कर और उनके स्थानमें प्रजाहितैषी धर्मात्मा राजाओंको नियुक्त करके राजनीतिको धर्मोद्धारिणी बनाया था।

प्रायः अदूरदर्शी लोग, जो अवतारके उद्देश्यको नहीं जानते वे इन पापात्मा राजाओंके मारने और अनेक प्रकारकी चालाकी करनेसे भगवान् कृष्णके अवतार होनेमें संदेह करते हैं, परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। कारण कि भगवान्‌ने अनेक प्रकारकी चतुराई करके इन राजाओंका वध इसलिये नहीं किया, कि ये लोग मेरे शत्रु हैं बल्कि राजनीति और धर्म जो प्रजाकी स्थितिके मुख्य स्तम्भ हैं—उनका इन राजाओंने दुरुपयोग करके धार्मिक और निर्बल प्रजाको गुलाम बनाया था। इस कारण देश और धर्मके नेता भगवान् कृष्णने इनका वध किया था। इस कथनकी सत्यता निम्न लिखित घटनासे अनायास ही समझमें आ जाती है। जब भगवान्‌के अवतारका कार्य समाप्त हो गया और ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे वैकुण्ठ जानेकी तयारी करने लगे, तब विचार किया, कि जिस यादव वंशके द्वारा मैंने राजाओंका वध किया है, वह यादव वंश और उसके बड़े बड़े शूर वीर अभी तक पृथ्वीपर विद्यमान हैं और उनके चित्तमें यह भाव भी प्रविष्ट हो गया है, कि जरासिन्धादि बड़े बड़े योधाओंका वध हमीं लोगोंने किया है, फिर हमारे हाथमें भारतका शासन न रहे, यह बुरी बात है। अतः भगवान्

कृष्णके परलोक चले जानेपर इन विद्यमान राजाओंको कैद करके हम ही शासक बनेंगे। ऐसी दशामें धरापर इन उन्मत्त यादवोंको छोड़ कर चला जाना अवतारके उद्देश्यसे सर्वथा विपरीत है। अतः फिर भी कुछ समय तक ठहर कर भगवान्‌ने अपने सामने ही स्ववंशका नाश करा कर प्रजाको निष्कण्टक बनाया और फिर वैकुण्ठको पधारे।

पाठकवर्य्य! उपरोक्त वृत्तान्तसे आपने जाना होगा कि भगवान् कृष्णका अवतार शत्रुता और मैत्रीमूलक नहीं था, किन्तु राजनीति और धर्मके उद्धारार्थ ही था।

४—श्रीहरितालिका व्रत।

हरितालिका—यह त्यौहार नहीं, किन्तु कौटुम्बिक-व्रत मालूम होता है। विशेषतया कुमारिकाओं और सामान्यतया सौभाग्यवती स्त्रियोंके करने योग्य ही है। इसका निर्णय धर्मसिन्धुमें इस प्रकार मिलता है:—

भाद्रपद शुक्ल तृतीयायां हरितालिका-व्रतम्। तत्र मुहूर्त्त मात्रा
ततो न्यूनापि परा ग्राह्या। यदा क्षयवशात् परदिने नास्ति तदा
द्वितीयायुतापि ग्राह्या।

"भाद्रपद-शुक्ल तृतीयामें हरितालिका व्रत होता है। इसको मुहूर्त्तमात्र या उससे भी कम हो, तो भी चतुर्थीविद्धा ग्रहण करना चाहिये। यदि तिथिका क्षय हो, तो द्वितीया विद्धा भी ग्रहण करना योग्य है।"

शास्त्रीय-स्वरूप।

भाद्रपद शुक्ल तृतीयाको प्रातःकाल तिल और आमलेका उबटन कर स्नान करे तथा स्नानके पश्चात् रेशमी वस्त्र पहनकर—यह सङ्कल्प पढ़े:—

मासानां उत्तमे मासे शुभे भाद्रपद-मासे शुक्ल तृतीयायां मम समस्त
पाप-क्षय पूर्वक. सप्तजन्मराज्या-खण्डित. सौभाग्यादि विवृद्धये
उमा महेश्वर प्रीत्यर्थं हरितालिका व्रतमहङ्करिष्ये।"

इस सङ्कल्पके पश्चात् आदिमें गणेश पूजन कर गौरी और महादेवका पूजन करना चाहिये। गौरी और महादेवकी प्रार्थनाके श्लोक ये हैं:—

"पीतकौशेयवसनां हेमाभां कमलासनाम्।
भक्तानां वरदां नित्यं पार्वतीं चिन्तयाम्यहम्॥
मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कित शेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥"

उपर्युक्त श्लोकोंसे प्रार्थना करे और तत्पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, कंचुकी, उपवस्त्र और भूषण आदिसे पौराणिक विधिके अनुकूल षोडशोपचार पूर्वक पूजनकर अङ्गन्यास करन्यास करना चाहिये। पूजाकी समाप्तिपर पुष्पाञ्जलि कर प्रदक्षिणा और नमस्कारके पश्चात् बाँसके टोकरामें बाँयनके पदार्थोंको भरकर दे तथा स्वर्णके पात्रमें वस्त्र सहित फल रखकर दक्षिणामें दे। इस बाँयन तथा दक्षिणाको वेद-शास्त्र सम्पन्न ब्राह्मणके लिये दे। दिनको भजन तथा रात्रिको जागरण करके महादेव-को संतुष्ट करना चाहिये।

अथ कथा।

रमणीक शिखरवाले कैलाश पर्वतपर आसीन श्रीशङ्करसे पार्वतीने पूछा,—"जो धर्म सम्पूर्ण धर्मोंमें श्रेष्ठ हो और अल्प परिश्रम साध्य हो कृपाकर मुझको बतलाओ तथा जिस दान अथवा धर्मके करनेसे मुझको आपकी प्राप्ति हुई उसको भी कहो।" महादेवजीने कहा,—"जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ग्रहोंमें सूर्य्य, वर्णोंमें ब्राह्मण, देवोंमें विष्णु, नदियोंमें गङ्गा, पुराणोंमें भारत, वेदोंमें सामवेद और इन्द्रियोंमें मन श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार व्रतोंमें हरितालिकाव्रत श्रेष्ठ होता है। इसीके अपूर्व प्रभावसे तुमने मेरे अर्द्धासनको पाया है। यह व्रत भाद्रपदकी शुक्ल तृतीयाके दिन होता है, जिसके करनेसे सम्पूर्ण दुःखोंकी निवृत्ति होती है।" पार्वतीने महादेवके मुखसे हरितालिकाव्रतके अपूर्व माहात्म्यको सुन कर कहाः—

कथं कृतं मया नाथ! व्रतानां व्रतमुत्तमम्।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर!

"नाथ! मैंने व्रतोंमें अति उत्तम हरितालिका व्रतको आपकी प्राप्तिके लिये कैसे किया—यह सब आपसे मैं सुनना चाहती हूँ।" पार्वतीके नम्रता तथा श्रद्धायुक्त विनीत वचनको सुनकर महादेवने कहा,—"पार्वति! इस भारतवर्षमें सब पर्वतोंसे विशाल पर्वतराज हिमालय है। उसमें अनेक प्रकार-की सुन्दर भूमियाँ हैं और अनेक प्रकारके वृक्ष हैं। अनेक प्रकारके पक्षी

तथा मृगयूथ सानन्द और स्वच्छन्द विहार करते हुए पर्वतराजकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। उस पर्वतमें देव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण और गुह्यक आनन्दसे निवास करते हैं। यह पर्वत सदैव बर्फसे ढँका रहता है और भगवती जान्हवीके नादसे निनादित रहता है।

बाल्यावस्थामें तुमने इसी पर्वत-राजपर बड़ा दुष्कर तप किया था। द्वादश वर्ष तक तो तुमने अधोमुख होकर धूम-पान करके समयको बिताया। उसके अनन्तर मास मासमें तुम जलमें निमग्न रहीं, वैशाखमें अग्निका सेवन किया और श्रावणमें अन्न जलके आहार तथा पानसे रहित होकर घोर तप किया। एक समय तुम्हारे पिता महाराज हिमाचल मनमें सोच कर रहे थे, कि इस मेरी कन्याको किसके लिये देना चाहिये। उसी अवसरपर दैवात् वहाँ नारदजी महाराजका आगमन हो गया। राजाने नारदजीको देखकर तथा आसनपर बिठलाकर विनयपूर्वक पूछा,—"भगवन्! आज मेरे अहोभाग्य हैं, जिससे आप जैसे देवर्षिका आगमन मेरे स्थानपर हुआ।" हँसकर नारदजीने कहा,—"राजन्! राजा हिमाचलको जाकर समझा दो, कि वह अपनी कन्या—पार्वतीको योग्य वरके लिये ही दे, अयोग्यको न दे—यह भगवान् विष्णुने कहा है; अतः भगवान्के इस सन्देशेको लेकर ही तुम्हारे पास आया हूं।" इस प्रकार विष्णुके सम्वादको कहकर पुनः नारदजीने अपनी सम्मति भी बतलाई,—"ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनोंमें विष्णु ही श्रेष्ठ हैं; अतः मेरी सम्मतिमें तुमको अपनी कन्या विष्णुके लिये ही देनी योग्य है।" नारदजीके शुभ-सम्वादको सुनकर हिमाचलने कहा,—"पार्वतीके तपके प्रभावसे जब स्वयं विष्णु भगवान् ही मेरी कन्याको चाहते हैं और आपकी भी आज्ञा है, तबतो मैं अवश्य ही इस कन्याको विष्णुके लिये दूँगा।"

नारदजी राजाकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर वहांसे अन्तर्धान हो गये और पर्वतपर तपस्या करती हुई पार्वतीसे जाकर इस समस्त वृत्तान्तको कह सुनाया। नारदके चले जानेपर पीछेसे महाराज हिमाचल भी पार्वतीके पास गये और कहा,—"कन्ये! मैंने विष्णुके सन्देश, तुम्हारी शुभ-कामना तथा नारदके उपदेशसे तुमको भगवान् विष्णुके लिये देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है; अतः अब तुमको दारुण तपसे निवृत्त हो जाना चाहिये।" पार्वती इस प्रकार पिताके वचनोंको श्रवणकर, अपनी सखियोंके पास आकर और करुणावश मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर गयी। सखियोंने उस मूर्छित पार्वतीको सावधान

फरके कहा,—"शैलकन्ये! तुम अपने मनोगत भावको मुझसे कहो, मैं हर प्रकारसे तुम्हारी सहायता करनेको प्रस्तुत हूं।" सखिके आश्वासनको सुनकर और सावधान होकर पार्वतीने कहाः—

सखि! शृणु मम प्रीत्या मनोऽभिलषितं तथा।
महादेवं च भर्त्तारं करिष्येऽहम्न संशयः॥
एतन्मे चिन्तितं कार्यं तातेन कृतमन्यथा।
तस्माद्देहपरित्यागं करिष्येऽहं सखि प्रिये!॥

"सखि! तुम प्रीतिसे मेरे मनोगत भावको श्रवण करो। मैं निःसंशय अपना पति महादेवको बनाऊँगी; परन्तु मेरे पिताने मुझको विष्णुके लिये देनेका सङ्कल्प किया है—यही चिन्ताका कारण है। यदि मेरी इच्छानुसार न हुआ, तो मैं अवश्य ही प्राण-त्याग करूँगी।" पार्वतीके मुखसे इस वृत्तान्तको सुनकर सखीने कहा,—"यदि ऐसा है, तो तुम इसी समय यहांसे मेरे साथ वनान्तर—घोर वनमें चलो और वहां जाकर महादेवको प्रसन्न करनेका उपाय करो।"—यह ठीक है, इस प्रकार कहकर पार्वती उसी सखीके साथ वनान्तरमें चली गयी और पीछेसे महाराज हिमाचलने बड़ा भारी शोक किया। पार्वतीने वहां घोर वनमें जाकर और बालुकाका शिव-लङ्ग बनाकर, भाद्रपदकी शुक्ल तृतीयाको महादेवका पूजन किया, जिससे प्रसन्न होकर हे पार्वति! मैं तुम्हारे पास आकर बोला,—"वर मांगो।?" तब तुमने कहाः—

यदि देव! प्रसन्नोसि भर्ता भव महेश्वर!

"हे, देव! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं, तो आप मेरे पति हों।" तुम्हारे इस मनोगत भावको मैंने स्वीकार किया और कैलाशपर चला गया तथा तुमने पीछेसे हरितालिकाके दूसरे दिन उद्यापन किया। राजा हिमाचल भी ढूँढता ढूँढता उसी स्थानपर चला गया, जहां पार्वती तप कर रही थीं। सखिके सहित पार्वतीको पाकर राजाने सब वृत्तान्त कहा। उस समय हाथ जोड़ कर पार्वतीने पितासे कहा,—"पिताजी! यदि आप मुझको विष्णुके लिये देनेके वचनका पालन करोगे, तो मैं घरपर नहीं चलूँगी। घरपर चलना तो क्या, परन्तु प्राणत्याग करूँगी और यदि महादेवको दोगे, तो मैं अवश्य ही आपकी आज्ञाका पालन करूँगी।" तब राजा बोला,—"इसमें तो सन्देह नहीं; कि मेरा सङ्कल्प तुमको विष्णुके लिये देनेका था; परन्तु व्रतके प्रभावसे जब तुमने शिवको प्रसन्न—प्राप्त—किया है, तो मैं अब अन्यथा न करूँगा।" यह

कहकर और तुम्हारे सहित मकानपर आकर, राजा हिमवान्‌ने मेरे साथ तुम्हारा विवाह कर दिया। सखी तुमको हरण करके दूसरे वनमें ले गयी थी, इस कारण इस व्रतका नाम "हरितालिका" पड़ा—आलि सखीके द्वारा हरित, हरण की गयी।

पार्वति! जो स्त्रियाँ सौभाग्यकी इच्छा रखती हों, उनको यह व्रत अवश्य ही करना चाहिये। कदलीके स्तम्भ तथा नाना रङ्गके रेशमी वस्त्रोंसे मण्डपकी रचना करे और उसको तोरण, ध्वजा तथा पताका—आदिसे सजाय। शंख, भेरी और मृदङ्ग—आदि बाजोंका नाद कराय तथा दिव्य गीतोंको गवाय पार्वतीके सहित मेरी मूर्त्तिकी स्थापना करके पुष्प, गन्ध, धूप और नैवेद्य आदिसे पूजन करे तथा निम्न लिखित मन्त्रका उच्चारण करे:—

"ॐ नमः शिवाय शान्ताय पञ्च-वक्त्राय शूलिने।
नन्दि भृङ्गि महाकाल गण-युक्ताय शम्भवे॥
शिवायै हर-कान्तायै प्रकृत्यैं शिव-रूपिणे।
शिवायै सर्व-माङ्गल्यै शिवरूपे-जगन्मये॥"

जो सौभाग्यवती स्त्री तृतीयाके दिन आहार करती है, वह सात जन्म तक वन्ध्या एवं वैधव्यके दुःखका अनुभव करती है—यह भविष्योत्तरमें लिखा है। चतुर्थीके दिन जो उद्यापन किया जाता है, उसका समस्त वृत्तान्त निर्णय-सिन्धु और धर्म-सिन्धुमें लिखा है।

लौकिक स्वरूप।

यह व्रत वास्तवमें ही कौटुम्बिक व्रत है; परन्तु है मौलिक। खेद है, कि आजकल भारतमें इसका प्रचार बहुत कम है। किसी किसी प्रान्तमें तो इसी प्रकारका व्रत अन्य मासोंमें भी होता है, परन्तु अभिप्राय वही है, जो हरितालिकाका है। और देशोंकी अपेक्षा राजपूतानेमें कुछ अधिक है, परन्तु व्रत विधि वही है, जो स्त्रियोंने कल्पना कर रक्खी है। महाराष्ट्र देशमें स्मार्त्त सम्प्रदायके ब्राह्मणोंकी कुछ स्त्रियाँ अवश्य ही इस व्रतको शास्त्रोक्तविधिसे करती हैं। कथा भागसे तो यह व्रत कुमारिका तथा सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये ही पाया जाता है, परन्तु दक्षिण आदि देशोंमें कहीं कहीं विधवा स्त्रियाँ एवं पुरुष भी करते हैं। बङ्गालकी तरफ हरितालिकाके स्थानमें "वरदचतुर्थी" व्रतका पालन किया जाता है और उसको भी स्त्रियाँ ही करती हैं; किन्तु माघ मासमें करती हैं, उद्देश वही है, जो हरितालिकाका है। उद्देशसे तो यह व्रत हरिता-

लिकाका ही विदित होता है; परन्तु वरदचतुर्थी इस नामसे गणेश-व्रतकी सी प्रतीति होती है। माघ मासकी पौर्णिमाको होनेसे और उद्देश्यमें गणपतिव्रत-का सम्बन्ध न होनेसे तथा हरितालिका-व्रतके अनुरूप होनेसे निःसन्देह यह गणेशका व्रत न होकर हरितालिकाका ही है।

शिक्षा।

जो शिक्षा वटसावित्रीसे मिलती है; ठीक वही शिक्षा हरितालिकासे भी ग्रहण करनी चाहिये, कारण कि पार्वतीने प्रथम ही जो सङ्कल्प शिव विवाह-का किया था, उसके विरुद्ध सप्तर्षियोंने, नारदने और हिमाचलने उद्योग किया, परन्तु पार्वतीने उसी एक बारके सङ्कल्पको अटल रक्खा। हा, भारत! उसी देशके निवासियोंको आज विधवा-विवाहकी सूझी है।

५—गणेश-चतुर्थी।

यद्यपि यहां प्रसङ्गोपात्त भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके गणेश-व्रतका ही उल्लेख होना चाहिये था, तथापि शास्त्रोंमें गणेशजीके चार व्रत-संकष्टचतुर्थी, दूर्वा-गणेश, कपर्दि विनायक और सिद्धि-विनायक लिखे हैं और उनमें "सिद्धि-विनायक" जो भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको होता है-मुख्य है। ये चारों व्रत श्रावण-शुक्ला ४ से प्रारम्भ होकर भाद्रपद शुक्ल पौर्णिमा पर्यन्त समाप्त हो गये हैं, इस कारण गणेशके चारों व्रत क्रमशः गणेशचतुर्थीके नीचे ही लिखे जाते हैं, पाठक ध्यान दें।

गणेश-यह वैदिक देवता हैं।

गणेशका वर्णन प्रायः सभी पुराणोंमें आया है, कारण कि विष्णु, महेश, गणेश, सूर्य्य और देवी—ये पञ्चोपासनाके पाँचो देवता हैं। जिस प्रकार एक ही ब्रह्मके ब्रह्मा, विष्णु और महेश-ये तीनों रूप पुराण तथा वेदोंने माने हैं, उसी प्रकार उपर्युक्त पांचों देवताओंको भी ब्रह्मका ही रूपान्तर वेद तथा पुराणोंने माना है और इसी आधारको लेकर स्मार्तोंने भी पञ्चोपासनाके सिद्धान्तको स्वीकार किया है।

भारतवर्षमें जैसे वैष्णव-सम्प्रदाय, शैव-सम्प्रदाय, शाक्त-सम्प्रदाय और सौर सम्प्रदायें हैं, उसी प्रकार गाणपत्य-सम्प्रदाय भी है। इस गाणपत्य

सम्प्रदायमें छः प्रभेद हैं,—" (१) महा गणपति, (२) हरिद्रा गणपति, (३) उच्छिष्ट गणपति, (४) नवनीत गणपति, (५) स्वर्ण गणपति और (६) सन्तान गणपति।" महागणपतिपन्थ—इस पन्थके अनुयायी गणपतिको ही जगत्का, ब्रह्मादि देवोंका और समस्त चराचरका उत्पन्नकर्त्ता मानते हैं। हरिद्रागणपतिपन्थ—इस पन्थके लोग गणपतिका दूसरा नाम ब्रह्मणस्पति मान कर उसको ही परात्पर मानते हैं। उनका मन्तव्य है, कि गणपतिकी मूर्त्ति, यज्ञोपवीत और वस्त्र आदि सब पीत वर्णके होने चाहिये। गणपतिकी सूँड़ और उनके एक दन्तको तप्त मुद्राकी तरह शरीरपर धारण करना—इनका मुख्य सम्प्रदाय है। उच्छिष्टगणपति-पन्थ-इस पन्थके लोग वाम मार्गियोंकी तरहसे निन्द्य-पद्धतिसे गणपतिकी अर्चा करते हैं। नवीन गणपति पन्थ,—स्वर्ण गणपति पन्थ और सन्तान गणपति पन्थ—ये तीनों प्रकारके गणपति-भक्त गणपतिकी अर्चा वैदिक-रीतिसे करते हैं और गणपतिको ही आदि कारण तथा समस्त शुभ-कार्योंमें प्रथम पूजनीय मानते हैं। इन छः प्रकारके पंथोंका प्रचार वर्त्तमान कालमें किस प्रदेशमें है—यह तो मालूम नहीं, परन्तु शङ्कर दिग्विजयमें आनन्दगिरिजीने उपर्युक्त विवरण किया है।

जिस प्रकार अन्य प्रधान देवताओंके वर्णन करनेवाले ग्रन्थ पृथक् पृथक् मिलते हैं, उसी प्रकार गणपतिके वर्णन करनेवाले भी तीन ग्रंथ हैं,—"(१) मुद्गलपुराणं, (२) गणेशपुराण और (३) गणेश भागवत।" परन्तु ये तीनों उपपुराण हैं और केवल गणेश-कथाके ही प्रतिपादक हैं। पुराणोंके अतिरिक्त वेदकी मूलसंहितामें भी गणेशका वर्णन आया है:—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपम श्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम्॥

"समुदायोंके प्रभु होनेसे तुम गणपति हो, ज्ञानियोंमें अत्यन्त ज्ञानी हो, उत्कृष्ट कीर्त्तिवालोंमें श्रेष्ठ हो, तुम राजाधिराज हो, तुमको हम आदरसे बुलाते हैं, हे ब्रह्मणस्पते—गणेश! हमारे बुलानेको मान देकर सब शक्तियोंके सहित इस आसनपर विराजमान हो।" इसी प्रकार "ॐ गं गणपतये नमः" अथर्ववेदका यह मुख्य मन्त्र भी गणेश वैदिक देवता है—बतलाता है। इसके सिवाय नारायणोपनिषद्में और भी स्पष्ट आया है:—

"तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नोरुद्रः प्रचोदयात्।
तत्पुरुषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्॥

तत्पुरुषाय विद्महे, वक्र-तुण्डाय धीमहि, तन्नो नन्दिः प्रचोदयात्।
तत्पुरुषाय विद्महे, महासेनाय धीमहि, तन्नः षण्मुखः प्रचोदयात्॥"

नारायणोपनिषद्‌के इस प्रमाणसे महादेव, रुद्र, वक्रतुण्ड (गजमुख गणपति),—दन्ती (गणेश) चक्रतुण्ड, नन्दी, महासेनानी, षण्मुख (स्वामि-कार्त्तिक),—महादेवजीके समस्त कुटुम्बको ही वैदिकत्त्व प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त गृह्य-सूत्रमें भी "विनायक"—गणेशका अच्छी प्रकारसे वर्णन आया है। अतः निःसन्देह—यह गणपति व्रत वैदिक है।

शास्त्रीय-स्वरूप।

१—संकष्ट चतुर्थी और उसका विधान।

सङ्कष्ट चतुर्थीको चन्द्रोदय व्यापिनी लिया गया है। व्रतसे प्रथम निम्न-लिखित सङ्कल्पको पढ़ेः—

"मासानामित्यादि तिथौ मम विद्या-धन-पुत्र-पौत्र प्राप्त्यर्थं समस्त रोग-मुक्तिकामः श्रीगणेशप्रीत्यर्थं सङ्कष्टचतुर्थी-व्रत महं करिष्ये। तत्रादौ स्वस्ति-वाचनं, गणपति-पूजनं, कलशार्चनं-च करिष्ये।"

प्रथम तो स्वर्ण, ताम्र, मृण्मय अथवा अन्य वस्तुसे गणेशकी मूर्त्ति बनावे और तदनन्तर जलसे भरे हुए घड़ेको वस्त्रसे ढाँके तथा उस पर गणेशकी स्थापना करके षोडशोपचार पूर्वक पूजन करे। पूजन करनेसे प्रथम ध्यान किया जाता है, जिसका मन्त्र यह हैः—

"लम्बोदरं चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं रक्त-वर्णकम्।
नाना रत्नैः सुवेशाढ्यं प्रसन्नास्यं विचिन्तयेत्॥
ध्यायेद्‌गजाननं देवं तप्त-काञ्चन-सुप्रभम्।
चतुर्बाहुं महाकायं सूर्य-कोटिसमप्रभम्॥"

तत्पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध और पुष्प आदिसे पूजन करके पुनः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। अङ्गपूजामें पाद, जंघा, उरु, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, कण्ठ, स्कन्ध, हाथ, मुख, ललाट, शिर और सर्वाङ्ग—इत्यादि अङ्गोंका पूजन करे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणाके पश्चात् आरती करे और नमस्कार करे। हे पार्वति! इस पूजामें २१ लड्डू भी रखने चाहिये। उनमेंसे ५ तो गणेशकी प्रतिमाके आगे रक्खे और पाँच ब्राह्मणोंको देनेके लिये रक्खे। जो ब्राह्मणोंको

देनेके हैं, उनको दक्षिणाके सहित भक्ति-भावसे ब्राह्मणको दे। यह क्रिया चतुर्थीके दिनमें करनेकी है और रातको जब चन्द्रमाका उदय हो जाय, तब चन्द्रमाका यथाविधि पूजन कर अर्घ प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, मौन धारण कर स्वयं भी लड्डुओंका भोजन करे। और—

"ॐ नमो हेरंब ! मद मोदित संकष्टान्निवारय निवारय"

इस मन्त्रका २१ वार जप करे तथा वस्त्रसे आच्छादित घटके सहित तथा दक्षिणाके सहित गणेश-मूर्त्तिको आचार्यके लिये प्रदान कर विहित मन्त्रसे गणेशजीका विसर्जन करे।

अथ कथा।

सनकादिक ऋषि स्वामीकार्त्तिकसे प्रश्न करते हैं,—"हे स्कन्द! दरिद्रता से सताये हुए, रोगसे पीड़ित और राज्यसे भ्रष्ट राजा लोगोंको तथा विद्या, धन और गृहसे भ्रष्ट अन्य पुरुषोंको भी ऐसा उपाय बतलाओ, कि जिससे उनका निस्तार हो जाय।" ऋषियोंके इस प्रश्नको श्रवण कर स्कन्दने कहा,-"श्री देवकीनन्दनने किसी भी संकष्टसे छूटनेका उपाय धर्मराज युधिष्ठिरसे जो कहा और गणेशजीने जो अपनी मातासे कहा, उसीको मैं आप लोगोंसे कहता हूं, श्रवण करो।" पार्वतीने पूर्वकाल—सत्ययुगमें "शिवजी मुझको पति मिलें"— इस कारण तप किया था, परन्तु जब शिव सन्तुष्ट न हुए, तो "हेरंब" यह कहकर अपने पूर्वजन्मके पुत्र गणेशको याद किया। गणेशजीके आनेपर माताने कहा,—"बेटे! तप करने पर भी महादेवजी प्रसन्न नहीं हुए; अतः उनके वियोगसे मुझको बड़ा भारी कष्ट है। यद्यपि संकष्टहरणके लिये एक व्रत बहुत दिन पूर्व नारदजीने बतलाया था, परन्तु वह अब याद नहीं है—तुम उस व्रतको बतलाओ।"—यह श्रवण कर गणेशजीने मातासे कहा,—"मातः! श्रावणके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको संकष्टचतुर्थी नामक व्रत किया जाता है। रात्रिको-चन्द्रोदय होनेपर प्रथम तो चन्द्रमाका पूजन करे और पश्चात् अर्घ प्रदान कर भोजन करे।"

श्रीकृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरसे कहा, कि राजन्! पार्वतीने जब गणेशसे इस संकष्ट चतुर्थीके विधानको श्रवण किया, तब प्रसन्न होकर पार्वतीने भी किया, जिसके करनेसे भगवान् महादेवकी प्राप्त हो गयी। यदि तुम भी इस व्रतको करोगे, तो इस दुःख सागरसे अनायास ही पार हो जाओगे। जिस

व्रतको स्कन्दने सप्तर्षियोंसे कहा और देवकीनन्दन—भगवान् कृष्णने युधिष्ठिरसे कहा, उसी व्रतके यथार्थ पालन करनेसे महाराज युधिष्ठिर विजयी होकर अपने गत राज्यको पुनः प्राप्त हो गये। किसी प्रकारकी भी कामना या सङ्कष्ट क्यों न हो, इस व्रतके प्रभावसे कामनाओंकी सिद्धि और संकटोंका नाश अवश्य ही हो जाता है। त्रिपुरासुरकी विजयके निमित्त महादेवने और त्रिलोककी विभूतिकी कामनासे इन्द्रने—इसी व्रतका पालन किया था। बलिके बन्धनसे छूटनेको रावणने और सीताकी खोजको हनूमानने इसी व्रतको किया था। विद्यार्थी, धनार्थी और पुत्रार्थी कोई भी क्यों न हो, इसी एक व्रतके प्रभावसे अपने अपने इष्टको प्राप्त हो जाते हैं।

२—दूर्वागणपति-व्रत और उसका विधान।

श्रावण या कार्त्तिककी शुक्ला चतुर्थीको दूर्वागणपति-व्रत होता है, जिसका वर्णन स्कन्द पुराणमें आया है। स्कन्द महाराजने अपने पिता—महादेवजीसे पूछा,—"भगवन्! ऐसा कौनसा उत्तम व्रत है, कि जिसके करनेसे अतुल सौभाग्य, पुत्र-पौत्र और धन ऐश्वर्य्यकी प्राप्ति हो।" स्कन्दके सरल और गम्भीर प्रश्नको सुनकर महादेवजी बोले,—पार्वतीने, इन्द्राणीने, सरस्वतीने, इन्द्रने, विष्णुने और कुवेरने जिस व्रतको प्रथम कल्पमें किया था, उसको तुम सुनो।" दूर्वागणपति-व्रत श्रावणकी शुक्ला चतुर्थी तथा कार्त्तिककी शुक्ला चतुर्थीको किया जाता है; परन्तु इन दोनों पक्षोंमें कार्तिक शुक्लाका पक्ष ही उत्तम माना गया है।

हाथीकीसी सूँड़ हो, चार भुजा हों और एक दन्त हो—इस प्रकारकी स्वर्णमयी गणेशकी प्रतिमा हो, उसको स्वर्णके सिंहासनपर स्थापित करे। तथा उस सिंहासनको स्वर्णकी दूर्वावाले एवं लाल वस्त्रसे वेष्टित ताम्बेके कलशपर स्थापित करे और लाल फूल, विल्व-पत्र, अपामार्ग, शमी-पत्र, दूर्वा, गन्ध, पुष्प, फल और मोदकोंसे पूजन कर—यह मन्त्र बोलेः—

"उमा-सुत नमस्तुभ्यं विश्व-व्यापिन्सनातन ! ।
विघ्नौघान् छिन्धि सकलान् सर्वमाद्यं वदामि ते ॥
गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधसे ।
पूजये च महादेव ! गृहाण भगवन्मम ॥"

यह सौर-पुराणकी विधि है। इस पद्धतिसे गणपतिका पूजन करे और दक्षिणाके सहित मूर्तिको आचार्यके लिये दे। पांच या सात वर्ष तक इस व्रतको करके पुनः उद्यापन करनेसे अवश्यमेव सकल कामनाओंकी सिद्धि होती है।

२१ दिन तक गणपति पूजन और कथा।

श्रावण-शुक्ला चतुर्थीसे भाद्रपद कृष्णा दशमी तक २१ दिन तक गणेशके पूजनका विधान भविष्योत्तरके तृतीयोल्लासमें इस प्रकार आया है। एक समय शौनकादिक ऋषियोंने सूतजीके पास जाकर कहा,—"भगवन्! किसी अनिवार्य कष्टके उपस्थित होनेपर ऐसा क्या, उपाय किया जाय, जिससे उस कष्टकी निवृत्ति हो?" इस प्रकारकी प्रार्थनाको सुनकर सूतजीने कहा,—"२१ दिन तक शास्त्रोक्तविधिसे जो गणपति-पूजन किया जाता है, उससे सब विघ्नोंकी शान्ति हो जाती है।" एक समय स्वामीकार्त्तिकने सनत्कुमारोंसे कहा,—"इस गणपति-पूजनके विषयमें मैंने अपनी माता पार्वतीसे जो कुछ सुना है, उसको आपलोग श्रवण करें।" एक समय महादेवजी स्नान करनेके लिये कैलाश पर्वतसे भोगवती पुरीको पधारे। पीछेसे अभ्यंग स्नान करते हुए पार्वतीने अपने शरीरके मलसे एक पुतला बनाया और जलमें डालकर उसको सजीव बनाया। मलके बने हुए उस पुत्रको पार्वतीने आज्ञा दी,—"बेटे! तुम मुद्गरको लेकर द्वारपर बैठ जाओ, यहां—भीतर कोई भी पुरुष न आ सके।" जब भोगवतीसे स्नान कर शङ्कर पीछे आये और पार्वतीके पास भीतर जाने लगे, तो इस बालकने उनको रोक दिया; जिससे कुपित होकर महादेवने इस बालकके मस्तकको काट डाला और यथेच्छ भीतर चले गये। पार्वतीने महादेवको कुपित देखा, तो विचार किया, कि कदाचित् भोजनमें विलम्ब हो जानेके कारण ही शङ्करको क्रोध हो गया है; अतः अत्यन्त शीघ्रतासे—उसी समय भोजन तयार किया और दो पात्रोंमें परोस दिया तथा महादेवको भोजन करनेके लिये बुलाया। दो पात्रोंमें भोजन परोसा है—यह देखकर महादेव कहने लगे, कि प्रिये! यह द्वितीय पात्र किसके भोजनार्थ है? तब तो प्रार्थना पूर्वक पार्वतीने कहा,—"नाथ! यह अपर पात्र मल-जन्य मेरे तथा आपके पुत्र गणेशके निमित्त है।" यह सुनकर महादेवजीने अत्यन्त खेदके साथ उसके मारनेका वृत्तान्त कहा, तब तो पार्वती बहुत व्याकुल होकर बोलीं, कि कृपया आप उसको तत्काल जीवित करें। पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे शङ्करने एक मृत हाथीके मस्तकको काटकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया और उसको जीवित कर दिया। इस प्रकार पार्वती गणेशको पाकर प्रसन्न हो गयीं और पति-पुत्रको भोजन कराकर पश्चात् पार्वतीने स्वयं भी भोजन किया।

एक समय शङ्कर कैलाशको छोड़कर तथा पार्वतीको साथ लेकर नर्मदाके

तटपर पहुंचे। वहां जाकर और अत्यन्त रमणीक स्थानको देखकर पार्वतीने शङ्करसे कहा,—"भगवन्! आपके साथ यहां मेरी इच्छा पासे खेलनेकी है। शङ्कर बोले,—"प्रिये! पासे तो खेलें, परन्तु जय अथवा पराजयका साक्षी कौन है?" पार्वतीने समीपमें पड़े हुए "परका" नामक घास विशेषको नराकृति बनाकर सजीव किया और उससे पार्वतीने कहा,—"बेटे! हम दोनों महादेव और पार्वती पासोंका खेल खेलते हैं, तुम जय-पराजयके साक्षी होकर यह बतला देना, कि किसकी जय हुई है।" पार्वतीकी तीन बार जय हुई और शङ्कर हार गये; परन्तु बालकसे जब जब पूछा, तब तब उसने शङ्करका जय और पार्वतीका पराजय बतलाया। उसके इस दुष्ट कर्मको देख कर पार्वतीने शाप दिया,—"तूने सत्य बातके कहनेमें प्रमाद किया है; अतः एक पाँवसे लँगड़ा होगा और सदैव यहाँ इस कीचमें पड़ा रहकर दुःख पाता रहेगा।" माताके शापको सुनकर बालकने प्रार्थना की,—"मातः! मैंने कुटिलतासे नहीं, किन्तु बालकपनके कारण ऐसा किया है; अतः क्षन्तव्य है।" पार्वतीने दयासे आर्द्र होकर कहा,—"बेटे! जब नागकन्यायें इस नदीके तटपर गणेशजीके पूजनको आयेंगी, तब तू उनके उपदेशसे गणेश व्रतको करके मुझको प्राप्त करेगा—यह कहकर तथा क्रुद्ध होकर पार्वती हिमालयको चली गयीं।

इधर एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रावण मासमें गणेशजीके पूजन करनेको नागकन्यायें आईं। उन्होंने जब गणेश व्रतको किया; उस समय नाग कन्याओंने उस बालकको गणेश पूजाकी विधि बतलाई। नाग कन्याओंके चले जानेपर जब इस बालकने २१ दिनके गणेश-व्रतको किया, तब प्रकट तथा प्रसन्न होकर गणेशजीने कहा,—"मैं तुम्हारे इस व्रतसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं; अतः जो इच्छा हो, वर माँगो?" बालक बोला,—"मेरे पाँवमें शक्ति आ जाय, जिससे मैं कैलाश चला जाऊँ और वहाँ जानेपर माता-पिता प्रसन्न हो जायँ, यह वरदान माँगता हूं।" गणेशजी बालककी प्रार्थनाको सुनकर और "तथास्तु जैसा चाहा है, वैसा होगा"—यह कहकर अन्तर्धान हो गये। बालक अचिर कालमें ही कैलाशपर पहुंचा और महादेवके चरणोंमें गिर गया। महादेवने पूछा,—"त्रिलोचन! तूने ऐसा क्या उपाय किया, जिससे पार्वतीके शापसे मुक्त होकर यहाँ आ गया? यदि इस प्रकारका कोई व्रत हो, तो शीघ्र बतलाओ, कि जिसको करके मैं भी पार्वतीको प्राप्त हो जाऊँ; कारण कि क्रुद्ध होकर पार्वती जिस दिनसे गयी है, आजतक नहीं आयी।" त्रिलोचनकी बतलाई विधिसे

महादेवजीने भी २१ दिन तक गणेश-व्रतको किया, जिसके कारण पार्वतीके अन्तःकरणमें शिवसे मिलनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। हिमाचल-पितासे विमान-का प्रबन्ध कराकर, स्वयं कैलासपर आकर शङ्करसे मिली और पूछा,—"नाथ ! आपने ऐसा क्या मन्त्र जपा जिसके कारण मुझको आकृष्ट होकर स्वयं आपके पास आना पड़ा !" शिवने त्रिलोचनके बतलाये हुए व्रतका वर्णन किया।

षडानन—पुत्रसे मिलनेके निमित्त पार्वतीने भी जब २१ दिन तक प्रतिदिन २१ दूर्वा, २१ पुष्प और २१ लड्डुओंसे गणेशका पूजन किया, तब २१ दिनमें ही स्वामी कार्त्तिक मातासे आकर मिल गया। स्वामी कार्त्तिकने भी माताके मुखसे इस व्रतके वर्णनको सुनकर जब गणेशका पूजन किया, तो समस्त सेनानियोंमें अग्रगण्यताके मानको पाया। यही व्रत स्वामी कार्त्तिकने अपने मित्र विश्वामित्रको बतलाया। विश्वामित्रने जब इस व्रतको किया, तो गणेशजी प्रकट हुए और कहा,—"वर मांगो" विश्वामित्रने यह वर मांगा,—"मैं इसी शरीरसे तथा इसी जन्ममें ब्रह्मर्षि हो जाऊँ।" तब तो गणेशजीने कहा,—"वशिष्ठके स्वीकार कर लेनेपर तुम अवश्य ही ब्रह्मर्षि हो जाओगे !" इस प्रकारसे इस गणपति व्रतका माहात्म्य शास्त्रने बतलाया है।

३—सिद्धिविनायक व्रत।

गणेश-व्रतोंमें यही प्रधान व्रत है। इसको मध्यान्ह-व्यापी ग्रहण करना चाहिये। भाद्रपद-शुक्ल चतुर्थीको किया जाता है। इस व्रतकी विधि हेमाद्रिमें और कथा स्कन्द पुराणमें वर्णन की गई है। व्रतके पूर्व जो सङ्कल्प किया जाता है, वह यह है:—

"मासानामुत्तमे मासे भाद्रपदमासे शुक्ल-पक्षे चतुर्थ्यां अमुक वासरे ममेह जन्मनि जन्मान्तरे च पुत्र-पौत्र-धन-विद्या-जय-यशः-श्री कामायुष्याभिवृद्ध्यर्थं, सिद्धिविनायक-प्रीत्यर्थं यथा ज्ञानेन पुरुष-सूक्त-पुराणोक्त मन्त्रैर्ध्यानावाहनादि षोडशोपचारैः पञ्चा-मृतैः सह पार्थिव-गणपति पूजनं करिष्ये, तथा च मूर्त्तौ प्राण-प्रतिष्ठादिकमासनादि-कलशाराधनं पुरुषसूक्त-न्यासञ्च करिष्ये।"

इस संकल्पको करनेके बाद पार्थिव मूर्त्तिमें गणेशकी स्थापना करे और पुनः प्राणप्रतिष्ठा करे। तदनन्तर इस मन्त्रसे ध्यान करना चाहिये:—

"एक-दन्तं शूर्प-कर्णं गज-वक्त्रं चतुर्भुजम्।
पाशांकुश-धरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम्॥"

ध्यान करनेके पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क, आचमन, पञ्चामृत स्नान, शुद्धोदक-स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, सिन्दूर, भूषण और चन्दन आदिसे पूजन कर पुनः अङ्गपूजन करे तथा अनेक पत्रोंसे, जिनका शास्त्रोंमें विधान है—पूजन करे। तत्पश्चात् गुग्गुलकी धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, फल, ताम्बूल, भूषण और दूर्वा आदिसे पूजन कर नमस्कार करे। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! २१ पूआ करके गणेश प्रतिमाके पास स्थापित करे। उन २१ पूओंमेंसे १० तो ब्राह्मणोंको दे और १० अपने लिये रक्खे तथा एक गणेशके लिये रहने दे। सिद्धिविनायककी प्रतिमाको ब्राह्मणके लिये दे और उसके साथ यथाशक्ति दक्षिणा भी देनी चाहिये।

अथ कथा।

शौनकादिक ऋषियोंने सूतजीसे प्रश्न किया:—

निर्विघ्नेन तु कार्याणि कथं सिद्ध्यन्ति सूतज!
अर्थ-सिद्धिःकथं नृणां पुत्र-सौभाग्य-सम्पदा॥

"हे भगवन्! निर्विघ्नतासे मनुष्योंको कार्योंकी, धनकी, पुत्रकी, सौभाग्यकी और सम्पदाओंकी सिद्धि किस प्रकारसे होती है, कृपाकर यह बतलाओ।" सूतजीने कहा,—"कुरुक्षेत्रके युद्धमें जिस समय कौरव और पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय यही प्रश्न महाराज युधिष्ठिरने भगवान् कृष्णसे पूछा था, उसका उत्तर देते हुए भगवान्ने कहा,—"पार्वतीके मलसे उत्पन्न गणेशका यदि पूजन करोगे, तो निश्चय ही तुमको राज्यकी प्राप्ति हो जायगी।"

माघ, श्रावण, मार्गशीर्ष, भाद्रपद–जब भी गणेशमें भक्ति उत्पन्न होजाय, तब शुक्लचतुर्थीको प्रातःकाल सफेद तिलोंके उबटनसे स्नान करके मध्यान्हमें गणेश पूजन करना चाहिये। प्रथम तो एकदन्त, शूर्पकर्ण, गजमुख, चतुर्भुज और पाशाङ्कुश धारण करनेवाले गणेशका ध्यान करे, तदनन्तर पञ्चामृत, गन्ध, आवाहन और पाद्य आदि करके दो लाल वस्त्रोंका दान करना चाहिये। ताम्बूलपर्यन्त पूजाको समाप्त करके और २१ दूर्वाओंको हाथमें लेकर दो दो दल दूर्वाओंसे गणेशके एक एक नामका उच्चारण करे। यथा—"गणाधिपायनमः, उमापुत्रायनमः, अघनाशनायनमः, विनायकायनमः ईशपुत्रायनमः, सर्वसिद्धिप्रदायकाय नमः, एकदन्ताय नमः, इभवक्त्राय नमः, मूषकवाहनाय नमः, कुमारगुरवे नमः।" पूजाके समय घृतसे पके हुए २१ मोदक गणेशजीके पासमें स्थापित करे तथा समाप्ति पर उनमेंसे १० तो ब्राह्मणको दे, दश आप

स्वयं ले और एक गणेशको रक्खे । विनायककी प्रतिमाको दक्षिणाके सहित ब्राह्मणके लिये दे, नैमित्तिक पूजनको करके नित्य पूजन भी करे और पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे । युधिष्ठिर ! यदि तुम भी इस गणेश-व्रतको इसी प्रकारसे करोगे, तो निश्चय ही राज्यको प्राप्त हो जाओगे ।

चन्द्र-दर्शननिषेध और स्यमन्तकोपाख्यान—

इसी भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीमें पराशर ऋषिने चन्द्र-दर्शनका निषेध भी किया है। यदि दैवात् किसीको दर्शन हो भी जाय, तो इस मन्त्रका जप करेः—

"सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तक ॥"

सनत्कुमारोंने नन्दिकेश्वरसे कहा,—"वासुदेव भगवान् पर भी चतुर्थी चन्द्रके दर्शनसे लाञ्छन आ गया था, वह इसी गणेशके व्रतसे नष्ट हुआ ।" नन्दिकेश्वरके इस वचनको श्रवण कर सनत्कुमारोंने अत्यन्त आश्चर्य्यसे कहा,—"पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम कृष्णको चोरीका लाञ्छन कब और कैसे लगा, कृपा कर आप इस समस्त वृत्तान्तको श्रवण करायें ।" नन्दिकेश्वर बोले,—"राजा—जरासंधके डरसे श्रीकृष्णने बीच समुद्रमें एक सुरम्य पुरी बसाई, जिसको द्वारिका कहते हैं । इस द्वारिकाके निवासी सत्राजित् यादवने सूर्य्य भगवान्की उपासनाकी, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य्य-देवने नित्य आठ भार स्वर्ण देनेवाली स्यमन्तक नामक मणि अपने गलेसे उतार कर सत्राजित्को दी । उस मणिको पहन कर जब सत्राजित् यादव सभामें गया, तो श्रीकृष्णने उस मणिको लेनेकी इच्छा की; परन्तु सत्राजित्ने नहीं दी और घर पर जाकर अपने भाई प्रसेनको वह स्यमन्तक-मणिकी माला पहना दी । एक दिन प्रसेन घोड़े पर बैठ कर मृगयाके निमित्त वनमें गया और वहाँ इसको एक सिंहने मार कर मणि छीन ली । उस सिंहको भी जाम्बवान् नामके रीछने मारा और मणिको लेकर अपने विवरमें घुस गया ।

जब कितने ही दिन तक प्रसेन नहीं आया, तो सत्राजित्को बड़ा भारी दुःख हुआ तथा उसने द्वारिकामें यह प्रसिद्धि की, "कृष्णने मेरे भाई प्रसेनको मरवा डाला और मणिको हरण कर लिया ।" इस लोकापवादको मिटानेके लिए भगवान् कृष्ण बहुतसे मनुष्योंको साथ लेकर तथा वनमें जाकर प्रसेनका

अन्वेषण करने लगे। वहाँ जाकर देखा, कि एक स्थानपर सिंहने प्रसेनको मारा है और आगे जाकर सिंहको भी एक रीछने मारा है। रीछके खोजोंपर चलकर आगे जाते हुए भगवान् कृष्णने एक बड़ी भारी गुफाको देखा और यह भी जाना, कि रीछ इसी गुफामें गया है। यद्यपि साथियोंने भगवान्‌को उस गुफामें जानेसे बहुत रोका, परन्तु किसीकी भी बातको न मानकर कृष्ण उसमें चले गये। वहाँ जाकर देखा जाम्बवान्‌का लड़का और जाम्बवती कन्या मणिसे खेल रहे हैं और जाम्बवान् यह कह रहा है:—

"सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥"

उस गुफामें श्रीकृष्णके साथ जाम्बवान्‌का २१ दिन तक घोर युद्ध हुआ। द्वारिकाके लोग ७ दिन तक कृष्णकी प्रतीक्षा कर, अत्यन्त दुखी होकर तथा कृष्ण मारे गये—यह जान कर पीछे लौट गये। समस्त पुरवासियोंने उसी दिनसे सत्राजित्‌की निन्दा करना प्रारम्भ किया, बल्कि हाट-बाटमें लोग उसको धिक्कार देने लगे।

इधर भगवान् कृष्णके पराक्रमसे मोहित होकर तथा "यह मेरा स्वामी रामचन्द्र ही है" जान कर जाम्बवान्‌ने अपनी कन्या और स्यमन्तकमणि—दोनों श्रीकृष्णको दे दीं; जिनको लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका आ गये और स्यमन्तक सत्राजित्‌को दे दिया। सत्राजित्‌ने कृष्णको प्रसन्न करनेके लिये लज्जित होकर अपनी पुत्री सत्यभामा भगवान्‌को ब्याह दी और स्यमन्तकमणिको भी देने लगा; परन्तु कृष्णने मणिको नहीं लिया और कहा,—"आप सन्तान रहित हैं, इस लिये आपके पास जो भी द्रव्य है, वह मेरा ही है; अतः इस स्यमन्तक-मणिको आप अपने पास ही रक्खें।"

किसी आवश्यक कार्यवश कृष्ण तो द्वारिकासे प्रस्थानित होकर इन्द्रप्रस्थ चले गये और पीछेसे अक्रूर तथा कृतवर्माकी सलाहसे शतधन्वा नामक यादवने स्यमन्तकमणिको लेनेकी इच्छासे सत्राजित्‌को मार डाला और मणिको ले लिया। अपने श्वसुर—सत्राजित्‌को शतधन्वाने मणिके कारण मार डाला—यह खबर सत्यभामाके द्वारा पाकर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थसे तत्काल ही द्वारिकामें आगये और बलभद्रके सहित शतधन्वाको मारकर मणि लेनेकी तयारी की। यद्यपि शतधन्वा अक्रूरको मणि देकर घोड़ेपर सवार होकर द्वारिकासे भागा; परन्तु कुछ ही दूरपर जाकर कृष्णने उसको मार डाला, किन्तु मणि नहीं मिली।

इतनेमें बलरामजी भी पहुंच गये। श्रीकृष्णने कहा, कि दादा! इसके पास मणि तो नहीं है—यह सुनकर बलदाऊको क्रोध आया और बोले,—"कृष्ण! तू सदैवका कपटी तथा लोभी है, अब मैं तेरे पास न रहूंगा।"—यह कहकर विदर्भ-देशको चले गये। द्वारिकामें लौटकर आनेपर लोगोंने कृष्णका बड़ा अपमान किया और कहने लगे,—"कृष्णने लालचवश अपने भाईको भी त्याग दिया।"

श्रीकृष्ण एक दिन इस चिन्तामें चिन्तित थे, कि यह व्यर्थका कलङ्क मुझपर क्यों लगा? तब तक दैवात् नारदजी आगये और कहा,—आपने भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीके चन्द्रमाका दर्शन किया था, इसी कारण यह लाञ्छन लगा।" भगवान्‌ने नारदसे पूछा, कि चन्द्रमाको ऐसा क्या हो गया, जिसके कारण उसके दर्शन करनेसे मनुष्यको लाञ्छन लग जाता है? नारदजी बोले,—"एक समय ब्रह्माजीने भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीका व्रत किया था, जिससे गणेशजी प्रकट हो गये। प्रकट हुए गणेशजीसे ब्रह्माजीने "सृष्टि करनेमें मुझको मोह न हो जाय।" यह वरदान माँगा। "एवमस्तु" कह कर जब गणेश जाने लगे, तब उनके विकटरूपको देखकर चन्द्रमाने उपहास किया; अतः अप्रसन्न होकर गणेशजीने चन्द्रमाको शाप दिया, कि आजसे तुम्हारे मुखको कोई कभी भी नहीं देखेगा। यह कह गणेश तो स्वधाम चले गये और शापके कारण चन्द्रमा मानसरोवरकी कुमुदिनियोंमें जाकर छिप गया। चन्द्रमाके बिना लोगोंके बढ़ते हुए कष्टको देखकर और ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवोंने चन्द्रमाके निमित्त गणेशका व्रत किया। गणेशने प्रकट एवं प्रसन्न होकर, कहा,—"अब, यह चन्द्रमा निःशाप हो जायगा, परन्तु वर्षमें एक दिन—भाद्रपद-शुक्ल चतुर्थीको जो कोई मनुष्य चन्द्रमाका दर्शन करेगा, उसको चोरी आदिका झूंठा लाञ्छन अवश्य लगेगा। हाँ, जो मनुष्य सदैव प्रत्येक द्वितीयाके चन्द्रमाका दर्शन करता रहेगा, उसको लाञ्छन नहीं लगेगा। कदाचित् नियमित दर्शन न करने वाला पुरुष चौथके चन्द्रमाको देख भी ले, तो उसको मेरे चतुर्थीके सिद्धि-विनायक व्रतको करना चाहिये, उससे दोषनिवृत्ति हो जायगी।" यह सुन कर सब देवता अपने अपने स्थानोंको चले गये और चन्द्राभिमानी देवता भी मानसरोवरसे चन्द्रलोकमें आ गया। इस चन्द्रमाके दर्शनसे ही आपपर स्यमन्तकमणिका दोष लगा है।"

४—कपर्दि विनायक व्रत।

श्रावण मासकी चतुर्थीसे लगाकर भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थी तक जो मनुष्य

एक बार भोजन करके एक मास पर्य्यन्त कपर्दि गणेशका व्रत करता है, उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

व्रत-विधि—

सब कार्यसे प्रथम निम्नलिखित सङ्कल्पका उच्चारण करे:—

"अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ मम चतुर्विध-
पुरुषार्थ सिद्ध्यर्थं, कपर्दि गणेश व्रतमहं करिष्ये।"

इस सङ्कल्पको करनेके बाद नीचे लिखे श्लोकसे ध्यान करना चाहिये:—

"एकदन्तं महाकायं लम्बोदरं गजाननम्।
विघ्ननाशकरं देवं गणेशं प्रणमाम्यहम्॥"

तदनन्तर आवाहनादि करके अङ्ग-पूजा और आवरण पूजा करे तथा २८ मुष्टि चाँवल और मिष्ठान्न ब्रह्मचारीके लिये दान करे।

अथ कथा।

एक समय भगवान् भव पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये पार्वतीके साथ चौपड़ खेल रहे थे, जिसमें पार्वतीने महादेवजीके आयुधादि समस्त पदार्थोंको जीत लिया, क्योंकि बार बार उनकी ही जीत होती थी। प्रसन्न चित्त महादेवने हँस हँस पार्वतीसे केवल गजचर्मको माँगा, परन्तु पार्वतीने नहीं दिया; तब क्रुद्ध हो गये और उसी क्रोधके आवेशमें बोले,—"पार्वति! अब २१ दिन तक हम तुमसे संभाषण नहीं करेंगे।"—यह कह कर किसी अन्य स्थानमें चले गये। प्रीतमके विरहमें विरहिणी पार्वती शिवको ढूंढती ढूंढती जब गहर बनमें गईं, तो वहाँ कुछ स्त्रियोंको व्रत करते देखा। पूछनेपर उन्होंने कपर्दि-गणेशका व्रत है—यह बतलाया। जिस प्रकार वे स्त्रियाँ कर रहीं थीं, उसी प्रकार केवल एक दिन ही पार्वतीने भी उस व्रतको किया, उस एक दिनके प्रभावसे ही महादेवजीकी प्राप्ति हो गई। पार्वतीसे श्रवण कर महादेवने विष्णुको, विष्णुने ब्रह्माको, ब्रह्माने इन्द्रको और इन्द्रने विक्रमादित्य राजाको (यह विक्रमादित्य सम्वत् चलानेवाला नहीं, किन्तु अति प्राचीन अपर राजा है) इसी कपर्दि-गणेश व्रतके प्रभावको सुनाया। राजा विक्रमार्क इस व्रतके प्रभावको सुनकर जब घरपर गया, तो रानीसे कपर्दि-गणेशका अपूर्व प्रभाव वर्णन किया। भावी दुःखके कारण रानीने राजाके इस कथनमें विश्वास नहीं किया और व्रतकी भर पेट निन्दा की, जिससे रानीके समस्त शरीरमें कोढ हो गया। राजाने उसी समय रानीसे कहा,—"तुम शीघ्रही यहाँसे चली जाओ, नहीं तो मेरा

सम्पूर्ण राज्य भ्रष्ट हो जायगा।" रानी वहांसे निकलकर शम्याश्रम—जहां अनेक ऋषि और मुनि तपस्या कर रहे थे—पहुँची। रानीने बहुत काल तक जब ऋषियोंकी सेवा की, तब तो सब कहने लगे,—"रानी! तुमने कपर्दि-गणेशका अपमान किया है, इस कारण जब तक तुम उनकी पूजा न करोगी, तब तक आरोग्य होना कठिन है।" महर्षियोंके वचनको मानकर रानीने कपर्दि-गणेशके व्रतको जब एक मास तक किया, तो शरीर अति दिव्य तथा काञ्चनके सदृश हो गया। बहुत दिन तक रानी उसी शम्याश्रममें रही।

एक समय पार्वतीके सहित महादेवजी नान्दियेपर चढ़कर वनके मार्गसे जा रहे थे, मार्गमें अति दुखी एक ब्राह्मणको देखकर पार्वतीने उससे पूछा,—"विप्रदेव! आप किस कारणसे इस प्रकारका विलाप कर रहे हैं?" ब्राह्मण बोला,—"देवि! यह सब दारिद्रकी कृपाका फल है।" करुणार्द्रचित्ता पार्वतीने ब्राह्मणसे कहा,—"आप राजा विक्रमादित्यके राज्यमें चले जाओ, वहांपर एक वैश्य पूजनकी सामग्री देगा, उससे कपर्दि-गणेशका व्रत करना, उससे आपका दरिद्र तो नष्ट हो ही जायगा; परन्तु साथ ही आप विक्रमादित्यके राज्य-सचिव होंगे—यह अधिक लाभ होगा।" पार्वतीकी आज्ञानुसार वह ब्राह्मण विक्रमादित्यके राज्यमें गया और कपर्दि-गणेशके पूजनसे अचिरकालमें ही अमात्य-पद-पर पहुँच गया।

किसी समय राजा विक्रमादित्य वन-यात्रा करता हुआ शम्याश्रममें गया और वहांसे परमसुन्दरी, दिव्य-शरीरा तथा अनन्य-पतिका अपना स्त्रीको ले आया। कपर्दिगणेश-व्रतके करने वालेको चाहिये, कि वह व्रतकालके एक मासमें इस कथाको पांच बार श्रवण करे।

लौकिक—स्वरूप।

यद्यपि इस उत्सवका अधिक प्रचार तो दक्षिण देशमें ही है, तथापि प्रत्येक शुभकार्यमें अग्र पूजा होनेके कारण, समस्त विघ्नोंका विनाशक होनेके कारण, बुद्धिका अधिपति होनेके कारण और अष्टसिद्धि-नवनिधिरूप सम्पत्तिका नायक होनेके कारण गणपति समग्र भारतमें किसी न किसी नामरूपसे पूजे जाते हैं; इसीलिये भाद्रपद-शुक्ला चतुर्थीका यह व्रत भी प्रायः सब देशोंमें मनाया जाता है। यद्यपि बङ्गालमें गणेश-चतुर्थीका प्रचार नहीं है, परन्तु शिवके अष्टगणोंमेंसे दो गणोंकी पूजा वहाँ भी की जाती है। फाल्गुन-शुक्ल चतुर्दशीको "घंटाकर्ण" नामक शिवके गणकी पूजा होती है। यह गण अ-

तिम-सौन्दर्यशाली है और इसके पूजनेसे सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है—वहांके लोगोंकी ऐसी भावना है। इस गणकी कोई प्रतिमा नहीं होती, किन्तु पानीका भरा हुआ घड़ा ही स्थानापन्न समझा जाता है। इसी फाल्गुन-मासमें दूसरे एक "घेंटू" नामक शिवके गणकी भी पूजा की जाती है। यह गण त्वचा-सम्बन्धी समस्त रोगोंको अच्छा करता है—यह धारणा वहांके लोगोंकी है।

सेन्ट्रलइण्डिया और राजपूतानेके कुछ भागमें इसी गणेश चतुर्थीको "दोपहरिया" गणेश भी कहते हैं और प्रातःकालसे मध्यान्ह—दोपहर तक व्रत करके पुनः भोजन कर लेते हैं। किसी किसी प्रदेशमें इस चौथको "पथरा चौथ" भी कहते हैं और रात्रिके समय एक दूसरेके मकानपर पत्थर भी फेंकते हैं; परन्तु यह प्रथा अब दिनोंदिन कम होती जाती है। यह प्रचार शायद गणेशने चन्द्रमाको शाप दिया है, उसके कारण हुआ है अथवा इसी दिन चन्द्रमाने गुरु-पत्नीको स्पर्श किया था, उस कारणसे है। चतुर्थीके दिन चन्द्रमाको न देखनेका भी बड़ा भारी आग्रह है। प्रायः राजस्थानके बहुत भागमें इसको दण्डाचौथ भी कहते हैं। इसी कारण गणेशपूजनके समय लकड़ी, चान्दी तथा सोनेके सुन्दर सुन्दर दण्डे भी रक्खे जाते हैं और इन दिनोंमें दण्डोंको बजाकर कुछ राग भी गाया जाता है, परन्तु दण्डे बजाकर कुछ गानेकी प्रथा दक्षिण भारतमें ही विशेष है। वहां प्रत्येक ग्राममें बच्चें और युवाओंके पृथक् पृथक् दल होकर दण्डे बजाकर रागिनी गाते हैं, तब बड़ा ही आनन्द होता है। सी० पी० में भी इस प्रकारकी चाल बहुत है।

राजस्थानके अनेक स्थानोंमें तो इन दण्डोंकी रीतिने बहुत उन्नति की है—इनका प्रचार लौकिक प्रथामें परिणत हो गया है। जिन छोटे बच्चोंका विवाह नहीं, किन्तु वाग्दान मात्र हुआ है, उनके लिये कन्याका पिता इसी चतुर्थीके दिन अपनी सामर्थ्यानुसार लड्डू और दण्डे भेजता है। वहां यह व्यवहार कुरीतिमें भी परिणत हो गया है; क्योंकि लोक-प्रतिष्ठाके प्यासे अनेक निर्धन लोग भी चान्दी तथा सोनेके कितने ही दण्डे और मनों लड्डू भेजते हैं, वे लड्डू प्रायः जातिमें बाँट दिये जाते हैं।

दक्षिण देशमें इन दिनों अच्छे अच्छे घरोंमें एवं मन्दिरोंमें नित्यप्रति गणेशकी झाँकी होती है और बड़े बड़े कारीगरोंके द्वारा गणेशकी मूर्तियाँ बनवाई जाती हैं, जो मृत्तिकाकी होती हैं। कहीं कहीं तो एक मूर्तिको बनाने वाला भी कारीगर सौ सौ रुपया मजूरी पा जाता है, परन्तु मूर्ति इस प्रकारकी

विलक्षण होती है, कि प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्म्मा चाहे भाव खींचनेमें चूक जाय, किन्तु वह मूर्त्ति-निर्माता नहीं चूकता। इस प्रकारकी प्रतिमाओंके दर्शन करनेका आनन्द तो आस्तिक लोगोंके भाग्यमें ही लिखा है, नास्तिक बिचारे तो मृत्तिकाके बाह्य-कलेवरको ही देख सकते हैं।

अस्तु, द्रविड़ देशमें भी रामेश्वर तक गणेशका यह उत्सव बड़े समारोहसे मनाया जाता है, परन्तु उत्सव मनानेकी रीतियाँ स्थलपरत्वेन भिन्न भिन्न प्रकारकी हैं। कानडी लोग गणेशचतुर्थीको "वेन कन हब्ब" कहते हैं तैलङ्ग देशके तेलगू लोग "पिल्लेयर-चवति" के नामसे इसी गणेशोत्सवको मनाते हैं तथा इन देशोंके राजा लोग भी दर्बारीठाठसे इस महोत्सवका मनाते हैं।

अष्टविनायकोंके आठ मन्दिर महाराष्ट्र देशमें आज तक भी विद्यमान होकर यह बतला रहे हैं, कि गाणपत्य-पन्थीय लोगोंके छः सम्प्रदाय इस देशमें प्रथम प्रबलरूपसे थे; परन्तु आज उनका नाम मात्र है। नागदा मथुरा लाइनके मध्यमें श्रीसवाईमाधवपुरका जँकशन है, उसके समीप छः मीलके अन्तरपर गहन वनमें अत्यन्त प्राचीन एक गणेशजीका मन्दिर है, जा रणतभँवर या रणस्तम्भके किलेपर है। मुसलमान बादशाहोंके समयमें इस स्थानपर बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुई हैं, इस कारण रणतभँवरके गणेशजी ऐतिहासिक हैं और राजपूतानेके विशेष भागमें प्रायः इनकी ही पूजा होती है। यहांतक, कि विवाहादि मंगलकार्यमें इनके स्थानपर मनुष्य भेजकर निमन्त्रणपत्र भी भेजा जाता है, परन्तु समयके प्रभावसे ज्यों ज्यों आस्तिकतामें शिथिलता आती जाती है, त्यों त्यों यह प्रथा भी कम होती जाती है। अस्तु, आज भी पूनामें चिंचवड़, कोकणमें पुल और कानडा जिलामें इडगुञ्जी—ये जगत्प्रसिद्ध मन्दिर गणेशजीके विद्यमान हैं।

शिक्षा।

गणेश और गणेश-चतुर्थीसे क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—यह तो मैं आगे चलकर बतलाऊँगा, परन्तु गणेशका व्रत चतुर्थीको ही क्यों रक्खा, चतुर्थीके चन्द्रदर्शनका निषेध क्यों किया और गणेशका वाहन चूहा क्यों रक्खा? प्रथम इन बातोंपर ही कुछ वैज्ञानिकदृष्टिसे लिखा जाता है; गणेश-चतुर्थीके प्रेमी ध्यान दें।

चतुर्थी और गणेश—

गणेशपुराणके १२ वें अध्यायमें लिखा है, कि गणेशको वास्तवमें गुणेश—

सत्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके ईश समझना चाहिये। गुणोंका ईश ही प्रणवस्वरूप ॐकार है। ॐकारमें अकार, उकार, मकार, नाद और बिन्दु—ये पाँच मात्राएँ हैं। प्रथमकी चार मात्राओंमें ध्वनिके साथ आकार भी है, कारण कि ये चारों मात्राएँ मायोपाधिक हैं, परन्तु पाँचवीं मात्रा बिन्दुमें आकारत्व और उपाधित्व कुछ नहीं है, इसी कारण वह निराकार सच्चिदानन्द ब्रह्म है, जिसको वेदोंने खं ब्रह्म कहा है, परन्तु पंचम बिन्दुका ज्ञान चतुर्थ नादके विना कोटि उपाय करनेपर भी नहीं हो सकता; अतः चतुर्थ अक्षर ही ब्रह्मका साक्षात्कार कराने वाला है तथा वही हमारा पूजनीय तथा मननीय इष्ट है। इन चार अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ही जीवकी चार अवस्थाएँ हैं,—"(१) जागृत, (२) स्वप्न, (३) सुषुप्ति और (४) तुरीया।" इस चौथी अवस्थामें ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है; इसी कारण ब्रह्मरूप गणेशका पूजन चतुर्थीका ही रक्खा गया है।

चतुर्थी और चन्द्रनिषेध—

चतुर्थी चन्द्र-दर्शनका निषेध भी तात्त्विक दृष्टिसे ही है, कारण कि चन्द्रमा—यह मनका देवता है और मन चञ्चल है। जब तक मनका चाञ्चल्य रहेगा, तब तक ब्रह्म-दर्शन किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। इसी कारणसे जागृत, स्वप्न और सुषुप्तिमें ब्रह्मकी तन्मयता नहीं होती, क्योंकि वहां किसी न किसी रूपमें मन अवश्य ही विद्यमान रहता है। चतुर्थावस्था—तुरीयामें मनका लय हो जाता है; अतः उसी दशामें ब्रह्मका तादात्म्य होता है। यही कारण है, कि गणेशरूप ब्रह्मके पूजनमें मनोदेवता—चन्द्रमाका न देखना ही विधान किया है। सारांश—चतुर्थी (तुरीयावस्था) में चन्द्रदर्शन—मनका अस्तित्व रहता ही नहीं।

गणेश और चूहा—

गणेशपुराण तथा समस्त ग्रन्थोंमें गणेशजीका वाहन चूहा बतलाया गया है। लक्षणोंसे शुष्क तर्कका रूप ही चूहा जाना जाता है, कारण कि चूहेका कार्य प्रत्येक पदार्थको काटकर खण्ड खण्ड कर देनेका है, उसी प्रकार शुष्क तर्कका भी काम प्रत्येक आस्तिक भावको खण्ड खण्ड कर नास्तिकता फैलानेका है। जहाँ शुष्क तर्क-दलीलबाजीकी प्रधानता होती है, वहाँ ब्रह्मभाव नष्ट हो जाता है। इसीसे व्यास भगवान्ने "तर्काऽप्रतिष्ठानात्" सूत्रसे इस प्रकारके तर्कका खण्डन किया है। यह निश्चय है; कि जहाँ ब्रह्मभावकी प्रधा-

नता होती है, वहाँ शुष्क तर्क दया हुआ रहता है—चूहेपर गणेश सवार रहते हैं; अतः तर्क यह ब्रह्मका वाहन है। अथवा यह भी कह सकते हैं, कि चूहा-यह गणेशका वाहन है। सारांश-गणेशचतुर्थीके उपासकोंका यह अध्यात्म-भाव भी लक्ष्यमें रखना चाहिये।

अब गणेशकथाओंसे लौकिक शिक्षाएँ क्या क्या लेनी चाहिये, वे क्रमशः लिखी जाती हैं, पाठक! ध्यान दें।

(१)

जिस समय आप प्रकृत कथाके स्वरूपपर दृष्टिपात करेंगे, तो विदित होगा, कि पार्वती तथा महादेवने जूआ खेला, तिसके कारण आपसमें वैमनस्य होकर पार्वती और महादेव दोनोंको दुःख उठाना पड़ा तथा त्रिलोचन जैसे पुत्ररत्नको भी खेलका साक्षीमात्र होनेसे ही एक वर्ष तक घोर दुःखमें फँसना पड़ा। इससे अवश्य ही यह समझना चाहिये, कि यह जूआ रूप दुर्व्यसन जब प्रभुओंपर भी अपनी असर डाल देता है, तो हम जैसे क्षुद्र लोगोंकी कथा ही क्या है? अतः जूआ रूप राक्षससे सज्जनोंको सदैव पृथक रहना चाहिये।

इससे यह भी शिक्षा मिलती है, कि अन्य मनुष्योंके साथ तो क्या। परन्तु स्त्रीको अपने प्राणवल्लभके साथ भी जूआ खेलना बुरा है। कारण कि जिस खेलमें कुछ कपट रक्खा जाता है, उसीका नाम जूआ है और दाम्पत्यमें कपटका अङ्कुर उत्पन्न हो जाना ही सर्वनाशका कारण है। इसलिये जिस प्रकार कमानसे काक भागता है, ठीक उसी प्रकार जिज्ञासु पुरुष अथवा स्त्रीको द्यूतसे अलग रहना चाहिये। यदि आप त्रिलोचनसे पूछेंगे, तो वह विचारा स्पष्ट कह देगा, कि जूआको खेलना तो महापाप है ही, परन्तु तटस्थ भावसे उसको देखना भी घोर पाप है।

(२)

किसी भी कुरूप जीवको देखकर उसका उपहास न करना यह ईश्वरीय नियम है। जो लोग इस नियमकी अवहेलना करते हैं, वे निश्चय ही दुःख भोगते हैं; क्योंकि परमात्माने संसारको विचित्र भावोंसे बनाया है अथवा विचित्रता ही संसार है। विवेक पूर्वक अवलोकन करनेसे आपको विदित होगा, कि जगत्में एक वस्तुसे दूसरी वस्तु नितान्त भिन्न है। दूसरी वस्तुओंको तो जाने दो, परन्तु एक ही मनुष्यके अङ्ग तथा प्रत्यङ्गोंमें भी साम्यताका अभाव है। एक मनुष्यके शरीरसे दूसरे मनुष्यके शरीरकी साम्यताका मिलना

तो कठिन है ही, परन्तु एकके अङ्गूठाकी भी रचना दूसरेके अङ्गूठासे नहीं मिलती। अतः विवेकी मनुष्यको चाहिये, कि अपनेसे विलक्षण अथवा कुरूप व्यक्ति तथा वस्तुको देखकर उसकी तरफ हास्य अथवा घृणा प्रगट नहीं करे, कारण कि ऐसा करनेसे उस व्यक्तिका तो बिगाड़ या सुधार होता नहीं, किन्तु उस हास्यकर्त्ताके अहङ्कारकी मात्रा बढ़ जाती है और वह अहङ्कार क्रमशः बढ़कर इसके स्वच्छ जीवनको मलीन बनाकर नष्टभ्रष्ट कर देता है। इसीका उपदेश हमको गणेश-कथासे मिलता है। गणेशजीसे कुरूप या विलक्षणरूपको देखकर ही चन्द्रमाने हास्य किया था, जिसका फल यह हुआ, कि लक्षावधि वर्षोंके समाप्त हो जानेपर भी चौथके चन्द्रमाका आज तक दर्शन कोई हिन्दू नहीं करता।

प्रत्येक आस्तिक शास्त्रमें अन्य प्रमाणोंके होते हुए भी एक आप्त प्रमाण माना गया है, जिसका अभिप्राय—यह है, कि "किसी श्रेष्ठ पुरुष या शास्त्रके कथनपर विश्वास रखकर किसी निर्णयपर पहुंचना।"—यह आप्तोक्त प्रमाण इतना मौलिक है कि इसके बिना इसलोक या परलोकमें कोई भी कार्य नहीं हो सकता। जिस देशके लोग जबसे अपने पूर्वजोंके या अपने शास्त्रोंके वचनोंमें अविश्वास करने लगते हैं, तभीसे उस देशको अधोनतिका बीजारोपण हो जाता है और आगे चल कर यह अविश्वास धर्म-कर्म सबको नष्ट करके देशमें फूट तथा दगाबाजी-आदि भयङ्कर शत्रुओंको चढ़ाकर ले आता है। उसका फल-यह होता है, कि लोगोंकी ईश्वर-दत्त स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है और वे लोग सदैवके लिये गुलामीके पींजरामें फँस जाते हैं। इस कारण आप्तोक्त प्रमाणपर विश्वास करना—यह देशकी सुदशाका चिन्ह है। जो लोग हठात् इस विषयमें प्रमाद करते हैं, उनको ईश्वरीय अथवा लौकिक दण्ड अवश्य मिलता है। राजा विक्रमादित्यकी रानीने पति, इन्द्र और शास्त्रोंके वचनोंकी अवहेलना की थी, जिसका अनिष्ट परिणाम उसीको भोगना पड़ा। राजपूतानेमें एक कहावत बहुत प्रसिद्ध है,—"जिसने न मानी बड़ोंकी सीख, लेकर ठीकरा मांगी भीख।"

६—ऋषि-पञ्चमी व्रत ।

इस ऋषि-पंचमी व्रतके विषयकी सम्पूर्ण कथा भविष्योत्तर पुराणमें जिस प्रकार लिखी है, उसी प्रकारसे यहां दी जाती है। यह व्रत प्रायः स्त्रियोंका है। इसमें मध्यान्हव्यापिनी पंचमीका ग्रहण है। व्रतकी विधि इस प्रकार है:—

प्राप्ते भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षस्य पञ्चमी ।
तस्यां मध्यान्हसमये नद्यादौ विमले जले ॥

"भाद्रपद-शुक्ला पंचमीको मध्यान्हके समय उत्तम जल वाली नदी अथवा तलावपर जाकर, प्रथम १०८ अथवा ८—अपामार्ग (आन्धीझाडा) की दांतोनोंसे दन्तधावन करे और फिर मृत्तिका स्नानके पश्चात् पञ्च-गव्य-प्राशन करे। पुरुष हो, तो हवन करके प्राशन करे, यदि स्त्री हो, तो केशव-आदि विष्णुके नामोंको जप कर पंचगव्य प्राशन करे। तत्पश्चात् नदी अथवा तालावमें स्नान करके प्रथम अपने नित्य नियमको करे। हे, पार्वती! ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा कोई भी स्त्री क्यों न हो, प्रथम किसी सरोवरमें स्नान कर, पुनः घरपर जाकर, वेदीको गोवरसे लीपकर, अनेक प्रकारके रँगोंसे सर्वतो-भद्र-मण्डल बनाकर, एक मिट्टी अथवा ताम्बेका घड़ा वहां रक्खे और उसपर कंठ देश तक वस्त्र डाल दे। घटके ऊपर एक ताम्बा अथवा बाँसके पात्रमें जौ भरकर तथा उसमें पंचरत्न, फल, गन्ध और अक्षत रखकर वस्त्रसे ढाँक दे। उसी स्थानपर अष्ट-दल कमल लिखकर सप्तर्षियोंकी पूजा करे। आवाहनादि ताम्बूल पर्यन्त पूजन करके समाप्तिके अनन्तर बाँयनको ब्राह्मणके लिये और उद्यापन करके पूजनकी सामग्री आचार्यके लिये दे।

हेमाद्रि तथा ब्रह्माण्डपुराणकी कथा।

सिताश्व-राजाने ब्रह्माजीसे पूछा,—"भगवन्! मैंने अनेक व्रतोंको सुना है, परन्तु तत्काल पाप-नाशक कौनसा व्रत है—यह नहीं जानता, आप अवश्य ही कहें।" ब्रह्माजीने कहा,—"राजन्! सबसे अच्छा व्रत ऋषिपंचमीका है, जिसके करनेसे मनुष्य तत्काल ही पापसे मुक्त हो जाता है। इस विषयका

एक इतिहास कहता हूं, ध्यानसे श्रवण करो।" उत्तङ्क नामक ब्राह्मण विदर्भ देशमें रहता था और पतिव्रताओंमें अग्रगण्या उसकी स्त्रीका नाम सुशीला था। इस ब्राह्मणके घरमें केवल दो सन्तानें थीं,—"(१) कन्या और (२) पुत्र। ईश्वरकृपा और परम्परागत संस्कारोंसे पुत्र वेद-शास्त्रोंका ज्ञाता था। यद्यपि इसकी कन्याका भी विवाह समान-कुल-शीलवाले वरके साथ हुआ था परन्तु दैव प्रकोपसे वह वर मर गया और कन्याको वैधव्य दुःखके सागरमें फँसना पड़ा। उसी दुःखसे सन्तप्त उत्तङ्क ब्राह्मण अपनी स्त्री और कन्याके सहित गङ्गाके किनारेपर रहने लगा और वहाँ धर्मचर्चासे अपने और कन्याके दुःखका अपनोदन किया। कन्या अपने पिताकी शुश्रूषा करती थी और पिता अनेक ब्रह्मचारियोंको वेद पढ़ाता था। एक दिन रात्रिको सोती हुई कन्याके शरीरमें अकस्मात् बहुतसे कीड़े पड़ गये। कन्याने अपनी दशाको देखकर मातासे कहा। माताने इस प्रकारके दुःखसे लड़कीको दुखी देखकर बहुत पश्चात्ताप किया और अपने पतिदेव उत्तङ्कके पास ले गयी। अति नम्र-भावसे पूछा,—"भगवन्! परम-साध्वी मेरी इस कन्याकी यह दशा क्यों हुई?"

उत्तङ्क ब्राह्मणने प्रथम तो समाधिके द्वारा इस अनिष्ट कारणको देखा और फिर सुशीला नाम्नी अपनी धर्म-पत्नीसे कहा,—"पूर्व जन्ममें यह कन्या ब्राह्मणी थी। रजस्वला दशामें इसने घरके वर्तनोंका स्पर्श किया; अतः उस अपराधके कारण इसके शरीरमें कृमियोंका सञ्चार हो गया है।" धर्मशास्त्रोंमें लिखा है:—

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति॥

रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनीके समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी के समान, तीसरे दिन धोबिनीके समान अपवित्र रहती है और चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त इस कन्याने इसी जन्ममें एक और भी अपराध किया है—ऋषिपञ्चमीके व्रतको करती हुई स्त्रियोंको देखकर उनके व्रतकी अवहेलना की, जिसके कारण इसके शरीरमें कृमि पड़ गये हैं। व्रतकी विधिको आँखोंसे देखनेके कारण ही इसका ब्राह्मण-कुलमें जन्म हुआ अन्यथा चाण्डालके घर जन्म होता। सुशीले! यह ऋषिपञ्चमीका व्रत सब व्रतोंमें प्रधान है, क्योंकि इसीके प्रभावसे स्त्री सौभाग्यसम्पन्न रहती है

और रजस्वलादशामें अज्ञान-पूर्वक होनेवाले स्पर्शादि-दोषोंसे मुक्त हो जाती हैं।

भविष्योत्तरकी कथा।

युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर श्रीकृष्ण भगवान्‌ने इसी ऋषिपञ्चमीके व्रतको तत्काल पापनाशक बतलाया है। भगवान् बोले,—"राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्महत्याका जो दोष इन्द्रको लगा था, उसका एक भाग स्त्रियोंने भी ग्रहण किया था। इसी कारणसे स्त्रियोंको प्रतिमास रजोधर्म होता है—प्रथम दिन चाण्डाली, द्वितीय दिन ब्रह्मघातिनी, तृतीय दिन धोबिनी होती हैं और चतुर्थ दिन शुद्धि मानी गई है। उस रजोदर्शन-कालमें यदि अज्ञानके कारण स्पर्शास्पर्शजन्य पाप हो जाय तो, उसकी निवृत्ति ऋषिपञ्चमी-व्रतके करनेसे ही होती है। इस विषयमें अति प्राचीन एक इतिहास कहता हूं; ध्यान लगाकर सुनो।

सत्ययुगमें चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाका पालक, विदर्भ देशका राजा श्येनजित् नामक राजर्षि था। उसके देशमें वेद वेदाङ्गका पारग सुमित्र नामका ब्राह्मण कृषि-कर्मसे अपना निर्वाह करता था और जयश्री नाम्नी उसकी भार्य्या भी सदैव कृषिकर्ममें तत्पर रहा करती थी। किसी समय वह स्त्री रजोवती होकर भी अज्ञात दशामें गृह-सम्बन्धी समस्त कार्योंको करती रही और ब्राह्मणोंको भी स्पर्श करती रही। समय पाकर दैवात् उन दोनोंकी मृत्यु एक साथ ही हुई। रजोधर्मसे होनेपर भी वर्त्तनोंको स्पर्श करती रही—इस दोषसे वह ब्राह्मणी कुत्ती हुई और रजोधर्मको स्पर्श करनेसे वह ब्राह्मण बैल हुआ। इस सुमित्र ब्राह्मणका सुमति नामक एक पुत्र था, वह वेद-वेदाङ्गका पारग तथा ब्राह्मण और अतिथिका पूजक था। वे कुत्ती और बैल दोनों इसीके घरमें रहते थे। एक समय क्षयाहतिथिके दिन सुमतिने अपने मृत माता-पिताका श्राद्ध किया। सुमतिकी भार्याने ब्राह्मणोंके भोजनार्थ जो खीर की थी, उसमें एक सर्प अकस्मात् आकर विष उगल गया। इस व्यवस्थाको कुत्तीने स्वयं देखा था; अतः भक्षण करनेवाले ब्राह्मण मर जायँगे, इस भीतिसे उस खीरका स्पर्श कर लिया। उससे अप्रसन्न होकर सुमतिकी स्त्रीने जलती हुई लकड़ीसे उस कुत्तीको मारा और सब पात्रोंकी शुद्धि करके पुनः पाक तयार किया। जब सब ब्राह्मण भोजन कर चुके, तो जो उच्छिष्ट बचा वह सब पृथ्वीमें गाड़ दिया, इस कारण उस दिन कुत्ती भूखी रह गयी।

रात्रिके समय उसी घरमें बँधे हुए बैलके पास जाकर कुत्तीने सब इतिहास कहा, और बोली,—"क्या करूँ, भूखके मारे मेरी कमर टूटी जाती है।" बैलने भी कहा,—"मुझको भी आज सुमतिने हलमें जोता था और मुँहमें मुसीका लगा दिया, जिससे कुछ भी चर न सका—हम दोनोंके भूखे रह जानेके कारण पुत्रका यह श्राद्ध व्यर्थ ही है।" सुमति पशु-पक्षियोंकी भाषा समझता था, इसलिये उन दोनोंको अपना माता-पिता जानकर बहुतसा खानेको दिया और प्रातःकाल ही ऋषियोंके आश्रमोंपर जाकर माता पिताकी पशुयोनि प्राप्तिका कारण पूछा। ऋषियोंने पूर्वजन्मके पातकका सब वृत्तान्त कह कर कहा,—"यदि तुम ऋषिपञ्चमीका व्रत करके विधिके साथ उद्यापन करोगे और उस दिन बैलोंकी कमाईकी कोई वस्तु न खाओगे, तो अवश्य ही तुम्हारे माता पिताकी मुक्ति होगी।" ऋषिपञ्चमीके व्रतमें कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ और अरुन्धति—इन सात ऋषियोंकी पूजा करनेका विधान है। सुमतिने माता पिताकी मुक्तिके निमित्त जिस प्रकारसे ऋषियोंने बतलाया था—ऋषिपञ्चमीके व्रतको किया। ऋषिपञ्चमीके कारण सुमतिके माता पिता स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये।

लौकिक-स्वरूप।

भारतके प्रायः सभी लोग इस ऋषिपञ्चमीके व्रतको जानते हैं, परन्तु इसका प्रचार अल्परूपसे है, क्योंकि यह प्रायश्चित्तात्मक व्रत है। यू. पी., राजस्थान और मालवाकी स्त्रियोंमें अवश्य ही अधिकतासे मिलता है, परन्तु सब विधि अशास्त्रीय है। यद्यपि बङ्गाल प्रान्तमें इसका किञ्चित् भी प्रचार नहीं है, तथापि वहाँ ऋषिपञ्चमीकी व्रतविधिसे मिलती जुलती एक और रूढ़ी है। वह यह,—"पृथ्वी आषाढ़ मासमें तीन दिन तक रजस्वला होती है—यह वहांके लोगोंकी धारणा है। उन तीन दिनोंमें कोई भी कृषक न तो जमीनको जोतता और न बीज ही बोता है। इन तीन दिनोंको वहाँ "अम्बुवाची" कहते हैं। इन दिनोंमें वहाँ हलका जुता हुआ और बैलोंके परिश्रमसे कमाया हुआ, नाज नहीं खाया जाता; यहाँ तक कि वहांके लोग लवणादिकोंको भी इन दिनोंमें खानेके लिये प्रकारान्तरसे उत्पन्न करते हैं।

महाराष्ट्र देश तथा कोङ्कणपट्टीमें भी कुछ ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ बाल्य एवं वार्धक्य कालमें इस व्रतका पालन करती हैं। हिन्दुस्तानमें किसी किसी जगह

जो लोग श्रावणी-पौर्णिमाको श्रावणी नहीं करते, वे लोग ऋषिपञ्चमीके दिन ही ऋषितर्पण करते हैं।

शिक्षा।

ऋषिपञ्चमीके व्रतसे दो शिक्षाएँ स्त्रियोंको लेनी चाहिये,—"(१) पतिव्रत ही स्त्रियोंका मुख्य कर्त्तव्य है और (२) रजस्वलाको स्पर्शास्पर्शका ध्यान रखना चाहिये।"

पातिव्रत्य—

अरुन्धति—यह वशिष्ठ महाराजकी स्त्री है, परन्तु उसकी गणना सप्तर्षियोंमें की गयी है। इसका कारण पतिव्रतधर्म ही है। प्रायः स्त्रियोंको पतिव्रत धर्मके द्वारा अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका विवरण शास्त्रोंमें मिलता है। अतः पातिव्रत्यधर्मका प्रत्येक स्त्रीको आवश्यक ध्यान रहना चाहिये।

स्पर्शास्पर्श—

स्पर्शास्पर्शका ध्यान रजस्वला स्त्रियोंको रजोदर्शन-कालमें अवश्य रखना चाहिये। हिन्दूजाति सदैवसे धर्मपरायण रही है और धर्म शब्दका अर्थ सत्त्वगुणकी अधिकता है। सत्त्वगुणके पूर्ण विकाश होनेपर ही मनुष्य नरका नारायण होता है और सत्त्वगुणका अभाव ही नरकका द्वार है। जिस क्रियासे और नियमोंके पालनसे पुरुषमें सत्त्वगुणका अधिक विकाश हो, उसीका नाम धर्म है। सत्त्वगुणके विकाशका विरोधी रजोगुण तथा तमोगुणका आवेश है। अतः एक धर्मात्मा मनुष्य किसी भी प्रकारसे अपने शरीरमें तमोगुण तथा रजोगुणके परमाणुओंको प्रविष्ट नहीं होने देता। रजोगुण और तमोगुणका सञ्चार एक प्रकारसे नहीं, किन्तु अनेक प्रकारसे होता है,—"तमोगुणी तथा रजोगुणी पुरुषोंकी सतत-सङ्गतिसे; तमोगुण और रजोगुण वर्धक पदार्थोंके भक्ष्य—भोज्यसे, रजोगुणपूर्ण-कथाओंके श्रवण करनेसे, रजोगुणी पुरुष अथवा स्त्रियोंके अङ्ग-सङ्गसे और रजोगुणियोंके स्पर्श किये हुए वर्तनोंमें भक्ष्य-भोज्य करनेसे।" इसी कारण आस्तिक हिन्दू—इन समस्त अन्यगुणोत्पादक मार्गोंको रोक कर अपने सत्त्वगुणको बढ़ाना चाहता है।

जिस प्रकार चेचक रोगके द्वारा रोगीके समस्त शरीरमें चेचकके परमाणुओंका इतना अधिक सञ्चार होता है, कि उसके निकट बैठनेसे ही परमाणु उड़कर दूसरेके शरीरमें चले जाते हैं और नीरोग शरीरको भी तन्मय बना

लेते हैं। इसी प्रकार मासमें चार दिन स्त्रियोंके शरीरमें भी प्राकृतिक नियमानुकूल आर्त्तवस्राव—रजोगुणके परमाणुओंका सञ्चार होता है। प्रथम दिन अत्यधिक, दूसरे दिन अधिक, तीसरे दिन स्वल्प और चतुर्थ दिन समाप्त-यह क्रम रजोगुणके परमाणुओंका होता है। यद्यपि इन रजोगुणके परमाणुओंमें चेचकके परमाणुओंकासा गुण तो नहीं है, कि तत्काल ही द्वितीय शरीरमें अपने पूर्ण प्रभावको उत्पन्न कर दें, परन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे देखा जाय तो एक सत्त्व-गुणी पुरुषके शरीरमें जाकर और समय पाकर विरुद्ध शक्तिका सञ्चार अवश्य ही करा सकते हैं। इसी कारण हिन्दूशास्त्रोंने इसका प्रतिबन्ध किया है और इसी वैज्ञानिक—शास्त्रीय आधारको लेकर हिन्दुओंका स्पर्शास्पर्श है, परन्तु धार्मिक भावोंके ह्रास हो जानेके कारण और तमोगुण तथा रजोगुण-प्राय सृष्टि होजानेके कारण आज इस आवश्यकीय विषयकी अवहेलना हो रही है।

सच तो यह है, कि इस समयका भारत अनुकरणशील भारत है। जो नियम युरोपकी विजेता जाति अपने लिये स्थिर करती है, उसीका अनुकरण करना इसका भी कर्त्तव्यसा हो गया है। अनुकरण करना बुरी बात तो नहीं है, परन्तु जिस विषयमें जो व्यक्ति अपनेसे बढ़ा—चढ़ा हो, उसका उस बातमें ही अनुकरण करना ठीक है। अपनेसे नीची बातोंका अनुकरण करना, मानों अपनी सत्ताको नष्ट करना है। अङ्ग्रेजजाति भौतिक उन्नतिमें हमसे बहुत आगे बढ़ी हुई है अवश्य परन्तु आध्यात्मिक—धार्मिक भावोंमें उतना ही गिरी हुई है; इसको सभी बुद्धिमान लोग जानते हैं। कलाकौशलादिकमें उनका अनु-करण करना हमारा कर्त्तव्य हो सकता है, परन्तु धार्मिक भावोंमें नहीं। थोड़े दिन पहले युरोपमें जो भीषण संग्राम हुआ था, वह मानों युरोप देशकी अब तककी उन्नतियोंकी प्रदर्शिनी थी। उस प्रदर्शिनीमें हम लोगोंने अच्छे प्रकारसे देखा है, कि भौतिक उन्नतिके अस्त्र-शस्त्रोंके अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नतिका कोई भी शस्त्र नहीं था—उस युद्धमें धार्मिकताका लेश भी नहीं था। इससे स्पष्ट विदित होता है, कि युरोप वास्तवमें भौतिक मैदानमें जितना आगे दौड़ गया है, धार्मिक मैदानमें उतना ही पीछे पड़ा हुआ है। धर्म-भाषाकी वर्ण-मालामें क, ख और ग पढ़नेवाले बिचारे पादरी लोगोंने भी इस प्रदर्शिनीमें धर्मभावकी टटोल की थी, परन्तु थप्पड़ लगे हुए गालको हटाकर दूसरेको सामने करने वाली मसीह शिक्षाको नरसंहारिणी तोपोंके धूम्रोंमें उड़ती देख

कर उनके भी छक्के छूट गये और विश्वास होगया, कि वास्तवमें धर्मभावको लेकर हिन्दुस्तान अब भी संसारका गुरु है। सारांश—युरोपकी समुन्नतिके लक्ष्यका प्रारंभ तमोगुणसे उत्पन्न होकर रजोगुणमें समाप्त होता है और भारतका सत्त्वगुणमें। यही कारण है कि, रजोगुण तथा तमोगुणसे बचनेका उपाय-रूप स्पर्शादि नियम नहीं है। भारतियोंका चरमध्येय सत्त्वगुण है; अतः रजोगुण-तमोगुणका प्रतिबन्धक स्पर्शास्पर्शरूप नियम है। यदि अंग्रेजजातिका अनुकरण करनेवाले हिन्दु इस नियमको त्याग देंगे, तो कहना होगा, कि आर्यजातिका भी अब रजोगुण ही परम ध्येय हो गया। इस अवस्थामें हमने उन्नति की—यह नहीं कह सकते, वल्कि अवनति अवश्य कह सकते हैं। निष्कर्ष यह है, कि विज्ञानकेद्वारा भी इस रजोदर्शनके नियमका पालन करना भारतीय महिलाओंका परम धर्म है।

इस नियमके पालन करनेमें एक और भी लाभ है। जिस मनुष्यको वैद्य विरेचन—जुलावकी औषधि देता है, उसको यह भी समझा देता है,—"इस समय विशेष परिश्रम न करना, क्योंकि सञ्चितमलके निकल जानेसे सर्व शरीरकी स्थूल स्नायुओंमें एक विशेष प्रकारका फेर-फार होता है और दुर्बलता भी आ जाती है। अतः ऐसे समयमें किये हुए परिश्रमका कभी कभी भयङ्कर परिणाम हो जाया करता है।" यह तो हुई खाद्यपदार्थोंके मलके जुलावकी बात, परन्तु स्त्रियोंको जो रजोदर्शन होता है, वह रक्तका जुलाव है; अतः मलके जुलावकी अपेक्षा वह और भी कठिन तथा शारीरिक परिस्थितिका बिगाड़ने वाला है, इस लिये उसका विचार विशेष रखना चाहिये—यह अनायास ही प्राप्त होता है। इससे भी प्रत्येक स्त्रीको चार दिवस तक घरके कार्योंकी जिम्मेवरीसे मुक्त रहना चाहिये।

७—वामन जयन्ती।

शास्त्रीय स्वरूप।

वामन जयन्ती—यह वैदिक 'त्यौहारहै' कारण कि वेदोंकी चारों मूलसंहिताओंमें वामनावतारका वर्णन आया है।

यजुर्वेदके ५।१५ में इस प्रकारसे लिखा है:—

मन्त्र।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुरे।

महीधर-भाष्य—

विष्णुः त्रिविक्रमावतारे इदं विश्वं विचक्रमे पदं निदधे
भूमावेकं पदं अन्तरिक्षे द्वितीयमिति।

भावार्थ—

"विष्णु भगवान्‌ने त्रिविक्रम—वामन अवतारमें तीन पादसे इस विश्वको नाप लिया।"

सामवेदके ३।११।२।६ में यह लिखा है:—

मन्त्र—

इदं विष्णुर्विचक्रमे।

सायणभाष्य।

विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी त्रिभिः प्रकारैः पदं निदधे।

भावार्थ—

त्रिविक्रम अवतार धारण करनेवाले विष्णुने तीन प्रकारसे पैर रक्खा।"
अथर्ववेदके ७।३।२७।४ में इस प्रकार आया है:—

मन्त्र—

पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च विष्णुर्वामनो भूत्वेमान् लोकान्।

भावार्थ—

"इसके भाष्यकी आवश्यकता नहीं, कारण कि मन्त्रमें ही स्पष्टतया वामनावतारका वर्णन आया है। विष्णुने वामनावतार धर कर पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोकको एक पादसे नाप लिया।"

ऋग्वेदके १।२१।१५४।२ में लिखा है:—

मन्त्र—

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥

संस्कृत-टीका—

मृगो न मृग इव तद्विष्णुः वीर्येण पराक्रमेण प्रस्तवते स्तुतिं प्राप्नोति, भीमः भयानकरूपधरः नृसिंहः अत एव मृग इवेत्युक्तिः संगच्छते, कुं पृथिवीं नृसिंहादिरूपेण चरतीति कुचरः, गिरौ कैलाशे शिव-

त्रिनेत्र-रूपेण तिष्ठतीति गिरिष्ठाः, यस्य विष्णोः त्रिविक्रमावतारे त्रिषु पादेषु विक्रमणेषु सत्सु विश्वा सर्वाणि चतुर्दश भुवनानि अधि क्षियन्ति चलन्तीत्यर्थः ।

भावार्थ—

"मृगकी तरह नृसिंह-रूपधारी परमेश्वर अपने पराक्रमसे स्तुतिको प्राप्त होता है, नृसिंहादि-रूपसे पृथिवीमें विचरता है और कैलाशमें शिवरूपसे निवास करता हुआ त्रिविक्रम अवतारमें तीन पाद न्याससे चतुर्दश भुवनोंको कम्पायमान करता है।"

व्रत-विधि।

व्रत एवं उद्यापनकी समस्त विधि हेमाद्रि और भविष्योत्तरपुराणमें लिखी है। भाद्रपद मासकी शुक्ला द्वादशी यदि श्रवण नक्षत्र वाली हो, तो विजया नामकी द्वादशी होती है, जो वामनावतारकी जयन्ती मानी जाती है और उसमें किये हुए कर्मोंका अनन्त फल होता है। एकादशीको उपवास करके रात्रिको भगवान्का पूजन करे और चाँदी, सोना या बाँसके पात्रमें, स्वर्णमयी वामनावतारकी मूर्त्तिको स्थापित करे। उस मूर्त्तिमें शिखा, सूत्र कमण्डलु, छत्र और यज्ञोपवीतका चिन्ह अवश्य हो और पूजन यथा-शास्त्र करना चाहिये। समयानुकूल सुन्दर फलोंसे बाँसके पात्रको भरकर एक स्वच्छ वस्त्रसे ढँक दे। यदि असमर्थ हो, तो पात्रको जौओंसे भी भर सकता है तथा एक मृगछालामें तिलोंको भी रक्खे। तदनन्तर पुष्प, धूप और नैवेद्य-आदिसे पूजन करे और इस मन्त्रको बोले:—

"ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महद्भूतैरधिष्ठितम् ।
मायावी वामनः श्रीशो समायातु जगत्पतिः ॥"

इसके उपरान्त द्वादशीको इस व्रतका उपोषण करके उद्यापन करे।

अथ कथा।

प्राचीन काल—सत्ययुगमें सम्पूर्ण देवताओंने वर देनेवाले विष्णुकी प्रार्थना की,—"नाथ! दैत्योंके अधिपति बलवान् राजा बलिने स्वर्गलोकको विजय कर लिया है, जिसके कारण हम लोग स्थानभ्रष्ट होकर इतस्ततः मारे मारे फिरते हैं—इन्द्रके सहित हम सब देवता आपके चरणोंमें आये हैं, कारण कि हमारे परम ध्येय आप ही हैं।" इस प्रकार देवोंकी प्रार्थनाको श्रवणकर विष्णु भगवान्ने कहा,—"देवताओ! मैं तुम्हारे दुःखको अच्छी प्रकारसे जान

चुका हूं, परन्तु विरोचनके पुत्र राजा बलिने दैत्यकुलमें जन्म लेनेपर भी मुझको सब तरहसे प्रसन्न किया है। राजा बलिके शुभ गुणोंका वर्णन करना कठिन है। जब उसने इतना तप किया है, तभी तो उसको स्वर्गलोकका आधिपत्य मिला है। बलि स्वर्गका अधिपति बलसे नहीं, किन्तु तपसे हुआ है; परन्तु खेदसे कहना पड़ता है, कि अब उसके तपमें न्यूनता हो चली है और स्वर्गलोकमें दैत्योंका अधिकार परिणाममें भयङ्कर है, इस लिये मुझको भी अभीष्ट नहीं है। अतः तुम सब देवता कश्यपकी भार्या अदितिके पास जाकर कहो, वह मेरी भक्ति करे, तो मैं उसके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म लेकर पृथ्वीपर आऊँगा और बलिको पाताल भेजकर पुनः स्वर्गमें आप लोगोंका आधिपत्य स्थापित करूँगा।"

इतना कहकर विष्णु तो अन्तर्धान हो गये और देवताओंसे सब वृत्तान्तको सुनकर अदितिने विष्णुको प्रसन्न किया, जिससे नव मास समाप्त होनेपर साक्षात् ब्रह्म वामनावतार लेकर प्रकट हुए। भगवान्‌के इस अवतारसे देवोंको आनन्द और दैत्योंको दुःख हुआ। महाराज कश्यपने यथा शास्त्र यज्ञोपवीतादि संस्कारोंको किया। तदनन्तर भगवान्‌ने जिस कार्यके लिये अवतार-धारण किया था, उसको किया—मेखलाको धारण कर दण्डको हाथमें लिया और उसी समय मेखला, दण्ड, जटा, यज्ञोपवीत, कुशा अजिन-चर्म तथा कमण्डलु आदिकी अपूर्व शोभासे सुशोभित होकर बलिको छलनेके लिये प्रस्थान किया और अल्प कालमें ही बलिके यज्ञस्थानमें पहुंच गये।

राजा बलिने जिस समय वामनावतार बटुकका दर्शन किया; उस समय अपने आपको कृत-कृत्य माना और हाथ जोड़कर अति नम्रतासे बोला,—"अतिथि देव! आप जैसे महानुभावोंका अनायास पधारना मेरे सौभाग्यका कारण है, अतः आप मेरे योग्य किसी प्रकारकी सेवा बतलायें। मेरे यहाँ आपके सदृश महात्माओंको न देनेके लिये कोई वस्तु नहीं—जो आप मागेंगे, वही दूँगा।" राजाकी इस प्रकार नम्रतायुक्त प्रार्थनाको श्रवणकर छद्मवेषधारी वामन भगवान्‌ने कहा,—"हमारे जैसे ब्रह्मचारियोंको किसी प्रकारके सांसारिक संग्रहकी तो आवश्यकता नहीं है, केवल पठन-पाठनके लिये तीन पाद पृथ्वीकी आवश्यकता है। यदि तुमसे दी जाय, तो दो।"-यह सुनकर तथा भगवान्‌के सौन्दर्यसे मोहित होकर राजा बलिने तत्काल ही सङ्कल्प कर लिया, कि तीनपाद पृथ्वी मैंने आपको दी। यद्यपि बलिके गुरु-शुक्राचार्यने

राजाको बहुत मना किया, परन्तु राजाने अपने वचनको पालन करनेके लिये गुरुकी एक बात भी न सुनी ।

जिस समय तीन पाद पृथिवीको नापनेकी तयारी हुई उस समय भगवान् उस विक्रमने अपने वामन—छोटे शरीरको विराट् बना लिया, जिससे दो पादमें समस्त विश्वको नाप कर एक पादसे बलिके शरीरको भी नाप लिया। तृतीय पादकी पूर्णता न होनेसे भगवान्ने राजा बलिको बाँध कर कहा,—"अब तुम सम्पूर्ण दैत्योंके साथ इस स्वर्गलोकको छोड़ कर पातालको चले जाओ, यहांसे भी विशेष भोग वहाँ मिलेंगे और इस वर्त्तमान इन्द्रके पश्चात् तुम ही स्वर्गलोकके अधिपति होगे।" वामन विष्णुकी आज्ञानुसार राजा बलि सपरिकर पातालमें जानेको तयार होकर भगवान्से बोला,—"आपने वचन दिया है, कि मैं तीन पाद पृथिवी पाकर, एक कोठरी बनाकर, उसमें पठन-पाठन किया करूँगा; अतः अब आप उस वचनको सत्य करें—यह प्रार्थना है।" विष्णु उस दिनसे आज पर्यन्त तीन मासके लिये प्रतिवर्ष बलिके यहां पातालमें निवास करते हैं। जो लोग इस कथाको श्रवण करेंगे, वे सदैव धन-धान्यसे पूर्ण रहेंगे।

शिक्षा ।

इस वामन द्वादशीके त्यौहारसे हमको तीन शिक्षाएँ मिलती हैं,—"(१) शासन प्रणालीका प्रजाके अनुकूल होना, (२) अपनी अथवा अपने पूर्वजोंकी प्रतिज्ञाका पालन करना और (३) भिक्षार्थी नहीं, किन्तु स्वावलम्बी होना।"

(१) शासन प्रणालीका प्रजाके अनुकूल होना ।

दानव शिरोमणि—बलि अपने पराक्रमसे स्वर्गका अधिपति हो गया था, परन्तु उसका यह आधिपत्य अन्यायमूलक था, क्योंकि अमरावती राक्षसोंकी नहीं किन्तु देवताओंकी राजधानी—जन्मभूमि थी। मूल निवासियोंका उपमर्दन करके किसी दूसरे देशके राजाका बलसे अथवा छलसे राज्य तो हो ही जाता है, परन्तु उसमें पवित्रता नहीं होती। राक्षसोंकी जन्मभूमि—पाताल पर यदि इन्द्र अपना आधिपत्य जमा लेता तो, उसको भी अन्यायमूलक ही कहा जाता, क्योंकि सामाजिक व्यवस्थाको दृष्टिमें रखकर अपनी-अपनी जन्म-भूमिपर अपना-अपना शासन ही उत्तम होता है। यद्यपि व्यक्तित्वेन राजा बलि भगवद्भक्त और धर्मात्मा था—यह उसकी कथासे जाना जाता है,

परन्तु उसकी शासनप्रणाली तैंतीस कोटि देवताओंके उपयोगी नहीं; किन्तु मुट्ठी भर राक्षसोंके हितसाधन करनेवाली थी। यही कारण था, कि तैंतीस कोटि देवताओंने अध्यात्मशक्ति—ईश्वरसे अपने दुःखकी कहानी सुनाई।

सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर विदित होता है, कि देवताओंकी वह प्रार्थना राजा बलिके विरुद्ध नहीं, किन्तु शासनप्रणालीके विरुद्ध थी। यदि राजा बलि अपनी शासनप्रणालीको मूल निवासियोंके उपयोगी बना देता तो सम्भव है, कि उसको अपने बोरिया-बन्धन बाँधकर पाताल न जाना पड़ता, परन्तु वह अपने सजातीय—राक्षसोंके चक्करसे न निकल सका; इस लिये उसे स्वर्ग जैसे रम्य और भव्य देशको छोड़ना पड़ा।

बहुतसे लोग शंका किया करते हैं, कि वामन भगवान्‌ने धर्मात्मा बलिको व्यर्थ ही बाँधकर स्वर्गसे निकाल दिया। परन्तु वे लोग यह नहीं समझते, कि बलिका शासन मूल निवासियोंके विरुद्ध और राक्षसोंके अनुकूल था; अतः बलिको बाँधकर शासनप्रणालीको देवताओंके अनुकूल बनाया और वह धर्मात्मा था, इसी कारण भगवान् आज-तक भी उसके यहां चार मासके लिये प्रतिवर्ष पातालमें पधारते हैं। सारांश—राजाओंको इस घमण्डमें न रह जाना चाहिये; कि हम धर्मात्मा हैं और ईश्वरकी भक्ति भी करते हैं, इस कारण हमारा राज्य सदैव अटल रहेगा। धर्मात्मा और भगवद्भक्त सद्गतिको निःसन्देह प्राप्त कर सकता है, परन्तु राज्य तो अटल उसीका रह सकता है, जिसकी शासनप्रणाली प्रजाके अनुकूल होगी। प्रजाको भी देवताओंके परिश्रमसे यह शिक्षा लेनी चाहिये, कि शासन-प्रणाली जबतक अपने अनुकूल न हो गयी, तब तक तैंतीस कोटि देवताओंने अहर्निश इतना प्रबल उद्योग किया, कि सब प्रकारके स्वार्थोंपर लात मार दी और राक्षसोंके जुल्मोंको धैर्यपूर्वक सहन किया। उसका फल यह हुआ, कि अत्याचारियोंके पशु-बलका दिवाला निकल गया और शासन प्रजाके अनुकूल हो गया—पुनः इन्द्रका आधिपत्य स्वर्गमें स्थापित हो गया।

(२) अपनी या अपने पूर्वजोंकी प्रतिज्ञाका पालन करना।

"विद्या नीचसे भी ग्रहण करनी चाहिये।"—इस युक्तिके अनुसार दैत्याधिपति बलिके चरित्रसे भी एक शिक्षा सर्व साधारण और विशेष करके राजाओंको लेनी चाहिये। वह यह है,—"महाराज बलिने वामन भगवान्‌को यह वचन दिया था, कि मैं आपको तीन पैर पृथ्वी अवश्य दूँगा। इस

प्रतिज्ञाको छोड़नेके लिये राक्षसोंने बहुत बड़ा उद्योग करके बलिके गुरु—शुक्राचार्य्यको बहकाया और शुक्राचार्य्यने भी राजा बलिको अनेक प्रकारसे फुसला कर स्पष्ट कहा, कि यदि आप मेरे कहनेको मान कर अपने वचनको अन्यथा न करेंगे, तो मैं आपके आचार्य्यत्वसे पृथक् होकर अन्यत्र चला जाऊँगा तथा तुम राज्यश्रीसे भ्रष्ट होकर असह्य दुःखोंको भोगोगे। राजा बलिने उस समय जो कहा है, वह नीचेकी कवितामें बतलाया जाता है:—

"सुखके अभावका न मान हौं कछुक दुःख,
दुःखके अभावसे न रंचकहू धरिहौं।
धन अनुरागिहौं न त्यागिहौं न दान धर्म,
पन्थमें अनीतिके न भूल पगु धरिहौं।
राज्य और सम्पत्तिकी चरचा चलाई कहा,
वचनके आगे प्राण ओर न निहारिहौं।
याचककी याचना पै हाँ करी सो हाँ करी,
तीनो काल माही अब नाहीं नाहिं करिहौं॥"

सारांश—राजाओंको अपनी अथवा अपने पूर्वजोंकी प्रतिज्ञापर इसी प्रकारसे अटल रहना चाहिये।

(३) भिक्षार्थी नहीं, किन्तु स्वावलम्बी होना।

तावन्महत्तां हि महती यावत्किमपि हि न याचते लोकम्।
बलिमनु याचनसमये श्रीपतिरपि वामनो जातः॥

संसारमें अन्न, वस्त्र, और द्रव्य-आदिकोंकी प्राप्ति कदाचित् भीख मांगनेसे हो सकती हो, परन्तु पृथिवी अथवा देशकी प्राप्ति भिक्षाके द्वारा कठिन है। परमात्माको श्रीपति इसी लिये कहते हैं; कि वह अखिल ब्रह्माण्डका अधिपति है, परन्तु बलिसे भूमिकी भिक्षा माँगते समय उसको भी वामन—छोटा शरीर धारण करना पड़ा। जब तक भगवान् छोटे भिक्षुक रहे, तब तक पृथिवीको अधिकृत न कर सके, किन्तु बलवान् होकर विराट् रूपको धारण करनेसे ही पृथ्वीको ले सके। अतः पृथ्वी अथवा राज्यकी प्राप्ति भिक्षासे नहीं, किन्तु बलवान् होकर स्वावलम्बी होनेसे होती है।

—:o:—

८—अनन्तचतुर्दशी-व्रत ।

शास्त्रीय स्वरूप ।

इस व्रतकी विधि और कथा भविष्योत्तर-पुराणके आधारपर लिखी गयी है, परन्तु तिथिनिर्णयके विषयमें हेमाद्रिकारने यह लिखा है:—

शुक्ला भाद्रपदस्यापि अनन्ताख्या चतुर्दशी ।
उदयव्यापिनी ग्राह्या घटिकैकापि या भवेत् ॥

"भाद्रपद शुक्लामें जो अनन्त-चतुर्दशी होती है, वह यदि एक घटिका भी हो, तो भी उदयव्यापिनी ही ग्रहण करनी चाहिये ।"

अथ पूजाविधि ।

प्रातःकाल नदी आदि किसी सरोवरमें स्नानकर, नित्य कर्मको समाप्त कर, अनन्त भगवान्‌को हृदयमें धारण कर, पवित्र होकर, विना छेदके कलशको दो वस्त्रोंसे ढाँक कर, दर्भका अनन्त भगवान् बनाकर और कलशके आगे स्थापित कर, अनन्त भगवान्‌का आराधन करे। गऊके गोबरसे चौकाके बराबर लीपकर, उसमें स्थण्डिल बनाकर, और अष्ट-दल-कमल लिखकर उस-पर घटकी स्थापना करे तथा उस घटमें आमके पत्तोंको लगाये। प्राणायाम-पूर्वक निम्न संकल्पको कहे:—

मासानां मम सकुटुम्बस्य क्षेमस्थैर्यायुरारोग्य चतुर्विध
पुरुषार्थ सिद्ध्यर्थं मम आचरितस्य, आचार्यमाणस्य व्रतस्य
सम्पूर्ण फल प्राप्त्यर्थं श्रीमदनन्त-पूजनमहं करिष्ये।"

इसके उपरान्त कलशमें वरुण देवताका पूजनकर तथा शंख और घंटा का पूजनकर, विधिके साथ यमुनाका पूजन करे, और प्रथम ध्यानका यह श्लोक पढ़े:—

"लोकपालस्तुतां देवि मिद्रनीलसमुद्भवाम् ।
यमुने त्वामहं ध्याये सर्वकामार्थ-सिद्धये ॥"

इस प्रकार श्री यमुनाकी पूजा करे, और आरति करनेके पश्चात् अनन्त भगवान्‌की भी निम्न रीतिसे पूजा करे—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पञ्चामृतस्नान, शुद्धोदकस्नान, वस्त्र, ब्रह्मसूत्र, उत्तरीय वस्त्र, चन्दन,

अक्षत, और पुष्प आदिसे पूजन करे। तदनन्तर चतुर्दश गाँठोंकी पूजा करनेका विधान है; किन्तु प्रथम चतुर्दश ग्रन्थियोंको नमस्कार करे—" (१) श्रियै नमः, (२) मोहिन्यै नमः, (३) पद्मिन्यै नमः, (४) महाबलायै नमः, (५) अजायै नमः, (६) मँगलायै नमः, (७) वरदायै नमः, (८) शुभायै नमः, (९) जयायै नमः, (१०) विजयायै नमः, (११) जयन्त्यै नमः, (१२) पापनाशिन्यै नमः, (१३) विश्वरूपायै नमः और (१४) सर्वमंगलायै नमः ।" इस प्रकार गाँठोंका पूजन करके फिर अनन्तके अङ्गोंकी तथा आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये। ततपश्चात् विष्णुके १०८ नामोंका उच्चारण करके धूप, दीप, नैवेद्य, मुख-प्रक्षालन, हस्त-प्रक्षालन, ताम्बूल और दक्षिणा देकर तथा प्रदक्षिणा करके पापोंकी क्षमा प्रार्थना करता हुआ नीचे लिखे श्लोकसे डोराको भुजामें बांधेः—

"अनन्त-संसार-महा-समुद्रे मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ॥"

नवीन अनन्तको धारण करनेसे प्रथम निम्न लिखित श्लोकसे जीर्णका विसर्जन करेः—

नमःसर्वहितार्थाय जगदानन्दकारक ॥
जीर्णदोरममुं देव विसृजेहं त्वदाज्ञया ॥"

बाँयनके साथ उस जीर्ण डोरेका किसी ब्राह्मणके लिये दान करदे और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराकर, स्वयं भी भोजन करे।

अथ-कथा ।

सूतजीने अनन्तव्रतके माहात्म्यमें एक प्राचीन कथानकका वर्णन किया है। प्राचीन कालमें महाराज युधिष्ठिरने श्रीयमुनाजीके किनारेपर जरासंधको मारनेके निमित्त राजसूय यज्ञ किया था। उस समय श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर, भीमसेन, और अर्जुनने यज्ञमण्डपको इन्द्रभवनके समान सुसज्जित किया, जिसमें दुर्योधनको जलकी जगह स्थल और स्थलकी जगह जलका भान हो गया था और भ्रमसे जलको स्थल मानकर उसमें महाराज दुर्योधन गिर गया था। दुर्योधन जैसे सम्राट्को इस प्रकार गिरते देखकर, द्रौपदी और भीमसेनने हंसकर "अन्धोंकी संतति भी अन्धी होती है" यह कहा। इसको सुन अपमानको सहन न कर, दुर्योधन क्रोधातुर होकर, उस सभासे चला गया, और घरपर जाकर महाराज युधिष्ठिरको द्यूत खेलनेका बुलावा

भिजवाया। महाराज युधिष्ठिरको दुर्योधनने अधर्मसे द्यूतमें विजय करके १२-वर्षके लिये द्रौपदी सहित पांचों पाण्डवोंको वनवासमें भेज दिया।

भगवान् कृष्ण एक बार वनवासकी दशामें ही राजा युधिष्ठिरसे मिलनेको पधारे, उस समय राजा युधिष्ठिरने भगवानसे दुःख-निवृत्तिका उपाय पूछा। श्रीकृष्णने अनन्त व्रतका उपदेश करके कहा "अनन्त नाम मेरा ही है। अतः तुम इस व्रतको करो इस व्रतके करनेसे अवश्य ही उपस्थित संकटको नष्ट करके राज्यको पुनः प्राप्त करोगे।" तदनन्तर भगवान्ने अनन्तव्रतकी महिमाको द्योतन करने वाला एक इतिहास भी कहा। कृतयुगमें सुमन्तु नामका वसिष्ठगोत्री एक ब्राह्मण था। उसने दीक्षा नाम्नी भृगुकी कन्याके साथ विवाह किया। कुछ समयके बाद इस ब्राह्मणके यहां एक कन्याका जन्म हुआ, जिसका शीला नाम था। यह कन्या शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भांति बढ़ रही थी, कि उसी समय उसकी माता ज्वराक्रान्त होकर मर गयी। ब्राह्मणने आहिताग्निकी रक्षाके निमित्त दुःशीला नामकी कर्कशा स्त्रीके साथ द्वितीय विवाह किया। अपनी शीला नाम्नी कन्याको रातदिन बढ़ती हुई देख कर ब्राह्मण इस चिन्तामें था, कि किसके लिये इस कन्याको देना चाहिये। उसी समय वहाँपर कन्यार्थी कौण्डिन्य ऋषि आ गया, और शीलाका सम्बन्ध इनहीके साथ हुआ। रथमें शीलाको बिठलाकर कौण्डिन्य जब यमुना किनारेपर पहुंचा, तो रथकी रक्षामें शिष्योंको नियुक्त करके आप सन्ध्यावन्दनादि क्रियाको गया। मध्यान्हके समय शीलाने रथसे उतर कर यमुनाके तटपर स्वच्छ वस्त्र पहन कर किसीके पूजनको करती हुई अनेक स्त्रियोंको देखा और पूछा,—"तुम क्या करती हो?" स्त्रियोंने सर्वसिद्धियोंका, देनेवाला अनन्तका व्रत और उसकी विधि भी बतलाई। युधिष्ठिर! उसी समय वहाँ ही शीलाने अनन्त व्रतको करके डोराको भुजापर बाँध लिया और रथमें बिठलाकर कौण्डिन्य उसको निजाश्रमपर ले आये। यद्यपि कौण्डिन्य ऋषि प्रथम कंगाल था, परन्तु शीलाके व्रतानुष्ठानसे समस्त वैभवशाली बन गया।

एक दिन कौण्डिन्यने शीलाके हाथमें डोराको बँधा देख कर पूछा,—"यह क्या है? कदाचित् मेरे मोहनार्थ यह जादूका डोरा तो नहीं है?" शीलाने नम्रतापूर्वक अनन्त भगवान्के व्रतका विधान किया और यह भी कहा, कि तुम्हारे घरमें सब समृद्धि इसी कारणसे है, परन्तु कौण्डिन्यने क्रोधाविष्ट होकर अनन्तका तिरस्कार किया और डोरेको तोड़कर अग्निमें जला दिया।

इस अनन्तापराधके कारण कौण्डिन्यकी शोचनीय अवस्था हो गयी और वह हर प्रकारसे दुःखी हो गया। एक दिन कौण्डिन्यने शीलासे दुःखका कारण पूछा, तो शीलाने अनन्तापमानको ही कारण बतलाया। एक समय कौण्डिन्य बहुत दुःखी होकर अनन्तकी प्राप्तिके अर्थ वनमें चला गया और वहाँ जाकर एक बहुत बड़े आमके वृक्षको देखा। इस आममें पत्र, पुष्प और फल सब तो लग रहे थे, परन्तु उसपर एक भी पक्षी नहीं बैठता था ब्राह्मणने उस आमसे पूछा,—"तुमने अनन्त भगवान्को भी कहीं देखा है?" आमने कहा,—"मैंने तो नहीं देखा।" आगे जाकर सवत्सा गऊको देखकर उससे भी अनन्तके देखनेको पूछा, परन्तु गायने कहा, कि आगे एक बैल है, उससे जाकर पूछोगे, तो पता लग जायगा। बैलने पूछनेपर कहा,—"मैंने अनन्तको नहीं देखा है।" ब्राह्मण और भी आगे गया तो दो तलाइयोंको देखा, जिनमें खूब जल भरा था, और जलके जन्तु किलोल कर रहे थे, तथा एकका जल दूसरीमें जाता आता था। उन दोनोंसे जब पूछा, तो उन्होंने भी कहा कि, हमने अनन्तको नहीं देखा है। जब कौण्डिन्य और भी आगे गया, तो एक गधा और एक हाथीको देखा, परन्तु अनन्तके विषयमें इन्होंने भी नकारसे ही काम लिया। इस प्रकार सब स्थानोंसे निराशा हो गयी, तब तो ब्राह्मण अत्यन्त दुःखी होकर मूर्छाके कारण पृथ्वीपर गिर गया।

इस प्रकारके दुःखसे दुखी ब्राह्मणको देख कर अनन्त भगवान् वहां ही प्रकट होकर बोले,—"ब्राह्मण! मेरे व्रतकी अवहेलनासे ही तुमको दुःख हुआ है। जब तुम घरपर जाकर १४ वर्ष तक अनन्तके व्रतको करोगे, तब पूर्ववत् संपन्न हो जावोगे।" कौण्डिन्यके पुनः पूछनेपर अनन्त भगवान्ने यह भी कहा कि,—"जो आमका वृक्ष तुमको मिला था वह पूर्व जन्ममें वेद-विद्या-विशारद ब्राह्मण था, परन्तु मरणकाल तक अपनी विद्या और किसीको न पढ़ायी जिससे वृक्ष हो गया है। आमके आगे जो गाय मिली थी, वह पूर्व जन्ममें पृथिवी थी, परन्तु जो बीज इसमें बोया जाता था, उसको उत्पन्न नहीं करती थी। जो बैल देखा था, वह साक्षात् धर्मका स्वरूप था। ये दोनों तलाइयें पूर्वजन्ममें दोनों बहनें थीं जो कुछ दान धर्म देना लेना होता आपसमें ही कर लेती। किसी दीन, दुःखी या वेदज्ञ-ब्राह्मणको कुछ नहीं देती थीं। गधा क्रोध और हाथी मदका रूप है—यह कह कर अनन्त भगवान् वहाँ ही अन्तर्धान हो गये।" उस मूर्छामें इस प्रकारके स्वप्नको देख कर कौण्डिन्य घरपर आया और

विधिके साथ अनन्त भगवान्‌के व्रतको किया, जिससे इस लोकमें अनेक सुखों-को भोगकर अन्तकालमें मुक्तिकी प्राप्ति हुई। युधिष्ठिर! यदि तुम भी इस प्रकार करके फिर उद्यापन करोगे, तो पूर्ववत् लक्ष्मीको प्राप्त हो जावोगे। सूतजीने शौनकादिसे कहा,—"इसी व्रतके प्रभावसे युधिष्ठिरको पुनः राज्यकी प्राप्ति हुई। यदि डोरा सालभरसे प्रथम ही किसी प्रकारसे नष्ट हो जाय, तो प्रदक्षिणा करके गुरुसे कहे और १०८ विष्णुनामोंके साथ आहुतियाँ देकर क्षमा-पराधकी स्तुति करके उसी विधिसे चतुर्दशीका व्रत करे और डोरा बाँधे।"

लौकिक स्वरूप।

अनन्त चतुर्दशीका व्रत उत्सव नहीं किन्तु व्रत ही है और वह भी काम्य-व्रत है। वैष्णव लोग विष्णु प्रीत्यर्थ, और, और इतर लोग कामनाके अर्थ इस व्रतको करते हैं। जिस प्रकार सत्यनारायणका काम्यव्रत है, उसी प्रकार यह भी है। दक्षिण देशमें तो केवल वैष्णवोंमें ही यह व्रत रूढ़ पाया जाता है, परन्तु राजपूताना, यू. पी. आदि प्रान्तोंमें शैव, शाक्त, वैष्णवादि सभी लोग करते हैं। यहाँ तक कि, कितने ही गृहस्थ तो चाँदी, सोने और ताम्बेका अनन्त बनवा कर सदैव हाथमें पहनते हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अनन्त व्रतको नहीं करते परन्तु शोभार्थ अनन्तके समान ही एक आभूषण भुजापर बाँधते हैं। बँगालमें भी इस व्रतका प्रचार है, परन्तु थोड़े लोग ही करते हैं, और वे भी श्रीकृष्णचन्द्रके प्रीत्यर्थ करते हैं, काम्य नहीं।

शिक्षा।

संस्कृत भाषामें अनन्त शब्दके साथ ही सान्त शब्द भी है। अनन्त-ब्रह्म और सान्त जगत् है—दृश्यमान सब जगत् नश्वर एवं सान्त है। कारण कि जिस पदार्थको जिस रूपमें आज देखते हैं, कल वह पदार्थ उस रूपमें दृग्गोचर नहीं होता और तो क्या, परन्तु यह मनुष्यका शरीर भी क्षणस्थायी है। बड़े बड़े राजा महाराजा और ऋषि महर्षियोंके शरीर भी आज इस संसारमें नहीं है। सदैव स्थिर रहने वाला केवल एक परमात्मा ही है, अतः उसीका नाम अनन्त, अर्थात् अन्त रहित शास्त्रोंने कहा है। यद्यपि अस्मदादिके शरीर सान्त हैं, परन्तु इन सान्त शरीरोंकी यह शक्ति अवश्य हैं, कि वे चाहें तो अपनेमें रहनेवाली आत्माको अनन्तमें मिलाकर उसको भी अनन्त बना सकते हैं। यहाँ यह शँका हो सकती है,—"नश्वर पदार्थ न तो स्वयं नित्य पदार्थ तक जा सकता है और न शरीराभिमानी चिदंशको अनन्त तक पहुंचा सकता है, फिर

नश्वर शरीरसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?" परन्तु पाठक वर्ग ! नश्वर शरीर भी धर्म, कर्मकाण्ड और वर्णाश्रमादिका पालन करता हुआ ज्ञान तथा प्रेम, जो आत्माका धर्म है, उसका विकाश कर सकता है, और ज्ञान तथा प्रेम-ये दोनों अपूर्ण चिदंशको पूर्ण ब्रह्म या अनन्तसे मिला सकते हैं। इस कारण शरीर धर्मोंका पालन शीघ्र ही करना चाहिये, क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है। एक कविने इसीको कहा है:—

"काल करे सो आजकर आज करे सो अब ।
अवसर बीत्यो जात है फेरि करोगे कब ॥"

———o———

७—आश्विन-मासके व्रतोत्सवोंका विवरण ।

इस आश्विन मासको असोज एवँ कुआर भी कहते हैं। इसमें व्रतोत्सव होते तो थोड़े हैं, परन्तु जो होते हैं, वे तात्त्विक होते हैं तथा हिन्दूधर्मकी बड़ीसे बड़ी घटनापर पहुँचानेवाले हैं। महालय श्राद्ध, नवरात्र, दशहरा और शारदीय पौर्णिमा—ये चार व्रतोत्सव ही होते हैं, जिनका उल्लेख क्रमशः किया जाता है।

१–महालय श्राद्ध ।

श्राद्धके दश प्रकारोंमेंसे एक प्रकारको महालय कहा जाता है। आश्विन कृष्ण प्रतिपदासे आश्विन शुक्ल पौर्णिमा तक जिन श्राद्धोंको किया जाता है—वे महालय कहलाते हैं।

श्राद्ध शब्दका अर्थ ।

जो लोग कि वेदोंको प्रमाण मानकर भी श्राद्ध करनेसे हिच-किचाते हैं, उन्होंने मृतक श्राद्धको अवैदिक सिद्ध करनेमें एक अपूर्व युक्ति यह निकाली है,– "वेदोंमें श्राद्ध करना तो पाया जाता है, परन्तु मृतकोंका नहीं—जीवितोंकी सेवा शुश्रूषाका नाम ही श्राद्ध है। ऐसी दशामें श्राद्ध शब्दके लक्षण ये होते हैं, "श्रद्धया यत्क्रियते दीयते वा तत् श्राद्धम्" श्रद्धासे जीवित माता पितादिको

कुछ देना या उनका सत्कार करना—यही श्राद्ध है।" परन्तु श्राद्ध शब्दका यह अर्थ इन महानुभावोंका नवीन कल्पित है, कारण कि इस अर्थमें कुछ प्रमाण नहीं। वेदको अनादि तो सबने ही माना है और जब वेद अनादि हुआ तो उसमें लिखा हुआ श्राद्ध कर्म भी अनादि कालसे मानना पड़ेगा। अब प्रमाण इस बातका मिलना चाहिये, कि आजसे पांच दश हजार वर्ष प्रथमके लोग धर्म शास्त्रोंके कर्त्ता श्राद्ध शब्दके अर्थ क्या मानते थे? यदि वे जीवितोंकी ही सेवाको श्राद्ध मानते थे तब तो इन लोगोंका कथन ठीक ही है और जो वे लोग इसके विपरीत मृतकोंके लिये कर्म विशेषको श्राद्ध मानते थे, तो इनकी यह कल्पना मिथ्या ही ठहरेगी।

पराशर महर्षिका कथन है:—

देशे काले च पात्रे च विधिना हविषा च यत्।
तिलैर्दर्भैश्च मंत्रैश्च श्राद्धं स्याच्छ्रद्धया युतम्॥

"देश, काल तथा पात्रमें हविष्यादि विधि करके जो कर्म तिल, यव और दर्भादि द्वारा और मन्त्रोंसे श्रद्धा युक्त हो किया जाय उसको श्राद्ध कहते हैं।" इसी प्रकार ब्रह्मपुराणमें भी स्पष्टरूपसे लिखा है:—

देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥

"देश, काल और पात्रमें, श्रद्धा द्वारा जो भोजन पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दिया जाय, उसको श्राद्ध कहते हैं।" जिस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणोंमें श्राद्धका लक्षण है, ठीक इसी प्रकार मरीचि ऋषिने भी लिखा है:—

प्रेतान्पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

"मरे हुए पितरोंके निमित्त अपनेको प्रिय भोजन जिसमें श्रद्धा करके दिया जाय, उस कर्मको श्राद्ध कहते हैं।" मनुजी महाराजने भी लिखा है:—

यद्यद्रुचिकरस्तेषां तत्तद्दद्यादमत्सरः।

"श्राद्धमें जो भोजन माता-पिताओंके निमित्त ब्राह्मणोंको दिया जाय, वह ब्राह्मणकी रुचिके अनुकूल होना चाहिये।" इसके अतिरिक्त मनुजीने श्राद्धभोजी ब्राह्मणोंके लक्षणोंमें मनुस्मृतिकी एक अध्याय लिखी है।

उपर्युक्त प्राचीन प्रमाणोंसे जाना जाता है, कि श्राद्ध यह एक वैदिक कर्म है और माता पिताओंके निमित्त ब्राह्मणभोजनादिसे किया जाता है।

जिस कर्ममें तिल, यव और दर्भादि सामग्रीकी अपेक्षा होती है, वह जीवितोंमें कभी भी घटित नहीं हो सकता। यद्यपि प्राचीन कालसे तो श्राद्ध मृत पितरोंमें ही रूढ़ है, परन्तु इस नवीनोन्नतिके समयमें यदि जीवितोंमें रूढ़ कर दिया जाय, तो हमारी कुछ हानि नहीं, किन्तु इसको फिर वैदिक कर्म न कह कर काल्पनिक ही कहना होगा, अस्तु।

श्राद्ध कर्त्तव्य और उसका फल।

कितने ही सज्जनोंके दिलमें श्राद्धके विषयको लेकर एक और भी शङ्का उत्पन्न होती है,—"श्राद्ध एक इस प्रकारका कर्म है, जिसकी क्रिया तो हम करें और फल दूसरेका मिले। यदि दैवात् हमारा पिता अपनी शुभ करनीसे जनन मरणके चक्करको समाप्त कर वैकुण्ठ धामको चला गया हो, तो हमारा किया हुआ श्राद्ध निष्फल हो जाता है, इस कारण अनिश्चित फल वाले कर्म कलापमें किस प्रकार प्रवृत्ति हो?" किन्तु इस प्रकारकी शंका करनेवाले सज्जनोंने श्राद्धविधायक ग्रन्थोंका अवलोकन नहीं किया है, कारण कि जिन ग्रन्थोंमें श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य बतलाया है, उनमें श्राद्धके करनेका फल क्या है—यह भी लिखा है। श्राद्धका फल केवल पितरोंकी तृप्ति ही नहीं है, किन्तु कर्ताका श्रेय भी है।

अब श्राद्धका कर्त्तव्यत्व और फलके विषयोंमें ऋषियोंकी क्या सम्मति है—यह बतलाया जाता है। यमस्मृतिमें इस प्रकार लिखा है:—

आयुः पुत्रान्यशः स्वर्गं कीर्त्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून्सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

"जो मनुष्य पितृ-पूजन अर्थात् श्राद्ध करता है, वह आयुः, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्त्ति, पुष्टि, बल, वैभव, पशु, सुख, धन और धान्यको प्राप्त होता है।" इसी प्रकारसे याज्ञवल्क्य, महाराजने भी अपनी याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है:—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

"श्राद्ध कर्मसे प्रसन्न हो कर पितर मनुष्योंके लिये आयुः, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य दे देते हैं।" मोक्ष, स्वर्ग और पुत्रके दाता जीवित पितर नहीं, किन्तु दिव्य पितर ही हो सकते हैं—यह पाठकोंको स्मरण रखना चाहिये। श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है—यह सुमन्तु नामक महर्षिने भी लिखा है:—

श्राद्धात्परतरं नान्यच्छ्रेयस्करमुदाहृतम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥

श्राद्ध करनेवालेके लिये श्राद्धसे बढ़कर कल्याणप्रद दूसरा कर्म नहीं है, इस कारण बुद्धिमानको प्रयत्न करके श्राद्ध अवश्य करना चाहिये।" महाभारतकी विदुरनीतिमें भी महाराजा दुर्योधनके पिता धृतराष्ट्रसे महात्मा विदुरजीने कहा हः—

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति.................. ।
..................तमाहुर्मूढ़चेतसम् ॥

"जो मनुष्य पितरोंके निमित्त श्राद्ध नहीं करता, उसको बुद्धिमान पुरुष मूर्ख कहते हैं।" इसके अतिरिक्त ब्रह्म-पुराणमें भी कहा है:—

तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथा विधि।
कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति ॥

"जो मनुष्य शाकके द्वारा भी भक्तिसे श्रद्धा संयुक्त हो श्राद्ध करता है, उसके कुलमें कोई भी दुःखी नहीं होता।"

उपर्युक्त प्रमाणोंसे पाठकोंको विदित हो गया होगा, कि मृत पितरोंके निमित्त श्राद्ध करनेका माहात्म्य अनेक शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है। अब महालय श्राद्ध सबसे विशेष क्यों माना गया है, इसका शास्त्रीय रहस्य बतलाया जाता है।

कनागत एवं कन्यागत।

आश्विन मासके कृष्णपक्षमें जो सोलह दिन श्राद्धोंके माने गये हैं, उनमें जिस तिथिको जिसके माता पिताका स्वर्गवास हुआ हो, उसी तिथिमें उसको श्राद्ध करनेकी रीति है। इन दिनोंमें अब भी प्रायः अखिल भारतमें श्राद्धोंकी खूब भरमार होती है। इन्हीं श्राद्धोंको महालय एवं कनागत कहते हैं। महालय और कनागत नाम ही प्रचलित है। "कनागत" इस नामको लेकर श्राद्ध विपक्षियोंने श्राद्ध जैसे वैदिक विषयको संसारसे मिटा देनेकी कोशिश करते हुए लोगोंको यह समझाया है—"कनागतमें जो श्राद्ध किया जाता है, वह वैदिक नहीं, किन्तु राजा कर्णके समयसे चलाया गया है। इसीसे कर्ण+आगत कर्णागत शब्द बना था, वह बिगड़ कर आजकल कनागत रह गया है; अतः इसको वैदिक या अनादि कालसे होनेवाला मानकर, करनेवाले लोग मूर्खता कर रहे हैं।" परन्तु यह युक्ति इन लोगोंने केवल पक्षपातकी भित्तिपर खड़ी की है,

जो सर्वथा असंगत और समस्त शास्त्रोंके प्रतिकूल होनेसे त्याज्य है। कनागत-यह कर्ण+आगतसे नहीं बना है, किन्तु कन्या+गत से कनागत बना है। कारण कि कन्याराशि पर जब सूर्य्य आते हैं, तब ये श्राद्ध किये जाते हैं। इस विषयके प्रमाण पाठकोंकी भेंट हैं। ब्रह्मपुराणमें इसका प्रकरण इस प्रकारसे आया है:—

आश्वयुजां तु कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च।
प्रावृड्तौ यमः प्रेतान् पितॄंश्चाथ यमालयात्॥
विसर्जयति भूर्लोकं कृत्वा शून्यं स्वकं पुरं।
ते पुत्रादेः प्रकांक्षंति पायसं मधुसंयुतम्॥
कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति वै सुतान्।
आमावस्यादिने प्राप्ते गृहद्वारं समाश्रिताः॥
श्राद्धाभावे स्वभवनं शापं दत्त्वा व्रजंति ते।
अतो मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः॥
पितृतुष्टिं प्रकुर्वीत नैव श्राद्धं विवर्जयेत्।

"आश्विन मासके कृष्णपक्षमें, त्रयोदशी और मघामें तथा प्रावृड् ऋतुमें यमराज मृत पितरोंको यमालयसे छोड़ देते हैं। वे पितर पुत्रादिकोंसे खीर एवं मधुयुक्त पदार्थ मिलनेकी इच्छासे इस लोकमें आते हैं। जब सूर्य्य कन्या राशिपर आता है, पितर तभी यहाँ आते हैं और आमावस्याके दिन तक घरके द्वार पर ठहर कर श्राद्ध न करनेवाले लड़कोंको शाप देकर पीछे यमलोक चले जाते हैं। इस लिये कन्द, फल, मूल और शाकादिसे अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिये।

गरुड़ पुराणके नागर खण्डमें भी लिखा है:—

अमावस्यादिने प्राप्ते गृहद्वारं समाश्रिताः।
वायुभूताः प्रवाञ्छन्ति श्राद्धं पितृगणा नृणाम्॥
यावदस्तगतं भानोः क्षुत्पिपासासमाकुलाः।
ततश्चास्तं गते सूर्ये निराशा दुःखसंयुताः॥
निःश्वसंतश्चिरं यान्ति गर्हयन्तः स्ववंशजम्।
तस्माच्छ्राद्धं प्रयत्नेन अमायां कर्त्तुमर्हति॥

"अमावस्याके प्राप्त होनेपर पितर वायु-रूप होकर श्राद्धकी अभिलाषासे घरके द्वारपर रहते हैं। जब तक सूर्य्य अस्त नहीं होता, तब तक क्षुत्पिपासासे

व्याकुल होकर ठहरते हैं, परन्तु सूर्य्य अस्त हो जानेपर निराशासे दुःखी होकर और अपने वंशजोंको श्राप देते हुए पीछे चले जाते हैं। बुद्धिमान् पुरुषको अमावस्यामें अवश्यमेव श्राद्ध करना चाहिये।" यद्यपि यहां यह शंका हो सकती है,—"उपर्युक्त प्रमाणोंसे जितने लोग यहाँ मरते हैं, वे सब यमलोकमें ही रहते होंगे तभी तो प्रतिवर्ष अपने वंशजोंके घरोंपर आ जाते हैं? यदि ऐसा हो, तो मनुष्य मरकर अन्य योनिमें जाता है—यह शास्त्रोंका सिद्धान्त मिथ्या ठहरेगा?" परन्तु इस प्रकारकी शंका न करना चाहिये। कारण कि मरनेके पश्चात् मृत पितर अनेक स्थानोंमें रहते हैं। उनमेंसे जो यमलोकमें रहते हैं, वायुवत् आनेका क्रम उन ही का है। दूसरे जो कर्मानुसार इस लोक या अन्य लोकमें मनुष्य, गाय, भैंस और व्याघ्रादिके जन्ममें पहुँच जाते हैं, उनके निमित्त किये श्राद्धके फलको वस्वादि दिव्य-पितर उसी योनिमें पहुंचाते हैं। इस क्रमको हेमाद्रिमें इस प्रकारसे बतलाया है:—

देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः।
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेप्यनुगच्छति॥
गांधर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्।
श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेप्यनुगच्छति॥
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्।
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्॥
मानुषत्वेऽन्नपानादि नानाभोगरसो भवेत्॥

"पिता यदि शुभ-कर्म करनेसे देवता हुआ है, तो उसके निमित्त दिया हुआ श्राद्ध दिव्य पितरोंके द्वारा अमृत होकर उनको मिलेगा। इसी प्रकार गन्धर्व-योनिमें भोग-रूपसे, पशु-योनिमें तृणरूपसे, नाग-योनिमें वायुरूपसे, यक्षयोनिमें मद्यरूपसे, राक्षस एवं दानवयोनिमें मांसरूपसे, प्रेत योनिमें रुधिररूपसे, और मनुष्य-योनिमें अन्नरूपसे मिलता है।"

कन्यागत सूर्यमें ही महालय श्राद्ध करनेकी प्राचीन व्यवस्था है। नागर खण्डमें भी आया है:—

आषाढ्याः पंचमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे।
यो वै श्राद्धं नरः कुर्यात् एकस्मिन्नपि वासरे॥
तस्य सम्वत्सरं यावत् तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम्॥

"आषाढ़ी पौर्णिमासे पांचवे पक्षमें कन्या राशिपर जब सूर्य्य आवे, तब जो मनुष्य एक दिन भी श्राद्ध करता है, उसके पितर देव एक साल तक तृप्त रहते हैं।" इसी प्रकारसे मार्कण्डेय पुराणमें भी आया है:—

कन्यागते सवितरि दिनानि दश पंच च।
पार्वणेनैव विधिना तत्र श्राद्धं विधीयते॥

"कन्यागत सूर्य्यके पन्द्रह दिनोंमें पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये।" इसी प्रकरणको वृद्ध मनुजीने भी लिखा है:—

नभसि ह्यपरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद्रविः।
स महालय संज्ञः स्याद् गजच्छायाह्वयस्तथा॥
पार्वणेनैव विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते॥

"भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षमें जब कन्याका सूर्य्य हो, तब उस कालकी महालय या गजच्छाया संज्ञा होती है, इस लिये उस कालमें पार्वणकी विधिसे श्राद्ध करना चाहिये।" आदित्यपुराणमें भी आया है:—

कन्यागते सवितरि यान्यहानि तु षोड़श।
ऋतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम्॥

"कन्यागत सूर्य्यके सोलह दिनोंमें पितरोंके लिये जो श्राद्ध किया जाता है, वह अक्षय पुण्यका देने वाला यज्ञके समान होता है।"

सारांश—कनागत शब्दका अर्थ कर्णागत न होकर कन्यागत ही सब शास्त्रोंको अभिमत है। जिस पुरुषके माता पिताका जिस तिथिमें देहान्त हुआ है, उसी तिथिमें आश्विनका श्राद्ध करनेकी प्रचलित रूढ़ी भी अन्ध परंपरा गत नहीं, किन्तु शास्त्रीय है। कात्यायन ऋषि लिखते हैं:—

या तिथिर्यस्य मासस्य मृत्युहेतुः प्रवर्त्तते।
सा तिथि पितृपक्षेपि पूजनीया प्रयत्नतः॥

"जिस मासकी जिस तिथिमें मरण हुआ हो, पितृपक्षमें वही तिथि श्राद्धकी लेनी चाहिये।"

वेदोंमें श्राद्ध।

यद्यपि वेदोंमें मृतक श्राद्धके प्रतिपादक सहस्रावधि मन्त्र मिलते हैं, परन्तु इस छोटेसे निबन्धमें उनका लिखा जाना असम्भव ही नहीं, किन्तु व्यर्थ भी है। जिन लोगोंको विशेष मन्त्रोंके देखनेकी अभिलाषा हो वे मूल संहिताओंमें देख सकते हैं।

शतपथमें लिखा है:—

अथ पुरस्तादुल्मुकं निदधाति स यद् निधायोल्मुक-
मथैतत् पितृभ्यो दद्यात् असुरा रक्षसानि ह्येषा मेतद्विम-
थीरन् तस्मात्पुरस्तादुल्मुकं निदधाति ।

"पितरोंके पिण्डदान करनेकी वेदीके आगे उल्मुक जलती लकड़ीको रक्खे। जलती हुई लकड़ी न रखी जाय तो पितरोंके भागोंको असुर राक्षस गड़बड़ कर देते हैं, इसलिये जलती लकड़ी धरना यह वैदिक विधि है। इसको जीवितोंके श्राद्धमें घटाने वाला, बुद्धिमान ही नहीं किन्तु महाबुद्धिमान होगा। अथर्व वेदके १ चरा ३४ में लिखा है:—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

"हे अग्ने! जो पितर गाड़े गये, जो पड़े रह गये, जो अग्निमें जला दिये गये और जो उद्धित-फेंके गये, उन सबको हवि भक्षणके लिये बुला लाओ।" यजुर्वेदके १६।६७ में भी लिखा है:—

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्मयां ॥
उचनमविन्न त्वं वेत्थमति ते जात वेदः
स्वधाभिर्यज्ञ सुकृतं जुषस्व ॥

"जो पितर इस लोकमें हैं, जो पितर इस लोकमें नहीं हैं—यमलोकमें ही हैं, जिन पितरोंको हम जानते हैं और जिनको हम नहीं जानते, हे सर्वज्ञ अग्ने! उनको तुम जानते हो, सो आप पितरोंके अन्नसे शुभ यज्ञको सेवन करो।" यजुर्वेदके १६।७० में और भी लिखा है:—

उशन्तस्त्वा निधी मह्युशन्तः समिधी मही ।
उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

"हे अग्ने! कामार्थी हम तुम्हें स्थापन करते हैं, और प्रज्वलित करते हैं हवि चाहनेवाले पितरोंको हवि भक्षणके लिये बुला लाओ।" अथर्वमें और भी आया है:—

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
त्वं तान्वेत्थयति ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् ॥

"जो अग्निमें दग्ध हुए और अग्निमें दग्ध नहीं हुए—द्युलोकके मध्यमें अमृतरूप अन्नसे प्रसन्न हैं, हे अग्ने! तू उनको जानता है, वे तेरे द्वारा

अन्न सेवन करें।" अग्नि ही पिता और देवोंका दूत है यह यजुर्वेदके १९।६५ में स्पष्ट लिखा है:—

योऽग्निः कव्यवाहन पितृन्यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ।

"जिस कव्य वाहन नाम अग्निने सत्य या यज्ञकी वृद्धि करनेवाले पितरोंका यजन किया, वही अग्नि देवताओं और पितरोंके लिये हवियोंको सब ओर पहुँचाता है। यजुर्वेदके १९।५८ में पितरोंसे प्रार्थना भी की गयी है:—

आयन्तु नः पितरस्सोम्या सोऽग्निष्वात्ता पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोधि ब्रुवन्तु तवेन्त्वस्मान्॥

"सोमके योग्य अग्नि द्वारा स्वादित हुए हमारे पितर देवताओंके गमन योग्य मार्गोंसे आवें, इस यज्ञमें अन्नसे प्रसन्न होकर बोलें और हमारी रक्षा करें। जीवितोंमें कभी भी नहीं घटनेवाली एक बात अथर्व वेदके १८।४।८०।७८ में लिखी है:—

स्वधा पितृभ्यः पृथिवी षद्भ्यः स्वधा पितृभ्यो।
अन्तरिक्ष षद्भ्यः स्वधा पितृभ्यो दिवि षद्भ्यः॥

"जो पितर पृथिवीमें हैं उनके लिये, अन्तरिक्षमें हैं उनके लिये और जो स्वर्गमें हैं उनके लिये स्वधा कव्य देता हूँ।" अथर्वके १९।३ में और भी लिखा है:-

पुनन्तु मा पितरः सोम्या सः पुनन्तु मा पितामहा पुनन्तु
प्रपितामहा पवित्रेण शतायुषा पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपिता.
महाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्न वै।

"अर्थ स्पष्ट है।"—यह मन्त्र खींचा तानीसे भी जीवितोंमें नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि सौ वर्षकी आयु देना—यह जीवित पितरोंके अधिकारकी बात नहीं है। इसके अतिरिक्त द्वितीय शतपथ २।२।४।२१ में "तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः" पितर मनुष्योंसे विलक्षण हैं—कह कर और भी स्पष्ट कर दिया है।

अब मैं एक ऐसा मन्त्र भी यजुर्वेदका पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करता हूँ, कि जिसका तात्पर्य कोटि उपाय करनेपर भी जीवितोंमें नहीं जा सकता। यजुर्वेद २।३३ में:—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्
यथेह पुरुषो सत्।

"हे, पितरो! जैसे इस ऋतुमें देव मनुष्य पितरोंके अर्थका पूर्ण करनेवाला होवे, वैसी पुष्पमाला पहनने वाला गुणवान् पुत्ररूपसे गर्भको सम्पादन करो। इसका अन्यथा अर्थ नहीं हो सकता, कारण कि प्रथम तो जीवितोंसे पुत्रवधु इस प्रकारकी प्रार्थना करे—यही असम्भव है। दूसरे, गृह्यसूत्रमें स्पष्ट ही लिखा है।

आधत्त पितरो गर्भमिति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राशनीयात्।

"आधत्त पितरो गर्भम्—इस मन्त्रको बोलते समय मध्यम पिण्डको पत्नी खावे।" इसको तृतीय अध्यायमें मनुजी महाराजने और भी स्पष्ट किया है:—

पतिव्रता धर्म-पत्नी पितृपूजन-तत्परा।
मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशो मेधा समन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा॥

"पतिव्रता धर्मपत्नी जो पितृपूजनमें तत्पर हो और पुत्रकी वांछावाली हो, वह अच्छी प्रकार मध्यम पिण्डको खावे, आयुष्मान्, यशोवान्, बुद्धिमान्, धनवान्, प्रजावान्, सात्विक और धार्मिक पुत्रको पैदा करे।"

२—देवी नवरात्र महोत्सव।

मार्कण्डेय पुराणमें जो देवीका माहात्म्य, देवीसप्तशतीके द्वारा प्रकट किया गया है, उसमें लिखा है, कि शुंभ निशुंभ और महिषासुरादि तामसिक वृत्तिवाले असुरोंके जन्म होनेसे देवता दुखी हो गये और सबने मिल कर चित्-शक्ति—महामायाकी स्तुति की। देवीने वरदान दिया,—"डरो मत, मैं अचिर-कालमें प्रकट होकर इन अतुल पराक्रमी असुरोंका संहार करूंगी और तुम्हारे दुःखको दूर करूगी। मेरी प्रसन्नताके लिये तुम लोगोंको आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे घटस्थापनपूर्वक दशमी तक नव दिन पूजा करनी चाहिये।" बस इसी आधारपर यह देवी नवरात्रका महोत्सव अनादिकालसे आज तक चला आता है।

शास्त्रीय स्वरूप ।

व्रतविधि—

इस नवरात्र व्रतकी प्रथम तिथिको गोविन्दार्णव और मार्कण्डेय पुराण एवं देवीपुराणमें परविद्धा ग्रहण किया है। यथाः—

"पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत्प्रतिपदाश्विनी।
नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता॥"

प्रतिपदाको जो घट स्थापन होता है, उसकी विधि इस प्रकार है। प्रातःकाल तैलाभ्यंग स्नानादि कर "देशकालौ संकीर्त्य ममेह जन्मनि दुर्गा प्रीति द्वारा सर्वापच्छांतिपूर्वक दीर्घायुर्विपुल धन पुत्रपौत्राद्यविच्छिन्न संतति-वृद्धि स्थिर लक्ष्मी कीर्त्तिलाभ शत्रुपराजय सदभीष्ट सिद्ध्यर्थं शारद नवरात्रे—प्रतिपदि विहितं कलशस्थापनं दुर्गापूजां कुमारि पूजनादि कर्म करिष्ये" इस प्रकार संकल्प करे तथा गणपति-पूजन, पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, मातृका-पूजन और ऋत्विक् वरण करनेकी प्रतिज्ञा करे। तत्पश्चात् "महीद्यौः" से पृथिवीको स्पर्श कर, "ओषधयः संवदन्ते" से यवोंको डालकर, "आकलशेषु" से कलश-स्थापन कर, "इमम्मे गंगे" से जल भर कर, "गन्ध द्वाराम्" से गन्ध लगा कर, "ओषधयः" से सर्वौषधि लेकर, "काण्डात्काण्डात्" से दूर्वा लेकर, "अश्वत्थेव" से पञ्च पल्लव लेकर, "स्योना पृथिवी" से सात प्रकारकी मिट्टी लेकर, "याः फलिनीः" से फल ग्रहण कर, "सहिरत्नानि" से पंचरत्न लेकर, "हिरण्य रूपं" से सोना डालकर, "युवा सुवासा" से वस्त्र या सूत्रको लपेट कर "पूर्णा-देवी" से कलशपर पूर्णपात्रको रखकर तथा वहां वरुणकी पूजा कर, प्राचीन अथवा अर्वाचीन प्रतिमामें आवाहनपूर्वक दुर्गाकी पूजा करे।

अथ पूजा—"आगच्छ वरदे" से आवाहन करे। तदनन्तर आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पञ्चामृतस्नान, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, पुष्प और परिमल द्रव्यादिसे पूजन कर, अंग पूजन भी करना चाहिये। तत्पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, फल, दक्षिणा, आरति और मंत्रपुष्पाञ्जली करके प्रदक्षिणा करे और ऋत्विक् वरण करके कुमारी-पूजन करे। अथ कुमारी पूजा—"एक वर्षसे न्यून अथवा एक वर्षकी कन्याका पूजन न करना चाहिये। दो वर्षसे लगाकर दश वर्ष तककी कन्याका पूजन यथाविधि करना चाहिये।" प्रातःकाल अभ्यंगस्नान करके कन्याको आवाहन कर इस मंत्रको बोले—

"जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते॥

प्रतिपदासे लगाकर दशमी पर्यन्त कन्योका पूजन करना चाहिये। देवी नवरात्रके करनेका अधिकार सम्पूर्ण मनुष्योंको है। विधिमात्र भिन्न भिन्न हैं। ब्राह्मणादि सात्त्विक लोगोंकी पूजा मांस रहित और क्षत्रिय शूद्रादि तामस राजस लोगोंकी मांस युक्त होती है। प्रतिपदाको घटस्थापन करने बाद दशमी पर्यन्त नित्य सप्तशतीका जप, देवीभागवत श्रवण, अखण्ड-दीप, पुष्पमाला समर्पण और उपोषण या एक भुक्त करना योग्य है। घटके पास नव धानोंको बोना चाहिये और अन्तमें उनके पेड़ोंको प्रसादी लेकर मस्तकपर चढ़ाना चाहिये। पञ्चमीके दिन उपांग ललिता व्रत करे, मूल नक्षत्रमें सरस्वतीका आवाहन कर पूर्वाषाढ़ामें पूजन करे, उत्तराषाढ़में बलिदान और श्रवणमें विसर्जन करे। अष्टमी और नवमीको महातिथि कहते हैं।

लौकिक—स्वरूप।

सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्ति ये पाँचों देवता पृथक् पृथक् होनेपर भी एक ब्रह्मके ही रूपान्तर हैं—यह निखिल वेद शास्त्रोंकी सम्मति है। देवीकी उपासना कहीं विशेष कहीं थोड़ी—अखिल भारतवर्षमें पायी जाती है। प्रत्येक हिन्दूके घरमें कुलदेवीके नामसे भगवतीके किसी न किसी नाम तथा रूपकी पूजा अवश्य की जाती है। जो लोग सौर, शैव, गाणपत्य और वैष्णव हैं—वे भी मुख्यरूपसे अपने अपने इष्टदेवोंको मानकर गौणरूपसे देवीकी उपासना अवश्य करते हैं। शाक्त लोगोंका तो परमध्येय देवी ही है। यद्यपि शाक्त लोग भी गौणरूपसे अन्य देवोंका पूजन करते हैं, परन्तु मुख्यरूपसे भगवतीका ही आराधन करते हैं। इनके पन्थका नाम शाक्त पन्थ है। शाक्त पन्थमें दो विभाग हैं—"(१) दक्षिण मार्ग और (२) वाम मार्ग।" दक्षिण मार्गमें देवीकी उसी सात्त्विक पूजाका प्रचार है, जिसका वर्णन वेद और शास्त्रोंमें पाया जाता है। वाम मार्गको तंत्र, आगम, मंत्र शास्त्र, पूर्व कौल, और वाम-मार्ग कहते हैं। इन मार्गोंके विधायक तंत्र ग्रन्थ हैं, जिनको शिवजीने पार्वतीसे कहा है। तंत्रोंमें पूजा, न्यास, मुद्रा और बीजादिके मंत्र लिखकर अनेक विधि लिखी हैं और इनके देवताओंको दश महाविद्या कहते हैं। जिनके नाम ये हैं—"(१) श्यामा (काली), (२) तारा, (३) त्रिपुरा, (४) बगला-मुखी, (५) छिन्नमस्तका, (६) मातंगी, (७) धूमावती, (८) भैरवी,

(९) महाविद्या, और (१०) भुवनेश्वरी। इसके सिवाय अवतारोंके कारण त्रिपुरसुन्दरी, ललिता, शान्ता, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, चंडी और चामुण्डा आदि नाम भी देवीके ही हैं। तान्त्रिक मतको अनुसरण करनेवाला "देवी माहात्म्य" ग्रन्थ भी है, जिसका पठन नवरात्रोंमें किया जाता है।

बङ्ग देशमें दुर्गाका पूजनोत्सव नवरात्रमें बड़े प्रचण्ड प्रमाणपर होता है। प्रतिपदासे लगाकर पौर्णिमा पर्यन्त यह उत्सव रहता है। उस समय आबाल वृद्ध सब मनुष्य तन, मन और धनसे इस महोत्सवमें लगे हुए देखे जाते हैं। प्रथम तो दुर्गाकी पूजा करना—यह बहुधा बङ्गालियोंका कुलाचार ही है, परन्तु इस अवसरपर तो सभी लोग नवरात्रके महोत्सवको मनाते हैं। देव मन्दिरोंमें तथा घरोंमें देवीकी प्रतिमा तथा घट स्थापित कर उसकी बड़े ठाठसे पूजा करते हैं और घर घरमें नृत्य, गीत और पूजा होती रहती है। बंगालकी राजधानी कलकत्तामें ये दिन स्वर्गीय होते हैं। वहाँकी उस शोभाको देखनेके लिये सहस्रावधि बंगाली तथा इतर लोग गली कूचोंमें फिरते रहते हैं। देवीके देवालयका वातावरण वाद्य, नृत्य, गीत, आन्दोलन, ललित खेल और दीपोत्सव आदिके कारण उल्लाससे भर जाता है; जिससे बङ्ग देशका यह उत्सव अवर्णनीय बन जाता है। अन्तके तीन दिनोंमें रात्रिको जब महापूजाका समारंभ होता है, तब दीपोंके प्रकाशसे रात्रिका भान नहीं रहता। "दुर्गामाताकी जय हो"—इस प्रकारके शब्दसे आकाश गूँज उठता है और ढोल तथा नगारोंका ऐसा शब्द होता है, जिसको सुनकर कोई अपरिचित मनुष्य "समग्र नगरमें रण कल्लोल हो रहा है" ऐसा कह सकता है। उस समय एक अपूर्व आनन्द तो यह होता है, कि अमुक बड़ा और अमुक छोटा—यह भावना सर्वथा विलय हो जाती है। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, राव-रंक और ब्राह्मण-चमार हम सब एक ही माताके पुत्र हैं, ऐसा मानकर भगवतीके आगे सिर नमाते हैं। दुर्गापूजाके बाद—अमावास्याके दिन कालीपूजा—श्यामा पूजनोत्सव होता है।

शंका समाधान।

देवी नवरात्रके शास्त्रीय स्वरूपमें तो किसी प्रकारकी शंकाका अवकाश ही नहीं है; किन्तु लौकिक स्वरूपमें देवी मंदिरोंकी प्रचलित हिंसाको देखकर लोगोंके चित्तमें शंका ही नहीं—खेद भी होता है, क्योंकि जो समस्त संसारके जीवोंकी जननी हो—उसके निमित्त हत्याकाण्ड किया जाय और उस हत्याकाण्डको इतिहास तन्त्रादि ग्रन्थोंमें धर्म माना जाय—यह बड़े खेदकी बात है?

परन्तु पाठकवर्ग! इस हत्याकाण्डसे दुःखित होकर धर्मग्रन्थोंमें या तंत्रोंमें घृणा उत्पन्न करना—यह मनुष्यका कर्तव्य नहीं है, किन्तु उनको समझनेका प्रयत्न करना ही मनुष्यत्व है। देवकार्योंमें हिंसाका प्रयोग अन्य शास्त्रोंमें भी आया है और तंत्रग्रन्थोंमें भी आया है। विचारना इस बातका है,—"तन्त्र ग्रन्थोंमें अथवा अन्य प्रामाणिक शास्त्रोंमें जहाँ हिंसाका घोर विरोध किया गया है, वहाँ हिंसाकी आज्ञा क्यों दी गयी है?" वेदोंमें भी दो प्रकारके वाक्य मिलते हैं,—" (१) मा हिंस्यात्सर्व-भूतानि—किसी भी प्राणीकी हिंसा मत करो तथा (२) चातुर्थिकपशुमालभेत—चातुर्थिक विधिमें पशुको मारना चाहिये।" यद्यपि ये दोनों वाक्य आपसमें विरोधी हैं, परन्तु इनकी संगति पूर्वमीमांसामें लगायी है। शावर भाष्यकारने "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" मीमांसाके इस प्रथम सूत्रपर ही विचार किया है, वह इस प्रकार है। पूर्वपक्षवाला कहता है,—वेदमें जो लिखा है वह धर्म है—यह न कह कर "चोदना-लक्षणोऽर्थो धर्मः" अर्थात् विधिवाक्य ही धर्म है—यह क्यों कहा गया? इसका समाधान करते हुए मीमांसाशास्त्रमें यह लिखा गया है, कि वेदोंमें तीन प्रकारके शब्द हैं,—" (१) विध्यात्मक, (२) नियमात्मक और (३) परिसंख्यात्मक।" इन तीनों लक्षणोंको स्पष्ट करनेके लिये लिखा है:—

विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति।
अत्र चान्यत्र सम्प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते॥"

विधि—

"अत्यन्तमप्राप्तौ विधिः" वेदकी इस प्रकारकी बात, जो प्रत्यक्ष अनुमान और उपमानादि प्रमाणों द्वारा न जानी जा सके, किन्तु वेद ही उसमें प्रमाण हो, ऐसी अलौकिक भाववाली बातको जो शब्द बतलावे, वह शब्द विधिवाक्य कहा जाता है। जैसे—"स्वर्गकामो यजेत" स्वर्गलोकमें जानेकी कामनावाला यजमान यज्ञको करे। किसीने किसी भी यजमानको प्रत्यक्ष स्वर्गमें जाते हुए नहीं देखा है, इस कारण यह शब्द प्रत्यक्षका विषय नहीं। रहे—अनुमान और उपमान, ये दोनों प्रत्यक्षके आश्रित हैं। जहां प्रत्यक्षकी ही पहुँच न हो, वहां इन दोनोंकी क्या गणना है? इसी कारण इस प्रकारके वेदवाक्योंको विधिवाक्य, प्रेरणावाक्य या चोदनावाक्य कहते हैं।

नियम—

"पाक्षिके सति-नियमः" जिस वाक्यमें दो पक्ष हों, अर्थात् जो किया यों

भी हो सकती हो और यों भी हो सकती हो तथा उन दोनों प्रकारोंमेंसे एक प्रकारका जिस वाक्यमें ग्रहण किया हो, उस वाक्यको नियम-वाक्य कहते हैं। जैसे—"तण्डुलान् वहन्ति" यज्ञमें जो चावल ग्रहण किये जाते हैं, उनको धानसे निकाला जाता है परन्तु धानसे निकालनेकी दो विधि है,—"(१) नखोंसे, या (२) ऊखली मूसलसे कूट करके।" इन दो विधियोंमेंसे वेद ऊखली मूसलके कूटनेको ही बतलाता है; अतः— यह वाक्य "विधिवाक्य" न होकर नियमवाक्य ही है।

परिसंख्या—

"अत्र (लोके) अन्यत्र च (वेदे) सम्प्राप्तौ परिसंख्या" जिस अभिप्रायकी सिद्धि लोकमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे भी हो, और वेदादि शास्त्रोंसे भी हो, उसको परिसंख्या वाक्य कहते हैं। जैसे—"पंच पंचनखा भक्ष्याः" पाँच नखवाले पशुओंमेंसे पाँच ही खानेके योग्य हैं। माँसभक्षणको केवल शास्त्रोंने ही नहीं बतलाया है, किन्तु इसकी प्रवृत्ति तो स्वाभाविक भी है। अर्थात् विना शास्त्राज्ञाके भी लोग मांस खाते ही हैं। इससे इस लोकव्यवहृत वाक्यको विधिवाक्य न कहकर परिसंख्या कहा जाता है। इसी परिसंख्याका अभिप्राय समझाते हुए लिखा है,—

अवशिष्टभागे निषेधार्थं परिसंख्या।

"बचे हुए भागमें निषेध करनेके निमित्त परिसंख्या वाक्यकी प्रवृत्ति होती है।" जैसे—पांच नखवाले २० पशु हैं, उनमेंसे केवल पांचको ही खानेकी आज्ञा दी गयी है, तो इस आज्ञाका तात्पर्य पांच भक्ष्य पशुओंमें न हो कर बाक़ी बचे १५ पशुओंके निषेधमें है। एक बालक दिन-रातमें ८ घंटे सोकर १६ घंटे खेलता है और पढ़ता एक घंटे भी नहीं, तब उसका पिता कहता है,—"पुत्र आठ घंटे पढ़ना चाहिये और आठ घंटे खेलना चाहिये।" यद्यपि इस वाक्यमें आठ घंटे खेलनेकी आज्ञा विदित होती है, परन्तु सूक्ष्मविचारसे जाना जाता है, कि पिताके वाक्यका तात्पर्य आठ घंटेके खेलनेमें नहीं, किन्तु बचे हुए आठ घंटे—खेलके निषेधमें है। इसी प्रकार उपर्युक्त परिसंख्या वाक्यका यही अभिप्राय जानना चाहिये।

नियमवाक्य और परिसंख्या वाक्यको छोड़ कर वेदके विधिवाक्यों द्वारा कहा हुआ उपदेश ही जैमिनीके मतमें धर्म कहा जाता है। इसी कारण "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" यह सूत्र देकर धर्मके लक्षणोंका स्पष्टीकरण किया

है। मीमांसाके इस निर्णयसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि वेद, पुराण और धर्मशास्त्रादि किसी भी ग्रन्थमें जहां जहां मांसभक्षण या हिंसाका प्रकरण मिले, वहां वहां उन वाक्योंको विधिवाक्य न मानकर परिसंख्यावाक्य मानना चाहिये—उनका तात्पर्य निषेधमें ही समझना चाहिये। यदि इसके विपरीत विचारा जायगा तो अर्थ न होकर अनर्थ ही होगा। वेद, शास्त्र और पुराणादि-में तो परिसंख्यावाले वाक्य न्यूनतासे आये हैं, परन्तु तन्त्रग्रन्थोंमें तो इनका पूर्णतया वर्णन किया गया है। तन्त्रग्रन्थोंको एक प्रकारसे धर्मग्रन्थ भी कह सकते हैं, कारण कि जो मनुष्य जिस कक्षामें हो उसको उस कक्षासे ऊपरकी कक्षामें ले जानेवाली क्रिया ही धर्म कहलाती है। जैसे—एक लड़का एन्ट्रेन्स-की कक्षामें है, उसको बी. ए. की तरफ ले जानेवाली क्रिया धर्म और मिडिल-की तरफ ले जाने वाली क्रिया अधर्म कहलायगी। इसी प्रकार एक पुरुष अहर्निश मांसभक्षण करके अगणित जीवोंका वध करता है और अनियमित मद्य-पान करके अनेक स्त्रियोंसे संभोग करता है—इस प्रकारके मनुष्यको तमोगुणी नहीं, किन्तु मलिन तमोगुणी कह सकते हैं। यह मलिन तमोगुणी पुरुष जिस क्रियासे शुद्ध-तमोगुणी बन जाय, उस क्रियाको इसके लिये धर्म कहा जायगा।

तन्त्रग्रन्थोंने इसी महत्‌कार्यको किया है। जो लोग अनियमित रीतिसे मांसादि भक्षण करके अनेक प्राणियोंका संहार करते हैं, उनको उपदेश दिया है, कि तुम लोग अपने लिये किसी पशुको न मार कर किसी देवी आदि अपने इष्टके लिये मारा करो। और नित्य न मार कर अष्टमी आदि देवीकी तिथियोंमें ही मारा करो—यह तुम्हारे लिये धर्म है। पाठकोंकी समझमें आया होगा, कि अनियमित हिंसा करनेवाले लोगोंको नियममें लाकर तन्त्रग्रन्थोंने जगत्‌का कितना उपकार किया है। अतः यह निःसन्देह कहा जा सकता है, कि अनियमित मांसादिके भक्षण करनेवाले लोगोंके लिये तन्त्रग्रन्थ अवश्य ही धर्म ग्रन्थ है। परन्तु जो लोग प्रथमसे ही नियमितरीतिसे मद्य-मांसका सेवन करते हैं, उनका यह धर्म न होगा, उनका तो बिल्कुल छोड़ना ही धर्म कह-लायगा, क्योंकि उनको सत्त्वगुणकी ओर जाना है। इसी प्रकार जो लोग प्रथमसे ही सात्त्विक प्रकृतिवाले हैं, उनके लिये यह शुद्ध-तमोगुण धर्म नहीं किन्तु अधर्म कहलायगा। यही कारण है, कि सात्त्विकप्रकृतिके लोग देवीकी पूजा वाममार्गसे न करके दक्षिणमार्गसे ही करते हैं।

३—विजया दशमी-दशहरा ।

शास्त्रीय स्वरूप ।

विजयादशमीका समस्त वृत्तान्त भविष्योत्तर पुराणमें मिलता है। इस तिथिको तारकोदयव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये, यह शास्त्रोंकी सम्मति है। चिन्तामणि ग्रन्थमें इस प्रकार कहा है:—

आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये।
स कालो विजयो नाम सर्वकामार्थसाधकः॥

"आश्विन मासकी शुक्ला दशमीके दिन नक्षत्रोंके उदय होनेपर विजय नामक काल होता है और वह सब कामनाओंका देने वाला है।" शत्रुको विजय करनेकी इच्छा करनेवाले राजाको इसी समय प्रस्थान करना चाहिये। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्रका योग हो, तो और भी अच्छा है। कारण, कि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने पंपापुरके जंगलकी समस्त वानरीय-सेनाको साथ लेकर आश्विन सुदी १० की श्रवण नक्षत्रवाली रात्रिमें ही प्रस्थान कर लंकापुरीपर चढ़ाई की थी। जिसका परिणाम यह हुआ, कि राक्षसराज रावणका नाश होकर भगवान् रामचन्द्रजीकी विजय हुई। इसी लिये यह दिवस पवित्र माना गया है तथा क्षत्रिय वीरोंने सीमोल्लंघनके कार्यमें इसी दिनको शुभ माना है। हेमाद्रिमें यही लिखा है:—

श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः।
उल्लंघयेयुः सीमान्तं तद्दिनर्क्षे ततो नरः॥

यदि शत्रुसे युद्ध करनेका प्रसंग न भी हो, तो भी इस दिन सीमोल्लंघन करना राजाका अवश्य कर्तव्य है। सम्पूर्ण दल-बल सहित सीमोल्लंघनको जाना चाहिये और सीमाके बाहर जाकर किसी शमीके वृक्षका पूजन करना चाहिये। शमीपूजनकी विधि इस प्रकार लिखी है। शमीके वृक्षके सामने खड़ा होकर ध्यान करे और यह मन्त्र बोले:—

शमी शमयते पापं शमी शत्रु-विनाशिनी।
अर्जुनस्य धनुर्धारी रामस्य प्रियवादिनी॥

"हे शमि! तू पापोंका नाश करनेवाला है और शत्रुको नष्ट करनेवाला है। तूने अर्जुनके धनुषको धारण किया और रामचन्द्रजीसे प्रिय वाणी कही।"

इन दोनों घटनाओंको रामायण और महाभारतके पढ़नेवाले अच्छी प्रकार जानते होंगे। दुष्ट दुर्योधनसे निर्वासित वीर पाण्डव वनमें अनेक कष्ट सहकर जब राजा विराटके नगरीमें वेष बदलकर गये, तब अपने शस्त्रोंको एक शमीके वृक्षके ऊपर रख गये थे—उस विपत्ति-कालको राजा विराटके यहां ही बिताया था। जिस समय गऊओंकी रक्षा करनेके लिये विराटके उत्तर कुमारने अर्जुनको अपने साथ लिया और अर्जुनने उसी शमी-वृक्षपरसे अपने धनुषको उठाया, उस समय देवताकी तरह इस शमी-वृक्षने पाण्डवोंके अस्त्रोंकी रक्षा की थी और इसी प्रकार रामचन्द्रजीके प्रस्थानके समय भी "आपकी विजय होगी"—यह शब्द शमी-वृक्षने ही कहा था। इसी लिये उपर्युक्त ध्यानके श्लोकमें इन दोनों घटनाओंका वर्णन किया गया है। अस्तु, इसी मन्त्रसे शमीका पूजन कर तथा उस वृक्षके मूलमेंसे गीली मृत्तिकाको लेकर, पीछे उसी ठाठ-बाटसे घरको आना चाहिये और नवीन वस्त्र भूषणोंको धारण करना चाहिये—यह विधि हेमाद्रिकारने लिखी है।

भविष्योत्तरमें इस विजयादशमीके उत्सवको और प्रकारसे लिखा है। भगवान् कृष्णचन्द्रने राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार समझाया है:—

अलंकृतो भूषितभृत्यवर्गः परिष्कृतोत्तुङ्गतुरंग-नागः।
वादित्रनाद-प्रतिनादिताशः सुमंगलाचारपरंपराशीः॥

"हे राजन्! राजा स्वयं अलंकृत होकर अपने दास लोगोंका श्रृंगार करे और हाथी घोड़ोंका श्रृंगार करे तथा गायन-वादनके द्वारा मंगलाचार करे। अपने पुरोहितको साथ लेकर पूर्व दिशामें प्रस्थान करके सीमाके बाहर जाय और वहाँ जाकर वास्तु-पूजा करके अष्ट दिक्पाल एवं पथिदेवताकी वैदिक मंत्रोंसे पूजा करे। तदनन्तर प्रधानतया शमीकी पूजा करनी चाहिये। शत्रुकी प्रतिकृति 'पुतला' बनाकर उसके हृदयमें बाण लगावे और पुरोहित लोग वेद-मंत्रोंका घोष करें। पूज्य ब्राह्मणोंका पूजन करे तथा फौज, हाथी, घोड़ा, अस्त्र और शस्त्रादिकोंका निरीक्षण करे। यह सब क्रिया सीमान्तमें करके बाजे गाजेके साथ अपने मकानको लौट आना चाहिये। जो राजा प्रतिवर्ष इस विधिका पालन करता है, वह सदैव अपने शत्रुपर विजय प्राप्त करता है।"

लौकिक स्वरूप।

दशहरेका सम्बन्ध भगवान् रामचन्द्रजीके साथ है और भगवान् रामचन्द्रको मर्यादापुरुषोत्तमावतार-संसारका आदर्श होनेके कारण अखिल भारत

मानता है। इस लिये दशहरेका त्योहार भी विभिन्न प्रकारोंसे अखिल भारतमें ही मनाया जाता है। प्रजाकीय लोग तो मानते ही हैं, परन्तु राजालोग भी बड़े ठाठ-बाटसे मनाते हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि इस त्योहारके अवसरपर पशु-हिंसा बहुत होती थी, परन्तु बड़े हर्षकी बात है, कि यह प्रथा अब भारतसे दिनों दिन कूच कर रही है। "दशहरा" इस प्रचलित शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए कुछ लोग तो यह कहते हैं,—"दशहरा यह दशरा शब्दसे बना है और दशरा भी दश शब्दसे बना है; क्योंकि देवी-नवरात्र हो जानेपर दशवें दिन ही सीमोल्लंघन होता है।" शेष लोगोंका कथन है,—"रावणके दश शिर हरण करनेके लिये जिस दिन रामचन्द्रजीने चढ़ाई की, उस दिनका नाम दशहरा पड़ा।"

महाराष्ट्र देशमें दशमीको जो उत्सव होता है, उसको शिलंगण त्योहार कहते हैं। उसमें कालीय नागपर नृत्य करनेवाले भगवान् कृष्णका पूजन भी किया जाता है। शिलंगण शब्दको लेकर महाराष्ट्रीय विद्वानोंमें कितने ही दिन तक चर्चा रही, परन्तु अब यह स्पष्ट हो गया, कि संस्कृतके "सीमोल्लंघन" से भ्रष्ट होकर ही शिलंगण शब्द बन गया है। महाराष्ट्र देशके अनेक स्थानोंमें भैंसे और बकरेकी बलि भी इस दिन दी जाती है। बलि पशुको मारकर उसके मृत शरीरको सीमापर जाकर गाड़ देते हैं, जिसका अभिप्राय यह है, कि एक वर्ष तक इस ग्राममें महामारी-दुर्भिक्षादि उपद्रव न होंगे। मुख्य मुख्य ग्रामोंमें मन्दिरके पुजारी लोग शमीकी पूजा भी करते हैं और शमीके, तिल्लीके, बाजरीके तथा मन्दार के पत्ते तोड़कर उनको गणेशकी मूर्त्तिपर चढ़ाते हैं और गांवकी सीमापर ले जाकर गांवके लोग उनको लूटते हैं। पालकीमें देवकी मूर्त्ति स्थापित कर बाजे गाजेके साथ सीमोल्लंघन करते हैं। मराठे और राजपूत लोग इस दिन शस्त्रास्त्रोंकी भी पूजा करते हैं और इसी दिन घोड़ोंकी भी पूजा होती है। कुछ कुछ राजा लोग दशहरेके दिन बड़े समारोहसे दर्बार करते हैं। मैसूर और बड़ोदाका उत्सव प्रेक्षणीय होता है।

राजपूतानेमें भी यह त्योहार बड़े ठाठ-बाटसे होता है। कारण यह है, कि इस त्योहारका सम्बन्ध शूर वीर पुरुषोंसे है और राजपूतानेके राजा लोग प्रथमसे ही वीराग्रणी रहे हैं। इसलिये अब भी वीरतामें चाहे न्यूनता हो, परन्तु दशहरा मनानेमें किसी प्रकारकी कमी नहीं है। दशहरेके दिन सबसे

प्रथम तो सीमोल्लंघनकी विधि होती है। फिर खेजड़ी (शमी) का पूजन होता है और उसके बाद मैदानमें एक हृष्ट-पुष्ट भैंसा जो इसी कामके लिये प्रथमसे खूब पुष्ट कराया जाता है—छोड़ा जाता है। उस भैंसेमें एक तीर तो राजा साहब मारते हैं, फिर उनके सरदार लोग घोड़ोंपर सवार होकर नंगी तलवारोंसे भगाते हुए उस भैंसेको मारते हैं। कहीं कहीं तो विशेष भगानेके निमित्त उसके घावोंपर नमक मिर्च छिड़कनेकी भी रीति थी और प्रथमसे उसको मद्यपान भी करा दिया जाता है। इस प्रकारकी घृणित विधिसे उसका वध किया जाता है। बड़े आनन्दकी बात है, कि अब कितने ही सदय महाराजोंने इस घृणित प्रथाको बन्द कर दिया है। यहां तक कि देवी-देवताओं-को बलिप्रदान करनेमें अगणित भैंसे बकरे बलि दिये जाते थे, वे भी किसी किसी महाराजने बन्द कर दिये हैं। आजके दिन राजा महाराजा और धनी लोग नीलकंठ पक्षीके भी दर्शन किया करते हैं। सायंकालके समय ठाठवाटसे जलूसके साथ राजा लोग रावणको मारनेके लिये नगरसे बाहर बनावटी लङ्कामें जाते हैं और उस बनावटी लङ्कामें पत्थर लकड़ी और कण्डोंकी बनी हुई बहुत बड़ी बड़ी परन्तु सुन्दर सुन्दर रावण, कुंभकर्ण, मन्दोदरी, विभीषण और सीताकी मूर्तियाँ भी होती हैं। रावणकी मूर्तिके पेटमें लाल रंगसे भरा हुआ एक घड़ा रहता है और महाराज जाते ही जब रावणका वध करते हैं, तो उसी घटमें एक तीर मारकर पीछे लौटते हैं। पश्चात् हाथियोंके द्वारा वे राक्षसोंकी मूर्तियाँ नष्टभ्रष्ट करवा दी जाती हैं। रावणका वध होते ही तोपोंका फायर होता है, जिसके कारण आकाश गूँज उठता है। कोटा आदि राज-धानियोंमें तो ऐसे समयपर एक एक लाख मनुष्योंका संघट्ट होता है।

दशहराके द्वितीय दिवस अथवा तृतीय दिवस मोहल्लाकी सवारी होती है, वह बड़े ही ठाटबाटकी सवारी है। ग्रामके बाहर किसी निर्दिष्ट स्थानपर राजा अपने समस्त हाथी, घोड़ा, खच्चर, ऊँट, बैल, मोटर, बग्गी, तांगा, सेज गाड़ी, सिकरम, इन्द्रविमान, तोप, बन्दूक, तलवार, तमंचा आदि समस्त अस्त्र-शस्त्र, पायदल, पल्टन, घुड़सवारादिको देखता है। इस अवसरपर शूर-वीरोंके साहित्यकी एक बहुत अच्छी प्रदर्शिनी हो जाती है।

पंजाबके प्रायः बड़े बड़े नगरोंमें और प्रधानतया पंजाबकी राजधानी लाहौरमें रामलीलाका बड़ा भारी उत्सव होता है। रावण तथा इतर राक्षसों-की ताड़वृक्षोंसे भी ऊँची मूर्तियाँ बनाई जाती हैं; परन्तु सबसे बड़ी आकृति

रावण और कुम्भकर्णकी ही होती है। नगरके बाहर एक विस्तृत मैदानमें लंका बनाई जाती है,। वहाँ रावण, कुम्भकर्ण तथा अन्य राक्षसोंकी अनेक मूर्तियाँ होती हैं, क्योंकि प्रत्येक मोहल्लेके पृथक पृथक रावणादिक राक्षस आते हैं। इन पुतलोंको मजबूत बांसकी लकड़ियोंसे तयार कराया जाता है और ऊपरसे सुन्दर कागदोंसे मढ़ा जाता है। भगवान् राम और लक्ष्मणकी मूर्तियाँ नहीं बनायी जातीं, किन्तु अत्यन्त सुन्दर दो बालकोंको वस्त्र तथा आभूषणोंसे सजाकर और हाथमें धनुष बाण देकर राम तथा लक्ष्मण बनाये जाते हैं। लोग उन्हींके दर्शन साक्षात् रामकी तरह करके अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। इससे यह भी पता चलता है, कि आस्तिक हिन्दू समाजमें इस नई रोशनीके समयमें भी कितनी प्रबल ईश्वर भक्ति है। जिस समय राम और लक्ष्मणकी सवारी लंकामें आती है, तो उल्लासपूर्वक सच्ची भक्तिसे उपस्थित साठ सत्तर हजार मनुष्योंके मुखसे "भगवान रामचन्द्रकी जय" का शब्द आकाशमें उतना ही गूँज उठता है, जितना कि राजपूतानेमें तोपोंके फायरों का। अन्तर इतना ही है, कि तोपोंका शब्द कर्कश होता है और यह भक्तिरससे भावान्वित-मृदु होता है। बनावटी लंका नगरी भी बहुत विचित्र बनायी जाती है। इसी समय देवीके भक्त लोग भी देवीकी सवारी निकाल कर इसी स्थानपर आ जाते हैं। थोड़ी रात्रि गयी कि, दोनों पक्षकी बाणावली छुटने लग जाती है, और अन्दाज एक घन्टेमें समस्त लङ्का जलकर भस्मसात् हो जाती है। राक्षसोंके पुतलोंमें जब आग लगती है और भीतर रखे हुए स्फोटक पदार्थोंका जो शब्द होता है, वह बड़ा आनन्दप्रद तथा कर्णप्रिय विदित होता है।

लंकादाहके पश्चात् दो दिनों तक भरत-मिलापका महोत्सव भी बड़े आनन्दसे मनाया जाता है। भारतके अन्य भागोंमें भी रामलीलाका समारोह होता है, परन्तु वह रामलीला बनारसकी जगद्विख्यात् रामलीलाके नमूनेपर होती है। दशहरेके दूसरे दिवस लोग अपने इष्टमित्रोंसे मिलनेको भी जाते हैं और आज कल तो इस अवसरपर कहीं कहीं सभा सोसाइटी होकर सार्वजनीन व्याख्यान भी किये जाते हैं। यह वास्तवमें ही देशकी भलाईका कारण है।

शिक्षा।

भोग्य पदार्थको अपने अपने अधिकारमें लेनेके लिये अनेक भोक्ताओंमें पारस्परिक द्वन्द्व युद्ध होता रहता है। यह प्राकृतिक नियम है। इस प्रकारके

युद्धकी प्रवृत्ति उसी दिनसे हो जाती है, जिस दिनसे भोग्य वस्तुका निर्माण होता है और यह युद्ध निवृत्त भी तभी होता है, जब उस वस्तुका नाश हो जाता है। अर्थात् भोग्यवस्तुके निमित्त जो युद्ध होता है, उसको अनादि अनन्तकाल वाला समझना चाहिये। भारतवर्ष यह जनपद भी भोग्य पदार्थ है, इसी कारण अनादिकालसे आजतक इसपर प्रकृतिके नियमानुकूल युद्ध होते रहे हैं और होते रहेंगे। "पृथिवीमें युद्ध बन्द हो जायगा"—यह कहने वाला या तो प्रकृतिके नियमको नहीं समझता और समझ कर कहता है, तो इसका यह अभिप्राय है, कि पृथिवी नष्ट हो जायगी। तात्पर्य यह है, कि जहां जगत् है, वहाँ युद्ध अवश्य है, जगत् नहीं रहेगा तो युद्धकी भी समाप्ति हो जायगी। संसारका सबसे पुराणकाल वैदिककाल ही है। उस अत्यन्त प्राचीन कालमें भी असुर और देवताओंमें भोग्या वसुन्धराके लिये वार-वार अनेक संग्राम एवं महा संग्राम होते थे। वैदिककालके बाद उपनिषद् कालमें भी सुर और असुरोंकी लड़ाईका पता चलता है। पौराणिककालमें तो बड़ेसे बड़े संग्रामों-की छोटीसे छोटी बातों तकका सविस्तर वृत्तान्त मिलता है। पौराणिककाल-के बाद अर्वाचीन तवारीखोंसे भी बार-बारकी लड़ाइयोंका इतिवृत्त जाना जाता है।

आर्यजाति प्राचीन ही नहीं, किन्तु प्राचीनतम है, इसी कारण इसको अपने जीवनमें अनेक संग्राम तथा महा संग्रामोंका खेल खेलना पड़ा है। यही कारण है, कि भारतभूमि जैसे "रत्नगर्भा वसुन्धरा" रही है, वैसेही सदैवसे वीरप्रसूता भी रही है। यदि वीरप्रसूता न होती, तो लाखों वर्षोंके पुराने इस वीर महोत्सवका आज नाम भी न होता। सारांश—अन्यदेशोंकी अपेक्षा भारतवर्ष युद्धकलामें सबसे अग्रणी रहा है। यह भारत हम लोगोंके आलस्य-वश इस समय हज़ार आठ सौ वर्षसे निःसंदेह वीरतासे रहित काठकी पुतली बन रहा है, परन्तु प्राचीनकाल—आजसे पाँच हजार वर्ष प्रथम चक्र-वर्ती होनेका सौभाग्य इसी भारतको था। उस समयके भारतमें वीरता इतनी बढ़ी हुई थी, कि क्षत्रियोंके अतिरिक्त जो ब्राह्मणजाति सदैव शान्ति-प्रिय थी, उसने भी वीरतामें पहला नम्बर लिया। इसके उदाहरण-स्वरूप महाभारतके महारथी कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा आदि हैं। अत्यन्त प्राचीन आर्यजाति यदि सबल न होती, तो उसको प्राचीनतम कहलानेका सौभाग्य प्राप्त न होता, क्योंकि प्रकृतिके राज्यमें सबलपदार्थ ही विशेष ठहर सकता

है, निर्बल पदार्थ अचिरकालमें ही अपने अस्तित्वको नष्ट कर देता है। जिस प्रकार अनेक निर्बल जातियाँ बुद्बुदकी भांति उठकर नष्ट हो गयी, उसी प्रकार और उन ही निर्बल जातियोंके साथ यह भी नामशेष हो गयीं होती, परन्तु आज भी चीन, जापान, तिब्बत और हिन्दुस्तान आदि देशोंमें विभक्त होकर हिन्दुजाति अन्य जातियोंकी अपेक्षा अपनी संख्याको आदर्श संख्या बतला रही है।

पाठकवर्ग! यदि हम दशहरा त्योहारको वास्तविकभावसे मानना चाहते हैं, तो हमारा कर्त्तव्य होगा, कि उस प्राचीन वीरताको फिर भी गले लगाँये। दुःखके साथ लिखना पड़ता है, कि अब उस प्राचीन वीरताका हम लोगोंमें नाम भी नहीं रह गया है। थोड़े दिन पहले वीर शिरोमणि महाराना प्रतापके प्रसंगमें हलदी घाटीकी लड़ाईमें भारतीय क्षत्रियोंके वीरत्वका जो पता लगता है, आज उसका शतांश पौरुष भी हममें नहीं रहा; अतः दशहरेके उत्सवमें हमको वह कार्य करना चाहिये, जिससे वीरता देवीका साम्राज्य भारतमें फिर स्थापित हो और हम लोग अपने देशके सबल भक्त बनें।

कार्तिक मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

हिन्दुधर्मानुसार यह कार्तिक मास भी बड़े महत्वका समझा जाता है। इस मासमें कार्तिक स्नान तो प्रसिद्ध ही है। कार्तिक-कृष्ण-प्रतिपदासे स्नानोंका प्रारम्भ होता है और मालाधारणव्रत भी किया जाता है। इसी समय आकाश दीपदान भी किया जाता है। कार्तिककी कृष्णा द्वादशीको गऊ और वत्सोंकी पूजा की जाती है, फिर धनत्रयोदशीसे लगाकर अमावस्या पर्य्यन्त दीपावली महोत्सव ही माना जाता है, परन्तु इन तीन दिनोंमें ३ उत्सव पृथक् पृथक् होते हैं,—"(१) त्रयोदशीको धनतेरस, (२) चतुर्दशीको रूपचौदश या नरकचतुर्दशी, और (३) अमावसको लक्ष्मीपूजन होता है।" कार्तिकीय अमावसको भीष्मव्रत भी किया जाता है। कार्तिक-शुक्ला-प्रतिपदाको

गोवर्द्धन-पूजन होता है, इसी दिन वलि-प्रतिपदाका भी व्रत किया जाता है और मार्गपालीबन्धन भी होता है। द्वितीयाके दिन तीन कार्य होते हैं,—(१) "यमद्वितीया,(२) भाईदोज और (३) दवातपूजा।" इनमेंसे यमद्वितीयाका तो बहुत प्रचार है, परन्तु भाईदोज तथा दवातपूजनका कचित् कचित् ही है। देशी राज्यों तथा सेठ साहूकारोंमें दवातपूजनका अधिक प्रचार है, बल्कि साहूकारोंमें तो नूतन-सम्वत्का आरम्भ ही कार्तिक-शुक्ला-प्रतिपदासे माना जाता है और द्वितीयाके ही दिन बही-खातोंका पूजन होता है। कहीं कहीं दीपमालिकाके ही दिन बही खातोंका भी पूजन होता है। कार्तिक-शुक्ला-नवमीको विष्णुत्रिरात्रव्रत किया जाता है और दशमीको भीष्मपंचकव्रत होता है। द्वादशीके दिन देवोत्थान किया जाता है और तुलसी विवाह तथा धात्रीपूजनादि व्रत भी शुक्लपक्षमें ही होते हैं। चतुर्दशीके दिन वैकुण्ठ-चतुर्दशी की जाती है। कार्तिक-शुक्ला-पौर्णिमाको कार्तिक-व्रतका उद्यापन और उसी दिन त्रिपुरोत्सव भी किया जाता है। कार्तिकमें महत्वके त्यौहार करवाचौथ, धनतेरस, नरकचतुर्दशी, दिवाली, अन्नकूट, गोवर्द्धनपूजा, यम-द्वितीया, तुलसीविवाह, देवोत्थापिनी, वैकुण्ठचतुर्दशी और त्रिपुरमहोत्सव आदि हैं। इन ही दश त्यौहारों तथा व्रतोंपर लिखा जायगा। शेष छोटे छोटे त्यौहार और व्रतोंका विवरण पाठक धर्मसिन्धु या निर्णयसिन्धुमें देख सकते हैं।

—:*:—

१—करवाचतुर्थी-व्रत।

शास्त्रीय स्वरूप।

करवाचौथके व्रतमें केवल स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसका समस्त वृत्तान्त वामनपुराणके आधारपर लिखा जाता है। प्रातःकाल स्त्री शौच-स्नानादि क्रियासे निवृत्त होकर और आचमन करके निम्नलिखित संकल्पको पढ़े:—

मासानामुत्तमे मासे कार्तिक मासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां अमुक वासरे अमुक सम्वत्सरे मम सौभाग्य-पुत्र-पौत्रादि सुस्थिर श्री-प्राप्तये करवाचतुर्थी-व्रतं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके चन्द्रमाकी मूर्ति लिखे और उसके नीचे शिव, षरामुख और गौरीकी प्रतिमा लिखकर षोड़शोपचारसे पूजन करे। पूजनका मन्त्र यह है:—

"नमः शिवायै शर्वाएयै सौभाग्यं सन्ततिं शुभाम्।
प्रयच्छ भक्तियुक्तानां नारीणां हरिवल्लभेति॥"

शिव, षरामुख, गौरी, गणेश, और चन्द्रमाके पूजनको करके ताम्बे या मिट्टीके १० कुल्हड़ें ब्राह्मणको दे, परन्तु उन कुल्हड़ोंमें पूआ भरे हुए हों। तदनन्तर नैवेद्यका भोग अर्पण करना चाहिये। चन्द्रोदय हो जानेपर चन्द्रमाको अर्घ देकर कथा श्रवण करे।

अथ कथा।

एक समय अर्जुन कीलगिरिपर चले गये थे, उस समय द्रौपदीने मनमें विचार किया, कि यहाँ अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं और अर्जुन हैं नहीं, अतः अब मैं क्या करूँ?—यह विचारकर द्रौपदीने भगवान् कृष्णका चिन्तन किया। भगवान्के पधारनेपर हाथ जोड़कर प्रार्थना की,—"भगवन्! इस प्रकारके विघ्नोंकी शांतिका यदि कोई सुलभ उपाय हो, तो कृपया मुझको बतलायें।" यह श्रवणकर भगवान् कृष्ण बोले,—"इसी प्रकारका एक प्रश्न पार्वतीने महादेवजीसे किया था, जिसका उत्तर देते हुए महादेवजीने सर्व-विघ्नोंका नाशक करवाचतुर्थीका व्रत बतलाया।" विद्वान् ब्राह्मणोंका निवास-स्थान और वेद वेदाङ्गकी ध्वनियोंसे निनादित इन्द्रप्रस्थ नगरमें विद्वच्छिरोमणि वेदशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी लीलावती पत्नीसे सात पुत्र और सर्व लक्षणोंसे युक्त शुभ लक्षणा वीरावती नामकी एक कन्या हुई। समय प्राप्त होनेपर उसने वेद-वेदाङ्गमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण बालकके साथ वीरावतीका विवाह कर दिया। एक दिन इस कन्याने विधि-विधानसे करवाचौथका व्रत किया, परन्तु सायंकाल होनेसे प्रथम ही इस कन्याको क्षुधाने सताया, जिससे वीरावती दुःखी हो गयी। बहनको बहुत दुःखी देखकर इसके भाईने अत्यन्त ऊँचे एक शिखरपर जाकर उल्काका प्रकाश कर दिया। वीरावतीने चन्द्रोदय जानकर और अर्घ प्रदान करके व्रतको समाप्त कर दिया। इसका फल यह हुआ, कि तत्काल उस कन्याका पति मर गया। पतिके मरनेपर इस वीरावतीको बड़ा भारी दुःख हुआ और इसने एक वर्ष पर्य्यन्त अनशनव्रतका पालन किया। जब वही करवाचतुर्थीका समय आया, तो स्वर्गलोकसे इन्द्राणी आई और उसके

साथ अन्य स्वर्गीय देवियोंका भी भूतलपर आगमन हुआ। ऐसे सुन्दर समयको पाकर वीरावतीने अपने कान्तकी आकस्मिक मृत्युका कारण पूछा। इन्द्राणीने कहा,—"करवाचौथके चन्द्रमाको अर्घ न देकर व्रतको समाप्त कर देना ही तेरे पतिकी मृत्युका कारण है। यदि अब भी विधि-विधानसे करक-व्रतका पालन करे तो तेरे पतिका पुनर्जीवन हो सकता है।" वीरावतीने रीतिपूर्वक व्रतका पालन किया और इन्द्राणीने जलसे मृत पतिका प्रोक्षण किया, जिससे वह जीवित हो गया। वीरावतीने चिरकालमें पति-सौभाग्यको प्राप्त किया। इस कारण द्रौपदि! यदि तुम भी इस करवाचतुर्थीको करोगी, तो सर्व विघ्नोंका नाश होगा।

सूतजीने कहा, कि द्रौपदीने जब इस व्रतका आचरण किया, तब कुरुओंका पराजय होकर पाण्डवोंकी विजय हुई। इस कारण पुत्र, सौभाग्य और धनधान्यकी वृद्धि चाहनेवाली स्त्रियोंको इस व्रतका अवश्य ही पालन करना परम कर्त्तव्य है।

शिक्षा।

इस व्रतका साधारण प्रचार तो प्रायः सभी देशोंमें पाया जाता है, परन्तु सी. पी. यू. पी. और राजपूतानेमें विशेष रूपसे है। जिस प्रकार अन्य व्रतोंके रूपान्तर हो गये हैं, इसी प्रकार इस व्रतमें भी कुछ कल्पित अंश अवश्य आ गया है। कारण कि शास्त्रीय पद्धतिसे न होकर स्त्रियोंकी परम्पराके अनुसार होता है और मूल कथाके स्थानमें भी कल्पित कहानीका समावेश हो गया है। यह व्रत भी स्त्रियोंको सच्ची अर्द्धाङ्गिनी बननेका उपदेश देता है और बतलाता है, कि पतिके हितमें ही स्त्रीका भी हित है। स्त्रियोंको चाहिये, लौकिक या पारलौकिक कोई भी कर्म अपने उद्देश्यसे न करें, पतिके उद्देश्यसे ही करें, यही गार्हस्थ्यके सुजीवनका महामन्त्र है। जिस घरमें स्त्रियां अपने कल्याणार्थ और पुरुष अपने कल्याणार्थ पार्थक्यभावसे कार्य करने लगते हैं, वह घर थोड़े दिनोंमें ही वन बन जाता है।

——:※:——

२—दीपावली महोत्सव ।

:o[*]o:

धनत्रयोदशी, नरकचतुर्दशी और दिवालीका

शास्त्रीय स्वरूप ।

यों तो कार्तिक त्रयोदशीसे शुक्ला दोज तक पांच दिन पर्यन्त दिवालीके महोत्सवका ही सिलसिला रहता है, परन्तु धनत्रयोदशी, नरकचतुर्दशी और लक्ष्मीपूजन—इन तीनोंका तो आपसमें बहुत ही सम्बन्ध है। इन तीनों दिनोंमें होनेवाले तीनों महोत्सवोंका प्राचीनत्व अर्वाचीन इतिहाससे भी विदित होता है, परन्तु पौराणिक कालसे प्रथम इन त्यौहारोंकी क्या दशा थी, इसका पता चलानेके लिये सूत्रकार एवं वैदिक साहित्यपर निगाह डालनेकी विशेष आवश्यकता है। धर्मसिन्धुकारने इन तीन दिनोंके विषयमें इस प्रकार लिखा है, कि कार्तिक अमावस्याके दिन "कोजागर" व्रतको करके लक्ष्मी और इन्द्र इनकी पूजा करनी चाहिये और नारियलके जलको पान करके जुआ खेलना चाहिये। कारण कि, उस दिन मध्यरात्रिको प्रत्येक घरपर लक्ष्मी आती हैं। जो लोग जुआके कारण जाग्रत रहते हैं, उनको धनवान बनाती हैं। इसी दिन "आश्वयुजी" कर्म करनेका भी विधान है और कार्तिक पौर्णिमाको "आग्रयण" कर्म करना भी लिखा है, पहला आग्रयण शरदऋतुमें करना चाहिये। आग्रयण किये बिना किसी भी नवान्नको भक्षण नहीं करना चाहिये। इसी पौर्णिमाके दिन ज्येष्ठ पुत्र, किम्वा ज्येष्ठ कन्याको आरती दिखाना भी लिखा है। कार्तिक-कृष्ण-द्वादशीको गोवत्स-पूजन करनेकी भी विधि है। यमराज-का भय न हो, एतदर्थ त्रयोदशीके दिन प्रदोषकालमें दीपदान करना चाहिये। चन्द्रोदय-व्यापिनी कृष्ण चतुर्दशीके दिन—तिल, तैलादिसे अभ्यंगस्नान करना चाहिये, जिससे यमराजके भयसे निवृत्ति हो।

यमराज वैदिक देवता हैं, जिसके विषयमें अथर्व वेद यह लिखता है:—

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम्।
वैवस्वतं संगमनं यमं राजानं हविषा सपर्य्यत॥ अथर्व० १८।३।१३

"(यः) जो (मर्त्यानां) प्राणियोंमें (प्रथमः) पहिले (ममार) मरता है (यः) जो (एतम्) इस (लोकम्) लोकको (प्रथमः) पहले (प्रेयाय)

गया है (जनानां) जनोंके (संगमनं) संयमन करने वाले (वैवस्वतं) सूर्यपुत्र (यमम्) यम (राजानम्) राजाको (हविषा) हविसे (सपर्य्येत) सत्कार किया जाता है।" इसी यमराजका वर्णन ऋग्वेदमें भी मिलता है:—

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य।

ऋग्वे० १०।१।१४।१

"(संगमनम्) प्राणीमात्रका संयमन करनेवाले (वैवस्वतं) सूर्यपुत्र (यमम्) यम (राजानम्) राजाको (हविषा) हविसे (दुवस्य) परिचरण करो।"

उपर्युक्त वैदिक आधारको लेकर ही त्रयोदशीके दिन यमके प्रीत्यर्थ दीप लगाना, तथा अभ्यंगस्नान करनेका विधान धर्मसिन्ध्वादिमें दिया गया है। इसके अतिरिक्त हलसे जुती हुई मिट्टी और दूधमें भिगोकर सेमर-वृक्षकी डालीको तीन बार अपने शरीरपर फेरकर और कुंकुमका टीका (तिलक) लगाकर पुनः कार्तिकस्नान करके यमतर्पण करना चाहिये। प्रदोषके समय मठ, मन्दिर, कुआं, बावलीके घाट, कोट, बाग, मार्ग, गऊशाला, अश्वशाला और गजशाला— आदि स्थानोंपर यमराजके प्रीत्यर्थ तीन दिनतक बराबर दीपक लगाने चाहिये। तुला राशीका सूर्य हो, तो चतुर्दशी और अमावस्याकी शामको एक जली लकड़ी लेकर तथा उसको घुमा कर पितरोंको मार्ग दिखलानेका भी विधान है। अमावस्याके दिन प्रातःकाल तैलाभ्यंगस्नान करना देवपूजा समाप्त कर पार्वणश्राद्ध करना और उल्का-दर्शन तथा लक्ष्मीपूजन करनेके उपरान्त भोजन करना चाहिये। इन तीन दिनोंमें मकानोंकी खूब सफाई रखना चाहिये।

धन त्रयोदशी।

जो दीपदान धन त्रयोदशीको यमराजके प्रीत्यर्थ किया जाता है, उसके विषयमें यम और यमदूतोंका एक अत्यन्त रोचक इतिहास है। कर्मानुसार जीवनकी समाप्ति करनेवाले यमराजने एक दिन अपने दूतोंसे पूछा,—"मेरी आज्ञानुसार जब तुम प्राणियोंके प्राणोंको हरण करते हो, तब तुमको किसी समय किसी पुरुषके प्राण-हरण करनेमें कभी दया आयी है या नहीं? और यदि आयी तो कब और कहाँ?" इस प्रकार यमराजके प्रश्न करनेपर दूतोंने एक अद्भुत वृत्त कहा। हंस नामका एक बड़ा भारी राजा था, वह किसी समय मृगया करनेको वनमें गया। राजा अपने समस्त संगियोंसे पृथक् होकर और मार्ग भूल-

कर हेम राजाके स्थानमें चला गया। हेम राजाने महाराज हंसका वड़ा भारी आतिथ्य किया। उसी समय हेम राजाके यहाँ पुत्रोत्पन्न हुआ, परन्तु षष्ठीके पूजनमें देवीने प्रत्यक्ष होकर कहा,—"राजन्! यह तुम्हारा लड़का विवाहके चार दिन वाद ही मर जायगा।" लड़का किसी प्रकारसे न मरे, इस प्रकारकी योजना करते हुए हंस राजाने इस हेम राजाके पुत्रको मृत्युके डरसे श्रीयमुनाजीके दहमें रक्खा, परन्तु युवा होनेपर जब विवाह किया, तब लग्नके समारम्भकालमें ही चौथे दिन यमदूतोंने उसके प्राणको हरण किया।

यमदूतोंने यमराजसे कहा,—"नाथ! ऐसे समारोहमें इस प्रकारकी घटनाका होना वास्तवमें अत्यन्त घृणित कार्य्य था, परन्तु क्या करें हम लोग परतन्त्र थे। अतः हे यमराज! जिस उपायसे इस प्रकारकी आपत्ति न आजाय, कृपा करके वतलाओ।" यमराजने दूतोंकी उस प्रार्थनाको श्रवणकर उपर्युक्त विधिसे त्रयोदशी-व्रत-पालन करनेको वतलाया। जो लोग धनत्रयोदशीके दिन यमके प्रीत्यर्थ दीपदानादि व्रत करेंगे, उनकी असामयिक मृत्यु कदापि न होगी।

नरक-चतुर्दशी।

इस नरकचतुर्दशीका समस्त वृत्तान्त सनत्कुमारसंहितामें मिलता है, यथाः—

पूर्वविद्धचतुर्दश्यामाश्विनस्य सितेतरे।
पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्य्यात्प्रयत्नतः॥

"इस चतुर्दशीको पूर्व-विद्धा लेनी चाहिये। कार्तिक मासकी कृष्णचतुर्दशीको प्रातःकाल दिनके निकलनेसे प्रथम—प्रत्यूषकालमें स्नान करना चाहिये, जो मनुष्य इस तिथिमें अरुणोदयके पश्चात् स्नान करता है, उसके वर्षभरके शुभकार्योंका नाश हो जाता है। इसमें जो स्नान किया जाय, वह तैलाभ्यंगपूर्वक होना चाहिये, और अपामार्गका भी शरीरपर प्रोक्षण करना चाहिये। अपामार्ग प्रोक्षणके समय इस मन्त्रको बोलना चाहियेः—

सितालोष्टसमायुक्तं सकंटकदलान्वितम्।
हर पापमपामार्ग! भ्राम्यमाण पुनः पुनः॥

"इस मंत्रको बोलकर तथा अपामार्गको शरीरपर स्पर्श कराकर सर्व बन्धुजनोंके सहित स्नान करे।" स्नानके पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहनकर, तिलक लगाकर, कार्तिकस्नान कर तथा यमराजको तर्पण कर, तीन तीन जलांजली

देनी चाहिये, यहाँ तक कि जिसका पिता जीवित हो, उसको भी यह तर्पण अवश्य करना चाहिये। सायंकालको दीपदान करना उचित है। दीपदानकी इस विधिको त्रयोदशीसे अमावस्या पर्यन्त तीन दिवस करना लिखा है। इसका कारण यह है, कि वामन भगवान्ने क्रमशः इन तीन दिनोंमें बलिकी पृथ्वीको नाप लिया था। पृथ्वी नापनेके पश्चात् वामन भगवान्ने संतुष्ट होकर बलिसे कहा,—"तुम कुछ वरदान माँगो।" इस प्रकार भगवान्के वचनामृतको श्रवण कर राजा बलिने कहा,—"भगवन्! मेरे लिये तो वरदानकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु लोगोंके कल्याणके निमित्त एक वरदान मांगता हूँ। त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या—इन तीन दिनोंमें आपने मेरा राज्य मापा है; अतः जो मनुष्य मेरे राज्यमें चतुर्दशीके दिन यमार्थ दीपदान करे, उसको यमकी पीड़ा न होनी चाहिये और जो मनुष्य इन तीन दिनोंमें दीपावली करे, उसके घरको लक्ष्मी कभी न छोड़े, यह वरदान माँगता हूं।" बलिकी प्रार्थनाको सुनकर भगवान्ने वरदान दिया,—"जो मनुष्य इन तीन दिनोंमें दीपोत्सव और महोत्सव करेगा, उसको मेरी प्रिया लक्ष्मी कभी भी छोड़कर अन्यत्र नहीं जायगी।"

लक्ष्मी पूजन ।

लक्ष्मीपूजनकी विधि सनत्कुमारसंहिताके आधारपर लिखी जाती है। बालखिल्य ऋषियोंने समस्त मुनीश्वरोंसे कहा, कि हे मुनीश्वरो! अमावस्याके दिन प्रातःकाल ही स्नान कर भक्तिपूर्वक पितृदेव एवं देवताओंका पूजन करे, और दधि, क्षीर और घृतादिसे पार्वणश्राद्धको करके यथाविधि ब्राह्मणोंको भोजन कराये। रोगी और बालकके बिना किसी और मनुष्यको दिनमें भोजन न करना चाहिये।

प्रदोष-सायंकालके समय लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। नाना प्रकारके स्वच्छ नवीन वस्त्रोंसे लक्ष्मीका मण्डप बनाकर, अनेक पत्र-पुष्प, तोरण ध्वजा और पताकादिसे उसको सुसज्जित कर तथा उसमें अनेक देवी देवोंके साथ भगवती लक्ष्मीका षोड़शोपचार-पूर्वक पूजन करना चाहिये। पूजाके पश्चात् प्रदक्षिणा भी करना योग्य है। राजा बलिके जेलखानेमें समस्त देवी और देवोंके साथ लक्ष्मी भी कैद थी, उसको भगवान् विष्णुने आजके दिन ही छुड़ाया था। जेलसे छूटकर वे देवता लक्ष्मीके सहित आजके दिन क्षीर-समुद्रमें जाकर सो गये थे। इस कारण अब हमको उनके शयनका अपने अपने घरोंमें ऐसा सुभीता कर देना चाहिये, जिससे वे क्षीरसागरकी ओर न

जाकर स्वच्छ मकान तथा पर्यङ्क आदिको पाकर यहां ही सो जांय। सुन्दर पलंग रेशमसे बुना हुआ हो, जिसपर सुन्दर गद्देला, दूधके समान सफेद चादर, तकिया तथा रजाई हो और कमलके पुष्पोंसे मण्डप बना हो। कारण कि, लक्ष्मीका निवासस्थान कमल ही है, इसीसे लक्ष्मीको कमला अथवा कमलालया कहते हैं। जो लोग लक्ष्मीका इस प्रकार स्वागत करते हैं, उनको छोड़कर लक्ष्मी अन्यत्र नहीं जाती और जो लोग आलस्य-निद्रामें पड़कर सो जाते हैं, एवं लक्ष्मीका स्वागत नहीं करते, वे सदैव दरिद्रताके पुजारी बने रहते हैं।

रात्रिके समय लक्ष्मीके पूजनमें आवाहन करे और गऊके दूधका खोवा कर उसमें मिश्री, लवङ्ग, इलायची, कपूर आदि डालकर तथा लड्डू बनाकर लक्ष्मीको भोग धरे। इसके अतिरिक्त देशकालानुसार चतुः प्रकारका भोज्य—खाद्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य और फलादि लक्ष्मीको अर्पण करके पश्चात् दीप-दान करे। कुछ दीपकोंको सर्वारिष्ट-निवृत्तिके लिये अपने मस्तकपर घुमाकर चौराहे या श्मशानादिमें रखवा दे। नदी, पर्वत, महल, वृक्षमूल, गऊओंके खिड़क या चबूतरा—आदि स्थानोंमें दीपक रखवाने चाहिये। यदि सम्भव हो, तो दीपोंका एक वृक्ष घरपर बनाना चाहिये। ऊपर जो ब्राह्मण भोजन कराना लिखा है, वह इसी समय होने चाहिये।

राजाको चाहिये, कि दूसरे दिन प्रातःकाल गांवके सब बालकोंको डौंडी पिटवा कर कहला दे,—"आज ग्रामके सब बालक नाना प्रकारकी क्रीड़ा करें।" जब ये बालक क्रीड़ा करें, तब इस बातकी खबर रखनी चाहिये, कि ये बालक क्या खेल खेलते हैं। यदि सब बालक या कुछ बालकोंका समूह आग जलाकर खेले और उस आगमें ज्वाला उत्पन्न न हो, तो जानना चाहिये कि, इस वर्षमें या तो महामारी या घोर दुर्भिक्ष होगा।

यदि बालक दुःख प्रकाश करें तो राजाको दुःख होगा और यदि सुख प्रकट करें तो राजाको सुख होगा। यदि बालक आपसमें लड़ें तो राजयुद्ध और यदि बालक रोदन करें, तो अनावृष्टिका कष्ट जानना चाहिये। यदि लकड़ीका घोड़ा बनाकर बालक खेलें, तो जानना चाहिये, कि अपनी किसी अन्य राजापर विजय होगी। यदि बालक लिंगीको पकड़ कर क्रीड़ा करें, तो जानना चाहिये, कि व्यभिचार अधिकतासे फैलेगा, और यदि बालक अन्न अथवा पानीको चुरायँ, छुपांय, तो अकाल होगा। इस प्रकारके शकुनको

देखना चाहिये। इस अवसरपर इन तीन दिनोंमें जुआ आदि निषिद्ध-कर्मोंका भी विधान है, परन्तु स्मरण रहे, कि इन तीन दिनोंमें नरकका द्वार-रूप राक्षसराज बलिका राज्य माना है, जिसमें लक्ष्मी और देवताओंको कष्ट हुआ था, अतः अधर्मी राज्यमें अधर्म करना बुरा नहीं। इस दृष्टिसे जुआदि दुष्कर्मोंका विधान है, अवश्य कर्तव्य नहीं। अर्द्ध-रात्रिके समय राजा भी नगरकी शोभाको देखनेके लिये निकले।

दीपावलीका लौकिक स्वरूप।

दीपावली त्यौहारकी तीनों दिनकी विधिमेंसे अभ्यङ्ग स्नान, दीपोत्सव और स्वच्छता आदि कितनी क्रियायें तो समस्त हिन्दुस्थानमें कमी अधिक प्रमाणसे पायी जाती हैं, परन्तु यष्टिका-कर्षण केवल राजपूतानेके राजा-लोगोंमें ही पाया जाता है। शेष हिन्दुस्थानमें यष्टिका-कर्षण, यम-तर्पण और पार्वणश्राद्धादिका प्रचार नहीं है। लक्ष्मीपूजनका अधिक प्रचार तो राजस्थान, यू० पी० और सी० पी० में ही है, परन्तु कमी-अधिक मानसे सर्वत्र ही पाया जाता है। लक्ष्मीका पूजन जहाँ व्यापारी लोगोंका निवास-स्थान है, वहाँ बड़े धूम-धामसे होता है और वहां खातोंका भी पूजन होता है। सामान्य स्थितिके लोग अपने पास जितना रुपया, जेवर, सोना और चाँदी होता है, उन सबको लक्ष्मीके समीप रखकर षोड़शोपचारपूर्वक पूजन करते हैं और फटाके बन्दूक आदिके शब्द करके आनन्द मनाते हैं। किसी किसी स्थानमें इसी दिन लक्ष्मीपूजनके पश्चात् गौ-पूजन भी होता है। सेठ साहूकारोंकी दूकानोंपर रातभर जागरण रहता है और ब्राह्मण लोग गोपाल-सहस्रनामादि ग्रन्थोंका पाठ किया करते हैं।

राजपूतानेमें इस अवसरपर जुआ खेलनेका अधिक प्रचार है। वैसे तो जुआ खेलनेवाले लोग सजा पाते हैं, परन्तु इन तीन दिनोंमें जुआ खेलनेकी सरकारी आज्ञा होनेसे बेरोक-टोक जुआ खेला जाता है और इस जुआको मनमानी कल्पनाके आधारसे धार्मिक कृत्य माना जाता है। गुजरातके व्यापारी-मण्डलका कार्तिक-शुक्ला-प्रतिपदासे नूतन सम्वत्सरका आरम्भ होता है। इस कारण अधिकांश व्यापारी लोग नवीन बही खातोंका पूजन बड़े ठाठ-बाटसे करते हैं, और कमी-बेशी प्रमाणसे दीपमालिका भी सर्वत्र की जाती है। बम्बईमें बिजलीकी रोशनीका भारी कारखाना शहरमें होनेसे और व्यापार-प्रधान नगरी होनेसे वहाँ दीपावलीकी छटा जो अद्भुत रूप दिखाती है, वैसी

दीपावली भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं देखी जाती। महाराष्ट्र देशमें शूद्रवर्णकी स्त्रियाँ ढोले बनाकर तथा गलियोंमें गीत गा कर हृद्गत आनन्दको व्यक्त करती हैं। कलकत्ता एवं बंगालमें लक्ष्मीका पूजन दुर्गानवरात्रोंके बाद किया जाता है। दक्षिण हिन्दुस्थानमें प्रातःकाल स्नान करके, सोंठका चूर्ण खानेका रिवाज है। मद्रासमें उच्चकक्षाके लोगोंको छोड़कर नीचे दर्जेके लोग बहुत आनन्दोत्सव मनाते हैं। तेलगू और तामील देशके लोग प्रातःकाल अभ्यङ्गस्नान कर और शुद्ध वस्त्र पहन कर एक दूसरेसे आपसमें प्रश्न करते हैं,—"क्यों, महाराज! पवित्र गंगाके स्नान हो गये?" दूसरा उत्तर देता है,—"हाँ, महाराज! आपकी कृपासे गंगा-स्नान हो गये।" राजपूताना, सेण्ट्रलइण्डिया और यू० पी० आदि देशोंमें दिवालीके आगमनसमयसे पहले मकानोंकी टूट-फूट और गारा-गोबर आदि सब होकर पुनः नूतन निर्माण हुए हों, इस प्रकार नगरकी शोभा हो जाती है। उस समय प्रत्यक्ष दरिद्रताका नाश होकर नगरमें लक्ष्मीका निवास हो जाता है। यह दीपमालिका पञ्जाब आदि देशोंमें भी मनायी जाती है।

शंका समाधान।

दीपमालिकाके शास्त्रीय तथा लौकिक-स्वरूपमें विशेष महत्त्वकी तो कोई शंका नहीं है, परन्तु प्रकृत विषयमें यह शंका अवश्य हो सकती है, कि यह त्यौहार कबसे चला, प्राचीन है या अर्वाचीन? इसका उत्तर प्राचीन ही हो सकता है, कारण कि ग्यारहवीं शताब्दीमें खीवका रहने वाला अबूरेहन नामक गृहस्थ आजसे नौ सौ वर्ष प्रथम हिन्दुस्थानमें आया था, उसने हिन्दुस्थानकी रीति-रिवाजपर प्रकाश डाला है, जिससे विदित होता है, कि उस समयके भारतमें भी यह दीपमालिका इसी प्रकार मानी जाती थी। उससे भी प्राचीन पौराणिक समय है, सो पुराणोंमें दिवालीका उल्लेख आया ही है। पौराणिक-कालसे भी प्राचीन सूत्र और ब्राह्मण हैं, जिनको अनादि कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं।

यद्यपि उस कालमें दिवालीके तीन दिनोंका वर्णन पौराणिक ढङ्गसे तो नहीं है, परन्तु रूपान्तर अवश्य है। प्राचीन कालमें प्रत्येक गृहस्थ वर्ष भरमें ७ पाकयज्ञ अवश्य करता था और उनकी ऐसी सुलभ विधि थी, कि अनायास हो सकते थे, विशेष व्यय भी नहीं करना पड़ता था। उन सातोंके नाम ये हैं,—"(१) अष्टक, (२) पार्वण, (३) श्राद्ध, (४) श्रावणी, (५) आग्रयण,

(६) चैत्री और (७) आश्वयुजी ।" ये सातों पृथक्-पृथक् मासोंमें किये जाते थे । इससे जाना जाता है, कि पार्वण, आग्रयण और आश्वयुजी इन तीन पाकयज्ञोंका मिश्रण होकर ही दीपमालिकाका महोत्सव बना है ।

पार्वण ।

प्राचीन कालसे वेदशास्त्रानुसार आर्योंके अन्तःकरणमें पितृदेवोंका आदर भाव होनेके कारण प्रत्येक अमावस्या और पौर्णिमाको उनके निमित्त पार्वण किम्वा पिण्ड-पितृ-यज्ञ नामका पाकयज्ञ करनेकी रूढ़ि है । प्रचलित दीपावलीमें भी पार्वणश्राद्ध करनेकी विधि है, और यमराजके प्रीत्यर्थ दीप-दानादिकी विधि भी पायी जाती है । नरकचतुर्दशी एवं भाईदोजका वृत्तान्त ठीक पितृ-देवोंके नियन्ता यमराजसे मिलता है । अब एक पार्वण श्राद्धका जो अति प्राचीन स्वरूप है, उसीका आधार लेकर धनत्रयोदशीका पूजन अर्वाचीन भारतमें होता है, यह माननेमें बुराई नहीं ।

पाक यज्ञ ।

पाकयज्ञको आश्वयुजी कर्म कहते हैं । अश्वयुज आश्विन मासकी पौर्णिमामें किया जाता था—यह सूत्रग्रन्थोंमें विधान है और ऋग्वेदके छठे मण्डलमें जो विवरण है, उससे जाना जाता है, कि अश्वयुज आश्विनमासकी पौर्णिमाको इन्द्रके लिये दूध और चावलसे बनी खीर अर्पण करनेका विधान था । बकरीका दूध धूनमें डालकर आश्विन द्वय और आश्विनपौर्णिमा शरदृतुके निमित्त आहुति देनेका विधान है, गायके प्रीत्यर्थ दधि और मक्खनकी आहुति देनेका विधान है । तथा गाय और वत्स दोनोंको उस रात्रिमें एकत्र रहनेका भी विधान है । इस प्रकारकी व्यवस्था सांख्यायन ऋषिने लिखी है; जिससे विदित होता है, कि नरकचतुर्दशीका मूल इस आश्वयुजी कर्मसे है । किसी किसीका मत है, कि नरकचतुर्दशीका मूल वैदिक न होकर पौराणिक है । कारण कि श्रीमद्भागवतमें नरकासुर नामक असुरकी कथा विस्तार सहित पायी जाती है और उस असुरको भगवान् कृष्णने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीके दिन ही मारा था; अतः इसी आधारपर नरक चतुर्दशीकी प्रवृत्ति हुई है । उपर्युक्त दोनों बातोंसे ही यह उत्सव या व्रत प्राचीन है—यह पाया जाता है ।

आग्रयण यज्ञ ।

अग्रहायन किम्वा मार्गशीर्ष-महीनेकी पौर्णिमाको आग्रयण (नवान्नेष्टि)

किया जाता था। मार्गशीर्ष मासकी पौर्णिमाकी रात्रि सम्वत्सरकी पत्नी है, यह मानकर आहुति दी जानेका विधान पाया जाता है। सम्वत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, इद्वत्सर और वत्सर—ये पाँच प्रकार सम्वत्सरके माने गये हैं, इनकी परिसमाप्ति मघा नक्षत्रके हिसाबसे होती थी। यह मार्गशीर्ष पौर्णिमाको ही पायी जाती है, कारण कि इस दिन वत्सरोंकी भी आहुतियाँ दी जाती हैं। अथवा प्राचीनकालमें नवीन सम्वत्सरका प्रारम्भ मार्गशुक्लासे ही हो, कारण कि, चैत्र, वैशाख, मार्गशीर्ष और कार्तिक—इन महीनोंसे सम्वत्सरका प्रारम्भ पाया जाता है। राजा विक्रमादित्यके समयमें वर्षकी समाप्ति कार्तिकमें ही मानी जाती थी, इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है, कि जिस समय मार्गशीर्षके समाप्त होनेवाले सम्वत्का परिवर्तन होकर कार्तिक अमावस्यामें आया होगा, तब मार्गपौर्णिमाका कृत्य भी कार्तिक अमावस्यामें आया होगा। इसीसे लक्ष्मीपूजनका मूल आग्रहण कर्म ही है। सारांश—दीपावलीका त्यौहार चाहे, इन यज्ञोंका मिश्रण हो, चाहे पौराणिक हो, परन्तु यह दीपमालिकाका महा त्यौहार भारतवर्षमें अति प्राचीनकालसे प्रचलित है, इसमें सन्देह नहीं।

शिक्षा।

यद्यपि दीपमालिका—लक्ष्मीपूजनका ढँग कुछका कुछ हो गया है, परन्तु निःसन्देह इसके प्रचलित स्वरूपसे भी हमको अनेक बातोंका लाभ है, इस कारण वैधरूपसे इसका अधिक प्रचार होना देशका मंगल ही है। दीपावलीकी तीनों दिनोंकी क्रियाओंसे-यह स्पष्ट विदित होता है, कि वर्तमान कालिक त्यौहारका विशेष सम्बन्ध व्यापारिक जातिके साथ है—वैश्यवर्णका मुख्य त्यौहार है। ब्राह्मण या द्विजमात्रका श्रावणी, क्षत्रियोंका दशहरा, वैश्योंका दीपमालिका और शूद्रोंका होली—यह क्रम पाया जाता है। यद्यपि यह क्रम शास्त्रीय-पद्धति अथवा मूलकथाओंके अनुसार नहीं है, तथापि प्राचीन प्रवर्तित अवश्य है। इतना होनेपर भी श्रावणीको चारोंवर्ण जिस प्रकार मानते हैं, उसी प्रकार दीपावलीको भी चारोंवर्ण मानते हैं। इससे यह भी पता लगता है, कि प्राचीनकालमें एक वर्ण दूसरेके वर्ण-सम्बन्धि कार्योंमें भी शामिल रहता था और इस प्रकारसे अखिल भारतके लोग एकताके नन्दन वनमें विहार करते थे। क्या ही अच्छा हो, कि अब भी हम सब सच्ची दीपमालिकाको मानते हुए, एक दूसरेके कार्यमें सहायक होकर, भारतको गारत करनेवाली फूटका नाश करके पुनः एकताका सिंहासन भारतमें स्थापित करदें।

(२)

दीपमालिकाके दिन अखिल भारतवर्षमें तिल्लीके तैलवाले दीपोंकी दीपमालिका होती है, जिससे समस्त देशकी वायुमें एक अद्भुत प्रकारकी शक्तिका सञ्चार होकर देशका मंगल होता है। जिस प्रकार यज्ञ धूमसे खेतीका अपरिमित हित होता था—घृत आदि पदार्थोंके परमाणु सूर्य-किरणोंमें मिलकर और उनके द्वारा वातावरण एवं बादलोंके जलीय परमाणुओंमें मिल-कर पृथ्वीमें अन्नकी बाहुल्यता होती थी, एवं अन्न सात्त्विक और पौष्टिक होता था, इसी प्रकार इस दीपावलीके तैलिक परमाणुओंका भी रहस्य जाना जाता है। कारण कि, कार्तिक अमावस्या तक वर्षाकी तो समाप्ति हो जाती है और शीतका प्रारम्भ होता है। यह तो सबपर विदित ही है कि, वर्षा और ग्रीष्मके दिनोंमें अपने देशके लोग तेल नहीं खाते और न विशेषतया अंगपर ही लगाते हैं, परन्तु शीतकालमें प्रायः खाया भी अधिक जाता है और मर्दन भी किया जाता है।

यद्यपि बंगालकी तरफ लगाना और दक्षिणकी तरफ खाना बारहमास ही रहता है, तथापि शीतकालमें कहीं भी खाने और लगानेकी मात्रा अधिक बढ़ जाती है। इससे मालूम होता है, कि शीतकालकी प्रकृतिको तैल अधिक हितकर है। अतः समष्टि देशको खाने और मर्दन करनेका आवश्यक लाभ पहुंचे, इस कारण दीपावलीके ज़रियेसे तैलके परमाणुओं द्वारा देशभरकी वायुको आप्यायित करनेके लिये दीपावलीकी विधि बहुत ही अच्छी है। समष्टि देशकी प्रकृतिमें किसी प्रकारका विकार न होने पाये, यही इसका रहस्य है। परन्तु खेद इस बातका है, कि अर्वाचीन कालमें लोग बेसमझीसे रूढ़िके चक्करमें पड़कर ही दीपावली करते हैं, जिससे लाभके बदले हानि ही अधिक होती है। आजकल बड़े बड़े नगरोंमें तो बिजली की दीपावलीकी जाती है और छोटे छोटे ग्रामोंमें मिट्टीके तेलकी, इससे समष्टि देशको लाभ न होकर हानि ही होती है। अतः शुद्ध तेलकी दीपावलीका प्रचार होना ही देशका मंगल है।

(३)

लक्ष्मीपूजन तथा दिवालीके त्यौहारका तीसरा लाभ नगरोंकी सफाई है। आजकल आबाल वृद्ध अच्छी प्रकारसे समझ गये हैं, कि नगर और ग्रामोंकी स्वच्छता एवं अस्वच्छतापर देशके लोगोंका आरोग्य अनारोग्य रहना

निर्भर है। सरकारने हिन्दुस्थानमें म्युनिसिपलटीके द्वारा नगर तथा ग्रामोंकी स्वच्छताका प्रबन्ध किया अवश्य है, परन्तु जिस प्रकारका प्रबन्ध होना चाहिये, उस प्रकारका नहीं। इसका मुख्य कारण यह है, कि अभी देशमें विद्याका प्रचार यथेष्ट नहीं हुआ है। पठित लोग थोड़े हैं और अपठित बहुत हैं। जो अपठित हैं, वे इस म्युनिसिपलटीके प्रबन्धको भी सरकार प्रबन्ध एवं सरकारी फायदा समझ कर गौरवकी दृष्टिसे नहीं देखते, न अपने हितार्थं ही विचार करते हैं। यही कारण है कि, हमारे देशमें इङ्गलेण्डादि देशोंके माफिक स्वच्छता नहीं है और इसीसे अनेक प्रकारके रोगोंका यह देश अड्डा बन रहा है। जो रोग एक बार यहाँ आता है, वह इस देशकी अस्वच्छता पर इतना मोहित हो जाता है, कि फिर आजन्म इसको छोड़ना नहीं चाहता।

देशके लोग जब पठित होकर स्वच्छताके तत्त्वको समझ जायँगे, तब ठीक प्रबन्ध हो जायगा। यह कहना बीमारोंके लिये श्मशानमें लकड़ियाँ भेज देनेके समान अथवा अनवस्था दोषसे दूषित है। ऋषि-महर्षियोंने इन सब तत्त्वोंको समझ कर ही इस प्रकारकी समस्त बातोंका प्रवेश धर्मके अन्दर किया था, और राज्यबलके बिना धर्ममें शिथिलता आ जाती है, यह जान कर उन धर्मके तत्त्वोंको राज-व्यवस्थामें प्रविष्ट कराया था। कर्मकाण्ड सम्बन्धी धर्ममें आधे नियम प्रायः इस प्रकारके हैं, कि जो प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी स्वच्छताके बोधक हैं और आचार सम्बन्धी धर्म ऐसे हैं, कि जो नगर, ग्राम और गृहोंकी स्वच्छता बतलाते हैं। उनमें दीपमालिका नगर, ग्राम और घरोंकी स्वच्छताका मुख्य त्यौहार है। यदि दीपमालिकाके मनानेका सर्कारी आर्डर होता, तो कभी भी यह सफाई देखनेको न मिलती, परन्तु यह तो ईश्वरीय म्युनिसिपलटीका प्रबन्ध है कि जो वस्तु मात्रकी स्वच्छता रखते हैं। इसी प्रकार कितने ही व्रत और त्यौहार भी हैं, अतः दीपमालिका आनेके प्रथम ही रंकसे लगाकर राजा पर्यन्त सब अपने अपने स्थानोंकी सफाई करा लेते हैं। जो नहीं कराता, वह यह जानता है, कि इस वर्ष लक्ष्मीकी मुझसे भेंट न होगी। इस लिये जैसे बने वैसे किसी न किसी प्रकार लीपना-पोतना करा ही लेता है। जो मकानात मनुष्योंके नित्यके उपयोगी नहीं हैं और इसी कारण उनका साल भरमें एक बार भी झाड़ू नहीं निकलता, वे भी इस समय लीप पोत कर पवित्र बनाये जाते हैं। इसका प्रभाव देशकी नीरोगता पर अवश्य पड़ता है।

अतः हम सबका यह पहला कर्त्तव्य है, कि इस प्रकारकी धार्मिक रीतिको प्रोत्साहन देकर विशेष बढ़ानेकी कोशिश करें।

लक्ष्मीपूजनका चौथा लाभ अपने नफा और नुकसानकी जाँच है। कोई भी पुरुष वर्षभर अनेक प्रकारके व्यापार करता जाय और उसको अपने नफा या नुकसानकी खबर न पड़े, तो निःसन्देह वह अनुत्साहित होकर अकर्मण्य हो जाय। इस कारण बारह मासमें एकबार दीपमालिकाके अवसरपर बही तथा खातोंकी तयारी होकर अपने नफे नुकसानकी खबर हो जाती है, जिससे मनुष्य फिर उत्साहित होकर आगेको कार्यमें प्रवृत्त हो जा सकता है। उत्साहित होकर कार्यमें संलग्न हो जाना—यही लक्ष्मीके उत्पन्न करनेका मूल मन्त्र है—यही सच्चा पूजन भी है। लक्ष्मीका पूजन आधिदैविक है और उत्साहित होकर व्यापारमें प्रवृत्त होना-यह लक्ष्मीके आधिभौतिक स्वरूपका पूजन है; इस कारण यह प्रथा भी बहुत आवश्यक है। परमात्मा करे, कि भारतमें लक्ष्मीके दोनों स्वरूपोंका पूजन अधिकाधिक बढ़ता जाय।

(५)

लक्ष्मी पूजनके उत्तर ही गोवत्स पूजनका विधान है, इससे भी यह त्यौहार वैश्य वर्णका है-यह जाना जाता है। कारण,—"कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्—कृषि करना, गऊकी रक्षा करना और वाणिज्य करना—ये तीनों स्वाभाविक कर्म वैश्योंके हैं।" यह भगवान् कृष्णने गीतामें कहा है। इसके अतिरिक्त एक ब्राह्मण जब दूसरे ब्राह्मणसे मिलता है, नमस्कार करता है, परन्तु वैश्य वैश्यके मिलनेपर जयगोपाल करते हैं, इससे भी गोपूजन वैश्योंका मुख्य कर्तव्य सिद्ध होता है। यह तो सभी जानते हैं, कि भारत कृषिप्रधान देश है। यदि कृषिप्रधान न होता, तो महमूद गजनवी जैसे अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लुटेरोंसे लुटनेपर भी आज जीवित दशामें न होता। कृषिके कारण ही यह देश कल्पवृक्षका सा कार्य कर रहा है, कारण कि जिसने जो चाहा सो लिया और ले रहे हैं, परन्तु फिर भी यह अपने वृद्ध नामको सार्थक कर रहा है—यह सब कृषिकी ही महिमा है।

कृषिका मुख्य साधन या प्राण गऊ हैं, इसी कारण भगवान् कृष्णने गोपाल बनकर हिन्दुओंको यह बतला दिया, कि अपने देशको स्थिर रखकर अपने जीवनके अस्तित्वको सुरक्षित रखना चाहते हो, तो गोपाल बनो, नहीं तो देशके साथ-साथ तुमभी रसातलको चले जाओगे। खेद है, कि आजकल वैश्य

वर्णने गोरक्षाकी ओर जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया है। और न इतर वर्ण वालोंने ही गोरक्षापर विचार किया है—यह सब इस देशके दुर्भाग्यका कारण है। दीपमालिकाके महोत्सवसे शिक्षा लेते हुए हमको अवश्य ही गोवंशकी रक्षा करनी चाहिये, अन्यथा हम दीन हीन होकर गहरी विपत्तिमें फँस जायँगे।

३–गोवर्धनपूजा अथवा अन्नकूट।

—:*:—

शास्त्रीय-स्वरूप।

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको अन्नकूटका महोत्सव किया जाता है। यद्यपि यह महोत्सव भगवान् कृष्णचन्द्रके अवतारके समय द्वापर युगके अन्तसे चला है, परन्तु भविष्यद्वक्ता वेद भगवान्ने व्रज और गोवर्धनका उल्लेख ऋग्वेदमें भी किया है :—

"व्रजं च विष्णुः सखि वां अपोर्णु ते० गोवर्धनधारणे महश्च०।"

इस कारण इस गोवर्धनपूजाको हम वैदिक महोत्सव कह सकते हैं।

श्रीमद्भागवतपुराणमें तो इस विषयकी समस्त कथा लिखी ही है, परन्तु यहां पर सनत्कुमारसंहिताके अनुसार अन्नकूट-महोत्सवका वर्णन किया जाता है। कारण कि, पूजाकी विधिके साथ इस प्रकरणको वहां ही लिखा है:—

कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत्।
गोवर्धनोत्सवश्चैव श्रीविष्णुः प्रीयतामिति॥

बालखिल्य नामके महर्षिने कहा—"ऋषियो! कार्तिकके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको अन्नकूट करके गोवर्धनका पूजन करना चाहिये, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होजायँ।" महर्षियोंने बालखिल्यकी इस बातको सुनकर पूछा,—"भगवन्! यह गोवर्धन कौन है और इसकी पूजाका क्या फल है, कृपया वर्णन करो।" बालखिल्यने कहा—"एक समय कृष्ण भगवान् अपने संगी समस्त गोपालों सहित गउओंको चराते हुए गोवर्धन-पर्वतकी तराईमें गये। वहां जाकर सब गोपोंने अपने अपने छीकोंमेंसे खोलकर रोटी खाना प्रारंभ किया। भोजन करनेके उपरान्त सब गोपालोंने वनमेंसे नाना प्रकारकी लतादि-

का संग्रह किसी मंडपके निर्माण करनेको किया। तबतो भगवान् कृष्ण बोले, कि क्या आज किसी देवताका कोई महोत्सव है? और यदि है तो किसका? गोपालों ने कहा—"आज व्रजमें बड़ा आनन्द होगा और घर घर पकान्न भोजन तयार हो रहा होगा।" कृष्ण भगवान्ने कहा,—"देवपूजा करनी तो अच्छी ही है, परन्तु यदि देवता प्रत्यक्ष आकर पकान्न भोजन करता हो, तो तुमलोगोंको अवश्य यह उत्सव करना चाहिये और यदि देवता प्रत्यक्ष आकर भोजन न करे तो सिवाय इसके क्या कहूँ, कि तुमलोगोंको ब्रह्माने गोपाल मूर्ख उत्पन्न किया है। अतः प्रत्यक्षको छोड़कर परोक्षकी ओर झुक गये हो।" गोपोंने कृष्णके इस कथनसे दुखी होकर कहा—"कृष्ण! तुमको इस प्रकार देवताकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। यह महोत्सव किसी सामान्य देवताका नहीं, किन्तु तेंतीस कोटि देवोंका अधिपति, वृत्रासुर जैसे भारी असुरका संहारकर्ता और मेघमण्डलका आज्ञापक महाराज इन्द्रका इन्द्रोजनामक यज्ञ है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस इन्द्रमखको करता है, उसके देशमें अतिवृष्टि और अनावृष्टि न होकर प्रजा सुखको भोगती है। इस कारण हे कृष्ण! आप भी इस यज्ञको आनन्दसे मनाँय, यही हम लोगोंकी प्रार्थना है।"

भगवान् कृष्णने जब गोपोंकी इस बातको सुना, तो हंसकर यह कहा,—"यह गोवर्धन-पर्वत ही सुभिक्ष एवं वृष्टिका करने वाला है। इसीकी पूजा मथुरा तथा गोकुलके लोगोंने पहले की है और हम गोप लोगोंका प्रत्यक्ष हितकर्ता भी यही है, इस कारण मैं तो इन्द्रके पूजनसे बलवान् इसीका पूजन मानता हूँ।" कृष्णकी इस बातसे बहुतसे गोप सहमत होगये और घरघर जा कर उन्होंने इतस्ततः कृष्णकी बातका मण्डन किया। इसका फल यह हुआ कि, नन्दराणीकी प्रेरणासे नन्द महाराजने सब गोपोंकी सभा करायी और कृष्णको बुलाकर पूछा—"इन्द्रकी पूजासे और उसकी तुष्टिसे तो सुभिक्ष होकर प्रजा सुखी होती है, किन्तु गोवर्धन-पूजाके लाभ क्या हैं, उनको तुम बतलाओ?" इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने जो कहा है, वह श्रीमद्भागवतके (१०—२४) में इस प्रकार लिखा है:—

वचो निशम्य नन्दस्य यथाऽन्येषां व्रजौकसाम्।
इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥
किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्त्तिनां ।
अनीशेनान्यथा कर्त्तुं स्वभाव-विहितं नृणाम् ॥
स्वभावतंत्रो हि नरः स्वभावमनुवर्त्तते ।
स्वभावस्य इदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥
देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥
सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यंत-हेतवः ।
रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥
रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ॥

"श्रीकृष्णने नन्दजी महाराज तथा अन्य वृद्ध गोपोंके वचनको श्रवणकर और इन्द्रको क्रोधित करनेके लिये—यह कहा, कि मनुष्य कर्मसे ही उत्पन्न होता है और कर्मसे ही मरता है। और तो क्या, परन्तु भय, अभय, सुख और दुःख ये सब बातें कर्मसे ही मिलती हैं। यदि तुम कहो, कि ईश्वर ही सुख और दुःखका देनेवाला है—यह मिथ्या है, कारण कि ईश्वर भी कर्म करनेवालेको कर्मानुसार ही फल देता है। जो मनुष्य कर्मोंसे रहित है, उसको परमेश्वर किसी प्रकारका भी फल नहीं देता। जो फल प्राणियोंको स्व स्व-कर्मानुसार मिलता है, उसमें जब ईश्वर भी स्वतंत्रतासे फल देने वाला नहीं, तो अनीश्वर-इन्द्र विचारेकी क्या गति है, जो अन्यथा कर सके। सब मनुष्य स्वभाव (पूर्वजन्मकृत कर्म) के अनुसार ही चलते हैं। और तो क्या, परन्तु देव, असुर तथा मनुष्य भी स्वभावका तिरस्कार नहीं कर सकते। देहोंका उच्च-नीच भाव, सुख-दुःख और शत्रु-मित्र ये सब बातें भी स्वभावानुसार ही हैं-इनका नियामक कर्म ही है। सत्व, रज और तम-ये तीन गुण ही जगत्के स्थिति, पालन और लयके हेतु हैं। इन तीनोंमे भी विविध प्रकारका जगत् बनाने वाला रजोगुण ही है। इस रजोगुणसे प्रेरित होकर ही मेघ संसारमें वृष्टि करते हैं। प्रत्यक्षमें हम लोग गोप हैं, हमारी वृत्तिका विशेष सम्बन्ध गोवर्धन-पर्वतसे ही है। अतः मेरी समझमें इसकी पूजा करना योग्य है।"

श्रीकृष्णके इस सारगर्भित उपदेशको सुनकर सब गोप गोवर्धन-पूजामें तत्पर हो गये।

सर्वेषामग्रणीर्भूत्वा गोवर्धनमहोत्सवम्।
ततः कृष्णस्तथेत्युक्त्वा उत्सवे कृतनिश्चयः॥

सब लोगोंने भगवान् कृष्णकी इस बातको स्वीकार किया तथा कृष्णको ही अग्रणी बनाकर जो नाना प्रकारके व्यंजन इन्द्रोजके निमित्त किये थे, उनसे ही गोवर्धनकी पूजाका उपक्रम किया गया। दधि, घृत, दुग्धादिके भाण्डोंको और खाद्य, पेय, लेह्य, चोष्य पदार्थोंको लेकर गोपी, ग्वाल-बाल सब गोवर्धनकी उपत्यकामें पहुंचे तथा भगवान् कृष्णने जिस प्रकारसे बतलायी, उस प्रकारसे गोवर्धनकी पूजा की। प्रथम तो सबने मिलकर एक स्वरसे यह मन्त्र पढ़ाः—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
बहुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव॥
लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥

जब सबने उच्चस्वरसे इस मन्त्रको पढ़ा, तो उसी समय भगवान् कृष्णने अपने आधिदैविकरूपसे पर्वतमें प्रवेश किया। उस समय गिरिराजने व्रजवासियोंके दिये सब पदार्थोंको भक्षण किया, तथा उन सबको आशीर्वाद भी दिया, जिससे सब गोपाल बहुत प्रसन्न हुए और अपने यज्ञको सफल समझा।

व्रजवासी जिस समय गोवर्धन महोत्सवको सानन्द मना रहे थे, उस समय नारदजी इन्द्र-महोत्सव देखनेकी कामनासे वहाँ आये। लोगोंसे पूछा,—"यह इन्द्रोज है या कुछ और?" व्रजवासियोंने प्रार्थना की—"भगवन्! इस वर्ष कृष्णकी इच्छानुसार इन्द्रोजको बन्द करके गोवर्धनकी पूजा की गयी है।" नारदजी यह श्रवणकर उसी समय इन्द्रलोकको चले गये। इन्द्रने पूछा,—"नारदजी! आप प्रसन्न तो हैं?" नारदजी कुछ म्लानमुख होकर बोले,—"इन्द्र! मेरा तो चित्त सदैव प्रसन्न रहता है, परन्तु जो अधिकारारूढ़ हैं, उनका चित्त प्रसन्न नहीं रह सकता। कारण कि जिस सत्ताका वे उपभोग करते हैं, उसको अन्य सत्ताधीश भी चाहता है और यदि उसका वीर्य तथा शस्त्र बल अधिक हुआ तो प्रथम सत्ताधीशसे सत्ताको छुड़ाकर, अपर सत्ताधीश प्रसन्न हो जाता है। इसीसे शास्त्रकारोंने कहा हैः—

यस्य वीर्यञ्च शस्त्रञ्च तस्य राज्यं प्रजायते।

"जिसके पास वीर्य और शस्त्रका जोर हो वही राजा होता है।" यही कारण है, कि गोकुलके निवासी गोप लोगोंने आपके इन्द्रोजको बन्द करके, बलवान् गोवर्धनकी पूजा की है। आजसे यज्ञादिकोंमें तो उसका भाग हो ही गया, परन्तु क्या आश्चर्य्य है, कि अचिर कालमें ही कृष्णकी सम्मतिसे तुम्हारे-पर चढ़ाई कर दे और इन्द्रासन भी उसके अधिकारमें चला जाय।"

नारदजी तो यह कहकर चले गये, परन्तु इन्द्रके मनको बहुत क्षोभ हुआ। क्रुद्ध-देवराजने अपनी अवज्ञाको सहन न करते हुए साम्वर्तकादि मेघोंको प्रेरणा की,—"मेघो! प्रलयके समय जैसी वृष्टि करते हो, गोकुलपर उसी प्रकारकी वर्षा करके पृथ्वीसे गोकुलका नाम नष्ट कर देना चाहिये।" साम्वर्तादिक मेघोंने इन्द्रके अनुशासनको पाकर जब ब्रजपर मूसलधार वृष्टिका करना प्रारम्भ किया, तो घबड़ाकर सब गोपी-गोप कृष्णके शरण गये और प्रार्थना की,—"भगवन्! यदि इस समय हमारी रक्षा न हुई, तो हम सब अकाल मृत्युसे मरकर कालके गालमें चले जायँगे।"

कृष्णने गोप तथा गोपियोंके इस आर्तनादको श्रवण कर कहा,—"तुम सब गोवर्धन-पर्वतकी शरणमें चलो, वह तुम्हारी अवश्य ही रक्षा करेगा।" जब सब ब्रजवासी गोकुलसे निकलकर गोवर्धनकी उपत्यकामें गये, तो उस समय गोवर्धनको कृष्णने अपने हाथपर छत्रकी तरह धारण कर लिया, कि जिसके नीचे गोधनसहित समस्त ब्रजवासियोंकी रक्षा हुयी। मेघोंने सात दिन तक अपारवृष्टि की, परन्तु चक्र-सुदर्शनके प्रभावसे ब्रजपर एक बूँद भी न गिरी। इन्द्र यह जान कर तथा ब्रह्माजीसे भगवान् कृष्णके अवतार होनेकी बात सुनकर ब्रजमें आया और श्रीकृष्णके चरणोंमें गिरकर अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करके क्षमा प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार अपने अपराधको क्षमा करा कर देवराज इन्द्रके चले जानेपर कृष्णने सातवें दिन गोवर्धन-पर्वतको नीचे रखा और ब्रजवासियोंसे कहा,—"देखा तुमने पर्वतराजके प्रभावको? मैंने इसीका बल पाकर सात दिनतक आप लोगोंकी रक्षा की और इसीके प्रबल प्रतापसे देवराजको क्षमा प्रार्थना करनेका अवसर प्राप्त हुआ। अब तुम लोगोंको चाहिये, कि प्रतिवर्ष इस गोवर्धन-पूजनको करके अन्नकूटका उत्सव मनाया करो। यह मत समझना, कि इस गोवर्धनकी पूजा मैं नवीन चलाता हूँ, माथुर और ब्रजवासी सदैवसे इसकी पूजा करते चले आये थे, परन्तु बीचमें भूल गये, मैंने उसीको पुनः स्मरण करा दिया है।"

लौकिक स्वरूप ।

इस त्यौहारका प्रचार वैसे तो समस्त भारतमें ही है, परन्तु व्रजमें अधिक है और गोवर्धन ग्राममें तो अधिकतर है। सहस्रावधि कोसोंसे चलकर भावुक लोग इस अवसरपर गोवर्धनमें जाते हैं। सुना है, कि कभी कभी इस अवसरपर गोवर्धनमें तीन तीन लक्ष मनुष्योंका संघट्ट हो जाता है। जिस प्रकार बरसानेकी होली प्रसिद्ध है, उसी प्रकार गोवर्धन-पूजा गोवर्धनकी प्रसिद्ध है। गोवर्धन ग्राममें ही मानसी गंगा है। इस गंगाके तटपर ही गोवर्धनका मुख है, जहां व्रजवासियोंने पूजन किया था। गोवर्धनपर्वतकी परिक्रमा लगभग पांच कोसकी है। गोवर्धनमें जानेवाले सभी यात्री इस परिक्रमाका परिक्रमण करते हैं। यहां तक कि जो लोग गोवर्धन न जाकर घरपर ही पूजन करते हैं, वे भी गोबरके बने हुए गोवर्धनकी परिक्रमा करते हैं और यह कहा करते हैं :—

"गोवर्धन परिकम्मा देव ।
मानसी गंगा श्रीहरि देव ।"

गोवर्धन-पूजाका प्रचार राजपूताना, यू. पी. सी. पी. और सेन्ट्रल इन्डियामें भी अच्छा है। लोग इस दिन गोबरका एक गोवर्धन बनाते हैं, उसमें छाछ करनेकी रवि, कुछ मयूरपुच्छ, औंगाके वृक्ष और कदली वृक्षादि भी गाड़ देते हैं, जिससे पर्वतकी सी ही छटा हो जाया करती है। दूध, दधि, घृत और पक्वान्नादि अथवा चावलोंका भोग लगाते हैं और विधिवत् पूजा भी की जाती है। व्रजसे दूसरे दर्जेका आनन्द श्रीनाथद्वार (मेवाड़) में आता है। वहांपर भी दूर दूर देशके सहस्रावधि धनिक लोग इन दिनोंमें जाकर अपने जीवनको सफल करते हैं। यह त्यौहार और भी देशोंमें अवश्य मनाया जाता है; परन्तु कहीं अधिक कहीं न्यून।

अन्नकूटसे शिक्षा ।

अन्नकूट त्यौहारसे हमको क्या शिक्षा मिलती है? इसकी मीमांसामें पाठकोंका बहुत समय लेनेकी इच्छा नहीं है, कारण कि अन्नकूटका वास्तविक उद्देश्य गोवर्धन-पूजन है। हां, श्रीकृष्णचन्द्रने गोवर्धन-पूजामें विज्ञानपर ज़ोर देते हुए यहां तक कह दिया है, कि ईश्वर भी कर्मोंके अनुसार ही फल देता है, अन्यथा कुछ नहीं कर सकता। सुख और दुःख ये सब बातें कर्मसे सम्बन्ध रखती हैं, इस कारण कर्म मनुष्यका सबसे प्रथम कर्तव्य है। जो कर्मविज्ञान

गीताके १८ वें अध्यायमें समाप्त किया है, मेरी समझमें वही कर्मका रहस्य यहां भागवतमें गोवर्धन लीलाके अवसरपर तीन श्लोकमें समाप्त कर दिया है। व्रजवासी इन्द्रके भरोसेपर अकर्मण्य बन रहे थे, उनको कर्मण्य बनाना यह गोवर्धन लीलाकी पहली शिक्षा है।

बहुतसे ज्ञानी और भक्त लोग कर्मकी व्यर्थ ही निन्दा करके, उसके करनेसे अपने अनुयायियोंको रोकते हैं और कहते हैं,—"कर्मफल सदैव क्रिया-जन्य होता है और जो क्रियाजन्य होता है, वह नाशवान्—क्षयिष्णु होता है। जब कर्मफल स्वयं अनित्य है, तो वह नित्य-मोक्षको देनेमें कारण कैसे हो सकता है और जब वह मुक्तिका कारण ही नहीं, तो उसके करनेसे व्यर्थ ही कालको व्यतीत करनेके सिवाय और क्या हो सकता है। इस कारण कर्म निष्फल है, —यह समझकर ज्ञानी और भक्तोंको कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं।" परन्तु पाठक वर्ग! यह युक्ति अर्थशून्य ही नहीं, किन्तु मनुष्यके जीवनको भ्रष्ट करने-वाली भी है। मुक्तिका साक्षात् कारण ज्ञानपूर्वक भक्ति अवश्य है। इसको सभी शास्त्रवेत्ता जानते और मानते हैं, परन्तु कारण दो प्रकारके होते हैं,—(१) साक्षात् और (२) परम्परागत। साक्षात्को अन्तरंग और परम्परागतको बहिरंग साधन या कारण कहते हैं। किसी लक्ष्यके वेध करनेमें तीर अन्तरङ्ग और कमान बहिरङ्ग कारण है—तीर साक्षात् कारण और कमान परम्परागत कारण है।

अब, लोगोंने अनायास समझ लिया होगा, कि किसी भी लक्ष्यके वेधन करनेमें जितनी तीरकी आवश्यकता है, उतनी ही कमानकी भी है। यदि कोई मनुष्य कमानका तिरस्कार करके तीरको ही ग्राह्य बतलाय, तो मेरी समझमें उसने दार्शनिक-सृष्टिका अवलोकन नहीं किया है। जिस प्रकार ज्ञान और भक्ति, मुक्तिके साक्षात् कारण हैं, उसी प्रकार कर्म भी मुक्तिका बहिरंग कारण है। बल्कि, निष्काम कर्म तो अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग—दोनों प्रकारका कारण है; क्योंकि उसमें ज्ञान और भक्तिका समावेश है। कर्म फिलासफीको न जानकर जो लोग उसकी निन्दा करते हैं, वे देशका अधःपात करने वाले हैं। इसी कारण भगवान् कृष्णने गोवर्धन लीलाके द्वारा शुभ कर्म करनेका तत्त्व व्रजवासियोंको समझाया है।

४—यमद्वितीया-भाईदोज।

शास्त्रीय स्वरूप।

शास्त्रकारोंने कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको अपराण्हव्यापिनी ही ग्रहण किया है और भविष्य-पुराणमें इसकी विधि नीचे लिखे अनुसार बतलाई है:—

ऊर्जे शुक्लद्वितीयायामपराण्हेऽर्चयेद्यमम्।
स्नानं कृत्वा भानुजन्यां यमलोकं न पश्यति॥
कार्तिके शुक्ल-पक्षे तु द्वितीयायां युधिष्ठिर।
यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः॥

"कार्तिक शुक्ला दोजको प्रातःकाल स्नान करके यमुनाका पूजन करे तथा अपराण्ह कालमें यमराजका पूजन करे। हे युधिष्ठिर! सूर्य्यकन्या यमुनाने आजके दिन प्राचीन कालमें अपने भाई यमराजको निमंत्रण देकर अपने घर-पर भोजन कराया था, इसी लिये इस दिन किसी भी पुरुषको अपने घरपर भोजन नहीं करना चाहिये—यत्न करके भी आज दिन बहिनके घर ही भोजन करना चाहिये, जो अत्यन्त पुष्टिका देने वाला होता है। भोजन करनेके उपरान्त स्वर्ण, वस्त्र और अलङ्कार आदिसे बहिनका सत्कार करना चाहिये। यदि दैवात् सहोदरा बहिन न हो, तो समीप कुटुम्बकी या मानी हुई बहिनके घर ही भोजन करना योग्य है और कदाचित् सर्वथा अभाव हो, तो पिताकी बहिन फूआके घरपर भोजन करना चाहिये, अथवा मामाकी कन्याके घरपर भोजन करना योग्य है; क्योंकि आज दिन भगिनीके घरका भोजन धन, धान्य, यश, आयु और बल आदिका वृद्धि करने वाला है। जो मनुष्य भगिनीगृहभोजन और यमराजका पूजन करता है, उसको नरकादि यातनाओंका भय कदापि नहीं रहता।"

अथ कथा।

इस यम-द्वितीया एवं भाई-दोजका माहात्म्य सनत्कुमारसंहितामें लिखा है। बालखिल्योंने समस्त ऋषियोंको कहा:—

कार्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीया यमसंज्ञिता।
तत्रापराण्हे कर्त्तव्यं सर्वथैव यमार्चनम्॥

"कार्तिककी यम-द्वितीयाको अपराह्न-व्यापिनी ग्रहण करना चाहिये, तथा यमका पूजन करना चाहिये ।" यमुना प्रतिदिन अपने भाई यमके पास जाकर प्रार्थना करती थी, कि भाई ! तू कभी मेरे घरपर चलकर भोजन कर । हाँ आज हाँ कल कहते हुए यमराज एक दिन यमुनाके घरपर भोजनोंको आगये, वह दिन कार्तिक सुदी द्वितीयाका था । यमराजने भोजन करनेके उपरान्त वहिनको अनेक भूषण वस्त्रोंसे अलंकृत किया और अन्तमें कहा,— "वहिन ! आज तुम जो चाहो मांग सकती हो, मैं सर्वथा तुम्हारी इच्छाका पालन करूँगा ।" यमुनाने कहा,—"भाई ! जो तुम मुझको वरदान देना चाहते हो, तो प्रतिवर्ष आज-दिन तुम मेरे घरपर आकर भोजन किया करो और जितने पापी इस समय नरकमें हैं, उनको छोड़ दो । इसके अतिरिक्त आजके दिन जो मनुष्य मेरा तथा तुम्हारा पूजन करके वहिनके घर भोजन करे, उसको नरककी यातना न हो ।" यमराजने कहा,—"भगिनि ! जो लोग आजके दिन यमुना-स्नान और भगिनी-गृह भोजन कर, पितृदेवोंका तथा मेरा पूजन करेंगे, वे कभी भी नरकके द्वारको न देखेंगे । उनको मेरी पूजाके पश्चात् सूर्याभिमुख होकर मेरे दश नाम सूचक मंत्रको ११० वार जपना चाहियेः—

हंता यमः पितृ च धर्मराजो भूताधिपो दत्तकृतानुसारी ।
वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति ॥

तत्पश्चात् भगिनीके घरपर जाकर भोजन करे । सहोदराके अभावमें गोत्रजा या मानी हुईके घरपर जाकर भोजन करे और भगिनीकी प्राप्ति न हो, तो फुआ या मामाकी कन्याके घरपर भोजन करना चाहिये ।" इस कथाको श्रवण करने वाले मनुष्यको यमुनास्नानके वरावर फल होगा ।

लौकिक स्वरूप ।

भाई-दोजका प्रचार मेरी समझसे भारतके सभी प्रान्तोंमें है और देशी राज्योंमें दवातका भी पूजन किया जाता है । जो सरकारी नौकर हैं, वे दवात-पूजन भी करते हैं, एकभुक्त व्रत भी करते हैं और अपनी शक्तिके अनुसार खिचड़ी आदि पदार्थोंका दान भी करते हैं । यमराजके पूजनका प्रचार बहुत नहीं, किन्तु थोड़ा अवश्य है । यम-द्वितीयाके दिन यमुना-पूजनका आनन्द देखना हो, तो मथुरा नगरीमें जाकर देखना चाहिये । देश देशके लाखों मनुष्योंकी प्रदर्शनी उस अवसरपर वहाँ देखनेको मिलेगी और साथ साथ ही मनुष्यजन्मका फल जो अभयता वह भी यमुनास्नानसे प्राप्त होगा ।

शिक्षा।

यम द्वितीयामें सबसे विशेष विधान बहिनके घरपर जाकर उसके हाथसे भोजनकर उसको प्रसन्न करनेका है; अतः मैं इस त्यौहारको कौटुम्बिक त्यौहारोंमें सबसे परम श्रेष्ठ मानता हूं और संसारमें अत्यन्त प्रयोजनीय भ्रातृ-भगिनीभावका उत्पादक भी समझता हूं। एक पिताके दो पुत्र भाई-भाई कारणवश पृथक पृथक स्थानोंमें रहने लगते हैं, तो भी उन दोनोंकी आपसमें समानता रहती है, परन्तु भाई और वहिनकी स्थितिमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। वहिनको अपने कुटुम्ब-रूप वृक्षकी डालीसे टूटकर, परस्थितिरूप नदीके प्रवाहमें वहकर बहुधा अत्यन्त विभिन्न स्थितिमें परिणत होना होता है, ऐसी हालतमें भाई और वहिनका परस्पर अविच्छिन्न सम्बन्ध रह जाय, यह असंभव है।

किसी कन्याका विवाह एक ऐसे कुटुम्बमें हुआ है, कि जिनके कुलका परम्परा सम्बन्ध राजघरानेसे है। कभी कभी तो यहां तक होता है, कि वह कन्या अत्यन्त निर्धन घरानेसे निकल कर राज्यारूढ़ और धनाढय पतिकी पत्नी बनती है और पिता तथा भाई उसी दिन-हीन दशामें रहते हैं। इसके विपरीत एक कन्या लक्षाधिपति माँ-बाप और भाईयोंके घरसे निकलकर एक ऐसे कुटुम्बमें जाती है, जिसको बड़ी भारी दरिद्रताका अनुभव करना पड़ता है,—इन दोनों दशाओंमें वहिन और भाईका अविच्छिन्नरूपसे सम्बन्ध रहे इस प्रकारकी कोई आकर्षणशक्ति नहीं रहती। बहिनके अधिकारारूढ़ हो जानेपर भाईकी तरफसे कोई आकर्षण नही रहता और भाईके सबल हो जानेपर वहिनकी तरफसे कोई आकर्षण नही रहता। ऐसे अवसरपर यह यम-द्वितीयाका त्यौहार उस स्वाभाविक सम्बन्धको अविच्छिन्नरूपसे स्थापित रखनेमें अपने ढङ्गका आदर्श त्यौहार है। भारतवर्षके प्रत्येक उत्सव या व्रतमें इसी प्रकारका विज्ञान भरा है, परन्तु स्थूल दृष्टि वालोंकी निगाहमें नहीं आता-यह शास्त्रोंकी त्रुटि नहीं, किन्तु देखनेवालोंकी भूल है। सारांश यह है, कि भाई चाहे कितना ही धनाढ्य क्यों न हो और वहिन चाहे कितनी ही निर्धनतावस्थामें क्यों न हो, परन्तु इन दोनोंका सम्बन्ध अविच्छिन्न है—यह यम-द्वितीयासे जाना जाता है।

यमद्वितीयाके त्यौहारसे एक और भी शिक्षा मिलती है। वह यह,—

"संसारमें प्रायः अच्छे कार्य धर्मसे ही हुआ करते हैं और धर्ममें मनुष्यको प्रीति उत्पन्न हो इसके दो ही मार्ग हैं,—"(१) तात्त्विक-विचार और (२) डर।" तात्त्विक दृष्टिसे धर्मको जगत्का कल्याणकारक समझ लिया जाय-यह उत्तमोत्तम पक्ष है और यदि यह संभव न हो, तो फिर किसी नियामकके डर बिना प्रीति होना असम्भव है, इस कारण द्वितीय उपाय डर भी है।

डर तरणी डर परम गुरु, डर डर ही को सार
जो डर डरे सो ऊबरे, ग़ाफ़िल खाई मार।

सत्य ही है, जो लोग परलोकसे डरते हैं, वे ही अपने जीवनको पवित्र बना सकते हैं और जिनको स्वर्ग तथा नरकका विश्वास नहीं है, वे ही अधर्मी और नरकगामी हैं। किसी भी बुरे कार्यको करता हुआ मनुष्य यदि प्रथम अपने अन्तःकरणमें नरकयातनाओंका स्मरण कर ले तो निःसन्देह उसके हाथसे धर्म विरुद्ध कार्य न हों। ठीक इसी प्रकारका बोध यम-द्वितीयाके दिन यमराजके पूजनसे होता है। अतः यम-द्वितीयाके व्रती-लोगोंको इसका सदैव ध्यान रखना योग्य है।

५—भीष्म पंचक और देवप्रबोधिनी।

शास्त्रीय स्वरूप।

यद्यपि यह दोनों व्रत पृथक् पृथक् हैं, परन्तु इनका विवरण सनत्कुमार-संहिताकी एक ही कथामें आया है, क्योंकि ये दोनों कार्तिक-शुक्लैकादशीके ही दिन होते हैं। अतः चन्द्रिकामें भी इनको एक ही साथ लिखा है, पर यह स्मरण रहे, कि भीष्म-पञ्चक-व्रतका प्रारम्भ एकादशीसे होता है, किन्तु समाप्ति पौर्णिमाको होती है।

अथ कथा।

हेमाद्रि तथा नारदीय खण्डमें जो विवरण लिखा है, उसमें नारदजीने ब्रह्माजीसे यह पूछा है:—

यदेतदचलं पुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
कर्त्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकम्॥

"अचल फलका देने वाला जो भीष्मपञ्चक व्रत कार्तिक मासमें किया जाता है, उसका विधान और फल कृपा करके बतलाओ।" ब्रह्माजीने इस व्रतकी परमोत्तम कथाको इस प्रकार कहा,—"इस व्रतको वासुदेव भगवान्ने भीष्मपितामहसे कहा था। इस कारण इसका नाम भीष्मपंचक व्रत है। इस भीष्मपञ्चक व्रतके अपरिमित गुणोंका वर्णन तो किसकी सामर्थ्य है, जो कर सके, केवल केशव ही जानते हैं, परन्तु प्रयत्न करके मनुष्यमात्रको इसे अवश्य करना चाहिये।" भीष्मपञ्चकव्रत तथा देवप्रबोधिनीका पूरा विवरण सनत्कुमारसंहितामें इस प्रकार आया है:—

कार्तिकस्य सिते पक्षे स्नात्वा सम्यग्यतव्रतः।
एकादश्यां तु गृह्णीयाद्व्रतं पंचदिनात्मकम्॥

कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें प्रत्येक पुरुषको स्नान करके एकादशीके दिनसे भीष्मपञ्चक व्रतका पांच दिनके लिये प्रारंभ करना चाहिये, यह बात वालखिल्योंने ऋषियोंसे कही है। भीष्मपितामह भारतके अन्तमें जिस समय शर-शैय्यापर शयन कर रहे थे, उस समय भगवान् कृष्णके सहित राजा युधिष्ठिर पितामहके पास गये और राजा युधिष्ठिरके पूछनेपर पितामहने राजधर्म, मोक्षधर्म और वर्णधर्म—आदि अनेक धर्मोंको श्रवण कराया। उसी समय महावीर अर्जुनने पितामहकी इच्छा होनेपर वाणगंगाको निकाला, जिससे पितामह बहुत संतुष्ट हुए। श्रीकृष्णने कहा,—"भीष्म! तुमने कार्तिक शुक्लैकादशीसे पौर्णिमा तक पांच दिनमें जो जो धार्मिक विषय कहे हैं, मुझको उनसे बड़ा आनन्द हुआ है। अतः इसके स्मरणार्थ यह भीष्मपंचक व्रत स्थापित किया जाता है। जो लोग इस पंचकका पालन करेंगे तथा इसकी कथाको सुनेगें, वे अनेक संकटोंसे निवृत्त होकर अनेक सुखोंका उपभोग करते हुए परम शान्तिको प्राप्त होंगे। अर्जुनकी लाई हुई गंगासे आपको आनन्द हुआ है। अतः जो लोग गंगाजलका अर्घ देकर आपको संतुष्ट करेंगे, वे सदैव सुखी रहेंगे। जो लोग कार्तिक मासमें स्नान करके भीष्मपञ्चक व्रतको न करेंगे उनके अनुष्ठित कार्तिक व्रतका फल मिलना असम्भव है, जिस गृहस्थको पुत्रकी कामना हो, वह अवश्य इस व्रतको करे, कारण कि पुत्रोत्पन्न होना, इस व्रतका असाधारण गुण है।"

वालखिल्योंने कहा, कि इसी दिन कार्तिक शुक्ला एकादशीको देवप्रबोधिनी एकादशीका भी विधान है। भगवान् विष्णुने भाद्रपद मासकी एका-

दशीके दिन महापराक्रमी शंखासुर राक्षसको मारा था और उसके बाद क्षीर-समुद्रमें जाकर सो गये तथा कार्तिक-शुक्ला एकादशीके दिन जगे, इस कारण वैष्णवोंका धर्म है, कि एकादशीके दिन विष्णुका प्रबोध कराना चाहिये। शास्त्रोक्तविधिसे षोड़शोपचारपूर्वक विष्णुका साङ्ग पूजन करे तथा भगवान्को उठानेके निमित्त निम्न लिखित मन्त्रोंको पढ़े:—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शंखघ्न उत्तिष्ठांभोधिचारक ।
उत्तिष्ठ मुनिनौधार त्रैलोक्ये मंगलं कुरु ॥
उत्तिष्ठ धरणीधार वराहादिकधारक ।
कूर्मरूपधरोत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मंगलं कुरु ॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर ।
हिरण्याक्षप्राणघातिन् त्रैलोक्ये मंगलं कुरु॥
हिरण्यकशिपुघ्नस्त्वं प्रह्लादानन्ददायकः ।
लक्ष्मीपते समुत्तिष्ठ त्रैलोक्ये मंगलं कुरु ॥

इस प्रकार प्रार्थनाके श्लोकोंको पढ़कर और अनेक बाजोंके घोषसे देवोत्थापिनीका पारणा करना चाहिये ।

लौकिक स्वरूप ।

भीष्मपंचक व्रतका तो प्रचार वर्तमान समयमें अधिक नहीं पाया जाता, परन्तु देवप्रबोधिनी एकादशीका प्रचार प्रायः भारतके प्रत्येक भागोंमें है। वास्तवमें देखा जाय तो एकादशीका व्रत वैष्णवोंका है, परन्तु शिवजी भी हरि भक्त थे, अथवा हरि ही थे, इस भावको लेकर स्मार्त्त लोग भी एकादशीके व्रतको करते हैं, किन्तु इनकी एकादशी भिन्न भिन्न वेदोंके हिसाबसे कभी कभी द्वितीय दिन हो जाया करती है। अस्तु, देवशयनी और देवप्रबोधिनी इन दोनों एकादशियोंको प्रायः सभी सम्प्रदायवाले मानते हैं। इसका एक और भी कारण है—सब लोग इस व्रतको हरिव्रत नहीं समझते, किन्तु अपने अपने घरू-देवताओंके उठानेका दिन समझते हैं। यही कारण है, कि इस दिन देवोंका जो पूजन होता है, उसकी पद्धति एकादशीसे पृथक् है। जो विद्वान् हैं वे तो इसको हरिवासर समझकर फलाहार ही करते हैं, परन्तु सामान्य कोटिके लोग घरेलू-देवताओंके पूजनका दिन मानकर कहीं कहीं चावल आदि कच्चे भोजन और कहीं पूड़ी आदि पक्क भोजन करते हैं। इस पूजनमें देवताओंकी आकृति बनानेकी भी परिपाटी है—किसी किसी स्थानमें तो दिवालपर चित्र लिखकर देवतोंका

पूजन करते हैं और किसी किसीके यहां मिट्टीके सात या पांच धौरा (ढ़ेर) बनाकर देवताओंका पूजन किया जाता है। वृन्ताक—आदि जिन पदार्थोंका देवशयनी एकादशीसे खाना बन्द होता है, उनका ग्रहण किसीके यहां अन्नकूटके दिनसे और किसी किसीके यहाँ प्रबोधिनीके दिनसे हो जाता है। भावुक लोग बेर, कांकड़ी, गन्ना और सिंगाड़े आदि इस समयके उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंको तबतक काममें नहीं लाते, जबतक कि देवप्रबोधिनीके दिन देवतोंपर न चढ़ा लें।

शिक्षा।

देवप्रबोधिनी एकादशी हमको कर्मयोगी बननेकी प्रेरणा करती है। कारण कि शास्त्रकारोंने यह दिन परमात्माको उठानेका है-यह बतलाया है। संसारमें हम देखते हैं, कि आवश्यक कार्य करने वाला अधिकारी रातको जब सोने लगता है, तो पहरेवाले सिपाहीको कहता है. कि हमको दो बजे रातको जगा देना; परन्तु यह स्मरण रहे, कि वह अधिकारी सोते हुए अथवा सोने वालेसे नहीं कहता कि हमको जगा देना क्योंकि वह जानता है, कि स्वयं सोने-वाला हमको क्या जगायगा। सज्जनो! यह देवप्रबोधिनी एकादशी कहनेको तो देवताओंके उठानेके निमित्त है, परन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो हमलोगोंको जाग्रत रहनेका यह परम सुन्दर उपदेश है। जब हम स्वयं ही सो रहे हैं, तो देवताओंको क्या उठायेंगे? देवताओंके उठानेका अधिकारी तो वह देश है, जो स्वयं उठ चुका है। देश वासियोंके उठते ही देश भी खड़ा होता है और देशके उठते ही सम्पूर्ण देवता उठ खड़े होते हैं।

सत्य तो यह है, कि हम भारतीय लोग इस समय देवप्रबोधनके अधि-कारी नहीं रहे। आधिदैविक देवताओंका प्रबोधन तो अनादि कालसे अबतक करते ही आये हैं, परन्तु आधिभौतिक देवताओंके प्रबोधनको पांच हज़ार वर्षसे छोड़ा है और अभीतक छोड़ते ही जाते हैं। अबतक संसारमें कुंभकर्णकी निद्रा ही प्रसिद्ध थी, परन्तु इस समय यदि वह जीवित होता, तो हमारी निद्राके सामने उसको भी लज्जित होना पड़ता, क्योंकि हम बिना करोट बदले पांच हज़ार वर्षसे बराबर सो रहे हैं और अब भी यह कौन जानता है, कि सोते-सोते ही हमारा समय व्यतीत होगा, या हम उठकर भगवती उन्नतिरूपा जान्हवीमें स्नान करके अपने इष्टदेवको जगायेंगे? हे भारतके वीरो! यह हरिप्रबोधिनी प्रतिवर्ष आपको बतलाती है,—"प्रथम तुम खड़े हो जाओ

और पुनः सच्चे हरिभक्त होकर आधिभौतिक देवप्रबोधनके साथ साथ आधि-दैविक देवप्रबोधनके व्रतको करो।"

इस त्यौहारमें भीष्मपंचक व्रत भी बड़े महत्त्वका है। जिस किसी व्यक्ति विशेष या घटना विशेषके नामसे त्यौहार हो, उसके शुभ गुणोंको ध्यानमें लाकर उनके अनुकूल अपने जीवनको बनाना ही त्यौहारका मुख्य उद्देश्य है। इस भीष्मपंचक व्रतका सम्बन्ध एक घटना और व्यक्ति दो से है। घटना यह है--"शरशैय्यापर लेटे हुए, भीष्मपितामहने महाराज युधिष्ठिरको सम्बोधन कर राजधर्म, मोक्षधर्म, नारीधर्म, पुरुषधर्म, और वर्णधर्म-आदिपर अनेक अमूल्य उपदेश दिये हैं, जिनकी प्रशंसा देवकीनन्दन भगवान् कृष्णने स्वयं की है। घटनासे शिक्षा ग्रहण करनेवाले मनुष्यको महाभारतका वह स्थल अवश्य देखना चाहिये और उसमें हमारे करने योग्य क्या क्या उपदेश हैं, उनको ग्रहण करके अपने जीवनको तन्मय बनाना चाहिये।" व्यक्ति भीष्म पितामह हैं। अतः व्रतके पालन करते समय उनके असाधारण गुणोंका अनुसन्धान अवश्य रहना चाहिये। यदि भीष्मव्रत करते हुए भीष्मके गुणोंका अनुकरण न किया तो, उस व्रतको थियेटरकी नकलसे विशेष मान मिलना कठिन है। एक पर-स्त्रीलम्पट पुरुषको आजीवन ब्रह्मचारी भीष्मपितामहके व्रतपालन करनेके स्वांग भरनेका क्या अधिकार है। जिस पितामहकी अपूर्व भक्तिसे मोहित होकर भगवान्ने स्वयं स्तुति की हो और जिसने पिताकी शुश्रूषार्थ संसारके समस्त सुखोंपर लात मारकर आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत धारण करते हुए पितृभक्ति-का अद्भुत आदर्श संसारके सामने रखा हो, उसके व्रतको एक परम नास्तिक या मातापिताको "ओल्ड फूल" कह कर तिरस्कार करने वाली अधम संतानको पालन करनेका कोई भी अधिकार नहीं है। अतः भीष्मपंचक व्रतके पालन करनेवालोंको ब्रह्मचर्य, पितृभक्ति और भगवद्-भक्तिका अवश्य ही आदर्श बनना चाहिये।

६—तुलसी विवाहोत्सव।

—०:※:०—

शास्त्रीय-स्वरूप।

कार्तिक शुक्ला एकादशीको तुलसी-विवाहोत्सव होता है। उसका विवरण सनत्कुमारसंहितामें इस प्रकारसे आया है:—

उत्थापयित्वा देवेशं पूजां तस्य विधाय च।
सायंकाले प्रकर्त्तव्यस्तुलस्योद्वाहजो विधिः॥

"देवेश विष्णुका उत्थापन करे और पूजन करे, तत्पश्चात्—सायंकालके समय तुलसी-विवाहोत्सवकी विधिको करना चाहिये।"—एक पल—तोले भरकी, या आधे तोलेकी अथवा पाव तोलेकी यथाशक्ति विष्णुकी मूर्त्ति बनवाकर विधिके अनुसार उसकी प्राणप्रतिष्ठा करानी चाहिये। प्रथम तो देश-कालादि नामोच्चारपूर्वक संकल्प करे, गणेशका पूजन करे, पुण्याहवाचन करे तथा नांदीमुख श्राद्ध कर, उस प्रतिष्ठित विष्णु-मूर्तिको बाजे गाजेके साथ, बरात सजाकर जिस प्रकार दूल्हा जाता है, उसी प्रकार तुलसीके पास ले जाय। विष्णुकी मूर्तिको तुलसीके पास स्थापित कर उनके बीचमें कपड़ेका परदा कर दे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुका आवाहन इस मन्त्रसे करे:—

आगच्छ भगवन् देव अर्चयिष्यामि केशव!।
तुभ्यं ददामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव॥

"हे भगवन्! आप आओ, आपकी मैं पूजा करूँगा, यह तुलसी आपके लिये देता हूं, कृपाकर मुझको वरदान दो।" यह कहकर तीन वार अर्घ देकर आसन दे और तीन वार ही आचमन करे। दधि, घृत और मधुको कांसीके पात्रमें मिलाकर भगवान्को मधुपर्क दे। तुलसीका विवाह करने वाला यजमान अपने कुलाचारोंको भी करे और हल्दी-उबटना-आदि करके स्नान कराय।

सायंकालके समय गोधूलीके मुहूर्तपर केशव और तुलसीका पूजन करना चाहिये तथा वर-कन्याके दो पक्ष करके गायन, वादन और मंगल कार्य्य करने चाहिये। जब बहुत थोड़ासा सूर्य्य अवशिष्ट रहे, तब अपने

गोत्र तथा प्रवरको कहकर अपने कुलके तीन पुरुषोंके नाम लेकर भगवान्से प्रार्थना करेः—

पार्वतीबीजसंभूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम् ।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां च ददाम्यहम् ॥

"पार्वतीने जिसके बीजको बोया, जो वृन्दाके भस्ममें उत्पन्न हुई तथा आदि, मध्य और अन्त रहित जो आपकी प्यारी तुलसी है, मैं प्रीतिपूर्वक उसीको देता हूँ ।"

द्रष्टव्य—

पाठकवर्ग! उपर्युक्त श्लोकके आशयको कदाचित् आपने न समझा होगा, कारण कि, पार्वतीने बीज बोया और वृन्दाके भस्ममें उत्पन्न हुई—यह तुलसी-की व्यवस्था सनत्कुमारसंहितामें नहीं है, किन्तु इसकी समस्त कथा पद्म-पुराणमें आयी है । एक समय सब देवता जालन्धर नामक असुरसे व्याकुल होकर भगवान् विष्णुके पास गये और प्रार्थना की,—"भगवन्! जालन्धर दैत्यने गो, ब्राह्मण और हम देवोंको बड़ी भारी तकलीफ दे रक्खी है तथा इस समय तो उसने स्वर्ग छुड़ानेके निमित्त महा संग्राम चला रक्खा है । बहुत संभव है, कि वह अचिर कालमें ही स्वर्गका अधिपति हो जाय । यद्यपि स्वर्गके अधिपति—इन्द्रका भी पराक्रम थोड़ा नहीं है, तथापि वृन्दा नाम्नी उसकी स्त्री परम पतिव्रता है, जिसके कारण वह किसीसे जीता नहीं जाता ।" भगवान्ने कहा,—"इसमें संदेह नहीं, कि वृन्दाके पतिव्रत-बलसे दुष्ट जालन्धर संसारमें अनेक उपद्रव कर रहा है, परन्तु तुम लोग चिन्ता मत करो । मैं अचिर कालमें ही वृन्दाके पातिव्रत्यको नष्ट कर तुम लोगोंके दुःखको निवृत्त करूँगा; क्योंकि जिस धर्मकी आड़में रहकर कोई मनुष्य अधर्म कर सकता हो, वह धर्म नहीं, किन्तु अधर्म है । वृन्दाका पतिव्रतधर्म परलोकके लिये होना चाहिये, न कि देवताओंको नष्ट करनेके लिये ।"—यह कहकर भगवान्ने एक माया रची । दो मृतक बन्दरोंको वृन्दाके भवनमें फेंका । उनको देखकर वृन्दाको ऐसी प्रतीति हुई, कि एक तो मेरे पति—जालन्धरका मस्तक है और दूसरा धड़ है । वृन्दाने मृत-पतिको देखकर बड़ा भारी शोक किया और अनेक प्रकारसे अपने पतिकी कीर्तिको गाकर विलाप करने लगी ।

इसी अवसरमें वहाँपर एक साधु आ गया और अत्यन्त दीना वृन्दाका

आश्वासन करते हुए कहा,—"यदि तेरी इच्छा हो, तो मैं इस तेरे मृत-पतिको पुनः जीवित कर दूँ।" वृन्दाके प्रार्थना करनेपर इस साधुने जालन्धरको जीता कर दिया—असली जालन्धर तो रणक्षेत्रमें लड़ रहा था, यह नकली जालन्धरका रूप स्वयं भगवान् विष्णुने धारण किया। वृन्दाने इस रहस्यको न जान सकनेसे उसको अपना पति समझ कर कण्ठसे लगा लिया। इस प्रकार कितने ही दिन तक विष्णु भगवान् वृन्दाके मकान पर रहे। एक आदर्श पतिव्रताने असली पतिके अतिरिक्त अन्य पुरुषमें पतिभाव किया, उसका फल यह निकला, कि महादैत्य जालन्धर रणांगनमें मारा गया। जब वृन्दाको यह खबर पड़ी, कि विष्णुने धोखा देकर मेरे पतिव्रतको भंग कर पतिको मरवा दिया, तो रोषसे व्याकुल होकर वृन्दाने शाप दिया,—"जिस प्रकार मुझको आज असह्य, पति-वियोग-जनित दुःख उठाना पड़ा है; उसी प्रकार तुम भी रामावतारमें पत्नी-वियोग-जनित दुःख उठाओगे और ये दो वानर ही तुम्हारी सहायता करेंगे।" यह कहकर वह पतिव्रता अपने मृत-पतिको चितापर आरूढ़ कराकर आप भी उसीके साथ सती हो गयी।

भगवान् विष्णुने जब यह विचार किया, कि हमने इस पतिव्रता वृन्दाको व्यर्थ ही ठगकर घोर परिश्रम दिया, कि असह्य दुःखमें इसको सती होना पड़ा, तब तो दयासे भगवान्का चित्त आर्द्र हो गया और 'हे वृन्दे!' यह कहकर उसके श्मशानमें जो भस्म था उसमें बेहोश होकर लोट गये। इस अवसरपर सब देवोंने भगवान्को समझाया और पार्वतीजीने भगवान्की प्रसन्नताके लिये वृन्दाके भस्ममें तुलसी, आँवला और मालती तीन वृक्षोंको लगाया। इन तीन वृक्षोंमेंसे तुलसीको ही भगवान्ने वृन्दाका स्वरूप माना और उस दिनसे तुलसीको अपनी प्रिया बनाया। कृष्णावतारमें रुक्मिणी यह वृन्दाका ही अवतार है।

सारांश, इस कथासे जाना गया कि, तुलसी इस कारणसे पार्वतीकी लगाई और वृन्दाके भस्ममें उत्पन्न हुई हरिकी प्रिया है। उपर्युक्त मन्त्रको उच्चारण करके फिर इस मन्त्रको भी कहेः—

पयोघटैश्च सेवाभिः कन्या च वर्द्धिता मया।
त्वत्प्रियां तुलसी तुभ्यं दास्यामि त्वं गृहाण भोः॥

"दूधके घड़ोंसे सींच सींच कर जो कन्या मैंने बढ़ाई है, वह आपकी प्रिया तुलसी आपके लिये देता हूं, कृपाकर इसको आप ग्रहण करें।" इस

प्रकार भगवान्के निमित्त तुलसीको देकर फिर उन दोनोंकी पूजा करे। रात्रिमें विवाहोत्सवकी भांति जागरण करे। प्रतिवर्ष तुलसी-विवाहोत्सव करना चाहिये।

शिक्षा।

तुलसी विवाहोत्सवसे हमको तीन शिक्षाएँ मिलती हैं;—"(१) पतिव्रतधर्मकी महनीयता, (२) व्यक्तिके हितसे समष्टिके हितकी उत्कृष्टता और (३) तुलसी महिमा।"

पतिव्रतधर्मकी महनीयता।

यों तो सनातनधर्मके समस्त ग्रन्थोंके पत्र-पत्रमें पातिव्रत्य-धर्मकी उत्कृष्टता भरी पड़ी है, परन्तु इस वृन्दाके इतिहासने तो पातिव्रत्यके माहात्म्यको चरमसीमापर पहुंचा दिया है। पतिव्रता स्त्रीके प्रभावसे चिड़िया भस्म हो गयी, वृक्ष जल गया, साधू घबड़ा गया, अग्नि चन्दनके समान शीतल हो गयी और सूर्यकी गति बन्द हो गयी—आदि आदि चमत्कार तो बहुत बार सुने थे, परन्तु "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंशक्य" भगवानको भी शाप दिया,—यह वृन्दाके अद्भुत पातिव्रत्यका ही प्रभाव था। जिस भगवान्की सुदृष्टिसे अखिल ब्रह्माण्डका सृजन होता है, पालन होता है तथा जिसकी वक्र दृष्टिसे प्रलय होता है, उस भगवान्को पतिव्रताके अतिरिक्त कौन शाप दे सकता है। वेदव्यासजीने इसी कारणसे कहा है,—"सर्पका पकड़ने वाला सपेरा जिस प्रकार बल पूर्वक बिलमेंसे सर्पको खींच लेता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री भी मातृकुल और श्वशुर कुलके नरकगत पूर्वजोंको नरकसे निकाल कर स्वर्गमें लेजाती है।"

व्यक्तिके हितसे समष्टिके हितकी उत्कृष्टता।

सनातनधर्मकी दृष्टिसे धर्म शब्दकी व्याख्या तत्काल कर देना असम्भव सा हो गया है; क्योंकि कहीं किसी क्रियाको धर्म और कहीं किसी क्रियाको अधर्म लिखा गया है। कितनी ही क्रियाएँ तो इस प्रकारकी हैं कि जिनको किसी स्थानपर धर्म और किसी स्थानमें उनको ही अधर्म माना गया है। ऐसी दशामें विद्वान् लोगोंने सब प्रकारकी उलझनोंसे बचते हुए "जिस क्रियासे किसी भी मनुष्यका वास्तविक हित-साधन होता हो, वह धर्म है"—यह लक्षण धर्मका निर्विवाद माना है। यद्यपि इस लक्षणमें धर्म शब्दका शास्त्रार्थ तो हल्का हो गया, परन्तु "हित" शब्दकी व्याख्या जटिल हो गयी। किसा किसी अवसरपर यह स्पष्ट देखा जाता है, कि जिस क्रियासे

किसी एक व्यक्तिका हित होता है, उसीसे समष्टिका अहित होता है। ऐसी दशामें हित शब्दकी व्याख्या करनी उतनी ही कठिन हो जाती है, जितनीकी धर्म शब्दकी। इसी कारण हित शब्दके मर्मज्ञोंने "व्यक्तिके हितसे समष्टिके हितकी उत्कृष्टता" बतलाकर स्पष्ट कर दिया है, कि जिस क्रियासे किसी भी मनुष्यका वास्तविक हित-साधन होता है वह धर्म अवश्य है; परन्तु हित शब्दकी व्याख्यामें व्यक्तिके हितसे समष्टिके हितकी प्रधानता है।

महाभारतके भीषण संग्राममें दुर्योधनकी ओरसे जिस समय द्रोणाचार्य जैसा महारथी पाण्डवदलके साथ लड़ रहा था और जिसके अतुल पराक्रम तथा युद्धकौशलसे पाण्डव ही नहीं, किन्तु भगवान् देवकीनन्दनको भी पाण्डवोंकी विजयमें सन्देह हो गया था, उस समय धर्माधर्मके विषयमें एक इसी प्रकारकी कठिनता उपस्थित हो गयी थी। भगवान् कृष्ण यह जानते थे, कि "अश्वत्थामा मर गया"—ये शब्द जबतक द्रोणाचार्यके कानमें न पहुँचेगा, तबतक कोटि उपाय करनेपर भी द्रोणाचार्य युद्धसे पराङ्मुख न होगा और जबतक द्रोण युद्धक्षेत्रमें डँटा रहेगा, तबतक पाण्डवोंकी विजय कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है; अतः अश्वत्थामा नामके एक हाथीको मरवाकर—यह प्रसिद्ध कराया, कि द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया, परन्तु अपने दलमें लड़ाते हुए द्रोणाचार्यने अपने पुत्र अश्वत्थामाके मरनेकी बातपर विश्वास नहीं किया। जब लोगोंने विशेष आग्रह वश कहा, कि निश्चय ही अश्वत्थामा मारा गया, तब द्रोणाचार्यने कहा,—"यदि यह सत्य है, तो मैं धर्मात्मा युधिष्ठिरसे पूछता हूँ।"

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उसी समय राजा युधिष्ठिरके पास गये और महाराजसे अनुरोध किया, कि द्रोणाचार्यके सामने आपको यह कहना ही होगा, कि आपका पुत्र—अश्वत्थामा मारा गया। धर्मात्मा युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी इस धर्म-विरुद्ध चालको पसन्द नहीं किया और बोले,—"भगवन्! मेरे झूठ बोलनेसे पाण्डवोंको भारतका शासन मिल जायगा-यह निश्चय है; परन्तु आप जानते हैं कि मैं झूँठ बोलकर भारतके राज्यको तो क्या, अखिल ब्रह्माण्डके आधिपत्यको भी लेना अनुचित समझता हूँ। मनुष्य जबतक जीवित है, तब तक उसमें धर्म है। धर्मरहित मनुष्य प्राणरहित हो जाता है; अतः मैं इस प्रकारका निन्द्य कार्य न करूँगा।" श्रीकृष्णने राजासे कहा,—"आप धर्मके पालक मात्र हैं, धर्मके स्थापक और प्रवर्तक नहीं हैं, क्योंकि

अवतार ही धर्मकी स्थापनाके लिये हुआ करते हैं। आपने धर्मके स्थूल-भागका विचार किया है, सूक्ष्म-भागका नहीं। आपके धर्मानुष्ठानमें व्यक्तिका हित अवश्य है, परन्तु समष्टिका नहीं, वल्कि आपका यह व्यक्तिगत हित समष्टिका अहितकारक है, जो हाथीकी हिंसा करके सूईके दानके सदृश व्यर्थ है। यदि इस अवसरपर आप झूँठ न बोलो, तो निःसन्देह आपकी एक व्यक्तिका हित है, परन्तु आपके झूंठ वोलनेसे द्रोणाचार्य परास्त हो जाय, तो भारतकी समस्त प्रजापर अत्याचार करने वाले दुर्योधन जैसे अत्याचारी राजाका शासन नष्ट होकर भारतीय प्रजा सुखी हो जाय। इस लिये और समष्टिका हित ही धर्म है, इस लिये भी आपको "अश्वत्थामा मारा गया"—यह कहना ही उचित है—धर्म है।"

पाठक वृन्द! अब आपने जाना होगा, कि जिस उचित क्रियासे एक मनुष्यका हित होता हो और अगणित मनुष्योंका अहित होता हो, वह धर्म नहीं, किन्तु अधर्म है। यद्यपि वृन्दाका पातिव्रत्य धार्मिक-क्रिया थी, परन्तु उससे एक वृन्दाका हित होता था और अखिल भारतीय जनोंका अहित होता था, इसी कारण भगवान् विष्णुने उस हितको जिसमें समष्टि प्रजाका अहित था—नष्ट कर दिया।

तुलसी-महिमा।

यद्यपि सामान्य दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको तुलसीका वृक्ष भी सामान्य वृक्षके समान ही दीखता है, परन्तु हिन्दुओंमें अति प्राचीन कालसे ही इसको अत्यन्त पवित्र माना जाता है। इसका मुख्य कारण यही है, कि हम लोग सदैवसे परलोकके विश्वासी और भगवान्‌के भक्त रहे हैं। जो संसारके पदार्थ किसी कारण वश क्यों न हो भगवानके प्रिय हैं, वे पदार्थ हमको भी प्रिय हैं और जिस दृष्टिसे उनको भगवान्‌ने देखा, उसी प्रकार हम भी उनको देखना अपना परम कर्तव्य समझते हैं, अथवा इसको यों भी कह सकते हैं, कि अपने आदर्शका अनुकरण करना मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जिन हरि-भक्तोंने भगवान्‌को अपना आदर्श वनाया है, वे उनके गुणोंका ही अनुकरण करते हैं और जिनने पाश्चात्य लोगोंको अपना आदर्श वनाया है, वे उनका अनुकरण करते हैं। भगवान्‌ने तुलसीको वृन्दाका सा मान दिया है, इस कारण प्रत्येक हिन्दुके घरमें तुलसी थाना अवश्य ही होगा और आलस्यवशात् कदाचित् न हो,तो उसके हिन्दूत्वमें उतनी ही त्रुटि समझनी चाहिये।

जबसे भगवान्‌ने प्रधानता दी है, तबसे तुलसी-प्रवेश हिन्दूधर्मके प्रत्येक कार्यमें हो गया है। स्त्री समाजमें तो इसका बहुत ही आदर है, बल्कि यह सौभाग्य देनेवाली मानी जाती है और प्रत्येक हिन्दु रमणी सौभाग्य वृद्धिके निमित्त प्रति दिन इनका पूजन करती है। इस प्रकारसे हिन्दुओंके अन्तःकरणमें तो इस तुलसीका आदर प्रथमसे ही है, परन्तु प्रसन्नताकी बात है, कि योरपके लोग भी इसका आदर करने लगे हैं। मिस्टर किंकेड़ने इसके विषयमें बहुत लिखा है। अंग्रेजी कोशमें तुलसीको पवित्र झाड़ माना गया है और ग्रीक भाषामें 'वेझिलीकान' यह तुलसीका सूचक शब्द है, जिसके अर्थ राजभोगके हैं। फ्रेंच तथा जर्मनीभाषामें भी तुलसीके शब्द बहुमानार्थ अर्थमें ही माने गये हैं। इटली और ग्रीस देशमें तो तुलसीको लोकोत्तर गुणवाली माना जाता है। तुलसीके पत्तेपर यदि भोजनके थालको किसीने रख दिया, तो वहांकी भावुक स्त्रियां फिर उसे हाथ नहीं लगातीं। जब स्त्रियां प्रार्थना मंदिरमें जाती हैं तब अपने साथ तुलसीकी डाली लेजाती हैं और वापस लौटते समय घरपर आते आते तुलसीके पत्रोंको डालती हैं, जिसका फल यह समझती हैं कि आगेकी साल अच्छी होगी। तुलसीपत्र खानेसे फोड़े-फुंसियां मिट जाते हैं और किवाड़ोंमें रखनेसे चूहा आदिका उपद्रव नहीं रहता—ऐसी उनकी मान्यता है। खाइष्टकी कबरपर तुलसीका बिरवा लगाना खीष्टोंमें अच्छा माना जाता है। "अपने प्यारेकी कबर पर तुलसीका झाड़ लगाया"—यह एक अंग्रेजी उपन्यासकारने लिखा है। अमेरिकाके साइन्सज्ञोंने अब तुलसीके माहात्म्यको बहुत बढ़ाया है और मलेरियादि अनेक दुष्ट रोगोंके कीड़ोंको मारनेवाली तथा स्वास्थ्यरक्षाकी बूटी बतलाया है।

इन उपर्युक्त बातोंसे पाठकोंको पता लगेगा कि, तुलसी सामान्य वृक्ष नहीं है, किन्तु विश्व-मान्य विशेष वृक्ष है।

———o———

७–वैकुण्ठ चतुर्दशी।

—॰[(❀)]॰—

शास्त्रीय-स्वरूप।

इस वैकुण्ठचतुर्दशीका समस्त वृत्तान्त सनत्कुमारसंहिताके अनुसार लिखा जाता है। एक बार सब ऋषियोंने वैकुण्ठ-चतुर्दशीके माहात्म्यको बालखिल्योंसे पूछा, जिसका उत्तर देते हुए बालखिल्योंने इस प्रकार कहा:—

> कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां समागमत्।
> वैकुण्ठेशस्तु वैकुण्ठात् वाराणस्यां कृते युगे॥

सत्ययुगमें एक बार वैकुण्ठेश—विष्णु कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको महादेवके पूजनेके लिये काशी क्षेत्रमें पधारे। ब्राह्म मुहूर्तमें मणिकर्णिकाघाटपर जाकर स्नान किया और प्रातःकाल होते ही स्वर्णके बने हुए एक सहस्र कमलोंको लेकर विश्वनाथको पूजने गये। वहां जाकर प्रथम तो गंगाजलसे भवानी सहित शिवजीका अभिषेक किया और फिर कमलार्चन करनेको प्रारम्भ किया। महादेवजीने यह विचार कर, कि देखें विष्णुकी मुझपर किस प्रकारकी प्रीति है, उन सहस्र कमलोंमेंसे एक कमलको चुरा लिया। कमल चढ़ाते चढ़ाते जब एक कमलकी न्यूनता हुई, तो विष्णुने बहुत विचार किया, कि यह क्या हो गया? कदाचित् मेरी प्राथमिक गणनाका ही भ्रम है, परन्तु एक हजारका संकल्प मिथ्या न हो जाय, इस बातकी विष्णु भगवान्को बड़ी चिन्ता हुई। जब कोई भी उपाय कमलकी कमीको पूरा करनेका नहीं देखा, तो विचार किया, कि मेरा नाम भी तो पुण्डरीकाक्ष है—मेरे नेत्र ही कमल हैं। क्यों नहीं एक नेत्रको चढ़ाकर कमीको पूरा करूँ? यह संकल्प करते ही तत्काल एक नेत्रको कमलकी एवजमें लिया और उससे महादेवका पूजन किया।

महादेवने जब भगवान् विष्णुकी इस प्रकारकी प्रखर भक्ति देखी, तो प्रसन्न होकर कहा:—

> त्वत्समो नास्ति मद्भक्तस्त्रैलोक्ये सचराचरे।
> राज्यं दत्तस्त्रिलोक्यास्ते भव त्वं लोकपालकः॥

"आपके समान संसारमें मेरा दूसरा भक्त नहीं है। अतः आपके लिये त्रिलोकीका राज्य देता हूँ, आप उसका पालन करें और इसके अतिरिक्त जो कुछ और भी आवश्यकता हो कहें।" यह श्रवण कर विष्णु भगवान्ने कहा,—

"त्रिलोकीका राज्य करते हुए समय-समयपर जो बलवान् राक्षस प्रजाको सताएँगे, उनको मैं किस प्रकार मारूँगा ?" भगवान् शिवने उसी क्षण सुदर्शन नामक चक्र दिया और कहा, कि आप इसको धारण करें। इसके प्रबल प्रतापके सामने किसी दानव-दैत्यकी शक्ति नहीं चल सकेगी। यह आजका दिन—जिसमें आपने मेरा पूजन किया है और मैंने आपको चक्र सुदर्शन दिया है—आगेसे वैकुण्ठ चतुर्दशी व्रतके नामसे चलेगा। जो लोग इस व्रतका पालन करेंगे, वे अवश्य ही संसारके अनेक भोगोंको भोगकर अन्तमें वैकुण्ठके अधिकारी बनेंगे।

इस व्रतके पालन करने वाले मनुष्यको उचित है, कि दिनको तो उपवास करे और रात्रिके समय प्रथम विष्णु—आपका पूजन करके पश्चात् मेरा पूजन करे, अन्यथा व्रतके निष्फल होनेकी संभावना है। इस व्रतकी पूजामें रात्रि-व्यापी चतुर्दशीका ग्रहण करना चाहिये और अरुणोदय कालमें सहस्र कमलों द्वारा मेरा पूजन करना चाहिये, परन्तु मेरी पूजाके आदिमें आपकी पूजा अवश्य हो, क्योंकिः—

विना यो हरिपूजां तु कुर्याद्‍ रुद्रस्य चार्चनम्।
वृथा तस्य भवेत् पूजा सत्यमेतद्वचो मम॥

"विना हरिकी पूजा किये जो मेरी पूजा करता है, उसकी सब पूजा निष्फल हो जाती है—यह मेरा वचन सत्य है।"

शिक्षा।

वैकुंठ-चतुर्दशीकी कथा बहुत सरल और सीधी है, इस कारण इसमें किसी प्रकारकी गंभीर शङ्का तो नहीं है, तथापि स्थूल बुद्धि वाला मनुष्य यह कह सकता है, कि जब विष्णुने एक नेत्र शिवपर चढ़ा दिया, तो वह एक आँखका काना रह गया होगा ? परन्तु इस शङ्काका यहां अवकाश नहीं, क्योंकि विष्णु कोई मनुष्य तो था ही नहीं, जिसमें इस शङ्काका अवकाश हो। वह तो पूर्ण ब्रह्मका रूपान्तर है, जो अपनी मायाके द्वारा अनेक ब्रह्माण्डोंको सृजता है तथा प्रलय करता है। जो अनेक ब्रह्माण्डोंके बनानेकी शक्ति वाला हो, उसको अपना नेत्र बनाना असम्भव हो जाय—यह समझमें नहीं आता।

अस्तु, इस वैकुण्ठचतुर्दशीका लोकमें विशेष प्रचार नहीं है, केवल काशी क्षेत्रमें है, परन्तु वहाँ भी विशेष नहीं। इस व्रतके विशेष प्रचारकी बड़ी आवश्यकता है; क्योंकि इसमें विष्णु और शिवकी एकताका बहुत ही अच्छा

निदर्शन है। यद्यपि वैष्णव और शैवोंमें बाह्य झगड़े तो आजकल नहीं होते, कि जिनसे समाजके बाह्य कलेवरपर कुछ अशान्तिका आभास हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि वैष्णव और शैव—इनमें आन्तरिक द्वेषकी अग्निका प्रकाश अब भी पाया जाता है, यही देशका दुर्भाग्य है। आन्तरिक विद्वेष सदैव समाजमें द्वैत उत्पन्न करता है, जिसके कारण वह समाज एकताके लाभोंसे सदैवके लिये वंचित रह जाता है।

मेरे कहनेका अभिप्राय यह कदापि नहीं है, कि शैव और वैष्णव दोनों एक ही सेव्यको मानने लग जायँ। कहना यह है, कि अपनी अपनी रुचिके अनुकूल जिन जिनको जो जो इष्ट पसन्द हों उन उनकी सेवा करते रहें; परन्तु एक दूसरेके इष्टकी निन्दा कदापि न करें। एक मनुष्य अपने स्वभावा-नुसार जलेबीके भोजनको अच्छा समझकर खाता है और दूसरा कचौरीको अच्छी समझकर खाता है। यहां तक तो यह बात बुरी नहीं है; परन्तु जिस समय जलेबी खानेवाला कहता है, कि सब मनुष्योंको जलेबी ही खानी चाहिये, जो जलेबीको छोड़कर कचौरी खाता है, वह विष्ठा खाता है। यह सुनकर कचौरी खाने वाला उसको मारनेके लिये लकड़ी उठाता है और जलेबियोंको मांस मदिरासे भी बुरी बतलाता है। इसका जलेबियोंकी निन्दा करना भी युक्त ही है, क्योंकि गालीका जवाब लात घूँसा ही होना चाहिये।

सारांश—इस प्रकारके अधम पुरुष जिस देशमें उत्पन्न हो जाते हैं, वह देश पारस्परिक विद्वेषाग्निमें जलकर भस्म हो जाता है। मेरी समझमें इस प्रकारका मनुष्य यदि विद्वान् भी हो, तो भी उसको अधम और देशद्रोही समझना चाहिये। समाजका कर्तव्य है, कि इस प्रकारके अधम पुरुषको आदरकी दृष्टिसे कदापि न देखे। शैव और वैष्णवादि मतके प्रचारक आदि पुरुषोंमें सिद्धान्तका विरोध तो अवश्य था, परन्तु—यह क्षुद्र विवाद जो देशको रसातलमें ले जा रहा है—नहीं था। यह विद्याका प्रभाव नहीं, किन्तु अविद्याका है। वैकुण्ठचतुर्दशी हमको सिखाती है,—"विष्णु भगवान् शिव-का पूजन इतने प्रेमसे कर रहे हैं, कि फूलकी एवजमें अपनी आँखतक देनेको तैयार हैं और उधर शिवजीकी आज्ञा है, कि यदि प्रथम विष्णुका पूजन न होगा, तो मैं अपनी पूजा स्वीकार नहीं करूँगा। ये सब उपासनातत्त्वके विलास हैं, मूर्खोंने अपनी बेसमझीसे कलह मचा रक्खा है।"

—०✼०—

८—त्रिपुरी-पौर्णिमा ।

—०❀०—

शास्त्रीय-स्वरूप ।

त्रिपुरी-पौर्णिमाके उत्सवका विवरण सनत्कुमारसंहिताके आधारपर लिखा जाता है। इस पौर्णिमाको प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करना—यही सब शास्त्रोंकी सम्मति है। ऋषियोंके पूछनेपर वालखिल्योंने कहा है:—

कार्तिके पूर्णिमायान्तु कुर्यात्त्रिपुरमुत्सवम् ।
दीपो देयोऽवश्यमेव सायंकाले शिवालये ॥

"कार्तिकीय पौर्णिमाके दिन त्रिपुरनामके उत्सवको करना चाहिये और सायंकालको शिवालयमें दीपावली करनी चाहिये।" एक लक्ष वर्ष तक त्रिपुरासुरने प्रयागराजमें तप किया, जिसके तेजसे चराचर सहित संसारके सब लोग भस्म होने लगे और देवताओंको भी बड़ा कष्ट होने लगा, तब तो सब देवताओंने अनेक देवाङ्गनाओंको भेजकर दैत्यराजको काम, क्रोध, लोभ और मोहके फन्देमें फसाना चाहा, परन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी वह इनसे व्यथित नहीं हुआ। इस प्रकारके दृढ़ तपको देखकर नारदके सहित ब्रह्माजी वरदान देनेके लिये दैत्याधिपतिके पास आकर बोले,—"आपका तप सर्वथा सफल हुआ, अब जो इच्छा हो, वरदान मांग सकते हो।" यह श्रवण कर त्रिपुरासुरने कहा,—"यदि आप प्रसन्न हैं और वास्तवमें वरदान देना चाहते हैं, तो मैं अमरता चाहता हूं।" ब्रह्माजीने हँसकर कहा,—"अमरत्व देना मेरे अधिकारकी बात नहीं है, मैं स्वयं भी मरणशील हूं, तब आपको अमर कैसे कर सकता हूं? जो बात मेरे अधिकारकी हो मांगो।" त्रिपुरासुरने फिर कहा,—"यदि अमरता नहीं देना चाहते हो, तो देवता, मनुष्य, निशाचर, स्त्री और रोग आदि किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो—यह वरदान दीजिये।" दैत्याधिपतिके प्रबल आग्रहको देखकर ब्रह्माजीने कहा,—"ऐसा ही होगा।"

यह कह कर ब्रह्माजी तो स्वधाम पधार गये और इधर अनेक दिशाओंमें निवास करने वाले राक्षसोंके झुण्डके झुण्ड त्रिपुरासुरके पास आकर एवं बधाई दे कर बोले,—"बड़ी कठिनतासे हम लोगोंकी दशा सुधरनेका यह

अवसर आया है, कृपया अब हम लोगोंके योग्य कार्य बतलाँय।" राक्षस-समूहके इन वचनोंको सुनकर त्रिपुरासुरने कहा,—"अब तुम लोग निर्भय होकर अपने विरोधी, देवता, ब्राह्मणोंको मारो और उनको असह्य कष्ट देना प्रारंभ करो।" राक्षसराजकी आज्ञाको शिरोधार्य करके इन दुराचारी दुष्टोंने देवताओंको बड़ा भारी कष्ट दिया, जिसके कारण एक सूर्य देवको छोड़कर सब देवताओंने त्रिपुरकी दासता स्वीकार करली। एक दिन बलात्कारसे सूर्याभिमानी देवको भी अन्य देवोंकी भांति अपने द्वारपर बैठनेको कहा। उन्होंने अपने आधिभौतिक तेजके द्वारा इस त्रिपुरासुरके नगरको जला दिया, तब इसने हार कर उनको यथेच्छ विहरनेकी आज्ञा दी और सब देवता द्वारपाल ही रक्खे।

दैवात् एक दिन त्रिपुरासुरके नगरमें नारदजीका आगमन हुआ और त्रिपुरने उनकी बड़ी अच्छी सेवा की। अर्घ-पाद्य करनेके बाद अपने पराक्रमकी जगद्व्यापिनी योग्यताको पूछा और मुझसे प्रथम किसी दूसरे असुरको भी इस प्रकारकी अभिवृद्धि हुई है? यह भी पूछा। नारदजीने कहा,—"सत्य तो यह है, कि इस लोकमें इस प्रकारका यश आपके सिवाय किसीका नहीं फैला।" दैत्यराज बोला कि, इस लोकके अतिरिक्त अन्य लोकोंमें भी मेरा नाम हो, इस लिये मैंने अन्य लोकोंमें भी बड़े बड़े बलिष्ट राक्षसोंको भेजकर वहांके लोगोंको विजय कराया है। नारदने कहा कि, जो जो राक्षस वहां गये हैं, उन्होंने आपका नाम नहीं बतलाया है, अपनी अपनी प्रधानता ही स्थापित की है। नारद तो यह कह कर चले गये, परन्तु इसके चित्तको बड़ा खेद उत्पन्न हुआ और इसने तत्काल विश्वकर्माको बुलाकर कहा, कि तीन धातुओंका (चांदी, सोना, लोहा) तीन पुर वाला एक हवाई जहाज—वायुयान बनाओ, जो नगरकी रचनाके समान हो और जिसमें बैठकर तथा आकाशमें स्थिर रह कर, सब लोकोंको शासन कर सकूं। विश्वकर्माके बनाये हुए उस त्रिपुर नामक वायुयान—नगरमें बैठकर वह त्रिपुरासुर सब लोक-लोकान्तरोंका शासन करता हुआ तथा किसी राजाको पकड़ा, किसीको राज्यसे भ्रष्ट किया—इस प्रकारसे अपने प्रभावको चारों तरफ फैलाता हुआ त्रिपुर विमानके द्वारा यथेच्छ विचरने लगा।

इसी अवसरमें नारदजी स्वर्ग-लोकमें गये और इन्द्रके सहित सब देवताओंसे कहा कि, इतना घोर कष्ट पानेपर भी आजतक आप लोगोंने इस महापापीके वधका उपाय नहीं सोचा, इस कारण हे देवगण! मैं आपको

धिक्कार देता हूँ। नारदजीके उपदेशसे इन्द्र सहित सब देवता सचेत होकर तथा मिलकर ब्रह्माजीके पास गये और अपने कष्टको सुनाया। ब्रह्माजीने अपने सहित सबको विष्णुके पास चलनेकी सम्मति दी और तदनुकूल क्षीर-सागरमें जाकर, यह सब वृत्तान्त विष्णुको सुनाया। विष्णु बोले,—"इस तुम्हारे कष्टका देने वाला ब्रह्मा ही है। यदि ब्रह्मा वरदान न देता, तो यह कष्ट क्यों होता? अस्तु, वरदान पाया हुआ यह राक्षस किस प्रकार मर सकेगा—आप लोग ही बतलाओ?" यह सुनकर सब देवता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, तब नारदने कहा,—"जो न स्त्री हो और न पुरुष हो, न देवता न राक्षस हो और न जिसका कोई पिता न माता हो, वह मार सकता है—अन्य कोई नहीं।" नारदकी इस बातको श्रवण कर विष्णु बोले, कि ये सब शर्तें महादेवमें मिलती हैं; इस कारण आप लोग मेरे सहित वहां चलें, उनसे यह कार्य हो सकेगा। इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु सबने जाकर जब महादेवजीसे कहा, तो महादेव बोले, —"ब्रह्माने वरदान दिया है और मेरा उसने किसी प्रकारका अपराध नहीं किया है, तो उसको व्यर्थ क्यों मारा जाय? यदि मेरा वह कुछ अपराध करेगा, तो अवश्य मारा जावेगा, परन्तु विना अपराध कैसे मारूं।" यह श्रवण कर नारदजी उसी समय त्रिपुरासुरके पास गये। त्रिपुरासुरने बड़ा आदर किया और पूछा, कि मेरे समान किसी और का भी वैभव है? तब नारदने शिवजीके वैभवको अपरिमित बतला कर कहा, कि वह तुमसे भी बड़ा है—यह सुनकर दैत्यराज शिवको पराजित करनेके लिये कैलास पर चढ़ आया और शिवजीके साथ लड़ाई प्रारम्भ कर दी।

इसका वर्णन भागवतमें इस प्रकार आया है,—"महादेवजीने पिनाक धनुषको लेकर जब त्रिपुरके राक्षसोंको मारना प्रारंभ किया, तब जो जो राक्षस मारे जाते थे, वे त्रिपुरासुरके विमानमें रहे हुए अमृतके कुण्डमें डाल देनेके कारण फिर जीवित हो जाते थे, इस कारण महादेवजीको बड़ा दुःख हुआ। महादेवने देवताओंसे त्रिपुरासुरको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु उसको मरता न देखकर प्रतिज्ञाहानिके दुःखमें ऐसे डूबे, कि अपने शरीरको रखना भी अनुचित समझा। उसी समय वहां ब्रह्मा और विष्णु—ये दोनों महादेवके पास पहुंच गये और कहा,—"महादेव! चिन्ता करनेकी बात नहीं है, आप अपनी प्रतिज्ञाको सफल कर सकें, हम इस प्रकारका उपाय करते हैं।" ब्रह्माजीको वत्स बनाया और आप-हरि-गऊ बनकर त्रिपुरासुरके तीन पुरोंमें पहुँचे।

अमृतके जिस कुण्डपर अनेक राक्षसोंका पहरा था, ये गऊ और बछड़ा उसी कुण्डपर पहुंच गये। गाय तथा बछड़ाके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर पहरेवाले राक्षस अपने कर्तव्यको भूल गये। इन दोनोंने अचिरकालमें ही कुण्डके समस्त अमृतको समाप्त कर दिया और वहांसे अन्तर्धान होकर शिवके पास आ गये। आकरके शिवसे कहा, कि अब आप राक्षसोंको आनन्दसे मारिये। महादेवजीने बाणोंकी वर्षासे राक्षसकुलका संहार किया और त्रिपुरासुरके तीनों पुरोंको भी भस्म कर दिया। त्रिपुरासुरके वधसे देवताओंको बड़ा भारी हर्ष हुआ और स्वर्गलोकपर फिरसे पुरन्दरकी स्थिति हुई। समस्त देवताओंसे स्तूयमान हो कर महादेवजी कैलास धामको पधार गये।" इस शास्त्रीय आधारपर ही त्रिपुरी पौर्णिमाके उत्सवकी स्थिति है।

लौकिक स्वरूप।

भारतमें जहां जहां शिवकी उपासनाका प्रचार अधिक है, वहां वहां इस त्यौहारको भी अधिकताके साथ मनाया जाता है। दक्षिण भारतमें शिवोपासनाका अधिक प्रचार है, इस कारण वहां त्रिपुरी-पौर्णिमा भी अच्छे ठाट बाटसे मनाई जाती है। सी. पी. के किसी किसी नगरमें और दक्षिण देशमें महादेव और देवीके देवालयके सामने चूने तथा पत्थरका एक बहुत ऊंचा स्तंभ होता है, जिसमें हजारों दीपकोंके रखनेकी जगह होती है। उस स्तंभके सब दीपोंको प्रज्वलित करनेमें कहीं कहीं दस मन तक तेल लग जाता है। शिवालयके इन खंभोंको प्रायः त्रिपुरी-पौर्णिमाके दिन प्रज्वलित किया जाता है, उस समय एक विशेष प्रकारका आनन्द होता है। दक्षिण देशमें त्रिचनापल्ली आदि ऐसे स्थान हैं, कि वहांके शिवालय पर्वत-शिखरपर बनाये गये हैं और दीपावली-स्तंभ और भी ऊंचे हैं। जिस दिन इन स्थानोंमें दीपावली की जाती है, तो बड़ी बड़ी दूरके लोगोंको वह अद्भुत आनन्द दृष्टिगोचर होता है। शिवकांची, अवन्तिका और काशी आदि स्थानोंमें भी बड़े उत्साहसे इस उत्सवको मनाया जाता है।

त्रिपुरी-पौर्णिमाके दिन सोनेमें सुगन्ध यह है, कि इसी दिन शिवका पुत्र स्कन्द जो देवताओंका सेनापति और महा प्रबल तारकासुरका मारनेवाला हैं, उसकी भी जयन्ती मनाई जाती है। इसी आधारपर इस दिन कृत्तिका नामका महोत्सव भी मनाया जाता है, कारण कि स्कन्दका नाम कार्त्तिकेय भी है। इस प्रकारसे यह त्यौहार प्रायः भारतके बहुत स्थानोंमें मनाया जाता है।

शिक्षा।

इस त्रिपुरासुरकी कथाको कुछ लोग रूपक और कुछ लोग ऐतिहासिक मानते हैं। मेरी सम्मतिमें भी यह ऐतिहासिक घटना ही है। यद्यपि पुराणोंमें पुरञ्जन आदिके समान रूपक भी हैं, परन्तु उनको पुराणोंने स्वयं ही रूपक लिख दिया है। यदि त्रिपुरासुरकी कथा रूपक होती, तो पुरञ्जनकी तरह भागवतकारने इसको भी रूपक लिख दिया होता, किन्तु भागवतमें या अन्य पुराणमें कहीं भी रूपक नहीं लिखा है, तो फिर किस प्रकार रूपक माना जाय? अस्तु, दुर्जनतोषके लिये हम इस घटनाको दोनों प्रकारकी मान लें, तो भी इससे हमको दो शिक्षाएँ मिलती हैं,-"(१) भक्तिका महत्त्व और (२) कूटनीतिका उपयोग।"

भक्तिका महत्व।

जो लोग इस कथाको रूपक मानते हैं, अथवा आध्यात्मिक मानते हैं, उनके हिसाबसे त्रिपुरासुर-मय दानव अहंकारका स्वरूप है। क्योंकि त्रिपुरासुरको तीन पुरों—शरीरोंका अधिपति माना है, वे तीन शरीर ये हैं,—"(१) स्थूल, (२) लिङ्ग और (३) कारण।" जब अहंकार नष्ट हो जाता है, तब मोक्ष हो जानेपर तीनों शरीर भी नष्ट हो जाते हैं, यह गीतामें बतलाया गया है:—

"अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥"

अतः दानव अहंकार है। अहंकारके रहनेसे इन्द्रियोंके अभिमानी देवताओंको अनेक शरीर परित्याग और ग्रहण करनेका कष्ट होता है, तब वे सब देवता दुखी होकर जीवात्मा-रूप शिवसे प्रार्थना करते हैं। जीव शिवकी ही मूर्ति है—यह श्रीशङ्कराचार्य्यजी महाराज तथा शास्त्रोंने स्वीकार किया है। यथा:—

"न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्याऽस्ति मूर्त्तिस्तमीडे महेशम्॥"

महादेवजी त्रिनेत्र हैं, तो जीव भी कर्म उपासना तथा ज्ञानके नेत्रोंसे त्रिनेत्र हैं, महादेवका श्मशानमें वास है, तो जीवात्माका भी चिन्तामें वास है और "चिता चिन्ता समाख्याता" चिता और चिन्ता समान हैं; शिवकी अर्द्धाङ्गिनी पार्वती—पर्वतराजकी कन्या है, तो जीवकी स्त्री भी बुद्धि—जड़ोत्पन्ना है, शिवका वाहन बैल है, तो जीवका भी वाहन बैल—धर्म है,—"धर्मोऽसि

वृषरूपधृक्"—यह भागवतमें लिखा है और शिवजीका भूषण सर्प है, तो जीवका भी भूषण सर्प—क्रोध है। सारांश—शिवरूप ही जीव है।

जीवने अपने ही पुरुषार्थसे अहंकारको नष्ट करना चाहा, परन्तु अहंकारके पास अमृतकुण्ड—वैषयिक प्रवृत्ति है, उससे रजोगुणकी वृत्तियाँ जीवित हो जाती थीं, उस वत्सरूप धर्म और गोरूप भक्तिने उस वैषयिक प्रवृत्तिके कुण्डका पान किया, तब जीव अहंकारको नष्ट करके मुक्तिको प्राप्त कर सका। अभिप्राय यह है, कि मोक्षाभिलाषी प्रत्येक जीवको स्वधर्मानुष्ठान और भक्तिके द्वारा अहंकार तथा तज्जन्य वृत्तियोंको नष्ट करके ही मुक्तिकी प्राप्ति करनी चाहिये।

कूटनीतिका उपयोग।

नीतियाँ तीन होती हैं,—"(१) धर्मनीति, (२) राजनीति और (३) कूटनीति।" इनमें उत्तम धर्मनीति, मध्यम राजनीति और निकृष्ट कूटनीति है, जिसका विवरण रामनवमीकी शिक्षामें किया जा चुका है। यद्यपि कूटनीति अधम नीति है और धार्मिक या नैतिक पुरुषको उसे काममें लाना बुरा है, परन्तु प्रत्येक बुरी वस्तुका भी उपयोग रक्षार्थ करना पड़ता है। कूटनीतिको हथियार बनाकर उससे कार्यकी सिद्धि करना तो वास्तवमें राक्षसी काम है, परन्तु स्व संरक्षणके लिये उपयोगमें लाना पाप नहीं। सभी जानते हैं, कि कांटोंकी बाड़ बुरी होती है, परन्तु किसी नवजात पौदेको कोई पशु न खा जाय इसके लिये बाड़ करनी ही पड़ती है और वह पाप भी नहीं है।

ठीक इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये—यह त्रिपुरासुरका इतिहास है। त्रिपुरासुरने कूटनीतिको हथियार बनाकर ही संसारको विजय करनेकी चेष्टा की थी। देवोंके अधिपति जिस ब्रह्मासे वरदान लिया, उसीकी प्रजाको नष्ट करनेमें वरदानका उपयोग किया अथवा जिस हण्डीमें खाया उसीमें छेद किया। राक्षस और मनुष्यमें यही भेद है, कि मनुष्य उपकार करनेवाले देश तथा मनुष्यका यावज्जीवन ऋणी रहता है और राक्षस उपकार करनेवाले देश तथा मनुष्यको नष्ट करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। मनुष्य किसी वृक्षके फल तथा फूलोंसे उपयोग लेते हैं, परन्तु उस वृक्षको उपकारी समझ कर उसके रक्षण और परिवर्धनमें भरसक प्रयत्न करते हैं, किन्तु अमरवेल जिस वृक्षपर चढ़कर अपना निर्वाह करती है, अन्तमें उसको सर्वथा नष्ट कर देती है।

त्रिपुरासुरने यही किया था, कि उसने जिस देशपर आधिपत्य स्थापित किया, उसीके रहनेवाले मनुष्य तथा देवताओंको नष्ट करना चाहा। यद्यपि इस राक्षसको विजय करनेमें ब्रह्मा और विष्णुने वत्स तथा गऊ बनकर कूटनीतिका सहारा लिया, परन्तु वह सहारा राक्षसोंके देशको अपहरण करके अपने उपयोगमें लानेके लिये नहीं, किन्तु स्व-संरक्षणार्थ किया।

त्रिपुरासुरका इतिहास हमको यह बतलाता है,—अपने किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये धर्म तथा राजनीतिका ही उपयोग करना मनुष्यता है, परन्तु जहाँ स्व-संरक्षणका प्रश्न उपस्थित हो जाय, वहाँ कूटनीतिसे भी उपयोग लेना बुरा नहीं है, किन्तु आवश्यक है। जो लोग दुष्टोंके साथ दुष्टता और कपटियोंके साथ कपट करनेकी कूटनीतिको सर्वथा भूल जाते हैं, वे अपनी या अपने देशकी रक्षा नहीं कर सकते।

—:※:—

मार्गशीर्ष मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

यद्यपि इस मार्गशीर्ष मासमें हिन्दुओंका प्रसिद्ध त्यौहार एक भी नहीं है, परन्तु गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने इस मासको ही विभूतिरूप माना है। "मासानां मार्गशीर्षोऽहम्" इस वचनसे यह शंका होती है, कि यह विभूति-रूप क्यों है? मेरी समझमें भगवान्‌का यह वचन धार्मिक उत्सवोंको लेकर नहीं है, किन्तु वर्षाकालमें अनेक प्रकारकी आधिव्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, वे सब अगहनमें शीत पड़नेके कारण नष्ट हो जाती हैं और रात्रि दिनके तारतम्यसे सूर्य्यकी गरमीके द्वारा जो अशान्ति उत्पन्न होती है, वह भी इन दिनोंमें बराबर होकर कुछ दिन बढ़ने लगता है, जिससे सम्पूर्ण रोगोंकी शान्ति होकर प्रजाको स्वास्थ्यसम्बन्धी आनन्द प्राप्त होता है, इसी कारण मार्गशीर्ष-मासको अपना स्वरूप बतलाया है। इस अगहन मासके प्रान्त भेदसे तो अनेक नाम हैं, परन्तु शास्त्रीय परिभाषामें तीन नाम अवश्य मिलते हैं,—"(१) सह, (२) आग्रहायणिक अथवा अगहन और (३) मार्गशीर्ष।" आजकलके पञ्चाङ्गोंमें सह अथवा आग्रहायणिक न लिखकर मार्गशीर्ष ही लिखा जाता है। इसका प्रबल कारण यही है, कि बारह मासोंमेंसे इस मासकी

पौर्णिमा मृगशिरा नक्षत्रसे युक्त होती है। अतः इसका नाम मार्गशीर्ष ही उचित है। नक्षत्रोंके अनुसार ही सब मासोंके नाम हैं,—"चित्रासे चैत्र, विशाखासे वैशाख, ज्येष्ठासे ज्येष्ठ, पूर्वाषाढ़ासे आषाढ़, श्रवणसे श्रावण, पूर्वा भाद्रपदासे भाद्रपद, अश्विनीसे आश्विन, कृत्तिकासे कार्तिक, मृगशिरासे मार्गशीर्ष, पुष्यसे पौष, मघासे माघ और पूर्वाफाल्गुनीसे फाल्गुन।" यद्यपि मार्गशीर्ष मासमें मुख्य एक भी त्योहार या व्रत नहीं है, तथापि गौण व्रत कितने ही हैं। अतः उनका विवरण निर्णयसिन्धुके अनुसार यहां दिया जाता है।

१—वृश्चिक संक्रमण।

बहुधा मार्गशीर्ष मासमें सूर्य्य वृश्चिकराशि पर आते हैं; अतः शास्त्रकारोंने लिखा है, कि सूर्य्य जिस दिन वृश्चिक संक्रान्ति पर आये, उस दिन आदिकी सोलह घटिकाएँ बहुत पुण्यप्रद होती हैं। दान, धर्म और ब्राह्मण-भोजनादिका फल सामान्य समयसे इस विशेष समयपर षोड़श गुना अधिक होता है—यह धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है।

२—काल भैरवाष्टमी।

मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमीको कालाष्टमी कहते हैं। भैरवके व्रत करनेवाले लोगोंको यह रात्रिव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये। काशीखण्डमें लिखा है—

मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ।
उपोष्य जागरं कुर्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

"जो मनुष्य मार्गशीर्षकी कृष्णाष्टमीको कालभैरवके निमित्त उपवास करके जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।" किसी किसी शास्त्रमें यह भी लिखा है, कि अष्टमीको प्रातःकाल गंगामें स्नान करके और पितृदेवोंका तर्पण श्राद्ध करके जो मनुष्य कालभैरवका दर्शन करता है, वह सालभरके अनेक विघ्नोंसे बच जाता है। इस व्रतका प्रचार कुछ कुछ काशीमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। भैरवकी उपासना करनेवाले महानुभाव जिस प्रकार कालभैरवके अधिदैवस्वरूपका पूजन करते हैं, क्या ही अच्छा हो, कि उसके आधिभौतिकस्वरूप कालका भी पूजन—आदर करने लगें, परन्तु अधिदैवके पुजारी तो ये महानुभाव हैं और आधिभौतिकके पुजारी योरोपके लोग हैं—यह आश्चर्यकी बात है।

३—नागपञ्चमी ।

लोगोंमें जिसका विशेष प्रचार है, वह नागपञ्चमी तो श्रावणकी ही है, जिसको इस पुस्तकमें पूर्णतया लिखा गया है । यह मार्गशीर्ष शुक्ला नागपञ्चमीका व्रत जो हेमाद्री और स्कन्दपुराणमें लिखा है—दूसरा तथा गौण है । इसका प्रचार अब देशमें नहीं है । इसका माहात्म्य स्कन्दपुराणमें इस प्रकार आया है:—

शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी ।
स्नान-दानैर्बहुफला नागलोक-प्रदायिनी ॥

"मार्गशीर्ष या श्रावण मासकी शुक्ला पंचमी नागपंचमी है, उसमें स्नान दानका बड़ा भारी फल होता है और अन्तमें नागलोकको प्राप्त कराती है ।" इस पंचमीको षष्ठियुक्ता ग्रहण करनेका विधान है । विदित होता है, कि इस नागपंचमीका अन्तर्भाव श्रावणकी मुख्य नागपंचमीमें हो गया है ।

४—चंपाषष्ठी ।

मार्गशीर्ष शुक्ला षष्ठीको चंपाषष्ठी कहते हैं । इसको मध्यान्होत्तरव्यापिनी ग्रहण करनेका विधान है । इसका माहात्म्य ब्रह्माण्डपुराणके मल्लारी माहात्म्यमें इस प्रकार आया है:—

मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता ।
रविवारेण संयुक्ता सा चांपेतीह कीर्तिता ॥

"मार्गशीर्ष और भाद्रपद मासकी शुक्ला षष्ठी, यदि वैधृति योगवाली और रविवार संयुक्त हो, तो चम्पाषष्ठी कही जाती है ।" उपर्युक्त विवरणसे चम्पाषष्ठी भादों और अगहन दो मासोंमें मिलती है । इनमेंसे भादों मासकी चम्पाषष्ठीका तो प्रचार नहीं है और जो कुछ है, वह भी राजपूताना, सी० पी० और यू० पी० मात्रमें ही है, परन्तु भविष्यपुराणमें इसका विवरण इस प्रकार मिलता है ।

किसी समय दुर्वासा महर्षि युधिष्ठिरसे मिलनेको आये । महाराज युधिष्ठिरने पूछा,—"भगवन् ! गतराज्यकी प्राप्ति पुनः हो जाय, इस प्रकारका कौनसा व्रत है ?" दुर्वासाने कहा,—"भाद्रपद शुक्ला षष्ठीमें वैधृति योग हो और रविवार हो, तो वह चम्पाषष्ठी होती है । चम्पाषष्ठी इस कार्य्यको करनेमें बहुत सिद्धहस्त है । प्रजापतिको प्रजापतित्व और पृथुको राज्य दिलानेवाली

यही षष्ठी है। इस चम्पाषष्ठीको विधि-विधानके साथ सूर्य्यकी पूजा करनी चाहिये।"

मार्गशीर्षकी चम्पाषष्ठी केवल दक्षिण देशमें ही मानी जाती है और प्रचलित पूजाके प्रकारसे विदित होता है, कि यह देवीका उत्सव है। चंपाषष्ठी यह उत्सव महाराष्ट्र देशके कुछ भागमें बड़ी आस्थासे माना जाता है। जेजुरी, पाली और मंगसुली आदि जो खण्डोबाके प्रसिद्ध स्थान हैं, उनमें तो यह उत्सव प्रेक्षणीय होता है। वहाँके लोगोंका विश्वास है कि, खण्डोबा—यह शंकरका अवतार है और मणिमल्ल नामक दैत्यको मारनेके निमित्त ही यह अवतार हुआ है। खण्डोबाका अपर नाम मल्हारी भी दक्षिण देशमें प्रसिद्ध है। ब्रह्माण्डपुराणमें मल्हारिमाहात्म्यका एक अध्याय है, इससे जाना जाता है, कि खण्डोबा यदि वास्तवमें मल्लारी हैं, तो ये महात्मा अवतार तथा चिरकालीन हैं। उस देशमें मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदासे लगाकर पञ्चमी तक रूढ़िके अनुसार घटस्थापना और सुवासिनीको भोजन देना आदि कार्य्य होते हैं।

सारांश,—ये दोनों चम्पाषष्ठी इस प्रकारसे मानीं जाती हैं। दिवोदास-जीका मत है, कि चम्पाषष्ठीको सप्तमी युक्त ग्रहण करना चाहिये।

५—श्रीदत्तजयन्ती।

मार्गशीर्षकी पौर्णिमाके दिन भगवान् दत्तात्रेयका जन्म हुआ है। इस व्रतका माहात्म्य स्कन्दपुराणके सह्याद्रि खण्डमें इस प्रकारसे आया है:—

मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां यज्ञस्य वासरे।
जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम्॥

"मार्गशीर्ष पौर्णिमाके दिन अत्रिकी पत्नी सती अनुसूयाने मंगलमय पुत्रको उत्पन्न किया।" दत्तात्रेय महाराजका जन्म होते ही अत्रि ऋषिने समझ लिया, कि यह भगवदवतार है। मेरे यहाँ इनका अवतरण विष्णुके वरदानसे हुआ है; अतः इनका नाम दत्तात्रेय रखना चाहिये। दत्त शब्द विष्णुके वरदानका बोधक है और अत्रेय मेरे यहाँ उत्पन्न होनेका बोधक है। अस्तु, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें केवल इतना ही वृत्तान्त आया है; परन्तु पुराणान्तरमें इसकी कथा बहुत है।

अत्रि ऋषिकी पत्नी अनुसूया पतिव्रताओंमें अग्रगण्या थी, यह कहनेकी

तो हिन्दुसंतानके लिये आवश्यकता ही नहीं, कारण कि इस बातको आबाल वृद्ध सभी जानते हैं। सती अनुसूयाके पातिव्रत्य-धर्मकी प्रशंसा जब ब्रह्मा, विष्णु और महादेवने सुनी, तो तीनोंने मिलकर सतीके सतीत्वकी परीक्षा करनी चाही और वे तीनों ब्राह्मणका रूप धरकर सतीके स्थानपर पहुँचे तथा भोजनकी याचना की। गृहस्थ-धर्मानुसार साध्वीने भोजन करानेको तो स्वीकार किया, परन्तु इन तीनों ब्राह्मणोंका आग्रह था, कि तुम नग्न होकर हमको भोजन कराओ। सती अनुसूयाने इसको भी स्वीकार किया और कहा,—"आप तीनों यहां विराजो, मैं भोजन लाती हूँ।" जिस समय अनुसूया नग्न होकर तथा भोजन परोस कर लाई, तो सतीके अद्भुत पतिव्रत-धर्मके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों स्तनंधय बालकके समान हो गये तथा कितने ही दिनों तक अत्रिके आश्रमपर ही रहे। अनुसूयाकी इस पतिपरायणतासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशने असली रूप धरकर अत्रि ऋषि और अनुसूयासे कहा,—"हमको तुम्हारे आश्रमसे बड़ी प्रसन्नता हुई है, इस कारण तुम प्रसन्न होकर जो वरदान माँगोगे, हम देनेको तैयार हैं।" उस समय अत्रिने अनुसूयाकी सम्मतिसे पुत्र उत्पन्न होनेका वरदान मांगा। तीनों देवताओंने अपने अपने अंशसे एक एक पुत्र होनेका वरदान दिया। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और महादेवके अंशसे दुर्वासा इस प्रकार अत्रिके यहां तीन पुत्र उत्पन्न हुए। यद्यपि दत्तजयन्ती शास्त्रीय त्यौहार है, तथापि इसका प्रचार केवल महाराष्ट्र देशमें ही है और स्थानोंमें नहीं।

महाराष्ट्र देशमें इस उत्सवके सात दिन प्रथमसे गुरु-चरित्रका पारायण होता है और उसको सप्ताह कहते हैं। हिन्दुस्थानमें भागवतका और मारवाड़के कितने ही स्थानोंमें भजनोंका भी सप्ताह होता है। शैव और वैष्णव दोनों प्रकारके ही लोग दत्तोपासक हैं। श्रीपाद यति, नृसिंह यति और नरहरि यति-इन तीन महापुरुषोंने महाराष्ट्रमें दत्तोपासनाका बड़ा भारी प्रचार किया है। गुरु चरित्र, औदुम्बर वृक्ष और त्रिमूर्ति दत्तात्रेय—इन तीनोंकी प्रतिदिन और विशेषकर गुरुवारके दिन पूजा की जाती है। दत्तात्रेयकी उपासना पांच स्थानोंमें बहुत होती है,—"(१) गाणगापुर, (२) नरसोबाकी वाड़ी, (३) मिरजके पासका औदुंबर गांव और (४) गोमान्तकमें सांखली।" मैसूर प्रान्तीय बाबाबुड़नके टापूमें पिताका देवालय है, वहां भी दत्तात्रेयका जाग्रत स्थान है तथा एक बड़ा अच्छा चमत्कार भी है, इस देवालयको साधु कलन्दरके

प्रीत्यर्थ मुसलमान भी मानते हैं। यही एक ऐसा स्थान है कि जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों ही आत्मीयत्वेन मानते हों। दूर-दूरके हिन्दू तथा मुसलमान यात्राके लिये आते हैं।

इसके अतिरिक्त आश्विन मासकी द्वादशीको गुरु द्वादशी कहते हैं और उस दिन बड़ा भारी उत्सव होता है। धनिक लोग मानता भी करते हैं और सहस्रावधि मनुष्योंको भोजन कराते हैं। वहांके सब लोगोंका विश्वास है, कि कलियुगमें दत्तात्रेय ही तात्कालिक फलका दाता है। गुरु चरित्रमें दत्तात्रेयका वर्णन बड़ा सुन्दर आया है, जिससे स्त्रियोंके चित्तपर बड़ा अच्छा असर होता है। यही कारण है, कि वहांकी स्त्रियाँ इन दिनोंमें घरपर आये हुए किसी साधु संन्यासीको भी साक्षात् दत्तात्रेय ही मानती हैं। दत्तात्रेयकी कथा श्रीमद्भागवतमें भी आई है, जिनके चौबीस गुरु प्रसिद्ध हैं। इसी कारण भारतके सब लोगोंका प्रेम दत्तात्रेयमें है, परन्तु पूजा महोत्सव केवल महाराष्ट्र देशमें ही प्रचलित है।

पौष मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

पौष मासमें भी कोई त्योहार उल्लेखनीय नहीं है। केवल मकर-संक्रान्तिका त्योहार ही सार्वजनीन त्योहार है, परन्तु यह त्योहार भी कभी पौष कभी माघमें हो जाता है, इस कारण इसका निर्णय किसी एक मासमें नियत नहीं किया जा सकता, तथापि मकरसंक्रमण बहुधा पौष-मासमें ही होता है। इस कारण पौषमें ही इस महोत्सवको लिखा जाता है। इस मासको घर बनानेकी नीव रखनेके लिये धर्मशास्त्रोंमें श्रेष्ठ माना है, तथा इसीका नाम धनुर्मास भी है। धनुर्मासमें सूर्योदयसे प्रथम ब्राह्मणोंके सहित भोजन करनेवाले यजमानको सहस्र गुण अधिक फल होता है। इस मासमें विवाहादि शुभ कार्योंको न करना, यह भी शास्त्रकारोंकी सम्मति है।

मकरसंक्रान्ति व्रत।

—०❀०—

शास्त्रीय स्वरूप।

हेमाद्रि एवं मत्स्यपुराणमें संक्रान्ति व्रतोद्यापन इस प्रकार आया है:—

अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रात्युद्यापनं फलम्।
विषुवे चायने चैव संक्रांतिव्रतमाचरेत्॥

नन्दिकेश्वरने कहा है,—"संक्रान्तिके उद्यापनको बतलाता हूँ। विषुव तथा अयनमें संक्रान्तिके व्रतको अवश्य करना चाहिये।" संक्रमण संक्रान्ति या संक्रमणका अर्थ क्रमण करके जाना है। मकर नामकी नक्षत्र राशिमें सूर्य्यके प्रवेश होनेको ही मकरसंक्रान्ति या संक्रमण कहते हैं। वराहमिहिराचार्य्यके मतानुसार पृथ्वी लम्बे वर्तुलाकार मार्गसे सूर्य्यकी प्रदक्षिणा करती है और कितने ही शास्त्रकारोंकी सम्मतिमें पृथिवी स्थिर है तथा सूर्य्य ही भ्रमण करता है। अस्तु, सूर्यको क्रमण करनेका भासमान जो मार्ग है उसको क्रान्तिवृत्त कहा जाता है। प्रारंभिक स्थानसे अन्तिम स्थान तक इस क्रान्तिवृत्तके १२ भाग किये गये हैं और इन बारह भागोंमें रहे हुए नक्षत्र पुंज उनके गुण धर्मोंसे मिलते जुलते बारह राशियोंके नाम दिये हैं,—"(१) मेष-मेढ़ा, (२) वृष-बैल, (३) मिथुन-जोड़ा, (४) कर्क-खेकड़ा (५) सिंह, (६) कन्या, (७) तुला-तराजू, (८) वृश्चिक-बिच्छू, (९) धनुः-धनुश, (१०) मकर-मगर, (११) कुंभ-घड़ा और (१२) मीन-मछली। ये ही बारह राशियां हैं।

पृथ्वी जब सूर्यके चारों तरफ घूम जाती है, तब एक वर्ष होता है, जिसका बारहवां भाग मास है। इसको सौरमास कहना चाहिये, कारण कि सूर्य्यके संक्रमणसे इसकी मर्यादा है। जिस प्रकार सूर्य्यके चारों तरफ पृथ्वी फिरती है, उसी प्रकार पृथ्वीके चारों तरफ चन्द्रमा भी फिरता है। उसकी एक प्रदक्षिणा समाप्त होनेपर जो मास समाप्त होता है, उसको चान्द्रमास कहा जाता है। जिस चान्द्रमासमें सूर्यका संक्रमण क्रान्ति वृत्तके मेष भागपर होता है, उसको चैत्र मास कहते हैं और वृषके संक्रमणको वैशाख, इस प्रकार पौषमासके चान्द्र मासमें जो संक्रमण होता है, उसको मकर संक्रान्ति कहते हैं। जिस मासमें संक्रमण ही नहीं होता—दो संक्रान्तिके

बीचमें ही रहता है, उस मासको अधिक मास कहे जाते हैं। सूर्यके बारह संक्रमणोंमेंसे मकर और कर्कका संक्रमण बड़े महत्त्वका समझा जाता है। मकर संक्रमण उत्तरायण सूर्यको और कर्क संक्रमण दक्षिणायन सूर्यको बोधन करता है। इसी छः मासके कालको अयन कहते हैं। उत्तरायण कालमें सूर्य उत्तरकी तरफ झुकता सा नज़र आता है और उसीके अनुसार दिन बढ़ता जाता है और रात्रि घटती जाती है। दक्षिणायन होनेसे रात्रि बढ़ती है और दिन घटता है।

व्रतकी विधि इस प्रकार बतलाई गयी हैः—

पूर्वेद्युरेकभक्तेन दन्तधावनपूर्वकम्।
संक्रान्तिवासरे प्राप्ते तिलैः स्नानं समाचरेत्॥

"मकर संक्रान्तिके पहले दिन एक समय ही भोजन करना चाहिये और मकर संक्रमणके प्रातःकाल तिलोंसे तैलाभ्यङ्ग स्नान करना चाहिये। कारण कि इस दिन तिलोंका महत्व बताया गया है।" लिखा हैः—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक्तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः॥

तिलसे ही स्नान, तिलका ही उबटना, तिलका हवन, तिलका ही जल, तिलका ही खाना और तिलका ही दान-ये छः कर्म तिलसे ही होने चाहियें।" चन्दनसे अष्ट दलका कमल लिखकर उसमें सूर्य भगवान्का आवाहन करना चाहिये और यथाविधि पूजन करके कमल सहित सर्व साहित्यको एक उदकपूर्ण घट और गऊके सहित वेदविद् ब्राह्मणको देना चाहिये। इस मकर संक्रमणके समय दो प्रकारके दानोंका बड़ा भारी महत्त्व है,—"(१) घृत कम्बल दान और (२) दधि मन्थन दान।"

प्रथम घृत कम्बल दानकी महिमा जो शिवरहस्य नामक ग्रन्थमें लिखी है—बतलाई जाती है।

घृतकम्बल दान।

माघे मासि महादेव! यः कुर्याद् घृतकम्बलम्।
स भुक्त्वा सकलान्भोगान् अन्ते मोक्षं च विंदति॥

"पौष या माघ मासमें मकर संक्रमणके अवसर पर जो मनुष्य घी और कम्बलका दान करता है, वह इस लोकमें सर्व प्रकारके भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है।" जो मनुष्य इसको विधानसे करता है, वह प्रथम तो

राजा होता है, पुनः जातिस्मर—मुमुक्षु होता है। प्राचीन कालमें शूल-कर्णाभिमने वेद-वेदाङ्गपारग जाबालि ब्राह्मणसे पूछा,—"भगवन्! घट कम्बल-दान किस प्रकारसे किया जाता है?" यह सुनकर जाबालिने कहा,—"काली या सफेद गऊका घी एकत्र करके प्रथम तो महादेवके मस्तकपर चढ़ाय और तदनन्तर तिल, सरसों और बिल्वपत्रोंसे महादेवका पूजन करे। धूप, दीप, नैवेद्य, आरती, पुष्पांजली, प्रदक्षिणा, नमस्कारादि करके शिव पंचाक्षरका जप करे और रात्रिको जागरण करके प्रातःकाल ब्राह्मणभोजन कराकर फिर घृत और कम्बलोंका दान करे।

दधि मन्थान दान—

दधिमन्थान-दान प्रायः स्त्रियोंको करना चाहिये, जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है:—

"मासानां उत्तमे मासे पौष किम्वा माघ मासे अमुक
पक्षे अमुक वासरे अमुक तिथौ मम इह जन्मनि
जन्मान्तरे च अखंडित सौभाग्य-पुत्र-पौत्र-
धन-धान्याभिवृद्ध्यर्थं श्रीसवित-सूर्यनारायण-
स्वरूपिणे ब्राह्मणाय दधिमन्थान-दानं करिष्ये।"

सबसे प्रथम इस संकल्पको पढ़नेका विधान है। तदनन्तर तिलोंका उबटन कर, स्नान कर और स्वच्छ वस्त्र धारण कर यशोदा और श्रीकृष्णकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर पूजन करे तथा यह प्रार्थना करे:—

"यशोदे त्वं महाभागे सुतं देहि मनोरमम्।
पूजितासि मया देवि दधिमन्थनभाजने॥
श्रीकृष्ण परमानन्द संसारार्णवतारक!
पुत्रं देहि मनोज्ञं च ऋणत्रयविमोक्षणम्॥"

उपर्युक्त श्लोकोंमें यशोदा और श्रीकृष्णसे प्रार्थना है कि, मुझको पुत्र-रत्नकी प्राप्ति होनी चाहिये। प्रार्थनाके पश्चात् उन दोनों प्रतिमाओंका दान किसी योग्य ब्राह्मणको करे और यह मन्त्र बोले:—

"गृहाण त्वं द्विजश्रेष्ठ! दधिमन्थानभाजनम्।
नवनीतेन सहितं देवक्या सहितं हरिम्॥
प्रसादः क्रियतां मह्यं सूर्य्यरूप नमोस्तु ते॥"

अथ कथा।

कृपीने एक बार अपने आश्रमपर आये हुए दुर्वासा ऋषिसे प्रार्थना की,—"भगवन्! मुझको कोई ऐसा उपाय बतलाओ, कि जिसके करनेसे पुत्रकी प्राप्ति हो, पति आनन्दमें रहें। और दरिद्रताकी यह व्यवस्था है, कि मेरे घरमें एक गऊ है, उसकी छाछ पीकर ही जीवनका निर्वाह होता है; अतः उसका नाश हो।" महर्षि दुर्वासाने कृपीके दीन वाक्यको श्रवण कर कहा,—"हे, सुभगे! तुमको दधिमन्थानका दान देना चाहिये, इसीके प्रभावसे यशोदाने पुत्र-रत्नको प्राप्त किया था। दधिमन्थान दानसे बढ़कर दरिद्रताका नाशक और पुत्रप्राप्तिकारक अन्य दान नहीं है।" इस प्रकार कृपीने दुर्वासाके वचनको सुनकर, विधिपूर्वक दधिमन्थान दानको किया, जिससे कृपीको पुत्रकी प्राप्ति हो गयी और दारिद्र्यका भी अन्त हो गया—यह ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है।

लौकिक स्वरूप।

यह त्यौहार नक्षत्रोंके ईश-सूर्य्यका है और ज्योतिषसे सम्बन्ध रखता है। ज्योतिष विद्या अनादि है, इस कारण यह सौर महोत्सव भी सनातन चिरकालीन है। यही कारण है, कि इस त्यौहारको एक देशी न कहकर सर्व देशी कह सकते हैं। देश भेदसे इस त्यौहारके मनानेमें प्रकारभेद तो अवश्य हो गया है, परन्तु किसी न किसी रूपसे यह सर्वत्र पाया जाता है। राजपूताना, सेन्ट्रल इण्डिया और यू० पी०—आदि प्रान्तोंमें घृत, कम्बल और मन्थानदानकी परिपाटी तो नहीं है, परन्तु वस्त्र और अन्नादि दान अवश्य किया जाता है। संक्रान्तिके दानके लेनेवाले जो लोग हैं, वे अपनेको प्राचीनमें हम ब्राह्मण थे, ऐसा कहते हैं, परन्तु अब तो इन लोगोंको ज्योषी, भड्डली, डांकोर और गरूड़िया कहा जाता है। भड्डलीकृत शकुनावली एक अति प्राचीन पुस्तक भी मिलती है, जिससे जाना जाता है, कि ये लोग प्राचीन कालसे ही भड्डली कहलाते हैं और ब्राह्मण वर्णसे पृथक् हैं। नवग्रहोंमें जो निषिद्ध दान हैं—राहु, शनैश्चर उसको ये ही लोग लेते हैं और जो बालक मूलोंमें होता है, उसके यहाँ पहले ये ही लोग भोजन करते हैं। बकरी, भैंस, लोहा और तेल आदिके दानको भी ये ही लोग लेते हैं। मकरसंक्रमणके आगमनकी सूचना ये लोग एक मास प्रथमसे ही देते हैं—एक मास प्रथमसे ये लोग ग्रामोंमें फेरी लगाकर "संक्रमणके निर्मल दान, फटे पुराने दे यजमान"

इस प्रकारसे गायन करते हैं। इनही लोगोंको संक्रमणके दिन अन्न तथा वस्त्रका दान दिया जाता है।

इसके सिवाय तिलोंका उबटन और तिलवा आदिका भक्षण भी संक्रमणके दिन किया जाता है। हाँ, पद्धतिके अनुसार सूर्य्यके पूजन करनेकी परिपाटी प्रायः नहीं पाई जाती। तिल और गुड़के बनाये हुए लड्डू जिनको तिलवा कहते हैं, प्रायः अपने इष्ट मित्रोंमें बांटे भी जाते हैं। कुछ शास्त्रोंकी यह भी आज्ञा है,—मकर संक्रान्तिके दिन तिल तर्पण करके वास्तुदेवता और विश्वेदेवा देवताओंका मंत्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे। स्नान, दान, श्राद्ध और ब्राह्मणभोजन कराकर महादेवजीको चाँवल तथा तिल अर्पण करे और तैलके दीपक जलावे। सौभाग्यवती स्त्रीको चाहिये, कि पाँच घट, दो वेलन और पाँच चकला, मंगाकर उनसे चूना और कुंकुम लगाकर तथा गेहूं, तिल और कार्पासादि भरकर सुवासिनी-सौभाग्यवती पांच स्त्रियोंको वाँयनके स्वरूपमें दे। इस प्रकारके घट दान करनेवाली स्त्रीको संसारमें सुघट किम्वा सुघड़ भी कहते हैं। व्रज तथा उसके समीपवर्ती प्रान्तोंमें किसी स्त्रीकी प्रशंसा करते हैं, तब "वह वड़ी सुघड़ स्त्री है" इस प्रकार अब भी कहनेका प्रचार है। इससे जाना जाता है, कि यह शास्त्रीय-घटदानकी प्रथा किसी समय यहां भी प्रचलित थी, परन्तु काल पाकर वह नष्ट हो गयी और केवल शब्दमात्र प्रचारमें रह गया, जिसके अर्थ भी केवल चतुरता सूचक हो गये हैं।

महाराष्ट्र देशके महाराष्ट्र ब्राह्मणोंमें विवाहिता लड़की पहली संक्रान्तिको तेल, कपास, नमक और ज़ीरा—आदि चीज़ोंको सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये अब भी देती हैं। यह प्रथा भी उसी घट-दानके अस्तित्वको सूचित करनेवाली है। इसके सिवाय महाराष्ट्र देशमें सर्वत्र इस दिन तीलगूल नामक हलुआ बाँटनेकी परिपाटी है और सौभाग्यवती स्त्रियें तथा लड़कियें अपनी अपनी सहेलियोंसे मिलकर उनको हलदी, रोरी, तिल और गुड़ दिया करती हैं। कितने ही श्रीमन्तोंके घरमें तो हलदी और रोरीका उत्सव भी हुआ करता है। महाराष्ट्र देशमें मकरसंक्रमणके दिन समुद्रस्नान, तीर्थस्थान, तिल-तर्पण, श्राद्ध और दान—आदि पद्धतिके अनुकूल कार्य भी किये जाते हैं।

वंगालमें भी तिलदान किया जाता है। वहाँ इस तिल, गुड़के दानवाले लड्डूका नाम तिलूआ है। हमारे इस देशमें उसको तिलवा कहते हैं और वह दो प्रकारका होता है,—"काले तिल और गुड़से वनाया जाता है और

(२) सफेद तिल और खांड़की चासनीसे बनाया जाता है ।" परन्तु बंगालमें गुड़ अथवा खजूरोंकी काकबमें तिल डालकर, तिलुआ बनाया जाता है और इसीको परस्पर बाँटा जाता है। चाँवलका आटा और उसमें घी तथा शक्कर मिलाकर पिष्टक तैयार किया जाता है और इसीको एक दूसरेके घरपर खाते हैं। गरीब लोगोंको बाँटते भी हैं। इस कारण इस त्यौहारको बंगालमें "तिलुआसंक्रान्ति और पिष्टकसंक्रान्ति" कहते हैं। रेशमी या ऊनी वस्त्रमें बाँधकर ये पदार्थ दूर देशस्थ अपने इष्टमित्रोंके पास भी भेजा जाता है। बंगालकी स्त्रियां इस मकरसंक्रान्तिके दिन हाथमें घास लेकर अनाजके भण्डारको बाँधती हैं। बाँधते समय "बावन्न पोटी" इस प्रकारका शब्द भी कहती हैं। जिसके अर्थ—यह होते हैं, कि नाज बावन गुना हो जाय। इस संक्रमणके समय तीर्थस्थानका अधिक फल होनेके कारण, गंगासागरपर अन्दाजन दो ढाई लाख मनुष्योंका संघट्ट होता है।

दक्षिणप्रान्तीय द्राविड़ प्रदेशमें इस अवसरपर "पोंगल" नामका महोत्सव तीन दिनतक होता है। पहले दिन, भोगी पोंगल किम्वा इन्द्र-पोंगल—वर्षाके अभिमानी इन्द्रदेवके निमित्त किया जाता है। दूसरे दिन, सूर्य पोंगल—सूर्य देवताके निमित्त किया जाता है। इस दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ स्नान करके गीले वस्त्रसे ही आंगनमें दूध और चावलसे भरे हुए बर्तनोंको अग्निपर रखती हैं और जब वह खीर उबलने लगती है, तब "पोंगल पोंगल" कहकर उतार लेती हैं और उसमेंसे कुछको गणपतिके लिये अर्पण करती हैं और कुछ गायोंको देकर शेष खीरको घरके लोग खा लेते हैं। "पोंगल" यह शब्द तेलगू भाषाके "पोंघड़ी" और तामील भाषाके "पोंगू" शब्दका अपभ्रंश मालूम होता है, जिसका अर्थ सिजोनेका है। अर्थात्—पोंगल यह एक प्रकारका पाकोत्सव है—यह समझना चाहिये। तीसरे दिन, मट्ट-पोंगल नामक गायका उत्सव होता है। उस समय सब ढोरोंको गाजे बाजेके साथ निकालते हैं और गायोंका पूजन भी इसी दिन किया जाता है। मदुरा और तिन्नेवेल्ली—इन स्थानोंमें यह उत्सव प्रेक्षणीय होता है। महाराष्ट्रदेशमें तिल और गुड़ बांटते हुए लोग यह कहा करते हैं;—"तिल गुड़ घ्याआणि गोड़ गोड़ बोला"—तिल और गुड़ लो और मीठे मीठे बोलो।—"खीर सीज गई क्या ?" इस प्रकारका प्रश्न करनेकी चाल द्राविड़ देशमें है।

मकरसंक्रमणमें विशेष प्रचार तिलोंका पाया जाता है और शास्त्रोंमें

तिल यमराजको उतना ही प्रिय माना गया है जितना कि विष्णुको तुलसी। यह है भी ठीक, कारण कि मकरसंक्रमण यह सूर्यका महोत्सव है और तिल सूर्यको प्यारा है। अतः जो चीज पिताकी प्रिय हो वह बेटाको (यमराजको) प्रिय क्यों न हो। बंगालप्रान्तमें वाराह द्वादशीको तिलका उपयोग किया जाता है और वहां तिलोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक कथा है, जिससे तिल यमराजके प्रीतिकर समझे जाते हैं। अखिल भारतमें पितृसम्बन्धी सब कार्यों में तिलोंको ही श्रेष्ठ माना गया है। प्राचीन ग्रीकलोक वधु और वरकी सन्तान-वृद्धिके निमित्त तिलोंका ही पकान्न बांटते थे।

मकरसंक्रमणके समीप ही जो समय अयनके बदलेका है, उसपर प्रायः और देशोंमें भी कुछ न कुछ उत्सव मनाया जाता है। हिन्दू लोग जिस प्रकार तिलुआ बांटते हैं, उसी प्रकार इन ही दिनोंमें होने वाले "क्रिस्मस" के त्योहार पर खिष्टी लोग मुनक्का या पकान्न एक दूसरेके पास भिजवाते हैं। रोमन लोगोंमें भी प्राचीन कालमें मकर संक्रान्तिके दिन अंजीर, खिजूर और शहद अपने आप मित्रोंके पास भेजनेकी चाल थी। खिष्टी लोगोंमें क्रिस्मस कार्ड भेजनेकी अब भी चाल है। इन बातोंसे जाना जाता है, कि उत्तरायण सूर्यके समय प्रायः सब देशोंमें कुछ न कुछ उत्सव अवश्य किया जाता है। हिन्दुओंमें-यह सब धार्मिक कृत्य समझकर किया जाता है।

माघ मासके व्रत तथा उत्सवोंका विवरण।

प्रायः सब ही धर्म शास्त्रकारोंने माघ-मासको विशेष पुण्यप्रद माना है। निर्णयसिन्धुके देखनेसे पता लगता है, कि समग्र मास विष्णु भगवान्के प्रीत्यर्थ है। इसमें किये हुए स्नान-दान-आदिकोंका भी विशेष महत्व है। माघमें त्रिवेणीके स्नान अधिक पुण्यप्रद माने गये हैं। हेमाद्रि आदिके द्वारा प्राचीन कालमें जलसमाधिका भी विवरण मिलता है। स्त्रियाँ प्रयागमें वेणी-दान किया करती हैं। इस माघमें वसन्तपंचमीके अतिरिक्त कोई सर्व देशी-उत्सव या व्रत नहीं है और वसन्तपंचमी भी बहुत बड़े ठाठसे नहीं मनायी

जाती। माघ शुक्ला सप्तमीके दिन तीन उत्सव लिखे हैं,—"(१) सूर्य सप्तमी, (२) अचला सप्तमी और (३) पुत्र सप्तमी ।" परन्तु इनका भी देशमें अधिक प्रचार नहीं है। केवल सूर्यरथ सप्तमी ही दक्षिण देशके कुछ भागमें मानी जाती है। माघ शुक्ला-अष्टमी भीष्माष्टमी है, परन्तु इसका भी प्रचार बंगालके कुछ हिस्सेके सिवाय अन्यत्र नहीं पाया जाता।

यद्यपि इस मासमें बहुत समारोहका कोई त्यौहार या व्रत नहीं है, तथापि वसन्त पंचमी, रथ सप्तमी, अचला सप्तमी, पुत्रदासप्तमी और भीष्मा अष्टमी—इन पांच उत्सवोंके शास्त्रीय स्वरूपोंपर कुछ प्रकाश डालना आवश्यकीय समझकर, क्रमशः उल्लेख किया जाता है।

१—वसंत पंचमी ।

वसंत पंचमीका त्यौहार ऋतुपरत्व है, इसमें तो किसी प्रकारका संदेह नहीं, परन्तु वसन्त ऋतुके चैत्र और वैशाख—ये दो मास ही मुख्य माने गये हैं; पुनः वसन्तोत्सव माघमें ही क्यों होता है—यह शंका हो सकती है, किन्तु इस शंकाका यही उत्तर हो सकता है, कि मकरसंक्रान्तिके बादसे उत्तरायण सूर्यका प्रारंभ होता है, उसी समयसे वसन्तका प्रारंभ मानकर, इस उत्सवका प्रचार हुआ है। देश भेदोंसे वसन्त मनानेकी प्रक्रियामें भी भिन्नता है, परन्तु हेमाद्रिके अनुसार प्रथम इसकी शास्त्रीयपद्धति बतलाई जाती है, तदनन्तर कुछ देश भेदकी प्रक्रिया भी बतलाई जायगी।

शास्त्रीय स्वरूप ।

हेमाद्रिमें वसन्तोत्सवकी विधि इस प्रकारसे लिखी गयी है:—

माघे मासि सिते पक्षे पंचम्यां पूजयेद्धरिम् ।
पूर्व विद्धा प्रकर्तव्या वसन्तादौ तथैव च ॥

"माघ मासके शुक्लपक्षकी पंचमीको हरिका पूजन करना चाहिये और इस वसंतपंचमीको पूर्व विद्धा लेना चाहिये।" तथाः—

तैलाभ्यंगं ततः कृत्वा भूषणानि च धारयेत् ।
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा गुलालेनार्चयेद्धरिम् ॥

"तैलाभ्यंग स्नान कर, भूषण और वस्त्रोंको धारण करे तथा नित्य नैमित्तिक कार्योंको करके श्रीविष्णु भगवान्‌का प्रधानतया गुलालसे और

सामान्यतया गन्ध, पुष्प, धूप और नैवेद्यसे विधिवत् पूजन करना चाहिये।" इसके अतिरिक्त,—

नारी नरो वा राजेन्द्र! सन्तर्प्य पितृदेवताः।
स्रक्चन्दनसमायुक्तो ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः॥

"हे, राजेन्द्र! स्त्री हो, या पुरुष हो, पितृ-देवोंका तर्पण करे और माला चन्दनादिसे युक्त होकर ब्राह्मणोंको भोजन कराय।" हेमाद्रिकारने वसन्तका शास्त्रीय स्वरूप इतना ही लिखा है।

लौकिक स्वरूप।

वसन्तका अधिक प्रचार दक्षिणमें नहीं है, तथापि कुछ कुछ धनिक लोगोंमें इस अवसरपर गायन, वादन, वनमोचन, जलक्रीड़ा और मिष्टान्न सेवन करनेकी परिपाटी अवश्य है और माघ मासके कारण देवीके मन्दिरमें भी कुछ उत्सव किया जाताहै। इस ऋतुमें होनेवाले फलोंको भी इष्टमंडलीमें बाटनेकी परिपाटी है।

गुजरात, पंजाब, राजपूताना और यू० पी आदि स्थानोंमें विष्णुके मन्दिरोंमें यह उत्सव बड़े ठाटसे मनाया जाता है और ठाकुरजीकी पोशाक भी वसन्ती होती है तथा गुलाल उड़ाया जाता है। राजपूतानेमें तो इन दिनोंमें स्त्रियाँ और पुरुष, प्रायः वसन्ती ही कपड़े पहनते हैं। शास्त्रोंमें जो छै ऋतुएँ बतलाई हैं, उनमें वसन्त ऋतुकी ही प्रधानता है; इसी कारण इसको ऋतुराज कहा जाता है।

बंगालमें इसीको श्रीपञ्चमी मानकर बंगाली लोग इस दिन सरस्वती प्रतिमाकी सांग पूजा करते हैं और आबाल-वृद्ध सब सरस्वतीको नमस्कार भी करते हैं। लिखनेका काम इस दिन बिलकुल नहीं करते। यदि बहुत ही लिखने-की आवश्यकता पड़े, तो पट्टीपर खड़ीसे लिख लिया करते हैं, परन्तु दवात, कलम और कागजसे कुछ कार्य्य नहीं करते। सायंकालके समय बाल बच्चे अनेक प्रकारके खेल खेलते हैं, दूसरोंके बागोंसे फल-फलावलकी लूट भी कर लेते हैं, किन्तु आजकल यह रीति बन्द होती जाती है। दूसरे दिन प्रातः बड़े समारोहसे सरस्वतीकी मूर्ति किसी जलाशयमें ले जाकर विसर्जन कर देते हैं। यह त्यौहार प्राचीन समयमें रोम देशमें भी माना जाता था, कारण कि वहाँके पंचाँगोंमें यह वसन्तारम्भका दिन लिखा जाता है।

वसंत-पञ्चमीके विषयमें पं० श्यामसुन्दर द्विवेदीकी सम्मतिः—हमारे

जितने त्यौहार हैं वे किसी न किसी गूढ़ रहस्यसे अवश्य भरे हैं। इसकी सत्यतामें हम पाठकोंकी सेवामें आज "वसन्त-पञ्चमी" को ही पेश करते हैं।

इसका नाम 'वसन्तपञ्चमी' है, वसन्त ऋतु चैत्र वैशाख है 'मधु माधवौ वसन्तः स्यात्' परन्तु यह पञ्चमी शिशिर ऋतुमें पड़ती है ऐसी शङ्का का उत्तर यही है कि, वसन्त ऋतुराज हैं, जैसे किसी राजाका कहीं आगमन होता है, तो उनके आनेके समयसे कुछ पहले ही, उनके स्नेही उनके स्वागतकी तैयारी करने लगते हैं, वैसे ही ऋतुराजके स्वागतके लिये प्रकृति देवी तथा स्नेही पवन भ्रमर, कोकिलादि ४० दिन पहलेसे ही सुसज्जित होने लगते हैं और उनके कुछ लक्षण इस मासमें ही दिखाई देने लगते हैं। वन, उपवनोंमें प्रकृति देवीकी अनुपम लवणिमाका विकाश विकाशित होने लगता है, सब वृक्षोंमें नये नये किसलय तथा पुष्पोंके अंकुर उगने लगते हैं, दिशायें कोकिलोंके सुकोमल मधुर आलापोंसे प्रति ध्वनित तथा भ्रमरोंके कल गुंजारसे गुंजरित होने लगती हैं। श्रीपवनदेवके सौरभ गुणसे संसारका मन-सरोवर उँमगने लगता है, जाड़ा भी धीरे धीरे श्रीप्रभाकर भगवान्‌की किरणोंका विस्तार देख कर अन्तर्हित होने लगता है। सब प्राणियोंमें एक अद्भुत भाव पैदा होने लगता है, किसान लोग अपने परिश्रमको सम्पन्न देख फूले नहीं समाते, वसुमतिकी निराली छटा शस्योंकी पंक्तियोंसे लहलहाने लगती है। ऐसा कौन सजीव होगा कि जो श्रीभगवान् ऋतुराजका स्वागत शुद्धान्तःकरणसे न चाहता हो?

यह कृषि-प्रधान देश है, इसमें प्रति सैकड़ा निन्यानवे मनुष्य खेतीका ही काम करते हैं, सो हमने जहांतक देखा है किसान लोग इस दिन अपने खेतोंमेंसे यवोंकी बालें ले आते हैं और उनके ऊपरके टूँड़ोंको जला देते हैं, पीछे यवोंके दाने साफकर उसमें घृत, मीठा मिलाकर पवित्र हो अग्निको प्रज्वलित कर हवन करते हैं और शेष अन्नको अपने इष्टदेव, कुलदेवको अर्पित कर अनन्तर सुकुटुम्ब नये अन्नका 'निवान' (नवीन अन्न भक्षण) करते हैं। इससे यह प्रतीत होता है, कि पूर्व समयमें 'यवेष्टि' नामक जो यज्ञ है उसका समारम्भ प्रतिवर्ष इसी दिनसे होता था, जिसके अब भी कुछ टूटे फूटे अङ्ग दिखाई देते हैं, परन्तु अब वे वैसे ही हैं, जैसे कोई नगर नष्ट हो जाय और उसके कुछ चिन्ह खँड़हर बाकी रहें, किन्तु अब यदि अपने देशको धनधान्यसे सम्पन्न बनाकर स्वयं शक्तिशाली बनना स्वीकार है, तो इन त्यौहारोंको यथावत् पूर्ण

करनेकी चेष्टा होनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है, कि "पर्जन्यो यज्ञसम्भवः" अर्थात् बादल यज्ञसे पैदा होते हैं। अन्नोंकी पैदाइश भी उसी साल अच्छी होती है जिस साल अच्छा पानी पड़ता है, पानी बरसना बादलोंके ऊपर निर्भर है, जैसे अच्छे बादल होंगे वैसे ही उत्तम पानी बरसेंगे।

इस दिन रति और कामदेवकी पूजाका भी विधान है, इसका कारण यही है, कि जिससे परमपतिव्रता रति तथा कामदेव हमारे ऊपर प्रसन्न हों असत्-कर्ममें हमें प्रवृत्त न करें, क्योंकि इनके प्रचण्ड प्रतापको देवता, महर्षि भी नहीं सह सकते, तो मनुष्यकी क्या सामर्थ्य है कि, उन्मादन, तापन, शोषण, स्तम्भन, सम्मोहन इन अति कराल कामदेवके बाणोंको सह सके। कामदेव महाराज ऋतुराजके परममित्र हैं, अतः वसन्त-पञ्चमीके दिन उनकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजाकी अतुल महिमाको जबतक संसार जानता था, तभी तक इसमें विपुल पराक्रमी, दिव्यदृष्टि, अमोघ-वीर्य्य पुरुषरत्न तथा पति-परायण कामिनियें पैदा होती थीं। आज उसीके अभावसे वृद्धोंकी कौन कहै, नवयुवकोंको भी बिना उपनेत्र (चश्मा) के दिखाई नहीं पड़ता और थोड़ेसे ही भयके उपस्थित होनेसे अधीर हो जाते हैं। किसी गूढ़ विषयपर वे कुछ समयतक विचार नहीं कर सकते, अल्प ही परिश्रममें मस्तिष्क घूमने लगता है, जिससे संसार सुखहीन तथा जीवन भार-भूत हो जाता है। दूसरोंकी रक्षा तो दूर रही वे अपनी भी रक्षा नहीं कर सकते। इस लिये अब आवश्यकता इस बातकी है, कि यदि धर्म-प्रिय हिन्दूसमाज अपने हिन्दूधर्मकी रक्षा चाहता है, तो उसे अपने उपासनाकाण्डका अवलम्बन करना चाहिये और अपने धार्मिक त्यौहारोंको याथातथ्य पालन करना चाहिये, तभी इस देशका तथा अपना मंगल हो सकता है; क्योंकि धर्मकी उन्नतिमें ही इसकी उन्नति है।

जैसे श्रीवेद भगवान् तथा पुराणोंने तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु, महेशका वर्णन किये हैं, वैसे ही उनकी परमशक्ति-रूपा देवियोंका भी वर्णन किया है। यथाः—

"अजामेकां लोहितशुक्ल-कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां नमामः"

इसका भावार्थ यह है, कि बहुत प्रजाओंको सृजने (उत्पन्न करने) वाली रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण-विशिष्ट अर्थात् महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती, एकत्वरूपसे सर्वत्र वर्तमान जन्मविकाररहित जो आद्या शक्ति हैं, उन्हें प्रणाम करता हूं। क्योंकि बिना शक्तिके कृपा-कटाक्षके संसारका कोई भी कार्य्य

नहीं चल सकता । ईश्वरको भी जब भूलोकमें प्रकट होना पड़ता है, तो वे भी शक्तिको साथ लिये हुए ही अवतीर्ण होते हैं और शक्तिका सबसे प्रथम आदर करते हैं। इसका कारण यही है, कि बिना शक्ति कोई भी कार्य्य हो नहीं सकता। सब लोकोंके उत्पन्न करनेमें, पालन तथा संहार करनेमें, शक्ति ही प्रधान है। शक्ति-हीन पुरुष कोई कार्य्य नहीं कर सकता। यद्यपि शक्तिकी अधिष्ठात्री देवी एक है, तो भी कार्य कारणके लिये अनेकरूपसे आविर्भूत होती है। सब शक्तियोंमें प्रधान शक्ति सत्त्वगुणविशिष्टा वाणीकी अधिष्ठात्री देवी जो श्रीसरस्वती हैं, उनकी पूजाकी विशेष महिमा वसन्त-पञ्चमीको ही है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्त महापुराण प्रकृति खण्डके ४ अध्यायमें वर्णन है, कि गोलोक विहारी श्रीकृष्णजीने श्रीसरस्वतीके ऊपर अति प्रसन्न होकर कहाः—

प्रतिविश्वेषु ते पूजां महतीं ते मुदान्विताः ।
माघस्य शुक्ल-पञ्चम्यां विद्यारम्भेषु सुन्दरि ॥
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः ।
सन्तश्च योगिनः सिद्धा नागा गन्धर्वकिन्नराः ॥
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे यथाविधि ॥

इसका अभिप्राय यह है, कि हे सुन्दरि ! हमारे वरप्रदानसे माघ शुक्ला पञ्चमीके दिन तथा विद्यारम्भके दिन संसारमें मनुष्यगण, मनु-आदि चौदह मनु, इन्द्रादिक सब देवता, बड़े बड़े मुनीन्द्र तथा मुक्तिकी इच्छावाले सन्त, योगीसमूह, सिद्ध लोग एवं नाग, गन्धर्व, किन्नर ये सब प्रसन्नतासे प्रत्येक कल्पमें यथाविधि आपकी श्रेष्ठ पूजा करेंगे। ऐसे ही इनकी पूजनकी विधि देवर्षि नारदके प्रति श्रीनारायणजीने वर्णन किया है किः—

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भ-दिनेऽपि च ।
पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्र स्यात् संयतः शुचिः ॥
स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः ।
सम्पूज्य देव-षट्कं नैवेद्यादिभिरेव च ॥
गणेशञ्च दिनेशञ्च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम् ।
सम्पूज्य संयतोऽप्यग्रे ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत् ॥

अर्थात् माघ शुक्ला पञ्चमीके तथा विद्यारम्भके दिनसे पहले दिन, नियम करे और पूजावाले दिन संयमपूर्वक प्रातःकाल स्नान कर सन्ध्या, तर्पण

आदि प्रातःकालके नित्यकर्मको सम्पूर्ण कर, भक्तिपूर्वक कलश स्थापन कर प्रथम गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शंकरजी तथा श्रीदुर्गाजीकी नैवेद्यादिसे पूजा करके अनन्तर अभीष्ट (मनोरथ) को देनेवाली श्रीसरस्वतीजीका षोड़शोपचार पूजन करे।

प्रिय पाठको! पूजा करनेसे मन संयमित होता है, भक्ति बढ़ती है, फिर ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो कि भक्तिसे प्राप्त न हो सकता हो। देवी-देवता सब भक्तिसे ही प्रकट होते हैं। नारद, ध्रुव, प्रह्लादादिकोंने जो सिद्धि पाई थी, वह भक्तिसे ही और इस भूमण्डलपर बड़े बड़े जितने महान् पुरुष हुए हैं, वे सब अपने इष्ट देवकी अटल भक्तिसे पूजा करनेसे ही प्रातःस्मरणीय हुए हैं और अत्यन्त दुष्कर कार्योंको भी आसानीसे कर डालते थे। इस लिये प्रत्येक धार्मिक हिन्दू-समाजका मुख्य कर्तव्य है, कि वह यदि अपने हिन्दूधर्मको जाग्रत करना चाहता है और अपनी रक्षा चाहता है तथा मनुष्य शरीरको सार्थक बनानेकी अभिलाषा रखता है, तो उसे उचित है कि, पहले श्रीभारतीमाताकी उपासना करे और शुद्ध हृदय निष्कपटभावसे देवीके सामने प्रार्थना करे, कि हे जननी! आपके शुद्ध स्वरूपको भूल जानेसे ही अविद्यारूप अन्धकारसे त्रासित हो किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा हूँ। ऐसे मुझको आप फिर अपनी दिव्य ज्ञान-ज्योतिसे निर्मलकर अपनाइये, आपके अतिरिक्त दूसरी गति नहीं है, क्योंकि—

"आगोयोगाद्दुर्दशां प्रापितोऽपि मातस्त्वत्तो नान्यन्मे शरण्यम्।
बालो लौल्यात्ताड़ितोऽपीह मात्रा मातर्मातर्मातरित्येव रौति।"

अर्थात् अपराधके कारण दुर्दशाको प्राप्त होकर भी आपके सिवाय हे मातः! दूसरेकी शरण नहीं चाहता; क्योंकि बालक चंचलताके कारण मातासे ताड़ित होनेपर भी मा, मा, मा कह कर रोता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इससे वीणापाणी प्रसन्न होंगी।

२—सौररथ सप्तमी।

—:*:—

सौर-रथ सप्तमीका व्रत वैदिक है, इसमें तो किसी सनातनधर्मीको शंका नहीं हो सकती, कारण कि वेदमाता गायत्री ही सूर्यको उपास्य बतलानेवाली है। इसके अतिरिक्त वेद और उपनिषदोंमें सूर्यके प्रतिपादक अनेक मंत्र हैं, उनमेंसे एक सूक्त दिया जाता है जो सौरपन्थका आधार है।

(मं १—११५ सू०)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

"मित्र, वरुण और अग्नि—इनका नेत्र स्वरूप सूर्यदेवका यह बल उदय हुआ है। स्थावर जंगम सर्व वस्तुओंके आत्मरूप इस सूर्यने द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्ष लोक,—इन तीनोंको व्याप्त कर रक्खा है।" केवल इस एक मंत्रसे ही पाठकोंको पता लग सकता है, कि सौर-रथसप्तमीका त्यौहार वैदिक है।

वेदोंमें सूर्योपासनाको देखकर डार्विनके अनुयायी—क्रमोन्नतिवादियोंने इस प्रकरणको संसारके सामने इस प्रकारसे रखनेकी चेष्टा की है,—"प्रथम कालमें जब आर्य निरे अज्ञानी थे, तब सृष्टिको देखकर इसका कोई कर्ता अवश्य है और वह ही हमारा पूजनीय एवं ईश्वर है, यह प्राथमिक विकाश उनकी बुद्धिमें हुआ। प्राथमिक विकाशमें सृष्टिकर्ताका इत्थंभूत पता नहीं था, इस लिये जब दूसरी कक्षाका विकाश हुआ, तब सृष्टपदार्थोंमें विशेष चमकनेवाले और प्रकाश करनेवाले सूर्यको ही ईश्वर समझा। इसी कारण वेदोंमें "असौ वादित्यो ब्रह्म" यह सिद्धांत किया गया। जब इससे भी अधिक बुद्धिका विकाश हुआ, तब सूर्यसे भिन्न ईश्वर माना गया।" परन्तु पाठकवर्ग! यह अनुमान निराधार ही नहीं, किन्तु निर्मूल कल्पना जनित है। कारण कि इस प्रकारका विकाशवाद तब संभव हो सकता है, जब जगत्‌की बनानेवाली केवल प्रकृति ही हो, परन्तु वेदोंमें तो अभिन्ननिमित्तोपादान कारण ब्रह्मको माना गया है और जिन वैदिक लोगोंने प्रकृतिको उपादान कारण माना है, उनने भी निमित्त कारण तो ब्रह्मको ही माना है। दोनों हालतोंमें ब्रह्म जगत्‌का कारण, सर्व शक्तिमान् और सर्वज्ञ सिद्ध होता है। अतः इस प्रकारके ब्रह्म होनेपर क्रमोन्नति होना सर्वथा असंगत है। बुद्धिकी क्रमोन्नति अल्पज्ञमें बन सकती है और रचनाकी क्रमोन्नति जड़के कर्तृत्व एवं अल्पज्ञतामें हो सकती है, ब्रह्ममें नहीं। ब्रह्म सर्वज्ञ ज्ञानघन है और उसीका ज्ञान वेद है, उसमें क्रमोन्नति कहना मानों ब्रह्मको मूर्ख ठहराना है, इस कारण यह हेतु सर्वथा असंगत है।

वेदकालमें जब सूर्यके अतिरिक्त ब्रह्म मानने तक बुद्धिका विकाश हो गया, तो अब तक सूर्यकी उपासना क्यों प्रचलित है? इसका कोई उत्तर विकाशवादियोंके पास नहीं, इस कारण भी यह विकाशवाद हेतु दुष्ट है,

माननीय नहीं। मैं इसका रहस्य प्रथम ही बतला चुका हूं, कि यह समस्त जगत् ब्रह्मरूप ही है। इसमें जो जड़ पदार्थ है, वे भी ब्रह्मके अतिरिक्त नहीं, कारण कि जहां सत् एवं चित्का तिरोभाव है, वहां ही जड़ पदार्थोंका अस्तित्व है। इस हिसावसे सूर्यलोकका गोल जड़ होनेपर भी ब्रह्मरूप है। ब्रह्मकी चित्शक्ति सर्वव्यापिनी है, उसका मुख्य केन्द्र ब्रह्म होनेपर भी छोटे छोटे अनेक केन्द्र हैं। इसी हिसावसे सूर्य्यलोकमें काम करनेवाली चित्-शक्ति भी ब्रह्मका एक छोटा केन्द्र है, जिसको शास्त्रोंने अभिमानी देवता या आधिदैविक शक्ति कहा है। जिस ब्रह्मके सत् चित् और आनन्द स्वरूपका यह समस्त विकाश है, वही समस्त केन्द्रोंका आधारभूत है और उसीमें ये सब केन्द्र डोरामें मणियोंकी भांति गुथे हुए हैं। इसी कारण "असावादित्यो ब्रह्म" यह आदित्य ही ब्रह्म हैं—उपनिषदोंमें कहा गया है।

यही कारण है कि, बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता अब भी इस ब्रह्मवादके सामने सिर झुकाते हैं। वेदोंका सिद्धान्त बड़ी गहराईपर है, जिसको न समझकर नवीन विकाशवादी, क्रमोन्नतिका मिथ्या ढकोसला हम लोगोंके सामने रखकर, विचारे अनभिज्ञ लोगोंको जड़वादकी गहरी खाईमें डालनेकी कोशिश कर रहे हैं। अस्तु, अब सूर्य्यरथसप्तमीकी समस्त विधि भविष्योत्तरपुराणादिके अनुसार बतलाई जाती है।

शास्त्रीय-स्वरूप।

मदनरत्न और स्मृतिसंग्रह—इन दोनों ग्रन्थोंमें सौररथसप्तमीका वर्णन इस प्रकार आया है:—

सूर्यग्रहणतुल्या सा शुक्ला माघस्य सप्तमी।
अरुणोदयवेलायां स्नानं तत्र महत्फलम्॥

"माघ मासकी शुक्ला सप्तमी सूर्यग्रहणके तुल्य होती है। जो लोग अरुणोदयके समय स्नान करते हैं, वे महत्फलके भागी होते हैं।" इसको अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करनेका ही विधान है। चांदी आदिके सुन्दर पात्रमें बत्ती लगाकर और दीपकको शिरपर धारण करके हृदयमें निम्नलिखित मन्त्रसे भास्करका ध्यान करना चाहियेः—

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः।
अरुणारुण नमस्तेऽस्तु हरिदश्व नमोऽस्तु ते॥

जलके ऊपर दीपको तैराय और पितृदेवोंका तर्पण करे। यदि सब बातें गंगादि तीर्थोंमें या पवित्र संगमोंपर की जायं, तो सात जन्म तकके पापोंका क्षालन हो जाता है। यदि षष्ठी-सप्तमीका योग आ जाय, तो पद्मक योग बन जाता है—जो एक हजार सूर्य्य ग्रहणोंसे भी अधिक फलका दाता है। स्नान करते समय तिथि-मासादि उच्चारणपूर्वक संकल्प कर आंकके सात पत्र और वेरके सात पत्र मस्तकपर रखकर यह मन्त्र बोले:—

यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु।
तन्मे रोगं च शोकञ्च माकरी हन्तु सप्तमी॥"

पश्चात् स्नान करे तथा अर्घदान करके सूर्यभगवान्की प्रार्थना करे। इस प्रकारसे सूर्य-देवकी पूजा षोड़शोपचारपूर्वक करनी चाहिये।

अथ कथा।

श्रीकृष्णभगवान्ने महाराज युधिष्ठिरसे कहा, कि पूर्व समयमें काम्बोज देशके राजा यशोवर्म्माका पुत्र सदैव रोगसे पीड़ित रहा करता था। राजाने एक दिन ब्राह्मणोंसे रोगी रहनेका कारण पूछा, तो ब्राह्मणोंने कहा, कि पूर्व जन्ममें यह वैश्य था। वित्त पाकर दान-धर्मादिमें न लगाया, इस लिये इस जन्ममें रोगी रहता है। आपने सूर्य्यरथसप्तमीका व्रत किया था, जिससे आपके घर जन्म ले लिया है। यदि इसको नीरोग करना चाहते हैं, तो इससे रथसप्तमीका व्रत कराना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है,—"सप्तमीके दिन निराहार रहकर वेद-विद् ब्राह्मणोंका वरण करे और प्रातःकाल सूर्य्यका बृहत् तथा दिव्य एक रथ सजाकर उस रथमें स्वर्णकी सूर्यप्रतिमा रखकर, वेद-मन्त्रोंसे पूजन कर बड़े ठाटसे किसी सरोवरपर ले जाय। वहां जाकर वैदिक मन्त्रोंसे सविताका पूजन करके उसी ठाटसे सायंकाल घरपर लौटे और ब्राह्मणोंको भोजन तथा दक्षिणा देकर रथ और सूर्यकी प्रतिमाको आचार्य-के लिये दे।" इस समस्त विधानके करनेमें द्रव्य-संकोच न करना चाहिये। द्रव्य होनेपर जो संकोच करते हैं उनको फलकी प्राप्ति नहीं होती। राजाने ब्राह्मणोंके मुखसे सौर-रथ-सप्तमीकी विधिको सुनकर उसीके अनुसार अनु-ष्ठान किया, जिससे अचिरकालमें ही बालक नीरोग हो गया।

लौकिक स्वरूप।

यह त्यौहार कुछ कुछ बंगाल, द्राविड़ महाराष्ट्र देशमें ही प्रचलित है। राजपुताना, पञ्जाब, यू० पी० और गुजरात आदि देशोंमें इसका प्रचार नहीं

पाया जाता। सौरपन्थके लोग भी विशेषकर इन प्रान्तोंमें नहीं पाये जाते। उपर्युक्त स्थानोंमें सूर्योपासनाका विशेष प्रचार होनेपर भी कुछ कुछ लोग सूर्य्यको नित्यप्रति दण्डवत् करते हुए देखे जाते हैं। बंगालमें इसका भास्कर सप्तमी नाम है। द्राविड़ देशमें यह सप्तमी पद्धतिके अनुसार मनाई जाती है—रात्रिमें गायन, वादन, दीपोत्सव और रथोत्सवका बड़ा आनन्द रहता है। उस दिन सर्वत्र अनध्याय पालन करनेकी परिपाटी है और पुस्तकको हाथ लगाना भी महापाप समझा जाता है। बंगालमें कार्त्तिकपौर्णिमा और प्रत्येक रविवारको सूर्यनारायणकी पूजा होती है और इसको "ऐत" पूजा कहते हैं। एक छोटेसे मिट्टीके बर्तनको लाल रंगसे रंगकर उसपर केलेके या अन्य वृक्षके पत्रोंको रखकर तथा उसपर बीडी रखकर लाल वर्णके पुष्प, दूर्वा और क्षीरादि-समर्पण करते हैं और स्त्रियाँ हलदी—कुंकुम बाटती हैं। महाराष्ट्र और कर्नाटकमें हल्दी और कुंकुमका बाँयन तो स्त्रियाँ बाँटती हैं, परन्तु "ऐत" पूजाकी रीति वहां पर नहीं है।

सौरपन्थी लोगोंमें भी सूर्योपासनाके छः भेद माने गये हैं। एक पन्थके लोग लाल बिन्दु सिरपर लगाते हैं और लाल फूलोंकी ही माला कण्ठमें धारण करते हैं। दूसरे तीन पन्थोंके लोग उदयकालके सूर्य्यको ब्रह्मदेव, मध्यान्हके सूर्यको शिव और सायंकालीनको विष्णु मानकर उनकी पूजन करते हैं। पांचवां पन्थ, ब्रह्मा, विष्णु और महेशका जनक सूर्य ही है—यह मानता है और इस पन्थके लोग सूर्यके अस्तोदयके बीचमें प्रायः भोजन करना निषिद्ध मानते हैं। छटी शाखाके लोग सूर्य चिन्हसे अंकित तप्तमुद्राको शरीरपर इस प्रकार धारण करते हैं, जिस प्रकार रामानुज सम्प्रदायके लोग धारण करते हैं। "ॐ नमः सूर्याय" इस सप्ताक्षरी मन्त्रको जपते हैं।

पञ्जाब आदि देशोंमें १५०० वर्षोंसे भी प्रथम सूर्य्यमन्दिरोंका होना आजके उपलब्ध शिला-लेखोंसे जाना जाता है। मुलतानसे लगाकर कच्छ देश तक सूर्य्यके अनेक मन्दिर थे, यह भी ताम्रलेखोंसे प्रकट होता है। मुलतानमें एक सुप्रसिद्ध सूर्य्यका मन्दिर था, जिसको हुएनत्सिआंग और आल्बेरुनी—इन दोनों विदेशी प्रवासियोंने देखा था। जिसका पता उनकी पुस्तकोंसे चलता है, परन्तु सतरहवीं शताब्दीमें औरङ्गजेबने उसको नष्ट कर दिया। सर केनिङ्घामने एक और भी सूर्य्यका बहुत बड़ा मन्दिर श्रीनगर (काश्मीर) से २० मीलकी दूरीपर देखा था, जिसको सर महोदयने पाँचवीं शताब्दीका

अपनी पुस्तकमें लिखा है और तद्देशीय इससे भी पुराना मानते हैं। इस समयके उपलब्ध मन्दिरोंमें बंबईका सूर्यमंदिर ही बडा प्रतीत होता है।

हिन्दुओंके अतिरिक्त अन्य धर्मोंमें भी सूर्यका महत्त्व प्राचीन कालमें था, यह बौद्धधर्मानुयायी राजा कनिष्कके सिक्केपरसे जाना जाता है। कनिष्कके सिक्कोंपर "मायरो" ये अक्षर थे। मायरो, मिहिर और मिहर—ये शब्द और पारसियोंकी झेन्द भाषामें "मिथ्र" यह शब्द—संस्कृत भाषाके मित्र (सूर्य) शब्दके ही अपभ्रंश हैं।

सारांश यह है, कि प्राचीन कालमें सूर्योपासना समस्त संसारके अधिकांश भागमें प्रचलित थी। हमारा काम है कि हम आर्यदेशमें सर्वत्र सूर्यरथसप्तमीका प्रचार करते हुए हमारे बन्धु भगिनियोंके अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश उत्पन्न करें। ऐसा न हो, कि बाह्य सूर्योपासना होती ही रहे और भीतर अंधकार बढ़ता जाय—विदेशी लोग सूर्यके भौतिकस्वरूप (इलेक्ट्रीसिटी) से अपने देशोंको उन्नत बनाते जायँ और हम केवल "सप्ताक्षरी" मन्त्रका ही जप करते रहें।

३—अचला सप्तमी।

—०:※:०—

अचला सप्तमीके व्रतका वर्तमान-कालमें प्रायः समस्त भारतमें किसी जगह भी प्रचार नहीं पाया जाता, परन्तु भविष्योत्तर पुराणमें इस प्रकारसे अवश्य ही इस व्रतके विषयमें उल्लेख हुआ है। वहां महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे पूछा है:—

कथं स्त्रियः सुरूपाः स्युः सुभगाः सुप्रजास्तथा।
पुण्यस्य महतश्चात्र सर्वमेतत् फलं यतः॥

"भगवन्! अच्छे रूपवाली, सौभाग्यवती और अच्छे पुत्रवाली—स्त्री किस व्रतके प्रभावसे हो सकती है? इसके उत्तरमें भगवान् कृष्णने कहा, कि इन्दुमती वेश्या प्राचीन कालमें महाराज सगरके पास रहती थी। उसने किसी समय वशिष्ठजीके पास जाकर पूछा,—"भगवन्! मुझसे कोई धार्मिक कार्य आज पर्यन्त नहीं हुआ इससे चित्तमें खेद रहता है, कि मुझको निर्वाणकी प्राप्ति किस प्रकार होगी?" वेश्याके इस आर्त्तनादको श्रवण करके वशिष्ठजीने कहा,

कि स्त्रियोंको मुक्ति एवं सुरूप सौभाग्यादिको देने वाला अचलासप्तमीसे बढ़ कर दूसरा व्रत नहीं है। अतः माघ-शुक्ला-सप्तमीके दिन अचला सप्तमी व्रतको करो, जिससे तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा। राजन्, युधिष्ठिर! इन्दुमतीने जब विधिके साथ इस व्रतको किया तो उसके प्रभावसे वह इस शरीरको छोड़ कर स्वर्गलोकमें गई और वहाँ समस्त स्वर्गीय अप्सराओंकी नायिका हुई। व्रतकी विधि इस प्रकारसे बतलाई गई है,—"छठके दिन केवल एक बार भोजन करे और उसी दिन विधिवत् सूर्य भगवान्का पूजन भी करे। सप्तमीको प्रातः-काल किसी गंभीर जलाशयपर जाकर दीपदानपूर्वक मस्तकपर दीपधारण करके सूर्यकी प्रार्थना करे। स्नान करनेके बाद सूर्य भगवान्की अष्टदली-प्रतिमा बनाकर बीचमें शिव-पार्वतीको स्थापितकर यथाविधि पूजन करे और ताम्र-पात्रमें चावल—आदि भरकर दान दे। सूर्यको विसर्जन करके घर-पर आवे और ब्राह्मणभोजन कराकर आप भी भोजन करे।" पाठकवर्ग! इस अचलासप्तमीका प्रचार भारतवर्षमें न होनेका यही कारण दीखता है, कि यह व्रत भी वास्तवमें देखा जाय तो सूर्य्यका ही है और उसका अन्तर्भाव सौररथ-सप्तमीमें ही हो जाता है।

४—पुत्र सप्तमी।

पुत्रसप्तमी व्रत भी माघ शुक्ला सप्तमीको ही होता है और इसका पृथक्-रूपसे भारतमें प्रचार न होनेके कारण जाना जाता है, कि यह भी सौररथ-सप्तमीके अन्तर्गत ही हो गया। मदन रत्न और आदित्य पुराणमें इसका थोड़ा सा वृत्तान्त मिलता है। सूर्यने स्वयं कहा है,—"जो मनुष्य बारह मासकी प्रत्येक सप्तमीको मेरा व्रत तथा पूजन करके माघ-शुक्ला-सप्तमीको समाप्त करता है और उस दिन स्नानादि कर सफेद पुष्पोंकी माला धारण कराकर विष्णु-रूपसे मुझको खीरका भोग लगाता है तथा हवन कराकर पायससे ब्राह्मण भोजन कराता है, उसके घरमें पुत्ररूपसे मैं स्वयं जन्मता हूं। अर्थात् मेरे समान तेजस्वी और आरोग्यवान् पुत्र उत्पन्न होता है।" इसमें पाठकोंको स्वयं विदित हो गया होगा, कि यह व्रत भी सूर्य्यका ही है और सौर-रथ-सप्तमी-के ही अन्तर्गत है।

५–भीष्माष्टमी।

—:※:—

शास्त्रीय स्वरूप।

माघ-शुक्लाष्टमीको भी भीष्माष्टमी कहते हैं। इसके विषयमें हेमाद्रिकारने पद्मपुराणका प्रमाण देकर इस प्रकार लिखा है:—

माघे मासि सिताष्टम्यां सलिलं भीष्म-तर्पणम्।
श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः॥

"जो मनुष्य माघ मासकी सिताष्टमीको भीष्मपितामहके निमित्त तिलों सहित तर्पण और श्राद्ध करता है, वह शुभ संततिको प्राप्त करता है।" इससे विदित होता है, कि भीष्मपितामहके मरणका यही समय था, अन्यथा इस दिन श्राद्धकी उत्पत्ति कैसे मानी जाती। महाभारतमें भी इसी प्रकार लिखा है:—

शुक्लाष्टम्यान्तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्।
सम्वत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

"जो मनुष्य माघ शुक्लाष्टमीको भीष्मके निमित्त जल दान करता है, उसके वर्ष भरके पापोंका नाश हो जाता है।" पद्मपुराणमें तो यहाँतक लिखा है, कि इस अष्टमीको जो श्राद्ध तर्पण भीष्मके लिये किया जाता है, वह जीवित पितावाले पुरुषको भी करना चाहिये। भीष्मके तर्पण करनेके लिये श्लोक निर्णयसिन्धुमें दिये हैं, उनको यहाँ लिखा जाता है। कारण कि इन तीन श्लोकोंमें समस्त वृत्तान्तका सार भी आ जाता है। श्राद्ध तथा तर्पणका कर्ता कहता है:—

भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
आभिरद्भिरवाप्नोति पुत्र-पौत्रोचितां क्रियाम्॥
वैयाघ्र-पद्य गोत्राय सांकृत्यस्तुप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतत् जलं भीष्माय वर्म्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे॥

"राजा शन्तनुका पुत्र, वीर, सत्यवादी और जितेन्द्रिय भीष्म इस हमारे दिये जलको अपने पुत्र-पौत्रादिका दिया जानकर ग्रहण करे। वैयाघ्रपद्य

गोत्रवाले, सांकृत्य प्रवरवाले और अपुत्र भीष्म पितामहके लिए मैं जलदान देता हूं। वसुओंका अवतार, शन्तनुका पुत्र और आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मके लिये मैं अर्घ्य दान देता हूं।"

इसके अतिरिक्त श्राद्धकी विधि श्राद्धपद्धतिसे लेनी चाहिये। इस अष्टमीके सिवाय निर्णयसिन्धुमें भीष्मद्वादशीका व्रत भी इसी द्वादशीको माना है, परन्तु यह निश्चय नहीं होता है कि, भीष्मके किस चरित्रका द्योतक यह द्वादशी व्रत है। कदाचित् भीष्मजयन्ती हो, परन्तु निश्चय नहीं कहा जा सकता।

लौकिक-स्वरूप।

खेदके साथ लिखना पड़ता है, कि इस भीष्माष्टमीके श्राद्ध-दानकी परिपाटी केवल बंगालमें ही है अन्यत्र नहीं। वास्तवमें देखा जाय, तो यह तर्पण समस्त भारतियोंके करनेके योग्य है। इससे भारतियोंकी उदारताका आदर्श अन्य देशके लोगोंपर भी प्रभाव डालता है और समाज संगठनका महाकार्य्य होता है। त्यौहार दो प्रकारका होता है,—"एक त्यौहार तो इस प्रकारका होता है, कि जिसके मूलमें देश हितकर और राष्ट्र निर्मायक गुणोंका अभाव अथवा न्यूनता होती है। दूसरा उपर्युक्त गुणोंसे सम्पन्न रहता है।" इस द्वितीय लक्षणवाले व्रत या त्यौहारका अति प्रचार होना मानो राष्ट्र निर्माणकी शिलाका आरोपण करना है। भीष्माष्टमीके त्यौहारमें यह द्वितीय गुण ओत-प्रोत भरा है। यहां मैं भीष्मकी उन घटनाओंका दिग्दर्शन कराना चाहता हूं, कि जिससे पाठकोंको विदित हो जाय, कि वास्तवमें ही वे गुण राष्ट्र हितकर हैं।

भीष्मः—यह गंगाका पुत्र था और गंगा पाण्डव-कौरव वंशके मूल पुरुष राजा शन्तनुकी भार्या थी, उसीसे भीष्मका जन्म हुआ था; अतः बाल्यकालमें भीष्मको गाङ्गेय ही कहा जाता था। राजा शन्तनु एक बार आखेट खेलनेको जंगलमें गंगाके परली तरफ गया। आखेट खेलकर जब गंगापर आया, तो हरिदास केवटकी कन्या मत्स्यगन्धा (वास्तवमें यह कन्या क्षत्रियकी थी, परन्तु हरिदासके घरमें इसका पालन हुआ था) ने राजाको नावमें बिठलाकर गंगासे पार उतारा। राजा शन्तनुने इस कन्याके परम सौन्दर्यको देखकर हरिदाससे कहा, कि यह तुम्हारी कन्या पत्नी बनानेके लिये हमको दे दो, इस पर केवटने कहाः—

तुम राजन पतिराज हो मैं अति नीच मलाह,
आपही कहो विचारके कहँ विधि होत विवाह।

वैर और सम्बन्ध—ये समान कक्षाके लोगोंमें होते हैं। आपकी और मेरी कोई बराबरी नहीं, इस कारण मैं मत्स्यगंधाका विवाह आपके साथ नहीं कर सकता। राजाने जब विशेष आग्रह किया तो केवटने स्पष्ट कह दिया, कि आपका ज्येष्ठ-पुत्र भीष्म विद्यमान है। ऐसी दशामें मेरी कन्यासे उत्पन्न होने वाला पुत्र राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता। अतः मैं कन्या देना योग्य नहीं समझता। राजा चुप होकर अपनी राजधानीमें चला गया, परन्तु इस कन्याके न मिलनेसे उद्विग्नता रही। इस प्रकारका खिन्नचित्त राजाको देखकर पितृ-भक्त भीष्मने खिन्नताका कारण पूछा, तब राजाने समस्त वृत्तान्त भीष्मको सुना दिया।

भीष्म स्वयं पिताकी चिन्ताको निवृत्त करनेके निमित्त हरिदासके यहां गये और उसको समझाया,—"हरिदास केवट! चक्रवर्ती राजाको कन्या नहीं देते हो, इसको तुम्हारा दौर्भाग्य कहें, या तुम्हारी कन्याका?" केवटने उनसे भी कहाः— जनकार्थे न दास्यामि तुभ्यं दास्यामि कन्यकाम्।
तव पुत्रो हि राजा स्यात्तस्य पुत्रो न भूपतिः॥

"मैं अपनी कन्याको तुम्हारे पिताके लिये नहीं, किन्तु तुम्हारे लिये दे सकता हूँ, कारण कि तुम्हारा लड़का राज्यका अधिकारी हो सकता है, राजा शन्तनुका अब उत्पन्न होने वाला पुत्र तुम्हारी विद्यमानतामें अधिकारी न होगा।" इस प्रकार युक्तिपूर्ण केवटके कथनको श्रवणकर पिताभक्त भीष्मने कहा, कि मैं तो राजाके लिये प्रजा है, यह नहीं मानता, किन्तु प्रजाके लिये ही राजा है—यह मानता हूँ इस लिये मुझको राज्यके लेनेकी रंचक भी अभिलाषा नहीं, तेरा ही पुत्र राजा होगा—यह मैं धर्मसे तुझको विश्वास दिलाता हूँ। केवटने प्रार्थना की, कि यद्यपि आपके सदृश धार्मिक-पुरुषके वचनपर विश्वास न करना—यह बड़ी भारी मूर्खता है, परन्तु मुझको यह संदेह अवश्य है, कि आपका जो और सुपुत्र होगा, वह मेरी कन्याके पुत्रको राज्य न भोगने देगा, तो इसका आप मुझको क्या विश्वास दिलाते हैं। इस प्रकार केवटका अभिप्राय जानकर भीष्म तत्काल गंगामें उतर गया और इस प्रकारकी भीष्मप्रतिज्ञा कीः—

"राज्यके छोड़त राम गए बन वाक्य पिता जिन टेक निबाही,
श्रवण भक्त भयो जगमें पितु मातुकी सेवा करी श्रुति गाई।

गंग प्रवाह उतंग यहै तहँ शपथ करौं सुनि केवट राई,
जीवित व्याह करौं नहिं या महिदेवनि दुन्दभि दीन वजाई ॥"

इस प्रवल प्रतिज्ञाको सुनकर, देवोंने दुन्दभियोंको बजाकर अत्यन्त हर्ष प्रगट किया। प्रथम इसका नाम गांगेय प्रसिद्ध था, परन्तु उस दिनसे भीष्म पितामह नाम प्रसिद्ध हुआ। भीष्म पितामहकी उस भीष्म प्रतिज्ञाका फल यह हुआ, कि केवटने अपनी मत्स्यगंधा—कन्याका विवाह महाराज शन्तनुके साथ कर दिया। महाराज शन्तनु अपने पुत्रकी पितृ-भक्तिसे परम सन्तुष्ट हुए और वरदान दिया,—"बेटा तुम्हारी मृत्यु तुम्हारी इच्छाके विना न होगी।" उस दिनसे भीष्मने आमरणान्त ब्रह्मचर्यव्रतको निवाहा। यद्यपि भीष्मपितामह धर्मके आदर्श थे, परन्तु प्रथमसे ही दुर्योधनके पास रहते थे और अकस्मात् कौरव-पाण्डवोंका युद्ध छिड़ गया इस कारण महाभारतकी लड़ाईमें भी अपने आश्रयदाता दुर्योधनका साथ नहीं छोड़ा।

जिस समय दुर्योधनकी हार-पर-हार होने लगी और वह हतोत्साह हो गया, उस समय दुर्योधनके दुःखोद्गारोंको श्रवण कर भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा की,—"आज मैं श्रीकृष्णको चक्र धारण कराऊँगा (श्रीकृष्णने राजनीतिवश युद्धसे प्रथम यह प्रतिज्ञा करली थी कि मैं शस्त्र धारण न करूँगा)। यदि दैवात् कृष्णने चक्र धारण न किया, तो पाण्डववंशका नाश करके कौरववंशकी विजयपताका आज ही संसारमें फहराऊँगा और यह वात सफल न होगी तो फिर मैं अपने माता-पिताको लजानेवाले भीष्म नामको भी न रक्खूँगा।" इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर जिस समय भीष्मने अपने प्रवल कौशलको संग्राम भूमिमें प्रगट किया, उस समय अर्जुनने श्रीकृष्णसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया, कि यदि भीष्मका वेग न रुक सका, तो जिस पाण्डवकुलके आप कैवारी हो, उसकी समाप्ति आपके देखते देखते हुई जाती है, पुनः इस भीष्मरूप प्रलयाग्निके प्रचण्ड प्रवाहको बुझानेके लिये मेरी शूरतारूप सीकर वृष्टिका कोई उपयोग नहीं होगा। श्रीकृष्णने भी इसका निश्चय अपने चित्तमें पूर्णतया कर लिया कि आवाल ब्रह्मचारी, पितृभक्त और स्वेच्छा मृत्युवाले भीष्मको विजय करनेका इससे कोई सरल साधन नहीं है, कि इस समय अपनी प्रतिज्ञाको भंग कर हाथमें चक्र धारण किया जाय। विचार करते ही आपने रथके चक्रको हस्तकमलमें धारण किया। जिसको एक कविने इस प्रकार लिखा है:—

"चक्र गह्यो करि कोप मुरारि निहारि तहां अपनो पन राखो,
ज्यों रथते धसि धायो धरा गज यूथनि ऊपर सिंह प्रचारयो ।
पेखत ही तिलकावलि शीश नहीं कछु और विचार विचारयो,
पीठ दई करुणामय ताहि निहारि तहाँ जनको पन पारयो ।"

श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञाके भङ्ग होते ही भीष्मपितामहने युद्ध बन्द करा दिया और शरशय्यापर पधार गये। जब भारत हो चुका और युधिष्ठिर राजा हो गया, उसके कितने ही दिनोंके बाद उत्तरायण सूर्य्यके आनेपर अपना शरीर छोड़ा, जिसको माघ शुक्लाष्टमीका दिन कहा गया है।

शिक्षा ।

इस भीष्माष्टमी अथवा भीष्म-द्वादशीके व्रतोत्सवसे हमको चार शिक्षाएँ मिलती हैं;—"(१) स्वार्थ-त्याग, (२) पितृ-भक्तिका फल, (३) प्रजाका पुरस्कार और (४) ब्रह्मचर्य्यका प्रभाव ।"

१—स्वार्थत्याग ।

भीष्माष्टमीके त्यौहार अथवा तर्पणका पालन करते हुए हमको पितृ-भक्तिका समुज्ज्वल रत्न आगे दिखने लगता है। पाठकवृन्द! संसारकी सब जातियोंमें खोज करके देखनेसे आपको विदित होगा, कि ईश्वर-दत्त-निसर्ग प्राप्त भोगोंको लात मार कर ही नहीं, किन्तु न्यायसिद्ध पिताके चक्रवर्ती राज्यको भी ठुकराकर पितृ भक्तिका परिचय देने वाला भीष्मपितामह जैसा आदर्श आपको कहीं भी नहीं मिलेगा।

पितृ-भक्तिका फल ।

"पितृ-देवो भव" वेद भगवान्‌की इस प्रबल आज्ञाके होनेपर भी देखा जाता है, कि वर्तमान कालकी सन्तानोंका वह भाव पितामें नहीं है। इसी कारणसे "पिताकी सेवासे क्या होगा?" इस शंकाका उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रकारके लोगोंको भीष्मपितामहकी उस घटनापर अवश्य पहुंचना चाहिये, कि भीष्मके उद्योगसे जब राजा शन्तनुका सत्यवतीके साथ विवाह हो गया तब पिताने गद्गद होकर अपने प्यारे पुत्रको क्या आशीर्वाद दिया है:—

"मौत्यु बुलाये विना नहीं आय है चाह विना मरिहै नहिं मारयो,
तेरे न निष्फल जावेंगे बाण टरेगो नहीं रण काहूको टारयो ।

तो सो तू ही सर और नहीं उर अन्तरको सब शोक निवाऱ्यो,
धन्य घरी जामें जन्म लियो पुनि धन्य तू पुत्र पिता पन पाऱ्यो।"

पाठकवर्ग! यह पिताको आशीर्वादका ही कारण था, कि बड़े बड़े योगी लोग जिस उत्तरायण, अर्थात् देव मार्गको जानेकी लालसामें अनेक जन्मोंके पुरुषार्थको व्यय कर देते हैं और फिर भी सफलतामें अनेक बाधायें उपस्थित होती हैं, उसको भीष्म ब्रह्मचारीने पितृभक्तिसे अनायास ही प्राप्त कर लिया।

३—प्रजाका पुरस्कार।

प्रत्येक देशकी समुन्नतिका पुरस्कार और तिरस्कार ही बीजमन्त्र है। जब किसी देशका कोई मनुष्य उत्तम तथा आदरणीय कार्य करे, तब देशके सर्व मनुष्योंसे उसका प्रोत्साहन होना चाहिये। और बुरे कार्यको करनेवालेका तिरस्कार होना चाहिये—यह अद्भुत प्रणाली बुरेसे बुरे देशको भी उच्च कक्षाका बना देती है। जिस जातिका स्वतन्त्र राष्ट्र होता है उसमें तो राष्ट्रके द्वारा इस पुरस्कार—तिरस्कारकी प्रणालीका यथार्थ प्रबन्ध अनायास ही किया जा सकता है, परन्तु जिस जातिका स्वतंत्र राष्ट्रसंगठन नहीं है, वहाँके लोगोंको प्रजाकी-समष्टिसे इसका प्रबन्ध करना चाहिये। प्राचीनकालमें इसी बातको धार्मिक कार्योंमें शामिल किया गया था, जिससे अनायास ही पुरस्कार और तिरस्कारकी व्यवस्था चलकर सोसायटी सबल बनती थी।

भीष्मने जब प्रजाके सामने इस अद्भुत आदर्शको रखा, तो धार्मिक बन्धनमें बँधी हुई प्रजाने भीष्मको इस प्रकारका पुरस्कार दिया, कि जिसको कोई भी राजा नहीं दे सकता। सब लोगोंको विदित ही है, कि अनेक ब्राह्मणोंकी चराचर सृष्टिको रचनेवाले ब्रह्माजीको "पितामह" की उपाधिसे भूषित किया गया है, परन्तु वही उपाधि पितृभक्तिके आदर्श भीष्मको अनायास प्रजासे मिल गई। यह वैसी ही केवल शब्दविन्यासकी आजकलकी सी उपाधि नहीं थी, किन्तु इस उपाधिको देकर उस समयके क्रोड़ों मनुष्योंने यह कह दिया,—"तुम यदि संसारमें पिताका ध्यान न रखकर विवाह करते, तो एक अथवा दो पुत्रोंके पिता कहलाते और उन्हींका किया श्राद्ध पाते, परन्तु पितृभक्तिके कारण तुमको एक-दो पुत्रोंका लाभ न हो सका तो कुछ विचार मत करना, हम कितने ही करोड़ भारतवासी आजसे आपको अपना पिता ही नहीं, किन्तु पिताका भी पिता-बाबा (पितामह) मानते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं, कि हम सब आपकी संतान हैं।"

कहिये, पाठकवर्ग ! इससे बढ़कर क्या कोई पुरस्कार संसारमें हो सकता है ? उसी प्रतिज्ञात पुरस्कारके कारण आज भी हम माघ-शुक्ला-अष्टमीको भीष्मपितामहका श्राद्ध करते हैं। परन्तु खेद है, कि एक बंगाल मात्र ही उस प्रतिज्ञाको निभा रहा है, शेष भारतियोंने उसको भुला दिया। अच्छा हो कि फिर भी इसका प्रचार भारतमें हो जाय जिससे भावी पुरस्कार वालोंकी प्रवृत्ति आगेको बढ़े और देश उच्च कक्षामें गमन करे।

ब्रह्मचर्यका प्रभाव।

यद्यपि ब्रह्मचर्यके लाभोंको इसी पुस्तकके अन्यस्थानमें अच्छी प्रकार बतलाया जा चुका है, परन्तु यहाँ इतना और भी ध्यानमें रखना अवश्य चाहिये, कि अर्जुन सरीखे विश्वविख्यात एवं अजातशत्रुको हतोत्साह कराकर ब्रह्माण्डके नायक और चराचरके स्वामी भगवान् कृष्णको अपनी प्रतिज्ञा छुड़ा देनेपर बाध्य करा देनेवाली कोई शक्ति थी, तो वह ब्रह्मचर्यकी ही थी, अन्यथा कौन ऐसा माईका लाल है, जो परमात्माको भी अपनी इच्छाका अनुचर बना सकता हो। परमात्मा करे, कि भीष्माष्टमीके उत्सवको मनाने वाले हम लोग उपर्युक्त चारों शिक्षाओंका भी भारतमें प्रचार करें।

—:०:—

फाल्गुन मासके व्रतोत्सवोंका विवरण।

यह तो सब पाठक महोदयोंको विदित ही है, कि हमारे देशमें अन्य मासोंकी अपेक्षा फाल्गुन मास विशेष चहल-पहलका आता है। इसका हेतु यह नहीं है, कि इस मासमें व्रतोत्सवोंकी भरमार है। व्रतोत्सव तो केवल दो ही है,—"(१) शिवरात्रि और (२) होलिका।" परन्तु इस मासमें प्रकृतिका साम्य रहता है। पिछले मासोंमें शीत विशेषके कारण लोगोंको कष्ट विशेष होता है और अगले मासोंमें उष्णताधिक्यसे भी मनुष्योंको एक विशेष कष्टका सामना करना पड़ता है। यह फाल्गुन मास ही इस प्रकारका है, कि जिसमें समशीतोष्ण रहकर मनुष्योंकी प्रकृतियाँ ठीक रहती हैं। इसी कारणसे होलिका त्यौहार विशेषरूपसे पालन किया जाता है—फाल्गुन मासका समस्त मास ही होलिकाके मनानेमें ही जाता है। अतः महा-शिवरात्रि और होली दोनों त्यौहारोंका विवरण पाठक क्रमशः देखें।

६—महाशिवरात्रि ।

—०❀०—

शास्त्रीय स्वरूप ।

फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशीको जो महाशिवरात्रिका व्रत मनाया जाता है, वह वैदिक है—इसमें तो किसी भी वैदिक धर्मावलम्बीको शंका नहीं होगी, कारण कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीनों वैदिक देवता हैं और इन तीनोंका वर्णन वेदोंमें पाया जाता है। यजुर्वेदमें रुद्राष्टाध्यायीको सम्पूर्ण सज्जन जानते हैं। इसकी आठों अध्यायोंमें शिवका ही वर्णन है। पाठकोंकी प्रतीतिके लिये कुछ मंत्रोंका उद्धरण यहाँ किया जाता है।

पंचमाध्यायः ।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त, इषवे नमः। बाहुभ्यामुवते नमः। १

अर्थ—हे, रुद्र ! (रुतं दुःखं द्रावयति यद्वा 'रु, गतौ ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः रवणं रुत् ज्ञानं भावे क्वीप तुगागमः रुत् ज्ञानं राति ददाति रुद्रः ज्ञानप्रदः यद्वा पापिनो नरान् दुःख भोगेन रोदयति रुद्रः) तेरे क्रोधके लिये नमस्कार, तेरे बाणके लिये नमस्कार और तेरी बाहुओंको नमस्कार हो।

यातेरुद्र शिवातनू रघोरा पापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरि शन्ताभि चाकशीहि ॥ २

अर्थ—हे रुद्र ! तेरा यह शरीर इस प्रकारका, हे गिरिशन्त ! (गिरौ कैलाशे शेते) कैलाशपर रहने वाले शिव ! इस तेरे शरीरसे हमको देख, अर्थात्—हमपर सुदृष्टि कर।

सारांश—वह तेरा शरीर शान्तरूप है और अघोर—सौम्य है, पापोंका नाश करने वाला है और गिरिशन्त (गिरौ कैलाशे स्थितः शं सुखं प्राणिनां तनोति वा गिरौ मेघे स्थितो वृष्टि द्वारेण शं तनोति वा गिरौ शेते गिरिशः भ्रमति गच्छति-जानातीति सर्वज्ञः) कैलाशपर रह कर सबको आनन्द देता है।

यामिषुं गिरिशन्त ! हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । ३

अर्थ—हे, गिरिशन्त ! तूने शत्रुओंको मारनेके वास्ते हाथमें बाणको धारण किया है।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो सत्वन्योर्ज्याम्
याश्च ते हस्त इषवं पराता भगवो वप। ६

अर्थ—हे, भगवः! भगवन् (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।) धनुषकी दोनों कोटियोंमें ठहरी हुई ज्याको आप दूर करो और जो हाथमें वाण हैं, उनको भी दूर करो।

नमो हिरण्यवाहवे। सेनान्ये दिशाञ्च पतयेनमो, नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशुनां पतये नमो, नमो शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो, नमो हरिकेशायो पवीतिने पुष्टानाम्पतये नमो, नमो वभ्लुशाय। १६।७

अर्थ—स्वर्णके आभूषणोंके सदृश हाथ वाले सेनानी रुद्रको नमस्कार, दिशाओंका पालक, हरितवर्ण केश वाला, वृक्षके सदृश, जीवोंका पालक, पीत-रक्तवर्ण वाला, कान्ति वाला, पथिकोंका पालक, नीलवर्ण केश वाला, अर्थात्—जरारहित, उपवीतिने, अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने वाला, गुणवान् मनुष्योंका स्वामी, इस प्रकारके रुद्रको नमस्कार हो।

नम उष्णीषिणे गिरिचराय। २२

अर्थ—पगड़ीके धारण करने वाले और कैलासपर रहने वाले शिवको नमस्कार हो।

अध्याय षष्ठः।

त्र्यम्बकं यजामहे। सुगन्धिपुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धना-न्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। ५

टीका—सुगन्धि-दिव्यगन्धोपेतं मर्त्यधर्महीनं। पुष्टिवर्धनं धन धान्यादि पुष्टेर्वर्धयितारं। त्र्म्बकं नेत्रत्रयोपेतं रुद्रं। यजामहे पूजयामः। ततो रुद्र प्रसादात् मृत्योर्मुक्षीय अप मृत्योः संसार मृत्योश्च मुक्तो भूयासम्। अमृतान्मा मुक्षीय स्पर्शरूपान्मुक्ति रूपाश्चामृतान्मा मुक्षीय मुक्तोमा भूयासम्। उर्वारुकमिव बन्धनादिति यथा उर्वारुक फलमत्यन्त पक्वम् सत्वधनात् स्वस्य वृन्तात् प्रमुच्यते तद्वत्।

अर्थ—सुगन्ध और पुष्टि वर्धन वाले शिवको हम पूजते हैं, उस रुद्रके पूजनेसे हम उस प्रकार मुक्त हो जाँय जिस प्रकार पका हुआ फल डालसे टूटकर अनायास गिर जाता है, इसी प्रकार अनायास हम बन्धनसे छूट जांय।

पाठक वर्ग! उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह तो विदित हो ही गया, कि 'शिव-रात्रि' यह वैदिक त्यौहार है, कारण कि शिवरात्रिका चरित नायक शिव—यह

वैदिक देवता है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रमाणसे दो बातोंपर और भी प्रकाश पड़ता है। प्रथम तो यह, कि यजुर्वेदकी मूलसंहिताके जितने मंत्र हैं, उनमें शिवके शरीर धारण करनेकी कैलाशपर रहनेकी, हाथमें धनुष बाण धारण करनेकी, मस्तकपर पगड़ी धारण करनेकी और तीनों नेत्रोंकी बात कही गई है—जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है, कि यजुर्वेदका उपास्यदेव—महादेव साकार है, निराकार वाद इन मंत्रोंको स्वीकार नहीं है। दूसरे, बड़ोदा राज्यके सुप्रतिष्ठित, आर्यसमाजके सुसभ्य, सातवलेकर महोदयने जो "वेदोंमें जन्तु शास्त्र" नामक पुस्तक बनाई है और गुरुकुल कांगड़ीसे निकली है उसमें रुद्र शब्दके अर्थ रोगादि रोगोंके कीड़े बतलाये हैं और इन यजुर्वेदकी आठ अध्यायोंमें प्रायः उनही कीड़ोंका वर्णन भी बतलाया गया है। उसका भी खण्डन उपर्युक्त मंत्रोंसे हो जाता है। कारण, कि आपका शरीर पापनाशक है, आप धनुष बाणको धारण करते हैं, धनुषकी दोनों कोटियोंपरसे डोरीको उतारो, आप सभामें बैठने वाले सभ्य हैं, आप पगड़ीको शिरपर धारण करते हो, आप कैलाशपर रहते हो, आपके तीन वर्ण-केश हैं, आप यज्ञोपवीत धारण करते हो, आपके तीन नेत्र हैं और जीवोंको मुक्ति प्रदान करने वाले हो—इत्यादि स्तुति वाक्योंकी संगति रोगके जन्तुओंसे नहीं हो सकती। न इसमें निरुक्तादि वेदांगोंका प्रमाण है और न स्वामी दयानन्दजीसे लगाकर अब तकके किसी आर्यसमाजी पंडितने "त्र्यम्बकं यजामहे" इत्यादि मंत्रोंको जन्तुपर्क बतलाया है। अतः यह सातवलेकर महाशयकी घरू कल्पना है, जो सर्वथा मिथ्या और अमाननीय है।

अस्तु, महादेवके प्रतिपादक अनेक मंत्र चारों संहिताओंमें हैं, परन्तु स्थान संकोचसे इतने ही मन्त्रोंको देकर आगे महाशिवरात्रि व्रतकी कथा लिखी जाती है—पाठक ध्यान दें।

महाशिवरात्रिव्रतका विवरण लिङ्गपुराणमें इस प्रकार आया है:—

अथ निर्णय—

प्रदोष व्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रे चतुर्दशी।
रात्री जागरणं यस्मात् तस्मात्तां समुपोषयेत्॥

अर्थ—शिवरात्रिकी चतुर्दशीको प्रदोषव्यापिनी लेना चाहिये। रात्रिमें जागरण किया जाता है, इस कारण प्रदोषव्यापिनी लेना ही उचित है।

अथ व्रत विधि—

सङ्कल्प।

मासानामुत्तमे मासे शुभे कृष्णे पक्षे चतुर्दश्यां मम पापक्षयार्थं-
मक्षय्यमोक्षभोगप्राप्त्यर्थं शिवरात्रिव्रतं करिष्ये।"

इस प्रकार संकल्प करके षोडशोपचारसे महादेवका पूजन करे। आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा आरती और प्रदक्षिणादि पूजाके प्रकार हैं, जिनको वैदिक मंत्रोंसे अथवा पौराणिकोंसे करना चाहिये।

अथ कथा।

पाठक वृन्द! महाशिवरात्रिके विषयमें एक कथा लिंग-पुराणमें आई है। जब आप इस कथाके तात्विक रहस्यको देखेंगे, तो आपको धर्म एवं नीतिके सम्बन्धमें अनेक शिक्षायें मिलेंगी। विष्णुशर्माने पशु-पक्षियोंकी कथाओंके द्वारा जिस प्रकार सागरको गागरमें भरा है, ठीक-उसीप्रकार इस कथाके द्वारा भी अनेक धर्मके विषयोंको सुलभतासे समझा दिया है। सत्य प्रतिज्ञोंके लिये तो हरिश्चन्द्रसे भी बढ़कर इस कथासे उपदेश मिलता है।

एक बार कैलाशपर बैठी हुई पार्वतीने महादेवजीसे पूछा,—"भगवन्! इस प्रकारका कौनसा व्रत है, जिसके करनेसे मनुष्य आपके सायुज्यको प्राप्त हो जाय।" यह श्रवणकर महादेवने कहा, कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको व्रत रह कर, मेरा पूजन करके, रात्रिको जो मनुष्य जागरण करता है, वह अनायास मेरी सायुज्यताको प्राप्त हो जाता है। पार्वती! इस विषयमें एक कथानक कहता हूँ, तुम सावधान होकर श्रवण करो।

प्रत्यन्त देशमें एक व्याध रहता था, जो प्रतिदिन जीवोंको मारकर अपने कुटुम्बका पालन किया करता था। फाल्गुन-कृष्ण-त्रयोदशीके दिन इसको करजदार साहूकारने रुपया न देनेके कारण एक देवमन्दिरमें, कैद कर दिया। वहां इस व्याधने धर्म एवं व्रत सम्बन्धी अनेक बातोंको सुना और आगामी दिनमें होनेवाले शिवरात्रिव्रतकी कथा भी सुनी। साहूकारनेयह कहकर, कि कल हमारे रुपयोंका फैसला कर देना, छोड़ दिया। चतुर्दशीके प्रातःकाल नियमानुसार यह व्याध अपने नगरसे दक्षिणकी ओर बड़े गहन बनमें पशुबधके लिये गया, परन्तु दैवात् सब दिन भटकनेपर भी इसके हाथ कोई पशु न आया, तब तो इसने दिन भरकी भूखसे खिन्न होकर विचार किया, कि किसी जलाशयके

पास रातको बैठना चाहिये। अपना मनोनीत एक उत्तम जलाशय देख लिया, जहाँ कि पशुओंके मारनेवाले वधिक लोगोंने एक सुन्दर माला बाँध रक्खा था—यह व्याध उसी मालेमें बैठ गया। मालेमें एक महादेवकी पिण्डी थी और एक बिल्वपत्रका वृक्ष था। बिल्वपत्रोंको तोड़कर अपने सुभीतार्थ इसने महादेवके लिङ्गको ढक दिया। एक तो यह दिनभरका भूखा, अर्थात्—व्रती, दूसरे—महादेवपर बिल्वपत्रोंको चढ़ाया, इस कारण इसकी वृत्तियोंमें कुछ थोड़ासा परिवर्तन हो गया।

जब पहर भर रात चली गई तो सगर्भा बड़ी सुन्दर एक हरिणी वहाँ जलपानार्थ आयी। उसको देखकर इस व्याधने धनुषका अनुसन्धान किया। हरिणीने गिड़गिड़ाकर उस व्याधसे कहा,—"आप यह क्या अनर्थ करते हो ?" व्याध बोला, कि मैं सदैव इसी प्रकार कुटुम्बका पोषण करता रहता हूँ, यह कोई नयी बात नहीं है। हरिणी बोली,—"प्रभो आपके लिये तो निःसन्देह नई बात नहीं है, परन्तु मेरे लिये नई अवश्य है, कारण कि मैं सगर्भा हूँ और नौ मास व्यतीत हो गए हैं, अब प्रसूतिकाल समीप ही है। मुझको इस समय छोड़ दोगे, तो प्रसूत बालकको उसके पिताको देकर मैं आपके स्थान-पर आ जाऊँगी। यदि मैं आपके पास न आ जाऊँगी तो कृतघ्नोंको जो पाप लगता है, वह मुझको लगे।" हरिणीके धार्मिक एवं निःसन्देह वाक्योंने व्याधपर प्रभाव डाल दिया और उसने फिर आनेकी प्रतिज्ञापर उसको छोड़ दिया। जब हरिणी चली गई तब शिव शिव कहते हुए इस व्याधने द्वितीय जन्तुकी प्रतीक्षा करनी प्रारम्भ की। अर्द्ध रात्रि हो जानेपर एक अत्यन्त सुन्दरी नव यौवना दूसरी मृगी आई, जिसको देखते ही व्याधने बाणका अनु-सन्धान किया। बाणको छोड़ने नहीं पाया था, कि आर्तस्वरसे गिड़गिड़ा-कर हरिणी बोल उठी,—"आप मुझको मारते हो, परन्तु मैं इस समय निवृत्त ऋतुवाली हूँ। यदि मेरा पति मुझको न मिलेगा तो यह अभिलाषा चित्तमें रह जायगी, जिससे मेरा तो अनिष्ट होगा ही, परन्तु आपके लिये भी शुभ नहीं है। यदि इस समय मुझको आप कृपया छोड़ देंगे तो मैं कल अपनी प्रतिज्ञानुसार आपके पास अवश्य आ जाऊँगी और जो न आ जाऊँ तो ब्रह्म एवं सुरापीको जो पाप लगता है, वह मुझको भी लगे।" व्याधने इस प्रकारसे इस हिरणीको भी मुक्त किया।

दूसरी हिरणीके चले जानेपर भी कुछ बिल्वपत्रोंको किसी अन्य हेतुसे

शिव-लिंगपर डालकर और शिव शिव करते हुए इस व्याधने अन्य जन्तुकी तलाशमें एक पहर रात्रिको और बिताया, कि तीन चार छोटे बच्चोंको लेकर एक हिरणी फिर भी उस सरोवरपर आ गई। व्याधने धनुषपर बाण चढ़ा कर इसको मारनेकी चेष्टा की, कि तत्काल ही वह हिरणी इस प्रकारसे बोली,—"भगवन्! आपने मुझसे प्रथम आने वाले जीवोंको तो नहीं मारा और मेरे तीन चार बच्चे हैं, मुझको मारनेका महा पाप शिरपर क्यों लेते हो, इससे जाना जाता है, कि आपने धर्मशास्त्रको नहीं देखा है, कारण कि धर्मशास्त्रमें जिसके छोटे छोटे बच्चे हों, उसको सती होनेकी भी मनाई है और उसके मारनेसे महापाप भी बतलाया है। यदि आप इस समय मुझको छोड़ देंगे तो इन बच्चोंको इनके बापके पास करके या उससे पूछ करके मैं प्रातःकाल आजाऊँगी, जिसमें आपको महापापका प्रायश्चित्त भी न होगा और मेरा धर्म भी पूरा हो जायगा। कदाचित् मेरे आनेमें सन्देह हो तो मैं शपथपूर्वक कहती हूं, कि मैं स्वयं या इन बाल बच्चोंको लेकर आपकी सेवामें आजाऊँगी।" व्याधपर शिवरात्रिके व्रतका इतना प्रभाव पड़ गया था, कि इसने इस हिरणीके कथनपर भी विश्वास कर लिया और वह हिरणी चली गई।

प्रातःकालसे कुछ ही प्रथम एक बहुत बड़ा बलिष्ठ हिरण आया, जिसको देखकर व्याध बहुत प्रसन्न हुआ और बाणका अनुसन्धान किया। यह देखकर बड़ी सरलतासे मृग बोला,—"व्याध! यदि मेरे प्रथम आने वाली हिरणियोंको आपने मारडाला है, तो निश्चय ही मेरे सर्व मनोरथोंपर पानी फिर गया और मेरा जीवन भी सर्वथा निरर्थक हो गया। अतः कृपाकर मुझको भी अचिरकालमें ही आप मार डालें, जिससे उन मृत हिरणियोंका दुःख मुझको न हो।" व्याधने इसकी प्रेममय एवं पाण्डित्ययुक्त वाणीको श्रवणकर उन हिरणियोंको जिस प्रकारसे मुक्त किया था, वह समस्त वृत्तान्त सुना दिया। उनके वृत्तान्तको सुनकर हिरणने कहा,—"आप व्याध हैं और मैं हिरण हूं; अतः आप खादक और मैं खाद्य अवश्य हूँ, परन्तु वे तीन हिरणियाँ मेरी ही भार्य्या थीं और मेरे ही खोजमें गई हैं। यदि आप मुझको यहाँ मार डालेंगे, तो वे जिस उद्देश्यसे गई हैं, वह उद्देश्य तो उनका विफल ही होगा, परन्तु आपने जिस लिये उनको छोड़ा है, वह आपका अभिप्राय भी पूर्ण न होगा। अतः जिस धार्मिक भावसे आपने उनकी शपथको सत्य मानकर उनको मुक्त किया है, उसी भावसे थोड़े कालके लिये मुझको भी मुक्त कर दो तो मैं उन

सबसे मिलकर और सबको साथ लेकर अचिरकालमें ही आपके स्थानपर आ जाता हूं।" शिवरात्रिव्रतके प्रभावसे इसके हृदयमें विशेष कोमलता होनेके कारण इसने उस हिरणको भी मुक्त कर दिया और जब वह हिरण चला गया तब प्रातःकाल होते ही इसने महादेवपर फिर बिल्वपत्र चढ़ाये, जिससे इसके पवित्र अन्तःकरणमें एक साथ सत्वगुणका विकाश हो गया और अपने हिंसाजनित पिछले कर्मोंपर बहुत घृणा करके बोला, कि यदि अब वे हिरण आ भी गये तो मैं उनके वध-रूप गर्हित-कर्मको कभी न करूँगा।

उधर वह हिरण अपने कुटुम्बमें पहुंच गया और सब हिरणियोंसे मिलकर तथा समस्त कर्तव्य-कार्योंसे निवृत्त होकर बोला,—"प्रिये! यह संसार तो क्षणभंगुर है, सत्य सदैव रहने वाला पदार्थ है, बल्कि योगी लोग जिसके लिये सहस्रावधि समाधि लगाते हैं, वह ब्रह्म भी सत्य ही है। कदाचित् इस असत्य शरीरसे सत्य जैसा अमूल्य रत्न प्राप्त हो जाय, तो इससे बढ़कर प्राणीके लिये दूसरा परम लाभ नहीं है; अतः तुमको अब विलम्ब करना उचित नहीं, किन्तु शीघ्र चलना चाहिये। हिरणके इस सत्योपदेशको श्रवणकर सब हिरणियाँ सत्यव्रतके अनुष्ठानको तैयार होकर सन्नद्ध हो गईं।" इस हृदय द्रावक घटनाके समय उस जंगलमें सहस्रों हिरण तथा हिरणियाँ और भी वहां उपस्थित थे। पाठक वर्ग! जिस समय ये सत्यप्रतिज्ञ हिरणियाँ और हिरण अपनी प्रतिज्ञाके पूर्ण करनेके लिये चलनेको तयार हो गये, तब उस गहन वनमें एक साथ सनसनीसी छा गई और जब हिरणियाँ अपनी सह-चरियोंसे तथा हिरण अपने सहचरोंसे मिला, तो मानो सत्य-रूप चन्द्रके दर्शनसे करुणा-रूप समुद्रने अपनी मर्यादाका उल्लंघन किया। अर्थात्— वहांपर जितने वनचर और खेचर थे, उनके आर्तस्वरसे आकाश गूँजकर भयंकर बन गया। ऐसी विषमावस्थामें जब ये हिरण-हिरणियाँ अपनी सत्य-प्रतिज्ञाको पालन करनेके लिये अपने बाल-बच्चोंके सहित व्याधके स्थानको चले और सहचर-सहचरियोंको वहां ही छोड़ा तब सत्य-प्रतिज्ञ भगवान् रामचन्द्रके वन पधारनेपर जो दशा अयोध्यावासियोंकी हुई, उससे किसी प्रकार भी यह घटना न्यून नहीं थी। सकुटुम्ब और सोल्लास जब वे— हिरण हिरणियाँ व्याधके स्थानपर पहुँचे, तब व्याधने इन पशुओंमें सत्यव्रतके प्रभावको देखकर अपने मनुष्य जीवनको घृणित समझा और धार्मिक वृत्तियोंके जाग्रत होनेसे वह व्याध कातर होकर एक साथ रोने लग गया।

इस प्रकार पारस्परिक धर्मवृत्तियोंकी चरम-सीमागत उन्नतिको देखकर भगवान् महादेवने अपने शिवलोकसे एक विमान व्याधके लिये और एक हिरण एवं हिरणियोंके लिये भेजकर, उन सबको शिवसायुज्यताके लिये प्राप्त कराया। पार्वति ! यह सब प्रभाव महाशिवरात्रिके व्रतका है; अतः मेरी सायुज्य चाहनेवाले पुरुषको अवश्य कर्तव्य है।

उद्यापन ।

उद्यापनकी विधि स्कन्दपुराणके अनुसार लिखी जाती है। स्कन्दने जब शिवसे उद्यापनका प्रश्न किया, तब शिवजीने इस प्रकारसे उत्तर दिया,— "इस महाशिवरात्रिके व्रतको चौदह वर्षपर्यन्त करना चाहिये। त्रयोदशीके दिन एक समय भोजनकर चतुर्दशीको निराहार व्रत करे। वस्त्र, पुष्प और पट्ट वस्त्रादिसे अत्यन्त भव्य एक मण्डप बनाकर उसमें लिंगतोभद्र अथवा सर्वतोभद्र मण्डल बनाना चाहिये। प्रथम, आचार्य एवं ऋत्विकका शिवरूप समझ कर पूजन करे और फिर, उन ब्राह्मणोंसे शिवार्चनकी प्रार्थना करे। उस मण्डलपर सोना, चांदी, ताम्बा और मिट्टी आदिका बिना छिद्र वाला एक कुम्भ स्थापित करे, तथा कलशपर पार्वतीसहित महादेवकी मूर्ति स्थापित करे, परन्तु सर्वालङ्कारोंसे अलंकृत तथा पञ्चमुखी प्रतिमा हो और स्वर्ण एवं चांदीका सुन्दर नांदिया हो। महादेव तथा पार्वतीकी स्वर्णमयी मूर्तियोंको वस्त्र पहनाकर बिल्वपत्रोंसे पूजे और चंद्रमा एवं अन्य अष्ट गणोंकी भी पूजा करे। रात्रिको वेद पुराणादिके घोष अथवा कथा श्रवणादिसे जागरण करे। प्रातःकाल स्नान-सन्ध्यादिसे निवृत्त होकर और महादेवका पूजन कर "त्र्यम्बकं यजामहे" इस वेद-मंत्रसे तिल, यव और पायसका हवन करना चाहिये और १०८ आहुतियाँ देनी चाहियें।

इसके बाद बिल्वपत्रोंसे भी हवन करना उचित है। पूर्णाहुति करके शेष क्रियाको समाप्तकर कुंभके सहित प्रतिमाको आचार्यके लिये दे और निम्न-लिखित प्रार्थना करे:—

शंभो ! प्रसीद देवेश ! सर्वलोकेश्वर प्रभो !
तव रूपप्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः ॥

यह कह कर, वस्त्रालंकार-भूषणोंके द्वारा आचार्यका पूजन करे और वस्त्र सहित आचार्यके लिये गऊ दे। अन्य ब्राह्मणोंको भी यथाशक्ति दक्षिणा दे। चतुर्दश ब्राह्मणोंको एक-एक घट जलसे भरा हुआ, जिसपर यज्ञोपवीत,

दक्षिणा और एक एक वस्त्र धरा हो, दे। तदनन्तर व्रती सवत्सा द्वादश-गऊ अथवा यथा शक्ति दक्षिणा देकर, ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और अपने बन्धु-वर्गोंके साथ स्वयं भी भोजन करे।

शिवरात्रिके विषयमें पं० श्यामसुन्दर द्विवेदीकी सम्मति—

"जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रि-स्तथैव च।
पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्॥ १॥
माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुनस्य च।
कृष्णा चतुर्दशी सातु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता॥ २॥

अर्थात्-जन्माष्टमी रोहिणी व्रत, तथा शिव-रात्रि-व्रत पूर्वविद्धा ही करना चाहिये और तिथी तथा नक्षत्रके अन्तमें पारण करना चाहिये। जैसे एकादशीके व्रतका पारण द्वादशीमें श्रेष्ठ कहा है, वैसे ही शिवरात्रिके व्रतका पारण चतुर्दशीमें करना अति श्रेयस्कर है। यह स्कन्द महापुराणसे विदित होता है:—

"ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै।
पूजितानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते॥"

ब्रह्माण्डके भीतर जितने तीर्थ हैं, वे सब चतुर्दशीमें पारण करनेसे पूजित होते हैं।

"अर्द्धरात्रात् पुरस्तात्तु जयायोगो भवेद्यदि।
पूर्व-विद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥"

आधी रातके पहिले यदि 'जयायोग' हो तो पूर्वविद्धा ही शिवरात्रिका व्रत शिवके प्यारोंको करना चाहिये। उस दिन उपवासका ही सबसे अधिक माहात्म्य है। श्रीशंकरजीका वचन है, कि "न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्च्चया। तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः।" स्नानसे, वस्त्र, धूप, पूजन, तथा पुष्पसे नहीं संतुष्ट होता हूं, जैसा कि उपवाससे प्रसन्न होता हूँ। इस लिये सबको उस दिन उपवास रहना चाहिये, क्योंकि शास्त्रका वचन है:—

"शैवो वा वैष्णवो वापि यो वा स्यादन्य-पूजकः।
सर्वं पूजा-फलं हन्ति शिव-रात्रिवहिर्मुखः॥"

चाहे शिवजीका उपासक हो या श्रीविष्णुजी भगवान्‌का भक्त हो अथवा अन्य देवोंका सेवक हो, परन्तु जो शिवरात्रिके व्रतसे वहिर्मुख है, उसके सब देवोंके पूजनका फल नष्ट हो जाता है।

मनोरथ शब्दकी सिद्धि जब व्याकरणसे करते हैं, तब मनस् रथ—इस अवस्थामें सकारको 'रू' करते हैं, फिर रुके स्थानमें "हशिच" इस पाणिनीय-सूत्रसे उकार कर पूर्वापरके स्थानमें गुण कर देते हैं; तब 'मनोरथ' शब्दकी सिद्धी होती है। इसी लिये किसी कविने कहा है किः—

"शिवं विना सिध्यति किं मनोरथः"

अर्थात्—विना शिव-उकारके "उकारः शङ्करः प्रोक्तः" मनोरथ शब्दकी सिद्धि क्या हो सकती है? कदापि नहीं। इससे स्पष्ट है, कि विना श्रीशंकरकी कृपाके कोई भी अभीष्ट फल नहीं प्राप्त हो सकता। इस मनुष्य शरीरका परम पुरुषार्थ मोक्ष साधन है, सो भी "ज्ञाना दृते न मोक्षः" के अनुसार विना ज्ञानके मोक्ष नहीं मिलता। उस ज्ञानके देनेवाले श्रीशिवजी ही हैं, क्योंकि विना विद्याके ज्ञानकी उपलब्धि होती ही नहीं। श्रीवेदभगवान् भी कहते हैं कि "विद्ययाऽमृतमश्नुते" विद्यासे अमृत (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। विद्या शब्दके अर्थ करते हुए भाष्यकारजी कहते हैं, कि 'वेत्ति यथावत्तत्त्वज्ञानं यया सा विद्या' यथार्थ तत्त्वज्ञान जिससे प्राप्त हो, उसको ही विद्या कहते हैं। वह विद्या श्रीशंकरजीकी कृपासे ही प्राप्त होती है, जैसा कि श्रीभागवतमें कहा है, कि विद्याकी कामनावालोंको श्रीशिवजीकी उपासना करनी चाहिये।

इन सब वचनोंसे निर्विवाद सिद्ध है, कि श्रीशिवजीकी कृपा कटाक्षसे ही मनुष्य जन्म सार्थक हो सकता है; अतः उनके चरणकमलोंमें अनुरक्त रहना ही परम कर्तव्य है।

शिवरात्रिका व्रत सब व्रतोंमें उत्तम है, उसको अवश्य करना चाहिये, व्रत करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। ईशान संहितामें कहा है किः—

"शिवरात्रि-व्रतं नाम सर्वपाप-प्रणाशनम्।
आचाण्डाल-मनुष्याणां भुक्ति-मुक्ति प्रदायकम्॥"

शिवरात्रिका व्रत सब पापोंका नाश करने वाला, चाण्डालों तकको भुक्ति-मुक्ति देनेवाला है। अर्थात् इस व्रतके प्रभावसे चाण्डालादिक जिनका कि शास्त्रोंमें अधिकार नहीं है, वे भी भोग मोक्षको प्राप्त कर सकते हैं, तो शास्त्राधिकारी जो हैं, उनको इस व्रतसे भुक्ति मुक्ति मिले इसमें आश्चर्य ही क्या?

इस दिन उपवास कर रात्रिमें श्रीसाम्ब-शिवजीकी पूजा करनी चाहिये। रातके चार पहरमें चार बार श्रीशिवजीकी पूजा करनी चाहिये। इसमें शास्त्र वचन है, कि:—

दुग्धेन प्रथमं स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके।
तृतीये च तथाज्येन चतुर्थे मधुना तथा॥"

प्रथम पहरमें श्रीशिवलिङ्गको गो-दुग्धसे स्नान करावे तथा दूसरे पहरमें दही, तीसरेमें घृतसे एवं चौथेमें मधुसे स्नान कराके षोड़शोपचार पूजन करे। श्रीशिवजीके लिङ्गकी ही पूजा करनी चाहिये, यह निम्न प्रमाणसे स्पष्ट है:—

"लिङ्गपूजां विना देवि अन्य पूजां करोति यः।
विफला तस्य पूजा स्यादन्ते नरकमाप्नुयात्॥
तस्माल्लिङ्गं महेशानि! प्रथमं परिपूजयेत्।
शिवार्च्चनन्तु पूजासु यद्गृहे वर्जितं सदा॥
विष्ठागर्त-समं देवि! तद्गृहं विद्धि पार्वति!
शाक्तो वा वैष्णवो वापि शैवो वा परमेश्वरि॥
आदौ लिङ्गं समभ्यर्च्य बिल्वपत्रैर्वरानने!
पश्चादन्यं महेशानि शिवं प्रार्थ्य प्रपूजयेत्॥
शिव-पूजां विना देवि! अन्य पूजां करोति यः।
स एव रसनाहीनः कुम्भीरो जायते प्रिये!
निर्म्माय पार्थिवं लिङ्गं विधिवत् पूजयेत् शिवम्॥"

इनका भाव यह है, कि हे देवि! विना शिवलिङ्गकी पूजा किये जो अन्यकी पूजा करता है, यह निष्फल होती है और पूजा करने वाला अन्तमें नरकमें जाता है। इस लिये हे महेशानि! शिवलिङ्गकी सबसे प्रथम पूजा करनी चाहिये; क्योंकि जो घर श्रीशिवजीकी पूजासे रहित है उसको हे देवि-पार्वति! विष्ठेके गढ़ेके समान जानना चाहिये। हे परमेश्वरि! चाहे, देवीका भक्त हो या विष्णुका अथवा शिवका उपासक हो, परन्तु प्रथम बिल्वपत्रसे श्रीशिवलिङ्गकी पूजा कर और उनकी प्रार्थना कर, हे श्रेष्ठ मुखवाली! पीछे अन्यकी पूजा करनी चाहिये। हे महेशानि! जो विना श्रीशिवजीकी पूजा किये अन्यकी पूजा करता है वह मानो जिह्वासे हीन है और मरनेके अनन्तर जलमें रहने वाला मगर-नक्र होता है, इस लिये शुद्ध मृत्तिकाका शिवलिङ्ग बनावे या नर्मदेश्वर—शिवकी पूजा विधि-पूर्वक करे।

श्रीशिवजीके अन्य अङ्गोंके अतिरिक्त जो लिङ्गकी पूजा होती है, इसपर पुराणोक्त कथा यह है, कि जब दक्षप्रजापतिके यज्ञमें क्रोधित हो श्रीसतीजीने शरीर त्याग किया, तब श्रीशिवजी खिन्न हो तथा नग्न हो पृथ्वीपर घूमने लगे और एक दिन ब्राह्मणोंकी बस्तीमें गये। उनके नग्नरूपको देखकर स्त्रियाँ मोहित हो गयीं। स्त्रियोंकी ऐसी दशा देख ब्राह्मणोंने शाप दिया, कि इस पुरुषका लिङ्ग अभी गिर जाय। शाप देते ही लिङ्ग गिर गया और तीनों लोकोंमें घोर उत्पात होने लगा। सब देव, ऋषि, मुनि व्याकुल हो ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्मा योगबलसे कारणको जान, सबको साथ लिये हुए जहां श्रीशिवजी विराजमान थे, वहाँ आये और उनकी प्रार्थना कर कहने लगे, कि आप अपने लिङ्गको पुनः धारण कीजिये, नहीं तो तीनों लोक नष्ट हो जायँगे। ब्रह्माकी ऐसी वाणी सुन श्रीशङ्करजी बोले, कि आजसे यदि सब हमारे लिङ्गकी पूजा करें, तो हम फिर इसको धारण करें। तब सबसे प्रथम स्वर्णका लिङ्ग बना कर उसका श्रीब्रह्माजीने पूजन किया, उसके पीछे इन्द्रादि देवता, मुनि, ऋषि सबोंने अनेक द्रव्योंके शिवलिङ्ग निर्माण कर पूजन किया। तभीसे श्रीशिव-लिङ्गकी पूजाका प्रचार हुआ और उसकी ही पूजासे आशुतोष अति प्रसन्न हो सब अभीष्ट अर्थको पूर्ण करते हैं।

अब हम अपने प्रिय पाठकोंकी सुविधाके लिये शिवरात्रिके दिन श्रीशिवके पूजनके विधानको भी लिख देना उचित समझते हैं, जिससे उस दिन श्रीशंकर-जीकी विधिवत् पूजाकर पाठकगण निज मनोरथके फलभागी हों।

व्रतके प्रथम दिन एक बार भोजन कर व्रतके दिन प्रातःकालके नित्य-कर्मको यथावत् सम्पन्न कर मन्त्रपूर्वक संकल्प करे और इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करे किः—

शिवरात्रि-व्रतं ह्येतकरिष्येऽहं महाफलम्।
निर्विघ्नमस्तु ह्येवात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥"

पीछे सायंकालमें स्नान कर श्रीशिवजीके मन्दिरमें जाकर अथवा स्वयं मूर्ति निर्माणकर अपने घरके पवित्र स्थानमें विराजमान हो उत्तरकी तरफ मुख कर बैठे और संकल्प करेः—

'अद्येत्यादि श्रीशिवप्रीत्यर्थ शिवरात्रौ श्रीशिवपूजां करिष्ये' अनन्तर 'अस्य श्रीशिव-पञ्चाक्षर-मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः श्रीसदाशिवो देवता न्यासे पूजने जपे च विनियोगः। वामदेव ऋषये नमः शिरसि,

अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, श्रीसदाशिव देवतायै नमः हृदि, ॐ नं तत्पुरुषाय नमः हृदये, ॐ मं अघोराय नमः पादयोः, ॐ शि सद्योजाताय नमः गुह्ये, ॐ वां वामदेवाय नमः मूर्ध्नि, ॐ यं ईशानाय नमः मुखे, ॐ ॐ हृदयायनमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुम् ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यं अस्त्राय फट्, इस प्रकार न्यास करे। तथा—

"ध्यायेन्नित्यं महेशं रजत-गिरिनिभं चारु-चन्द्रावतंसं,
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीति-हस्तं प्रसन्नम्।
पद्मा-सीनं समंतात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्र-कृत्तिं वसानं,
विश्वाद्यं विश्ववंद्यं निखिल-भयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करे और प्राणप्रतिष्ठाकर, स्पर्श करता हुआ, इन मन्त्रोंसे "ॐ भूः पुरुषं साम्ब-सदाशिवमावाहयामि, ॐ भुवः पुरुषं साम्ब०, ॐ स्वः पुरुषं साम्ब० ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषं साम्ब०" आवाहन कर हाथमें पुष्प ले—

"स्वामिन्सर्व जगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीति-भावेन लिङ्गेऽस्मिन्सन्निधो भव॥"

इस मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। अनन्तर ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि, ॐ भवे भवे नाति भवे भवस्व माम् ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्ब-सदाशिवाय नमः पाद्यं समर्पयामि, ॐभवोद्भवाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्ब सदाशिवाय नमः अर्घ्यं स०, ॐ वामदेवाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्ब सदा शिवाय नमः आचमनं स०, ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्ब सदा शिवाय नमः स्नानं सम०" पीछे पञ्चामृतसे और शुद्ध जलसे स्नान कराकर, केशर, चन्दन, कपूरमिश्रित जलसे रुद्रीके ग्यारह आवृत्ति पाठकर वा एक वार पाठकर अथवा पुरुषसूक्तसे अभिषेक करे। फिर 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रसे आचमन देकर अक्षत, पुष्प सहित शुद्ध जलसे अधो लिखित मन्त्रोंसे तर्पण करना उचित है:—

"ॐ भवं देवं तर्पयामि, ॐ शर्वं देवं त०, ॐ ईशान देवं त०, ॐ पशुपतिं देवं त०, ॐ उग्रं देवं त०, ॐ रुद्रं देवं त०, ॐ भीमं देवं त०, ॐ महान्तं देवं त०, भवस्य देवस्य पत्नीं त०, सर्वस्य देवस्य पत्नीं त०, ईशानस्य देवस्य पत्नीं त०, पशुपतेर्देवस्य पत्नीं त०, उग्रस्य देवस्य पत्नीं त०, रुद्रस्य देवस्य पत्नीं त०, भीमस्य देवस्य पत्नीं त०, महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि" इन मन्त्रोंसे तर्पण-

कर, 'ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवायनमः वस्त्रं समर्पयामि' इससे वस्त्रदे 'ॐ नमः शिवाय' इससे आचमन देकर ॐ रुद्राय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि" इससे जनेऊ चढ़ाकर फिर मूल मन्त्रसे आचमन दे, पीछे "ॐ कालाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः चन्दनं समर्पयामि, ॐ कलविकरणाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः अक्षतां स०, ॐ बलविकरणाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः पुष्पाणि समर्पयामि इस प्रकार पुष्प पर्य्यन्त पूजा कर, फिर शिवसहस्रनामसे सहस्र बिल्वपत्र अथवा एक सौ आठ पत्र मूल मन्त्रसे चढ़ाना चाहिये। अनन्तर ॐ बलाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः धूपं स० ॐ बल प्रमथनाय नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः दीपं सम०, ॐ सर्वभूतदमनाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः नैवेद्यं सम०, ॐ नमः शिवाय आचमनं सम०, ॐ नमः शिवाय फलं सम०, ॐ मनोन्मनाय नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ताम्बूलं सम०; ॐ नमः शिवाय' इससे अथवा वेदमन्त्रसे आरती करना। 'भवाय देवाय नमः इन ऊपर लिखे आठ मन्त्रोंसे तथा भवस्य देवस्य फलाय नमः इन आठ मन्त्रोंसे प्रणाम कर 'शिवाय नमः, रुद्राय नमः, पशुपतये नमः, नील कण्ठाय नमः, महेश्वराय नमः, हरिकेशाय नमः, त्रिपुरान्तकाय नमः, शम्भवे नमः, शूलिने नमः, महादेवाय नमः इन बारह नामोंसे बारह बार पुष्पाञ्जलि देना चाहिये और नाम मन्त्रसे परिक्रमा, नमस्कार प्रार्थना कर, 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका १०८ बार जप कर 'अनेन पूजनेन श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयताम् नमम' पूजा निवेदन कर विसर्जन करना चाहिये। यह विधि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंकी है, स्त्री तथा शूद्रोंको 'नमः शिवाय' इसी नाम मन्त्रसे षोड़शोपचार पूजन करना श्रेयस्कर है। पूजनके अन्तमें सबको इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये कि:—

"नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतं तु मया शिव।
तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितम्॥
संसार-क्लेश-दग्धस्य व्रतेनानेन शंकर।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥"

अनन्तर तिल मिष्टान्नसे पूरित बारह कलशोंको बारह ब्राह्मणोंकी पूजा कर दान करना, यदि सबकी सामर्थ्य न हो तो एक कलश एक ब्राह्मणकी

पूजा कर अवश्य देना चाहिये। इस प्रकार विधिवत् व्रत, पूजन करनेसे सब फलोंकी अवश्य प्राप्ति होती है, अतः इस व्रतका सम्पादन करना प्रत्येक हिन्दूका परम कर्तव्य है। श्रीशंकरजी परम दयालु, दीनबन्धु, अशरण शरण, आरति हरण, आशुतोष विपत्ति-विदारण हैं, ऐसा कोई भी अभीष्ट नहीं है जो कि श्रीशिवजीकी कृपासे सिद्ध न हो सके। अब हम भी प्रार्थना करते हैं कि आशुतोष परम कारुणिक अति शीघ्र प्रसन्न हो हमारे तथा पाठकोंके मनोरथको पूर्ण करेंगे।

घनाक्षरी—

वन्दौं पद-कञ्ज दुःख-भंजन महेशजूके,
ताप त्रय-मोचन सजन सुखदायी है।
राजै कर डमरू त्रिशूल अति तीक्ष्ण जाके,
गले मुण्डमाल भाल चन्द्र-कला छायी है।
शोभित भुजङ्ग अङ्ग शीश पै विराजैं गङ्ग,
गौरी अरधङ्ग कण्ठ नीलता सोहायी है।
पावत न वेद पार गावै यश बार बार,
कहै किमि 'श्याम' छवि हियमें समायी है॥१॥

लौकिक स्वरूप।

भारतवर्षमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंकी उपासना-मेंसे ब्रह्माकी उपासना तो क्वचित् देखी जाती है, जिसको नहीं के बराबर कह देना भी अनुचित न होगा, परन्तु यह निस्सन्देह है, कि विष्णु एवं महादेव-की उपासनाका भारतमें सर्वत्र ही प्रचार है। भारतके सब प्रान्तोंमें महादेवजीके प्रसिद्ध प्रसिद्ध बारह मन्दिर हैं;—"(१) प्रभासपट्टनमें सोमनाथका मन्दिर; (२) श्रीशैल्यमें मल्लिकार्जुनका, (३) उज्जयनी नगरीमें महाकालका, (४) नर्मदाके किनारेपर ओंकार मान्धाताका, (५) हिमालयमें केदारेश्वरका, (६) डाकिनी वनमें भीमाशंकरका, (७) श्रीक्षेत्रकाशीमें विश्वनाथका (८) नासिकमें त्र्यम्बकेश्वरका, (९) चिताभूमिमें परली बैजनाथका, (१०) दारुक वनमें नागनाथका, (११) सेतुबन्धपर रामेश्वरका और (१२) वेरूलमें घृष्णेश्वरका।" इन द्वादश प्रसिद्ध मंदिरोंके अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशोंमें और भी अनेक सुप्रसिद्ध शिवालय हैं, अतः उनको संकोच भयसे नहीं लिखा गया है। इन द्वादश शिवालयोंके विस्तारसे ही यह स्पष्ट समझ लिया जा सकता है, कि भारतमें

शिवोपासना सर्वव्यापिनी है और इसी कारणसे शिव-महारात्रिका व्रत भी समस्त देशमें पाला जाता है ।

कालानुसार शिव-पूजाकी शास्त्रीय पद्धति कुछ छूटती जाती है. कारण कि आजकल पहर- डेढ पहर रात्रि जानेपर ही लोग शिव-अर्चादिसे निवृत्त हो जाते हैं और पुनः जागरण नहीं करते । हाँ, कहीं कहीं जागरण भी किया ही जाता है । काशी, गोकर्ण, वेलिवी, सिद्धनाथ, वैद्यनाथ, रामेश्वर, ओंकार और महाकालेश्वर और विश्वनाथ आदि स्थानोंमें तो इस दिन लाखों मनुष्योंकी भीड़ हो जाती है । उत्तर तथा पूर्व हिन्दुस्थानके मनुष्य प्रायः काशी-विश्वनाथकी यात्राको विशेष जाते हैं और राजस्थान तथा सेन्ट्रलइन्डियाके लोग ओंकारेश्वर अथवा महाकालेश्वरको अधिक जाते हैं । इसी प्रकार महाराष्ट्र तथा कर्नाटकके लोग गोकर्ण महादेवकी यात्राको जाते हैं और द्रविड़ देश तथा मद्रासके लोग मद्रास इलाकेके पत्पूर ग्रामके पास वेलिवी क्षेत्रको जाते हैं। सारांश, जहांके लोगोंको जिस तरफ अधिक सुभीता होता है, वहाँ जाकर महा शिवरात्रिके पुण्यको प्राप्त करते हैं । प्रायः शिवके मंदिरोंमें सर्व वर्णके लोगोंको जानेका सुभीता रहता है अर्थात्—किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं रहती ।

जिस प्रकार विष्णु, देवी, गणपति और सूर्य्य उपासनामें कितने ही पन्थ हैं, इसी प्रकारसे शैवसम्प्रदायमें भी वाममार्ग, अघोरी पन्थ, परमहँस, सरभंगी, पाशुपत, लाकुलिन, कौल, कापाल, कालामुख, वीरशैव, लिंगायत और शैव अनेक पन्थ हैं । इनमेंसे कालानुसार कितने ही पन्थोंका लय हो जानेपर भी कुछ पन्थ आजतक भारतमें प्रचलित हैं । ऐसा विदित होता है, कि इन संप्रदायोंका नाम कर्कश होनेपर भी प्राचीनकालमें किसी अच्छे उद्देश्यको लेकर इनकी स्थापना हुई थी, परन्तु पीछेवाले लोग उस पवित्र उद्देश्यको तो भूल गये और अनाचार जनित क्रियामें संलग्न हो गये, जिससे संसारमें उनका स्थित रहना कठिन हो गया। सरभंगी, इस शब्दकी कर्कशता हम आजकलके सरभंगियोंसे (जो कहीं कहीं अब भी देखे जाते हैं और मूत्रपुरीषको ही अपना परम साधन समझते हैं) मालूम होती है, परन्तु प्राचीन कालमें ऐसा नहीं था, कारण कि पिताकी आज्ञानुसार वनको जाते हुए भगवान् रामचन्द्रजीको त्रिकूटके आगे सरभंग ऋषिका भी आश्रम मिला है और स्वयं भगवान् उनके स्थानपर पधारे हैं। यदि उस समय आजके सरभंगियोंकी सी व्यवस्था होती तो धर्मके आदर्शरूप मर्यादा-पुरु-

षोत्तम न तो सरभंगके आश्रमपर पधारते, न उनके नामके साथ ऋषि शब्दका प्रयोग ही होता।

वीर शैव और शैव इन दोनों पन्थोंके अतिरिक्त अन्य पन्थोंका आचार विचार लोक और शास्त्र दोनोंसे नहीं मिलता। इससे जाना जाता है, कि शैव सम्प्रदायके कितने ही पन्थ लोकमर्यादासे भी निकल गये थे, तब तो तुलसीदास जैसे महात्माको भी अपनी रामायणकी कवितामें कोल शब्दकी निन्दा करनी पड़ी (पाठकोंको स्मरण होगा कि तुलसीकृत रामायणमें आदिसे अन्त तक किसी सम्प्रदाय या पन्थका खण्डन नहीं है।)

लाकुलिन और पाशुपत ये दोनों पन्थ नाम मात्रके ही दो हैं, वास्तवमें एकही उद्देश्यके साधक हैं। अर्थात्—इन दोनोंने शिवको ही कार्य एवं कारण माना है और योग तथा विधिके अवलम्बन करनेवालेको मुक्ति मिलती है, यह दोनोंका ध्येय है।

कालमुख नामी पन्थ बहुत भयङ्कर है। मृतक मनुष्यकी खोपड़ीमें अन्न खाना, सब शरीरमें चिताकी भस्म धारण करना, भस्मका भक्षण करना, मद्यका सेवन करना और रुद्राक्षकी माला तथा जटा धारण करना—इत्यादि क्रियाओंसे शिव प्रसन्न होते हैं, ऐसा इस पन्थका मन्तव्य है।

कविराज भवभूतिने अपने "मालती माधव" नाटकमें कापालिकका वर्णन किया है। इससे जाना जाता है कि, आजसे पाँच सौ वर्ष पहले यह पन्थ युवावस्थामें था। अब इसका ह्रास होने लगा है, एक समय होगा, कि यह नाम शेष हो जायगा।

उत्तर दिशामें काश्मीरी शैव, इस नामका भी एक पवित्र पन्थ है। इन लोगोंका मन्तव्य है कि, महेश्वर ही परब्रह्म है। उसने अपनी इच्छा मात्रसे ही जगत्की उत्पत्ति की है। शिव और जीव इन दोनोंमें भेद नहीं है, केवल मल, अर्थात् अज्ञानके कारण दो की प्रीतीति है। इस वास्ते चित्तकी एकतानताको सम्पादन करके चित्तको शिवःस्वरूपमें लय कर देनेसे अज्ञानका नाश हो जाता है और मिथ्या द्वैत नष्ट हो जाता है, यही मोक्ष है।

सामान्यतया शैव-सम्प्रदायके लोग अपनी उपासनाको सशास्त्र और उचित रीतिपर पालन करते हैं। उनका सिद्धान्त है,—"आत्मा, यह पशु और शिव, यह पति—समष्टि जीवोंका अधिपति ही पशुपति है।" अज्ञान कर्म और माया इनको वश करना ही शैव सम्प्रदायका लक्ष्य है। किसी देवताको

अर्पण किये अन्नको खाना, शिवभक्तों या शिवकी निन्दा करना, देव द्रव्यका अपहरण करना और प्राणिमात्रकी हिंसा करना ये सब बातें शैवोंको निषिद्ध बतलाई हैं।

कितनेक तत्त्वदर्शी शैवलोग हरि-हरमें भेद न मान कर एक ही एकादशीको व्रत आचरण करते हैं। ये लोग वास्तवमें शास्त्र-मर्यादा और देशके रक्षक हैं। आजसे २३ सौ वर्ष पहले श्रीशंकराचार्य्यजी महाराजका प्राकट्य हुआ था। उन्होंने यद्यपि शैव-सम्प्रदायका खण्डन किया है; परन्तु वह खण्डन शिवोपासनाका नहीं है, किन्तु शैव दर्शन जो द्वितका प्रतिपादक था, उसका है, कारण कि स्वयं शंकराचार्यजीने पञ्चदेवोपासनामें शिवोपासनाको माना है।

मादि राजाका पुत्र वसव था, इसने लिंगायत किम्वा वीर शैवका विशेषरूपसे प्रचार किया है। ये लोग एकेश्वरी मतका अनुवाद करते हैं और सत्, चित् तथा आनन्दरूप शिवमें ही प्रकृति और पुरुषनिर्मित सृष्टि लय पाती है। उत्पत्तिके स्थानमें जो प्रकृति और पुरुष है, उनको स्थल, शिवको लिंगस्थल और जीवको अंग स्थल इस प्रकारसे यह पन्थ मानता है। कला और भक्ति ये दो भेद शक्तिके हैं, शिवमें भक्ति और जीवमें कला मानी है। भक्ति ही जीवको शिव तक पहुँचानेवाली शक्ति है। लिंग-यह शिवतत्त्वका द्योतक चिन्ह ही नहीं, किन्तु साक्षात् शिव हैं, यह मानकर अंगपर धारण करना यह वीर शैवोंका मुख्य कर्त्तव्य है।

लिंगायतोंमें लिंगधारण विधिको "लिंग स्वायत्त दीक्षा" कहते हैं और द्विजोंमें यज्ञोपवीत-धारण जिस प्रकार आवश्यक माना गया है, उसी प्रकार यह दीक्षा लिंगायतोंमें आवश्यकीय मानी गयी है। ये लोग मद्य, मांसादिका कदापि सेवन नहीं करते और "ॐ नमः शिवाय" इस षडक्षरी मंत्रको सदैव जपते हैं। इन लोगोंमें विधवा-विवाह होता है और रजस्वला स्त्रीके स्पर्शास्पर्शको नहीं मानते हैं। इनमें जंगम (भट्टजी) शीलवन्त (भक्त) वणिजग (व्यापारी) पंच मसाली—ये चार भेद हैं। इनमें वणिजगोंके वर्गकी धन सम्पन्नता एवं परोपकारिता प्रसिद्ध है। जंगम लोगोंमें कुछ विरक्त भी हैं। मैसूरके इलाकेमें "चितलदुर्ग" यहां इन लोगोंका मुख्य मठ है और वहाँके आचार्यका इन सब लोगोंपर अधिकार चलता है। राजस्थानमें शिवोपासना सामान्य प्रकारकी है, परन्तु श्रावण-मासमें अधिकतासे बिल्वपत्र चढ़ाये जाते हैं।

शिक्षा ।

उपर्युक्त वेद-प्रमाणोंसे यह तो निश्चय हो ही गया, कि शिव—यह ब्रह्म ही है, परन्तु कहीं साम्प्रदायिक वाक्योंके द्वारा शिवको द्वितीय कोटीका माना है। अस्तु, यह उपासकोंकी उपासनाके उत्कर्षार्थ है, शिवकी निन्दाके निमित्त नहीं। श्रीशङ्कराचार्य्यजी महाराजने ब्रह्मको नमस्कार करते हुए, इस प्रकारसे लिखा है:—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः परमात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥

"हे, भगवन्! आपको नमस्कार करता हूं, आप कैसे हो? कि सृष्टि सृजनके प्रथम एक हो और पश्चात् सत्व, रज और तमोगुणके भेदसे ब्रह्मा, विष्णु, और महेश तीनों रूपोंको धारण करते हो।

एक और तीनका वैज्ञानिक रहस्य।

पाठक! आपने जाना होगा, कि सच्चिदानन्द ब्रह्म वास्तवमें एक ही है, परन्तु सृष्टि सृजनकालमें एक होते हुए भी तीन प्रकारसे कहा जाता है। एक कलमको आप हाथमें लेकर ऊँची आकाशकी तरफ फेंकोगे, तो आपको मालूम होगा, कि जबसे वह कलम आपके हाथसे छूटकर पीछी पृथ्वीपर आई, तब तक उसको तीन स्टेशनोंपर घूमना पड़ा। उन तीन स्टेशनोंके नाम ये हैं,—"(१) उत्क्रमण, (२) समतोलन और (३) अपक्रमण।" उत्क्रमण-ऊपरको जाना, समतोलन-कुछ देर वहाँ स्थिर रहना और अपक्रमण नीचेको आना है।

देवदत्तने जिस समय कलमको ऊपर फेंका, यदि देवदत्तके हाथकी शक्तिका परिस्थितियोंके कारण व्यय न होता, तो वह कलम कहीं भी न रुककर एक दम चन्द्र तथा सूर्यादि ग्रहोंको उल्लंघन करती हुई असीम आकाशमें चली ही जाती, परन्तु जिस समयसे कलममें उत्क्रमणके व्यापारका प्रारंभ हुआ, उसी समयसे विरुद्ध शक्तियोंका भी देवदत्तके हाथकी शक्तिको व्यय करनेका प्रारंभ हुआ, अर्थात्—तीन शक्तियोंने उत्क्रमणको रोका। प्रथम, तो कलममें जो गुरुत्व (भारीपन) था, उसने ही कलमको नीचे गिराना प्रारंभ किया, पुनः पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिने कलमको अपनी तरफ आकृष्ट किया और तीसरे वायुके दबावने उध्वगमनसे रोका।

इन तीन विरुद्ध शक्तियोंसे लड़ती हुई देवदत्तके हाथकी शक्ति जहां कुंठित हो गयी, वहां तक इस कलमका उत्क्रमण काल कहा जा सकता है। देवदत्तकी

हस्तशक्तिके पराजय और परिस्थितियोंके अनुकूल कलमको नीचे गमन करनेका प्रारंभकाल-इन दोनोंके बीचका काल इस कलमका समतोलन काल कहा जा सकता है। समतोलनके अन्तिम क्षणसे लगाकर परिस्थितियोंके द्वारा कलम पृथ्वीपर पड़ती है, उतने कालको अपक्रमण काल कहा जाता है।

पाठकवर्ग! यदि आप सूक्ष्म दृष्टिसे देखेंगे, तो आपको पता चलेगा, कि जड़ कलममें स्वयं ऊपर जानेकी शक्ति नहीं थी, किन्तु चेतन देवदत्तकी शक्तिने कलमका उत्क्रमण किया। केवल उत्क्रमणमें ही देवदत्तकी हस्तजनित शक्ति कलमके साथ थी—यह बात नहीं है, किन्तु उत्क्रमण, अपक्रमण और समतोलन-इन तीनों दशाओंमें वह शक्ति कलमके साथ थी। साथ थी-यह कहना भी स्थूल दृष्टि वालोंके लिये है। विचार शील तो यह अवश्य जान जायेंगे, कि उत्क्रमण, समतोलन और अपक्रमण-ये तीन अवस्थायें उसी एक शक्तिके औपाधिक भेद हैं, वास्तवमें वह एक शक्तिही है।

जिस प्रकार कलमकी तीन दशायें देखी जाती हैं, ठीक उसी प्रकार इस दृश्यमान विश्वके प्रत्येक कार्यमें इन तीनों अवस्थाओंका साक्षात्कार होता है। संसारकी सभी चीज़ें बनती हैं, बिगड़ती हैं तथा स्थिर रहती हैं। और यही नियम समष्टि जगत्के लिये भी है, कि वह बनता है, कुछ दिन स्थिर रहता है और बिगड़ता है। इसीको शास्त्रोंमें सृजन, पालन और प्रलयके नामसे कहा जाता है। कलममें जिस प्रकार देवदत्तकी शक्तिकी तीन अवस्थायें होती हैं, उसी प्रकार व्यष्टि जड़ वस्तुओंमें भी व्यष्टि या तद्गत चैतन्यकी ही वे तीन औपाधिक अवस्थायें हैं और ठीक इसी नियमसे समष्टि ब्रह्माण्डमें समष्टि ब्रह्मकी शक्तिके भेद हैं। ब्रह्माण्डके उत्क्रमण या सृजनमें रहनेवाली शक्तिको ब्रह्मा, समतोलन या पालनमें रहनेवालीको विष्णु और अपक्रमण या लयमें रहनेवाली शक्तिको शिव कहा जाता है।

वास्तवमें एक शक्तिके ही तीन नाम एवं औपाधिक (कार्य परायण) भेद हैं, तीन वस्तुएँ नहीं। इसीको श्रीमद्भागवत महापुराणके प्रथम स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें इस प्रकारसे स्पष्ट कर दिया है:—

सत्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः
परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरि विरंचि हरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्वतनोर्नृणां स्युः॥

"सत्त्वगुण, तमोगुण और रजोगुण ये प्रकृतिके तीनों गुण हैं । इनमेंसे रजोगुण जगत्‌का सृजन करता है, सत्त्वगुण पालन और तमोगुण लय करता है । रजोगुणके साथ रहनेवाली ब्रह्मसत्ताको ब्रह्मा, सत्वगुणके साथ रहनेवाली ब्रह्मसत्ताको विष्णु और तमोगुणके साथ रहनेवाली ब्रह्मसत्ताको शिव कहा जाता है। "पुरुष एक इहास्य धत्ते" यह कहकर भागवतकारने स्पष्ट बतला दिया है, कि इन तीन गुणोंमें काम करनेवाली एक ही सत्ता है, जिसको ब्रह्म कहते हैं ।"

फूटकी बुराई तथा ऐक्यका लाभ ।

सारांश,—महादेव ब्रह्म ही हैं । जब महादेव ब्रह्म हैं, तो जीवका असाधारण कर्तव्य हो गया, कि वह शिवरूप ब्रह्मकी उपासना करे। उपासकोंके लिये शिवरात्रिसे बढ़कर और ऐसा कौनसा अवसर होगा, जब अपने सेव्यकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो, इस कारण मनुष्यमात्रका धर्म है, कि महाशिवरात्रिका यथाशास्त्र व्रताचरण करे ।

जिस प्रकार हम लौकिक और धार्मिक कार्योंको एकत्र होकर करते हैं; क्या ही अच्छा हो, कि उसी प्रकार अपने अपने इष्टोंका आधिक्य मानते हुए भी वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य सब मिलकर महाशिवरात्रिके व्रतका आचरण करें अथवा शिवालयोंमें उत्सव करें । एकता ही ब्रह्म और देशोन्नतिकी प्राप्तिका मौलिक साधन है। जब हम सब भारतीय उपासना सम्बन्धी अशास्त्रीय विद्वेषोंको छोड़कर परस्पर एक दूसरेके धार्मिक कार्योंमें भाग लेंगे, तो क्रमशः हमारा यह ज्ञान बढ़ता जायेगा, कि हम सब भारतीय लोग एक ही इष्टदेवके मानने तथा जाननेवाले परस्परमें भाई हैं ।

पाठक वर्ग ! यह एकताका ज्ञान ही देशोन्नतिका मूल पाया है । जिस जातिमें एकता नहीं है, वह अब भी गुलाम जाति है और बहुत दिनों तक गुलामीमें रहकर एक दिन नष्ट हो जायगी । किसी भी देशमें जब विपत्ति आती है, तो वह अपनी सफर मैना (फूट) को प ले भेजती है। प्राचीन, भारत इसी कारणसे समुन्नत था, कि उसमें एकताका साम्राज्य था । खेद है, कि देखते देखते भारतवर्ष फूटका विहारस्थल बन गया । किसी कविने कहा है:—

जा दिनसे दुरयोधनके घर देवि तुम्हारी भई पहुनाई,
ता दिनसे सब नष्ट भयो विपते ! यह रोवत लोग लुगाई ।

वैभव हीन रु दीन भये हम तापरहू तुम फूट पठाई,
ख्वार भई सब भांति धरा अब चाहत भारत तेरि विदाई ।

सारांश,—यह है, कि जब तक लौकिक एवं वैदिक दोनों कार्योंमेंसे फूटको निकालकर एकता न करेंगे, तब तक हमारी विपत्ति नष्ट नहीं होगी । अतः पाठक वृन्द ! आओ, हम सब भारतीय विभिन्न सम्प्रदायोंको मानते हुए भी भगवान् भवकी समर्चामें तन्मय हो जायँ, जिससे हमारे देश और जातिका कल्याण हो ।

प्रतिज्ञापालन और उसका परिणाम ।

पाठक वर्ग ! प्रकृत कथामें हरिण तथा व्याधके इतिहाससे आपको सत्य प्रतिज्ञा और उसके परिणामकी सब कथा मिलेगी । यद्यपि इस कथाको यहाँ हरिणके प्रसंगमें लिखा है; परन्तु समाजके संगठन और संचालनमें "सत्य प्रतिज्ञा"—यह मौलिक तत्त्व है । जो समाज अब तक उन्नतिके शिखरपर चढ़ा है और भविष्यमें चढ़ेगा, उसको सबसे पूर्व इसी तत्त्वकी मौलिकता स्वीकार करनी पड़ेगी तथा इसको जीवनका रहस्य बनाना पड़ेगा ।

प्रतिज्ञा पालनके विषयमें महात्मा भर्तृहरीने इस प्रकार लिखा है:—

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा
मत्यन्त शुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ॥
तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति ।
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥ १११ ॥

सत्यव्रत तेजस्वी पुरुष अपनी प्रतिज्ञा-भङ्ग करनेकी अपेक्षा अपना प्राण त्याग करना अच्छा समझते हैं, क्योंकि प्रतिज्ञा लज्जा प्रभृति गुणोंके समूहकी जननी और अपनी जननीकी तरह शुद्ध हृदय और स्वाधीन रहनेवाली है ।

प्रतिज्ञापालन मनुष्यका परम कर्तव्य है । जो प्रतिज्ञा-पालन नहीं करते, वे मनुष्य कहलानेके अधिकारी नहीं । लोग अपने स्वार्थके लिये प्रतिज्ञा-भंग कर बैठते हैं, यह बहुत ही बुरी बात है । मनुष्यको अपने जीवनकी अपेक्षा अपने शब्दोंका अधिक ध्यान रखना चाहिये । जब कारथेनियन लोगोंने रेग्यूलस नामक मनुष्यको कैद किया, तब उन्होंने उसे इस प्रतिज्ञापर छोड़ा, कि वह जाकर रोमनोंसे सुलह करा दे और यदि उसके भाग्यसे सुलह न करे, तो वह स्वयं कैदी बनकर लौट आवे । वह प्रतिज्ञा करके चला गया । रोमन लोगोंने उससे कहा कि, तू अब लौटकर न जा;

क्योंकि तू स्वयं प्रतिज्ञामें नहीं बंधा है ! उन्होंने जोर जबरदस्तीसे तुझसे वैसी प्रतिज्ञा करा ली है। रेग्यूलसने कहा,—"तुम सब मुझे क्षुद्र बनाना चाहते हो। मैं जानता हूं, मेरे लौटकर जाते ही वे मुझे मार डालेंगे। पर प्रतिज्ञा पूरी न करने—झूठा और दगाबाज बननेकी अपेक्षा मरना हजार गुना अच्छा है। मैंने वापस लौट जानेकी प्रतिज्ञा की है, इसी लिये जाऊँगा और जरूर जाऊँगा। निदान वह कारथेज गया और वहां उसे प्राणदण्ड दिया गया। धन्य वीर! धन्य !!

महाराज हरिश्चन्द्रने ख़ाली प्रतिज्ञा रक्षाके लिये ही अपना राज-पाट गँवाय, रानी और पुत्रका वियोग सहा। दोनों स्त्री-पुरुषोंने पराई चाकरी की। यहां तक कि भंगीका काम किया, पर अपनी प्रतिज्ञा रक्खी। सत्यपालनका ऐसा आदर्श जगत्में और कहां है ? महाराज दशरथने, सर्व्व-नाशका समय उपस्थित होनेपर भी, यही गर्व्वीले वचन कहे—"रघुकुल रीति सदा चलि आयी, प्राण जायँ वरु वचन न जायी"। आपने जो कहा वही किया। प्राण प्यारे रामकी जुदाईमें प्राण त्याग दिये, पर सत्यकी रक्षा की। रामचन्द्रसे भरतने अयोध्यामें चलकर राज करनेके लिये बारम्बार कहा; तब रामने कहा—"सुनो भरत ! चन्द्रमाकी शीतलता जाती रहे, हिमालय अपना अचलभाव छोड़ दे, सूर्य शीतल हो जाय, सागर अपनी मर्यादा तोड़ दे; तो भी पिताके निकट मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मैं तोड़ नहीं सकता।" धन्य राम ! धन्य !!

महत् पुरुष अगर कोई बात हँसीमें भी कह देते हैं, तो वह पत्थरकी लकीर हो जाती है, पर नीचोंकी बात पानीकी लकीरकी तरह होती है, जो ज़रा देरमें ही मिट जाती है। महत् पुरुष प्राण-त्याग कर देते हैं; पर वचन-भंग नहीं करते। सूरज पच्छिममें उदय हो तो हो, सुमेरु चलायमान हो तो हो, अग्नि शीतल हो तो हो, कमल पर्वतोंपर पैदा हों तो हों, चन्द्रमा सूर्यकी तरह अग्नि उगले तो उगले,—पर सत्पुरुषोंकी प्रतिज्ञा पूरी हुये बिना नहीं रह सकती। कवियोंने कहा है—

रन सन्मुख पगसूरके, बचन कहे ते सन्त।
निकस न पीछे होत हैं, ज्यों गयन्दके दन्त ॥
बड़े बचन पलटें नहीं, कहि निरवाहें धीर।
कियो बिभीखन लंकपति, पाय विजय रघुवीर ॥

बातहिंसे दशरत्थ मरे, अरु बातहिं राम फिरे बनजाई ।
बातहिंसे हरिचन्द सहे दुख, बातहिं राज्य दियो मुनिराई ॥
रे मन ! बात विचारि सदा, कहु बातकी गातमें राख सचाई ।
बात ठिकान नहीं जिनकी, तिन बाप ठिकान न जानेहु भाई ॥

और भी—

हस्तिदन्तसमानं हि निःसृतं महतां वचः ।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च ॥

बड़ोंके वाक्य हाथीके दांतोंके समान होते हैं, यानी निकले सो निकले: निकल कर भीतर नहीं जाते; पर नीचोंके वाक्य कछुएकी गर्दनके समान होते हैं, जो कभी भीतर जाती है और कभी बाहर आती है। पंडित शिरोमणि जगन्नाथ महोदय भी कहते हैं—

विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥

विद्वानोंके मुँहसे सहसा कोई बात नहीं निकलती और यदि निकली, तो हाथीके दांतकी तरह निकलकर फिर भीतर नहीं जाती।

मनुष्यमात्रको, यदि वह मनुष्यत्वका दावा करे, प्रतिज्ञा-रक्षाके मुक़ाबले-में, प्राणोंको भी तुच्छ समझना चाहिये।

भैय्या लज्जा गुणनकी, निज मैया सम जान ।
तेजवन्त तनको तजत, याको तजत न जान ॥
याको तजत न जान, सत्यव्रत वारेहू नर ।
करत प्राणको त्याग, तजत नहीं नेक वचन वर ॥
शरत आपनी राख रह्यो, वह दशरथ रैया ।
राखो बल हरचन्द, टेक यह यशकी मैया ॥ १११ ॥

पाठक ! इस सत्यप्रतिज्ञाके चित्रको महा शिवरात्रि व्रतके हरिणोपाख्यानमें किस उत्तमतासे ग्रथित किया है—यह लक्ष्य देकर पढ़ें और साथ ही मनुष्य-जीवनके सारभूत इस आचरणपर कमर कसकर उपस्थित हो जाँय।

होलिका-महोत्सव ।

—o:❀:o—

शास्त्रीय-स्वरूप ।

होलिका महोत्सवके विषयमें नारदीय पुराणमें इस प्रकार लिखा है:—

फाल्गुने पौर्णिमायान्तु होलिकापूजनं स्मृतम् ।
संचयं सर्वकाष्ठानां पलालानाञ्च कारयेत् ॥

"फाल्गुन मासकी पूर्णिमामें होलीका पूजन कहा है, उसमें लकड़ी और घांस फूंसका एक बड़ा भारी ढेर लगाकर रक्षोहन वेद मन्त्रोंसे विस्तारके साथ हवन करे ।" यजुर्वेदके पाँचवे अध्यायमें रक्षोघ्न मन्त्र इस प्रकार है:—

"ॐ रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमहं वलगमुत्किरामि स्वाहा ॥ १ ॥
यं मे समानो य समानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि,
यं मे स बन्धु यं अबन्धु निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि,
यं मे स जातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यां किरामि स्वाहा ॥ २ ॥
स्वराडसि सपत्नहा सत्रराड़स्य त्रिमातिहा जनराड़सि रक्षो हा
सर्वराड़स्य मित्र हा स्वाहा ॥ ३ ॥
रक्षोहणो वो वलगघ्नोः प्रोक्षामि वैष्णवान् स्वाहा ॥ ४ ॥
रक्षोहणो वो वलगहनो वा नयसि वैष्णवान् स्वाहा ॥ ५ ॥
रक्षोहणो वो वलगहनो विस्तृणामि वैष्णवान् स्वाहा ॥ ६ ॥
रक्षोहणो वा वलगहना उपदधामि स्वाहा ॥ ७ ॥
वैष्णवी रक्षोहणो वा वलगहनो पर्यूहामि वैष्णवो
वैष्णवमसि वैष्णवास्थ स्वाहा ॥ ८ ॥

उपर्युक्त मंत्रोंसे हवन करनेके पश्चात् फिर होलिकाके पूजनकी विधि है। जिसमें यह श्लोक बोला जाता है:—

अहकूटाभयत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूति-भूतिप्रदायिनीम् ॥

"हे होलि ! अहकूटा राक्षसीके भयसे डरे हुए बालकोंने तुझको किया है, इस लिये मैं तेरी पूजा करता हूँ। तेरी भूति (भस्म) मुझको परम विभूति, अर्थात्—ऐश्वर्य देनेवाली हो।" भूत, प्रेत और राक्षस रात्रिके

समय वायुरूपसे आकर बालकोंको पीड़ा देते हैं और अग्निके प्रज्वालनसे भाग जाते हैं, इसकारण बालकोंकी रक्षाके निमित्त मैं तुम्हारी पूजा करता हूं—यह उपर्युक्त मन्त्रका आशय है। इस दिन हर महीनाकी पौर्णिमाके हिसाबसे इष्टि (छोटा सा यज्ञ) भी किया जाता है, इसकारण भद्रारहित समयमें उस इष्टि-को (हवन) को भी विद्वानोंने इसी होलिकामें किया। पूजनके पश्चात् होलीकी भस्म शरीरपर लगाई जाती है। भस्मी लगानेका मन्त्र यह हैः—

वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च।
अतस्त्वं पाहि मां देवि! भूति-भूतिप्रदा भव॥

"हे, देवि (भस्म)! तुमको इन्द्र, ब्रह्मा और शंकरने प्रणाम किया है; अतः तू मेरी रक्षा कर, मुझको सदा ऐश्वर्य देनेवाली हो।"

होलीके लिये प्रदोष, अर्थात् सायंकालव्यापिनी पूर्णिमा लेनी चाहिये और उस रात्रिको भद्रा रहित समयमें होली प्रज्वलित करना चाहिये। पुराण-समुच्चयमें इसी प्रकारका निश्चय किया गया हैः—

भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभंगं करोति वै।
नगरस्य न चेष्टा स्यात्तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥

"भद्रामें होलीको प्रज्वलित करनेसे राज्य एवं राष्ट्रमें विद्रोह होता है और नगरको भी शुभ नहीं है, इस कारण भद्रायुक्त होलीका त्याग करना चाहिये।" भद्राका स्वरूप ज्योतिष शास्त्रमें इस प्रकार बतलाया हैः—

राकाष्टमी प्राग्दले विट्प्रान्त्ये कृत रुद्रयोरबाहुले कृष्णनिरेकेष्विह॥

"कृष्ण पक्षकी तृतीया और दशमीके दूसरे आधे भागमें तथा सप्तमी और चतुर्दशीके पहले आधे भागमें भद्रा होती है। शुक्लपक्षमें चतुर्थी और एकादशीके पिछले आधे भागमें तथा अष्टमी और पूर्णिमाके पहले आधे भागमें भद्रा होती है।" दिनमें कभी भी होली प्रज्वलित न करे। जिस रातमें होली प्रज्वलित करनी हो, उस दिनको होलीका उत्सव मनाना चाहिये।

इसी पूर्णिमाको वैष्णव लोग दोलोत्सव करते हैं, जिसके विषयमें ब्राह्म पुराण कहता हैः—

नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥

"फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन हिंडोलेमें झूलते हुए श्रीगोविन्द-पुरुषोत्तमका जो मनुष्य चित्तको एकाग्र करके दर्शन करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठमें

जाता है।" यह दोलोत्सव होली प्रज्वलित होनेके अनन्तर होता है। यदि पूर्णिमाकी पिछली रात्रिमें होली प्रज्वलित हो, तो यह उत्सव प्रतिपदाको होता है और इसी दिन अबीर गुलाल उड़ाया जाता है। अब भी मन्दिरोंमें, राजा-महाराज और सेठ साहूकारोंके यहाँ उड़ाया जाता है।

उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त इस फाल्गुनी पौर्णिमाके दिन चतुर्दश मनुओंमेंसे एक मनुका भी जन्म है, इस कारण यह मन्वादि तिथि भी है; अतः उसके भी उपलक्ष्यमें उत्सव मनाया जाता है।

कितने ही शास्त्रकारोंने तो सम्वत्‌के प्रारम्भ एवं वसन्तागमके निमित्त जो यज्ञ किया जाता है, जिसके द्वारा अग्निके अधिदैवस्वरूपका पूजन होता है, वही पूजन इस होलिकाका माना है। कोई इसको अग्निका पूजन कहते हैं, क्योंकि अग्निरूपसे भी परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं। इलेक्ट्री सिटी तथा विद्युत् यह अग्नितत्त्व ही है। अथवा अग्निका सूक्ष्म-रूप है। पृथिवीमें दावानल, जलमें वड़वानल, तेजमें प्रभानल, वायुमें प्राणापानानल और आकाशमें विद्युता-नल—अग्नि ही है। इस प्रकारसे अग्नि सर्वव्यापि पदार्थ है। इतना ही नहीं, किन्तु इस पञ्चमहाभूतके पुतले—शरीरमें भी वैश्वानररूपसे अग्नि व्याप्त है—यह सब व्यापकता अध्यात्म-रूपसे परमात्माकी ही है। श्रीमद्भगवत् गीतामें यही बात भगवान्‌ने अर्जुनसे कही है:—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

"मैं प्राणियोंमें वैश्वानररूपसे व्याप रहा हूँ। प्राण और अपान वायुके साथ मिलकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य चार प्रकारके अन्नको मैं ही पकाता हूँ।" अग्नि ही सब कर्मोंका साक्षी है—यह वेदोंमें भी लिखा है। देवोंके शरीरोंमें भी साक्षीरूपसे अग्निरूप परमात्माका ही निवास है। इसी कारण रामायणमें कहा है:—

त्वमग्ने सर्व देवानां शरीरान्तरगोचरः।
त्वं साक्षी मम देहस्थस्त्राहि मां देवसत्तम॥

"हे, अग्ने! आप ही सब देवोंके शरीरमें व्याप्त हो और तुम ही मेरे शरीर-में हो, इस कारण आप मेरी रक्षा करो।" इससे विदित होता है, कि होलिका-दहन यह अग्निका पूजन है।

भविष्य-पुराणमें राजा युधिष्ठिरसे नारदजीने इस प्रकार कहा है:—

अथ पंचदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप ।
अभयं चैव लोकानां दीयतां परमेश्वर ॥
यथा ह्यशंकिनोलोका रमन्ति च हसन्ति च ।
दारुजानि च खड्गानि गृहीत्वा तु समुत्सुकाः ॥
योधा इव विनिर्यन्तु शिशवः संप्रहर्षिताः ।
संचयं शुष्क काष्ठानामुपलानां च संचयम् ॥
तत्राग्नि विधिवत् हुत्वा महामंत्रैश्च वित्तमैः ।
ततः किल किला शब्दैस्ताल शब्दैर्मनोहरैः ॥
तत्ते शब्देन सापापा होमेन च समाहताः ।
(सा ढूँढा राक्षसी विज्ञेया इति व्रतराजे)
सर्व दुष्टापहो होमः सर्व रोगोपशान्तये ।
क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका स्मृता ॥

"हे नराधिप ! फाल्गुनकी शुक्ल पौर्णिमाको सब मनुष्योंके लिये अभय दान देना चाहिये, जिससे निःशंक होकर प्रजाके लोग हँसें और क्रीड़ा करें। लकड़ीके टुकड़ोंको लेकर शूरवीरोंकी तरह बालक गाँवसे बाहर जाँय और लकड़ी एवं कंडोंके संचयसे विधिवत् हवन करें। वह पापात्मा राक्षसी किलकिला शब्द, अट्टहास और मन्त्रोच्चारणसे नष्ट हो जाती है।" "सा ढूँढा राक्षसी" इस व्रतराजकी व्याख्यासे, हिरण्यकशिपुकी भगिनी और प्रह्लादकी फुआ, जो प्रह्लादको अग्निमें लेकर बैठी थी और एक भक्तराजके अनिष्टको करती हुई आप अनिष्टमें फँस गई, वह ही प्रतिवर्ष होलिका नामसे आजतक जलाई जाती है, यह पाया जाता है।

इस हवनसे संपूर्ण अनिष्टोंका नाश होता है और यही होलिका उत्सव है। उस अग्निकी तीन परिक्रमा करके फिर यथेच्छ परिहासादि करे। भद्रामें दाह न करना चाहिये और जो कदाचित् आवश्यकता ही पड़ जाय, तो पहली पाँच घड़ियाँ छोड़कर दाह करे।

लौकिक स्वरूप ।

दक्षिण प्रान्तमें इस होलीके त्यौहारको फाल्गुन-शुक्ला-नवमीके दिनसे लोग करते हैं, परन्तु उत्तर हिन्दुस्थानमें तो फाल्गुनका समग्र मास ही इस उत्सवमें विताया जाता है और राजपूतानेमें होलिकादहनसे प्रथम तो निम्न कक्षाके लोग गाना गाकर उत्सव मनाते हैं; परन्तु राजाओंमें होलिकादहनके

पश्चात् पन्द्रह रोज तक बड़ा भारी उत्सव रहता है; जिसमें राजकीय और प्रजा सम्बन्धी अनेक उत्सव होते हैं। सबसे ज्यादा महत्त्व "हान नामक उत्सवका है। राजाओंकी होलियोंमें स्थानपरत्वसे कहीं रंग पंचमी, कहीं फव्वारेकी होली और कहीं नावड़ोंकी होली आदि विशेष महत्त्वके उत्सव होते हैं। इस होलिकादहनको कहीं शिमगा, कहीं होलिकादहन, कहीं होली, कहीं हुताशनि-दहन महोत्सव और कहीं दोलायात्रा कहते हैं।

पाठकोंने शास्त्रीय-स्वरूपमें देखा होगा, कि होलिकाके सम्बन्धमें निश्चय-रूपसे यह सिद्ध नहीं हुआ है, कि किस कारणसे यह त्यौहार प्रचलित हुआ। किसी शास्त्रमें कुछ और किसीमें कुछ कारण मिलता है, जिससे युगभेदके कारण ये सब हेतु यथार्थ हैं-यह मानना विशेष संगत मालूम होता है। रक्षो-घ्नमंत्रोंके कारण वैदिक होनेसे अनादि कालका त्यौहार कहा जा सकता है और वसन्तोत्सवसे प्रारम्भ जाना जाता है। पूर्वके हिस्सेमें कुछ लोग इसको कृष्ण सम्बन्धी त्यौहार मानते हैं और होलिका पूतना है-यह सम्बन्ध लगाते हैं। राजपूतानेके कुछ लोग हिरण्यकशिपकी भगिनी और प्रह्लादकी घटनासे सम्बन्ध मानते हैं। महाराष्ट्र और कोंकणपट्टीके लोग भविष्यपुराणकी ढूंढ़ाके साथ सम्बन्ध लगाकर कहते हैं,—"पूर्व समयमें ढूँढ़ा नामकी राक्षसी छोटे छोटे अज्ञानी बालकोंको पीड़ा देने लगी, तब बीभत्स गालियाँ देकर और आग लगाकर उसको भगानेकी कल्पना की गई; अतएव वही परिपाटी स्मारकरूपसे आजतक विद्यमान है।" दक्षिणके लोग इस उत्सवको कामदहनका स्मारक मानकर कहते हैं,—"समाधियुक्त शिवके मनको पार्वतीपरिणयके निमित्त लगानेके वास्ते देवताओंने कामदेवको भेजा, कारण कि तारकासुरका वध बिना शिवपुत्रके होना अशक्य था, सो कामदेवने जब शिवको जागृत किया, तब कोपाविष्ट शिवने तृतीय नेत्रके द्वारा कामको भस्म किया, उस निमित्त ही होलिका त्यौहार है।" आजकल प्रायः सब देशोंमें इस त्यौहारको शूद्र लोग अधिकतासे पालते हैं, इससे मालूम होता है, कि जिस प्रकार ब्राह्मणोंका श्रावणी, क्षत्रियोंका दसहरा और वैश्योंका दीपावली उत्सव है, उसी प्रकार होली—यह शूद्रोंका है और रक्षोहनादि वैदिक विधिका संयोग पश्चात् हो गया है।

शुक्ल त्रयोदशीसे पौर्णिमा तक तीन चार दिन महाराष्ट्र एवं कर्नाटकमें भी खूब उत्सव मनाया जाता है। इस होलिकामें यह बड़े महत्त्वकी बात है; कि छोटेसे छोटा मनुष्य बड़ेसे बड़े मनुष्यपर गुलालादि लगा देता है और साल-

भरकी शत्रुता नष्ट होकर इस दिन एकता हो जाया करती है, एवं सालभरकी गमीओंका शोक भी आज ही समाप्त हो जाता है ।

उड़ीसा प्रान्तमें बंगालकी तरहसे ही श्रीकृष्णका दोलोत्सव मनाया जाता है, केवल होलिकादहनकी रीति उस देशमें नहीं है । वहाँ चैतन्य सम्प्रदायके लोगोंकी बहुत प्रबलता है; अतः इस सम्प्रदायके गोस्वामी या पंडित लोग भगवान् कृष्णकी मूर्तिको पालकीमें बिठलाकर बड़े ठाठबाटसे अपने भक्तोंके घर ले जाते हैं । पालकीके साथ गये हुए लोगोंकी घरवाला बड़ी खातिरदारी करता है, अबीर गुलाल डालकर अपना प्रेमव्यक्त करता है एवं ब्राह्मणादिको वस्त्र दक्षिणा भी देता है । वहाँ गोप लोगोंमें यह उत्सव प्रेक्षणीय होता है, कारण कि इस दिन वे लोग नवीन पोशाक धारण करते हैं और हिन्दुस्थानकी दिवालीके मुवाफिक अपने गाय ढोरोंका अनेक प्रकारसे शृंगार करते हैं । एक गोपको कृष्णकासा वेष बनाकर शेष सब ग्वालबाल बनकर बड़ा आनन्द करते हैं और गाँवमें घूमते हैं । इस प्रकार इन लोगोंके कितने ही दल होते हैं और प्रत्येक दलमें एक एक कृष्ण होता है ।

समस्त हिन्दुस्थानमें मथुरा और वृन्दावनकी होली सब स्थानोंसे अधिक प्रेक्षणीय होती है, जिसमें भी बरसाना और नन्दगाँवकी होली तो होली ही है । फाल्गुनके मासमें समस्त देशोंके लाखों यात्री व्रजमें आते हैं और सच्चे भगवद्भक्तोंको स्वर्गीय आनन्दका अनुभव भी होता है । बाह्य दृष्टिसे देखनेवाले लोगोंको, तो यहाँकी समस्त लीला शृंगारकी प्रतिमा अथवा कामस्थली दिखती है, परन्तु भीतरी दृष्टिसे देखनेवालेको साक्षात् ब्रह्मानन्दका ही आनन्द आता है । पाठकोंसे लेखकका अनुरोध है, कि कृपाकर जीवनमें एक बार तो व्रजमण्डलकी होलीको देखकर अनिर्वचनीय प्रेमका लाभ उठावें ।

राजपूताना, यू० पी० और सी० पी० आदि स्थानोंके ग्रामों या नगरोंमें एक एक स्थान ऐसा होता है, जहाँ नित्यप्रति रातके समय होलीके रसिया एकत्र होकर कुछ गाया करते हैं । इनको लोग 'हुरयो' कहते हैं और रातके समय ये लोग चुराकर लकड़ी, कंडा आदि लेजाकर जहाँ होलिका डांड़ा गड़ा होता है, वहां रखते हैं और पौर्णिमाके दिन जलाकर भस्म करते हैं ।

बंबई इलाकेमें स्थानभेदके कारण अनेक प्रकारसे होली मनानेका प्रचार है और दिन भी नियमित नहीं है । किसी स्थानमें फाल्गुन शुक्ला ६ से पौर्णिमा तक और कहीं पौर्णिमासे चैत्रीअमावस तक प्रचार पाया जाता है, परन्तु इस

महोत्सवका प्रधान अंग होलिकादहन-यह तो प्रायः सर्वत्र फाल्गुन पौर्णिमाको ही किया जाता है। खेद है, कि इस महोत्सवमें प्रायः सब देशोंमें अफीम, गांजा, भंग, काफी, माजूम, गुलकन्द और सबसे अधिक देशको नष्ट करनेवाली सुराका भी सेवन किया जाता है। बंबईके आस-पास तो होलीके चार दिन प्रथमसे ही प्रत्येक घरके सामने एक छोटी सी होलिकाको प्रतिदिन दहन किया जाता है और पौर्णिमाके दूसरे दिन प्रातःकाल उसी अग्निमें पानी गरम करके और उसीसे स्नान कर, फिर होलिका पूजन किया जाता है तथा प्रतिपदाको भी त्यौहार मानकर लोग मिष्टान्न भोजन करके देव दर्शनको जाते हैं।

इधर राजपूताना, यू० पी० और पंजाब आदिमें तो इस प्रतिपदाको 'धूलएडी' कहते हैं और प्रातःकालसे लोग धूलकी पोटलियाँ बनाकर, मार्गोंका अशुद्ध कीचड़ लेकर एवं काला रंग आदि बनाकर मार्गमें जाते हुए या घरपर बैठे हुए लोगोंपर फेंकते हैं। किसी किसी स्थानके लोग तो यहां तक उपद्रव करते हैं, कि साल भरके नारदानोंकी गन्दगीको ले लेकर मनुष्योंपर डालते हैं और इस प्रकारसे ग्राम सफाई करके वैकुण्ठके आनन्दको अनुभव करते हैं। परन्तु पाठकवर्ग! परमात्माकी असीम कृपासे अब इस महा घृणित कुप्रथाका बड़े शहरोंसे प्रायः कालामुख होता जाता है, किन्तु कलकत्ताके मारवाड़ी समाजमें अब भी कुछ कुछ प्रचार है और पंजाबके बहुधा नगरोंमें तो दो तीन दिन तक भले मनुष्योंको घरसे निकलना भी कठिन हो जाता है। सुशिक्षित लोगोंका कर्तव्य है, कि इस महा घृणित प्रथाको बन्द करनेका अवश्य प्रयत्न करें और अशिक्षित लोग इस विषयमें उनकी मदद करें, जिससे देशका कल्याण हो।

इस विषयमें मद्रास प्रान्तकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, कारण कि वहाँ होलिकाका फिजूल समारम्भ न होकर शिवालयके सामने शान्तिपूर्वक होलिका दहन किया जाता है। होली हो जानेके बाद फाल्गुनोत्सवमें एक और स्वर्गीय रीतिका भी कहीं कहीं दर्शन होता है। वह यह,—"गोमान्तक और दक्षिणकी कोंकणपट्टीमें तासे, ढोल, सहनाई आदि बाजे और रण्डियोंका नाच करावे सब ग्रामके लोग घर घर जाते हैं और यजमानके घरपर कुछ समय तक खूब गाना बजाना होता रहता है। कुछ काल बाद जब इस अलौकिक आनन्दका अवसान होता है, तब यजमान एक थारमें रुपया धर-कर आगत मण्डलीका स्वागत करता है।" यह पैशाचिक व्यवहार कुछ कुछ

ग्वालियरके राज्य एवं पूर्वके कुछ भागमें भी पाया जाता है और यहाँ वेश्याओं-की भी नानी वेड़नियोंका प्रचार है। यदि यह भी कह दें कि, इस प्रदेशको विड़नियोंने ही समाप्त कर दिया तो भी अत्युक्ति नहीं है, परन्तु अब इस प्रथाका समूल उन्मूलन हो रहा है—यह बड़े हर्षकी बात है।

गोवे और कर्नाटकमें नीचेके लोगोंमें वहुत चल चल रहती है और एक आदमीके लिये सफेद मालाको पहना कर स्वांग वनाकर टीपरी खेलको खेलते हुए घूमते हैं, सो कभी कभी तो इन लोगोंके साथ पचास पचासकी संख्यामें घुमटी और घुमट नामके विलक्षण वाजे हो जाते हैं और सारंगी, तवला एवं सहनाई आदि वाजोंके एक स्वर होकर वजनेसे कुछ विचित्रता तो आही जाती है, परन्तु उस स्वरसे मिलकर जव नृत्य करती हुई वारांगनाओंके पैरोंकी आवाज इन वाजोंका साथ देती है, तव तो वेभानसे हो जाते हैं। यहां तक, कि जव समस्त वाजोंसे एवँ पादतलसे मिलकर वारांँगना अपनी मधुरी आवाज लगाती हैं, तव ये लोग एतदर्थं ही हमारा जन्म था—यह मानकर कृत-कृत्यसे हो जाते हैं।

विशेष शोक तो यह है, कि समस्त भारतमें इन दिनों स्त्रियाँ भी होलीके त्योहारोंको मनाती हुई लोकलज्जा एवं कुल-मर्यादाका उल्लङ्घन कर जाती हैं। "फागका रसिया और और विवाहकी गोरी" यह शब्द तो इस भारतकी तपो-भूमिका भूषण ही वन गया है और इनही दो कारणोंसे भारत व्यभिचारका अड्डा भी वन वैठा है।

कर्नल टाड साहवने राजपूतानेकी रीति भांतिका वर्णन करते हुए इस होलीके प्रसंगमें कुछ निदर्शन उदयपुर राज्यका किया है। वे लिखते हैं,—"वसन्त पंचमीसे होलिकी पौर्णिमा तक चालीस रोजके समयमें उदयपुरके राजपूत लोग जो जीमें आता है वह करते हैं। श्रेष्ठ तथा कनिष्ठ दर्जेके लोग वीभत्स गायन करते हुए इधर उधर फिरते हैं और भाँग, अफीम, अमली, मिठाई खाकर एवं सुराका पान करके उन्मत्त हो जाते हैं। छोटे दर्जेके लोग प्रायः होलीके प्रारम्भसे रास्तेमें घूमकर लोगोंपर लालरंग एवं गुलाल डालते हैं, जिससे वहाँके लोगोंकी पोशाकें लालवर्णकी रहती हैं। अन्तिम दिन होली-की सवारी एक घोड़ेपर निकलती है, उस समय एक दूसरेपर अवीर, गुलाल और कुमकुमाँ फेंकते हैं और इसी दिन हिन्दवाँ सूर्य्य मेवाड़के महाराणा साहव एक भव्य तंवूमें अपने ताजीमी सरदारोंके सहित एक घंटे तक होलीके गायनको

सुनते हैं और बादमें सरदारोंको मिजमानी दी जाती है। भोजनके बाद एक नारियल एवं एक लकड़ीकी तलवार भी दी जाती है, (लकड़ीकी तलवार और लकड़ीका खाण्डा तथा लकड़ी या गोबरकी ढालका प्रचार प्रायः सब जगह है।) दूसरे दिन पहर भर दिन चढ़नेके बाद सब मण्डलीके लोग अपने अपने घरोंपर जाकर, स्नानकर और नवीन पोशाक पहन कर अपने अपने हाकिमोंको नजराना करते हैं।

बंगालका नवाब सिराजुद्दौला, होलीके दिनोंमें अपने सरदारोंके पास झूठे फरमान भेजा करता था और सरदारोंके तामील करनेपर उनकी मूर्खताका उपहास किया करता था। यह तरकीब अंगरेजी "एप्रिल फूल" से सम्बन्ध रखती है। शाहजी भोंसले पांच वर्षके थे, जब रंग-पञ्चमीके दर्बारमें लुकजी जाधवजीकी छोटीसी लड़कीने भोंसलेपर गुलाल डाल दिया था, तो इसका परिणाम यह हुआ कि, यही जिजाबाई नाम्नी कन्या शाहजी भोंसलेकी पत्नी हुई और इसीके गर्भसे भारतजननीके अमूल्य रत्न शिवाजी उत्पन्न हुए। वास्तवमें यही सच्ची होली थी, कारण कि इस होलीने एक होलीका सच्चा रसिया उत्पन्न किया। परमात्मा इसी प्रकारके अनेक होलीके रसिया उत्पन्न करे, जिससे देशका मंगल हो और सूर-प्रसविनी भारतमाताका यथार्थ नाम हो। इससे जाना जाता है कि, मराठोंके शासनकालमें भी होलीका त्यौहार बड़े ठाठसे मनाया जाता था। पाठकवर्ग! आपने जाना होगा, कि हिमालयसे लगाकर कन्याकुमारी तक यह उत्सव किसी न किसी रूपसे मनाया जाता है।

शिक्षा।

इस होलिका त्यौहारके शास्त्रीय एवं लौकिक स्वरूपपर जब विचार किया जाता है, तो हम तीन बातोंपर पहुंचते हैं,--(१) इसके शास्त्रीय कथा-भागसे शिक्षा लेना, (२) लौकिकभागमें जो अनिष्ट प्रकार हैं, उनको अन्याय एवं अनीतिमूलक समझकर छोड़ना और (३) लौकिकभागमेंके न्यायसंगत एवं श्रेष्ठ प्रकारको ग्रहण करके होलीके परम प्रसिद्ध त्यौहारको मानवीजीवन-का आवश्यक भाग बनाना।"

कथाभागसे शिक्षा।

(१)

रक्षोघ्न मंत्रोंके द्वारा होलिकादहन अहकूटादि राक्षसोंके निवारणार्थ है; अतः इसको अवश्य करना चाहिये और साथ ही यह भी स्मरण रखना

चाहिये, कि बाहरके राक्षसोंको तो हम मंत्रों द्वारा भगा दें और कभी हम स्वयं वैसे आचरण न करने लगजांय, नहीं तो बाहरका भगाया एक और हम हो गये तेंतीस करोड़। वाल्मीकीय रामायणमें राक्षसोंके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं :—

अग्निहोत्रश्च वेदाश्च राक्षसानां गृहे गृहे।
क्षमा सत्यं दयादानं तपस्तेषां न विद्यते॥

सीताकी खबर लानेको गये हुए हनूमानजीने जब लंकाके रहनेवाले राक्षसोंको देखा, तो मालूम हुआ, कि वहांके अधिवासियोंमें अग्निहोत्र और वेदोंके पठन-पाठनका अच्छा प्रचार है। तो मनमें शंका हुई, कि इनको राक्षस क्यों कहा जाता है? परन्तु अल्पकालके अनुसन्धानसे ही विदित हो गया, कि इन लोगोंमें वेद एवं अग्निहोत्र होनेपर भी क्षमा, सत्य, दया, दान और तप ये गुण नहीं हैं और बिना इन गुणोंके न तो सोसाइटीमें शान्तिकी स्थापना होती न परलोकका सुधार होता, किन्तु "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धान्त जो कीट और पशुओंमें है, वही इनमें भी चल रहाहै; अतः ये राक्षस हैं।

पाठकवर्ग! आपने ध्यान दिया होगा,—कि 'राक्षस' यह शब्द किसी आकृतिविशेषसे सम्बन्ध न रखकर गुणोंसे रखता है। एक मनुष्य आकृतिसे सर्वथा मनुष्य है, परन्तु आचरण राक्षसोंकेसे हैं। वह यद्यपि राक्षस कुलोत्पन्न नहीं है, तथापि गुणोंके कारण इस प्रकारका नर पशु और राक्षस ही कहलाने-का अधिकारी है। अतः बाहिरी अहकूटादिकोंसे बचते हुए हम भारतीयोंको राक्षसी गुणोंसे अलग रहकर सदाचारी बननेकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है।

(२)

कथाभागसे यह भी विदित होता है, कि होलिका—यह भगवान् कृष्ण-का दोलोत्सव है। अतः हम सब भारतीयोंका कर्तव्य है, कि इस समय भगवान् कृष्णचन्द्रके दोलोत्सवको मनाते हुए ब्रह्मानन्दमें मग्न हो जाँय और भगवान् कृष्ण मनुष्य थे; इस दुष्टभावको अन्तःकरणसे देश निकाला देकर उनको सर्वव्यापी ब्रह्म मानलें। जिसका फल यह होगा, कि फिर उस सर्व-व्यापी कृष्णका पालना लकड़ीका छोटा सा नहीं रहेगा, बल्कि यह समस्त भारत ही उस प्यारेका दोल (पालना) होगा और आप तथा हम श्रीकृष्णको भारतरूप पालनामें झुलाकर साथ साथमें गीता कर्मयोगके राष्ट्रीयगीतको

गावेंगे । स्मरण रहे, कि इस सच्चे दोलोत्सवको हम भूल गये तो याद रखिये, कि फिर यह हमारी तरणी इसी स्थानपर नष्ट हो जायगी और हम भी उसीमें डूब जायँगे ; अतः आओ ! भारतके सपूतो ! आओ ! ! आप-हम सब मिलकर गीतारूप राष्ट्रीयगीतको गाकर आदर्श-रूप कृष्णचन्द्रका दोलोत्सव मनावें ।

जो लोग काष्ठ या धातुनिर्मित पालनेमें भगवान् कृष्णकी छोटीसी मूर्तिको रखकर दोलोत्सव मनाते हैं, उनसे हमको घृणा नहीं करनी चाहिये, कारण कि छोटा पलना एवं छोटी मूर्ति होनेपर भी भाव उनका वही है जो आपका, केवल प्रक्रियाका भेद है । अतः हिलमिलकर दोलोत्सवके उत्सवको मनाना चाहिये ।

(३)

शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार होलिकाके दिन मन्वादि तिथि भी होती है, और ब्रह्माजीके एक दिनमें होनेवाले चतुर्दश मनुओंमेंसे एक मनुकी उत्पत्तिका काल भी इसको कह सकते हैं । सम्भव है, कि इसी लिये होलिकाको मनानेकी परिपाटी चली हो । यदि मन्वादिके कारणसे भी चली हो, तो भी यह बहुत बड़े महत्त्वका त्यौहार है, कारण कि मनुका अधिकार एक चक्रवर्ती सम्राट्से कहीं लाखों गुना अधिक है । मामूली राजाओंसे मण्डलीक राजाका अधिकारक्षेत्र अधिक होता है और मण्डलीकसे चक्रवर्तीका एवं चक्रवर्तीसे मनुका और भी विस्तृत होता है ।

राजाओंमें "हिन्दवाँ सूर्य्य" महाराणा प्रतापसिंहके जन्म-दिनको धन्यवाद न देने वाला कौन हिन्दू सन्तान होगा और मण्डलीक शिवाजी महाराजके जन्मदिनसे कौन हिन्दुस्तानी प्रसन्न न होगा, तथा इसी प्रकार चक्रवर्ती महाराज दशरथकी जयन्तीको कौन भारतीय आदरकी दृष्टिसे न देखेगा । जब राजा, मण्डलीक और चक्रवर्ती—इनके जन्मदिन भी देशमें बड़े आनन्दसे मनाये जाते हैं, तो मनुके अधिकारकी प्रबलताको देख कर मन्वादि तिथिकी गुण-गरिमाको पाठक स्वयं ही विचार लें । चतुर्दश मनु सदैव प्रजावत्सल एवं धर्मके आदर्श होते हैं । राजा, मण्डलीक और चक्रवर्ती—ये तो स्वपुण्यार्जित फलसे संसारमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु मनु—यह स्वकर्मार्जित पुण्योंके प्रभावसे नहीं जन्मते, किन्तु समष्टि प्रजाके पुण्यकर्मसे जन्म लेते हैं । अतः उनके जन्मोत्सवको मनाना मानो समष्टि प्रजाके शुभ कर्मोंको जागृत करना है और आगामीके लिये प्रजाके पुण्यसे एक महापुरुषके आगमनका निमन्त्रण

देना है। अतः यदि होली मन्वादि तिथि भी है, तो भी बड़े उल्लाससे मनानेके योग्य है।

(४)

विगत सम्वत्सरकी समाप्ति और आगामीका प्रारम्भ होनेसे यह उत्सव कालिक है—यह भी शास्त्रोंका मत है। यदि यह ठीक हो, तो भी इस त्यौहारको मनानेकी बड़ी भारी आवश्यकता है। प्रति वर्ष मनुष्य अपनी अपनी जन्मतिथिका महोत्सव जिस हेतुसे मनाते हैं, वही हेतु इसमें भी है। अन्तर इतना है कि, अपनी अपनी जन्मतिथि मनाना यह व्यष्टिके कल्याणके लिये है और सम्वत्सर-प्रारम्भका महोत्सव समष्टिके कल्याण और परोपकारार्थ है। अथवा यों कहो, कि प्राथमिक उत्सवका प्रवाह नहरमें जाकर मिलता है और दूसरे उत्सवका प्रवाह भगवती गंगामें; परन्तु इस उत्सवमें होलीको मनाते हुए यह स्मरण रखनेकी बहुत आवश्यकता है, कि अपने देश और जातिके कल्याणार्थ हमारे हाथसे गत वर्षमें कितने धर्मकार्य हुए और आगेको किन किन कार्योंके करनेकी आवश्यकता है।

(५)

ऋतुराज-वसन्तका हमारे भारतमें कितना महत्त्व है, इसके कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है, कारण कि छहों ऋतुओंमेंसे वसन्तको ही ऋतुराजकी उपाधिसे विभूषित किया गया है। मनुष्योंका स्वास्थ्य देशकी प्रकृतिके स्वास्थ्यसे विशेष सम्बन्ध रखता है। यों तो बारह मास ही नेचर किसी विशेष नियमको लेकर अन्तर्जगत्‌का कार्य किया करती है, परन्तु अन्य ऋतुओंमें अपनी चारों तरफकी परिस्थितियोंके कारण वह अपने भव्य स्वरूपके प्रकाश करनेमें कुण्ठित रहती है, किन्तु उसको अपने सुखमय स्वरूप-विकाशका यही वसन्तऋतु अच्छा साधन है। वसन्तऋतुमें मनुष्योंको ही आनन्द होता है, यही नहीं, किन्तु पशु, पक्षी और कीट पतङ्ग सबके उत्साहवर्द्धनका काल है। और तो क्या! परन्तु वृक्षोंके उल्लासका भी यही काल है। ऐसे समयपर यदि इस सुखका प्रभाव जगत्‌के अधिदैवस्वरूपपर न पड़े, तो यह कितने खेदकी बात हो। इसी कारण भारतकी प्राचीन पद्धति वसन्तागमनमें देवोंके निमित्त एक बहुत बड़े समष्टि यज्ञका पता देती है, जिसका स्मरण हमको होलिका परसे होता है।

(६)

भविष्यपुराणके आधारपर ढूँढानामक राक्षसीके दमनार्थ होलिका प्रज्वलन है—यह पाया जाता है। दक्षिण देशमें ढूँढा स्वतन्त्र राक्षसिनी मानी

जाती है, परन्तु अन्य देशोंमें इसी ढूँढाको प्रह्लादकी फुआ कहा जाता है। यदि यह बात ठीक है, तो इसमें सन्देह नहीं, कि यह उत्सव बड़े महत्त्वका है, कारण कि भक्तराज प्रह्लादको अनीतिके वश होकर और पूर्ण ब्रह्मके नियमकी अवज्ञा कर जिस ढुण्ढाने जलाना चाहा और आप ही जलकर भस्म हो गयी,—यह परम कारुणिक प्रभुके नियमका जाज्वल्यमान उदाहरण हमारे सामने प्रति-वर्ष रहना चाहिये; जिससे "लाठी जिसकी भैंस" कहनेवाले जड़वादियोंके सामने "अन्यके लिये गड्ढा खोदने वाला खाईंमें गिरता है" यह शब्द अङ्कित रहे। साथ ही साथ एक अत्यन्त प्रभावशाली अन्यायी राजाके द्वारा अनेक उपाय करनेपर भी सत्याग्रही बालक प्रह्लादके अटल प्रतिज्ञ रहनेका भी स्मारक रहे।

(७)

दक्षिण देशके कुछ भागमें कामदहन मूलक भी इसको माना जाता है। यदि यह बात समूल हो, तो भी होलिकादहन बड़ा प्रयोजनीय त्यौहार है, कारण कि संसारके समस्त पापोंका मूल-स्थान काम ही है। गीतामें जहां श्रीकृष्णने अर्जुनको यह समझाया है, कि जीव यह मेरा ही चिदंश है, तब हाथ जोड़कर अर्जुनने प्रश्न किया है:—

अथ केन प्रयुक्तोयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

"भगवन्! चिदंश होनेसे यह जीव तो पापमें प्रवृत्त नहीं हो सकता, फिर इसके न चाहनेपर भी कौन ऐसी शक्ति है, जो अपने बलसे ज़बरदस्ती इस चिदंशको पापकी तरफ लगा देती है?" उसका उत्तर भगवान् कृष्णने यह दिया है:—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

अर्जुन! जीव तो निःसन्देह चिदंश है, परन्तु जिस कलेवरमें उसका निवास है, वह शरीर रजोगुणका बना हुआ है और रजोगुणका पुत्र काम है, जो महाशन अर्थात् बहुत खाने वाला है (संसार भरकी अभिलाषाओंका केन्द्र काम ही है, इस कारण 'महाशन' कहा है)। क्रोध यह काम ही है, कारण कि जब कामसे किसी वस्तुके लेनेकी अभिलाषा होती है और वह मिलती नहीं, तब वही काम, क्रोधके रूपमें परिणत हो जाता है। इस लिये यह काम ही चिदंशको पापमें फँसाने वाला है।

कदाचित् यह कहा जाय ! कि काम यह प्राकृतिक पदार्थ और जीव चिदंश होनेसे दोनोंमें सम्बन्ध ही क्या है, जिससे कि जीव कामके गुणोंको अपने मानकर पापमें प्रवृत्त होता है ? यह ठीक नहीं, कारण कि काम और चिदंशमें व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है, जो जड़ और चैतन्यका हो सकता है। काम व्यापक है, सर्व शरीर गत होनेसे और चिदंश व्याप्य है, अंश होनेसे एवं शरीरके एक देश अन्तःकरणमें रहनेसे। एक कुण्डका जल व्यापक है, सब कुण्डमें भरा होनेसे और सूर्य व्याप्य है, कुण्डके एक देशमें होनेसे। यद्यपि सूर्यमें मलिन और चंचलादि दोषोंका अभाव है, परन्तु कुण्डगत व्यापक जलके मलिन और चंचलादि गुणोंका आरोप सूर्यबिम्बपर होता है। इसी प्रकार यद्यपि चिदंश शुद्ध कल्याण-गुण-गणोंसे युक्त है और उसमें पापका सर्वथा अभाव है, तथापि व्यापक कामके कारण व्याप्य चिदंशमें प्रतीति होती है। अतः कामको अपना परम शत्रु जानकर इसका निग्रह करना मनुष्यका मुख्य कार्य है।

पाठकवर्ग ! भगवान्‌की उपर्युक्त शिक्षासे आपने जाना होगा, कि इस संसारके सब अनर्थोंका उपादान कारण काम ही है, इसी लिये शिवजीने हमको यह उपदेश दिया है,—"जो मनुष्य नरका नारायण बननेकी अभिलाषा करे, वह प्रथम कामपर विजय प्राप्त करे।" इस सदुपदेशका उपदेशकरूप होलीके त्यौहारका हमको अन्तःकरणपूर्वक स्वागत करना चाहिये।

यहां तक होलीके कथाभागसे शिक्षा लेनेकी बात कही गयी अब होलीके अनिष्ट और देशनाशक—प्रकारोंको बतलाया जाता है, जिनसे बुद्धिमान् एवं अबुद्धिमान् सबको लाभ लेना चाहिये।

होलीके त्याज्य विषय।

१—चोरी।

प्रायः सब देशोंमें होलीके दहनार्थ जो काष्ठ और कपड़ोंका संग्रह किया जाता है, वह तो शास्त्रीय पद्धति है, परन्तु आजकल चोरी करके उपर्युक्त सामान लाया जाता है—यह शास्त्रसम्मत नहीं। या तो होलीके पास आनेवाले लोगोंको अपने अपने घरोंसे कुछ कुछ ईंधन लाना चाहिये, अथवा सबलोग चन्दा करके कुछ द्रव्य एकत्र कर और उससे ईंधन खरीद करके संचय करना चाहिये। यद्यपि होलिकाके निमित्त काष्ठादिकी चोरीमें चोरीका भाव तो नहीं रहता, परन्तु कालान्तरमें क्रिया, भावको भी उत्पन्न कर सकती है, इस कारण

दूषित क्रियासे सदैव मनुष्यको बचना चाहिये। पूर्वमें यह चोरी जलानेयोग्य काष्ठकी ही होती होगी, परन्तु आजकल तो किसी किसी जगह इसने बड़ा भयानकरूप धारण किया है। अर्थात्—अनेक प्रकारके अच्छे कार्योंमें आनेवाले काष्ठ भी होलीमें डाले जाते हैं और यहां तक कि, मकानोंके सुन्दर किवाड़ों और अच्छे अच्छे पलंगोंको भी होलीमें डाला जाता है। और भी अनेक अनिष्ट परिणाम इसके होने लगे हैं, यहां तक कि, इस प्रकारके लोगोंपर मुकद्दमा चलकर भले आदमियोंके लड़कोंको सजायें भी मिल चुकी हैं। इस कारण भारतीयोंको इस प्रकारके अनिष्टकारक कार्योंसे सदैव बचना चाहिये।

२—अश्लील-शब्दोच्चारण।

जिस देशमें अहर्निश वेदोंकी पवित्र ऋचाओंका घोष होता रहता था और उन पवित्र भावोंसे आकाशमें पवित्र परमाणुओंका संग्रह रहता था। दैवात् उस समय कोई असभ्य देशका रहने वाला भारतमें आगया, तो वे पवित्र भावोंके परमाणु उसको भी सभ्य बना देते थे। आज इन अश्लील गायनोंने उन्ही आकाशके पवित्र परमाणुओंको भी अश्लील और अपवित्र बना दिया है; अतः यहां आने वाला सभ्य भी असभ्य बन जाता है। छोटे छोटे ग्रामोंके लोग और भी अधिक अश्लील शब्दोंका व्यवहार करते हैं। इन लोगोंको यह नहीं सूझता, कि प्रथम तो हम लोगोंकी भगिनी-मातायें ही इस ग्राममें रहती हैं और द्वितीय धर्मशास्त्रोंके अनुसार एवं प्राचीन व्यवहारसे उस ग्राममें रहनेवाली सभी स्त्रियाँ माता, भगिनी और कन्याओंके समान लगती हैं। उनके सामने असभ्य शब्दोंका उच्चारण करना, मानों व्यभिचारकी प्रथम कक्षामें प्रवेश करके अपने आपको घोर पापी बना लेना है। विचार करके देखा जाय, तो होनेवाली क्रिया प्रथम भावमें, फिर इच्छामें और पुनः वाणीमें आकर क्रियारूपमें आती है; अतः वाणीमें आनेके कारण—यह एक प्रकारका मैथुन ही हो जाता है। शिव शिव हिन्दूओ! क्या आज आपकी यही सभ्यता है?

३—वीभत्स आकृतियोंका बनाना अथवा वस्त्रोंपर छापना।

आजकल प्रायः इस अमानुषीय प्रथाका भी भारतके किसी किसी प्रान्तमें प्रचार पाया जाता है। जो हिन्दुस्थान किसी समय अखिल विद्या एवं शुभ गुणोंका भण्डार था, वह देखते देखते अविद्याका आगार एवं दुर्गुणोंका भण्डार बन गया। जिन महर्षियोंने अपनी पवित्र प्रतिभासे अष्टाध्यायी और महाभाष्य जैसे ग्रन्थरत्नोंका आविष्कार किया था; हा, कष्ट! उनकी सन्तान

आज इस प्रकारके असभ्य तथा लज्जाप्रद दुर्गुणोंके आविष्कार करनेवाली और अन्य देशीय सभ्य सोसाइटीके सामने काला मुख करानेवाली प्रसिद्ध हो रही है।

४—नालियोंका अपवित्र पानी।

समयके प्रभावसे हिन्दुओंकी आन्तरिक पवित्रता तो नष्ट होही चुकी थी, परन्तु बाह्य पवित्रतापर हमको इस रही सही हालतमें भी गुमान था। किन्तु जब हम यह देखते हैं, कि नालियोंका वह अपवित्र सड़ा जल कि जिसके पास मनुष्य तो क्या, परन्तु शूकर भी जाना नहीं चाहता है—होलीका त्यौहार आतेही हिनाई इतरकी तरह फौरन पवित्रताकी डींग मारनेवाले हिन्दुओंके शरीर एवं वस्त्रोंपर छिड़का जाता है। ऐसी दशामें शोक ही नहीं, किन्तु शोकसागरमें निमग्न हो जाना पड़ता है। हे हिन्दु जाति! तेरे भूत कालीन आचरणको दुराचरणमें परिणत हुआ देखकर क्या तुझे कभी रोना नहीं आता?

५—नशाओंका प्रचार।

जिस देशमें केवल ब्रह्मविद्याका ही नशा रहता था, आज वहाँके लोग गंजेड़ी, भंगेड़ी, माजूमी, अफीमची और शराबीकी शुभ उपाधियोंको लेकर अपनेको कृत-कृत्य मान रहे हों, इससे विशेष क्या दुर्भाग्य होगा? एक ही बेलके तूमड़ा होनेसे यद्यपि उपर्युक्त सब ही नशे मनुष्यके अमूल्य जीवनको पतित बनानेवाले हैं, परन्तु इन सबमें मदिरा सबसे भयानक नशा है, इसी कारण मुख्य धर्मशास्त्रकार मनुजीने मनुस्मृतिके ११वें अध्यायमें इसकी निन्दा करते हुए इस प्रकार लिखा है:—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैः सह॥ ५४॥
ब्राह्मणस्य रुजः कृत्या घ्रातिरघ्रेय मद्ययोः।
जैह्म्यञ्च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम्॥ ६७॥
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिबेत्।
तया सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः॥ ९०॥
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मण राजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥ ९३॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरा संस्पृष्टमेव च।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥ १५०॥

ब्राह्मणकी हत्या, सुराका पान, सुवर्णकी चोरी और गुरु-स्त्रीसे गमन—ये चारों महा पातक हैं, इनके करनेवाले महापातकी हैं और इन चारोंके साथ संसर्ग रखनेवाला भी महापातकी है। (इस श्लोकमें मनुजीने मद्यपानको ब्रह्महत्या और गुरुकी स्त्रीके साथ दुष्कर्म करनेके समान महापातक कहा है और ऐसे लोगोंके साथ रहन-सहन करनेवाले पुरुषको भी महापातकी बतलाया है। इससे अधिक पाप क्या होगा?) श्लोक ६७ में मद्यके सूँघने मात्रसे ही जातिभ्रष्ट होना बतलाया है, फिर पीना तो दूरकी बात है और ९० श्लोकमें लिखा है,—"ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यदि मोहसे भी सुराको पी ले, तो सुराको अग्निके समान तपाकर पिये, जिससे शरीर छूट जाय, तब मद्यके पापसे छूटता है।" यहां मरणरूप प्रायश्चित्तसे मदिराको महापातक बतलाया है। ९३ श्लोकमें सुराको सर्व अन्नोंका मल बतलाया है और मल ही पाप है, इस कारण मनुष्योंको पीनेसे घोर निषेध किया। १५० श्लोकमें अज्ञानसे विष्ठा और मूत्रका भोजन तथा पान और सुरासे छुई वस्तुका भोजन-पान बराबर बतलाकर पुनः संस्कार होनेसे शुद्धि होती है यह माना है, फिर ज्ञानपूर्वकका तो मरण प्रायश्चित्त ठीक ही है।

मनुजी ही नहीं, किन्तु ऐसा कोई भी धर्मग्रंथ न मिलेगा, जिसमें सुरापानका निषेध न हो। तथापि खेद है, कि सुराका प्रचार घटता नहीं, किन्तु अधिकाधिक बढ़ता ही जाता है। यह सब अज्ञान एवं भ्रमका कारण है। विचारदृष्टिसे देखनेपर सुरासे हानिके सिवाय लाभ कुछ भी नहीं है, परन्तु न जाने हमारे देशके लोगोंने इसे क्यों गलेका हार बना लिया है। किसी भी कामके करनेसे प्रथम उसके हानिलाभपर विचार कर लेना ही मनुष्यका कर्तव्य है और इस प्रकारके विचारको न करके किसी कार्यमें सहसा प्रवृत्त हो जाना यह पशुका लक्षण है। खेद है, कि आर्य्य होकर भी हम मनुष्यके कर्तव्योंसे दूर हटते हैं और पाशविक कर्तव्योंके समीप जाते हैं। इससे सन्देह होता है, कि क्या मिस्टर डारविनके कथनानुसार हमारी प्रथमकी स्टेज् वानर ही तो नहीं है? परन्तु यह सम्भव नहीं, कारण कि डारविन भी उत्क्रान्तिका ही पक्षपाती है, अपक्रान्तिका नहीं। जो सृष्टि एक स्टेज ऊपर चढ़ गई, वह फिर पतित होकर पिछली स्टेज़पर नहीं आ सकती।

पाठकवर्ग! आप कृपाकर इस सुराके न पीनेसे क्या लाभ और पीनेसे क्या हानि है, इसपर विचार करें।

मद्यपान न करनेवाला।	मद्यपान करनेवाला।
१—होशमें रहता है।	बेहोश हो जाता है।
२—मार्गमें ठीक चलता है।	मार्गमें ठोकरें खाता है।
३—मर्यादामें रहता है।	मर्यादाके बाहर हो जाता है।
४—व्यवहार ठीक करता है।	व्यवहारको मिट्टी कर डालता है।
५—विचारवान् होता है।	अत्यन्त अविचारी होता है।
६—कुटुम्बको सम्हालता है।	आप डूबकर कुटुम्बको डुबोता है।
७—सबका प्यारा होता है।	घरको भी अखरता है।
८—लोग विश्वास करते हैं।	कोई छदाम भर भी विश्वास नहीं करता।
९—बुरे कर्ममें लज्जा करता है।	किसी प्रकारकी भी लज्जा नहीं होती।
१०—सज्जन-संगका पात्र होता है।	साधारण मनुष्य भी अपने पास नहीं बैठने देता।
११—मुख सुगन्धिवाला होता है।	मुख दुर्गन्धिवाला और कुत्ते चाटते हैं।
१२—धर्मसे सद्गति पाता है।	अधर्मसे दुर्गतिमें जाता है।

पाठकगण! इस थोड़ीसी तालिकामें ही मद्यके गुणावगुणका दिग्दर्शन कराया गया है, जिससे मनुष्य सावधान हो जाय। यदि सब लिखता, तो एक वृहदाकार ग्रन्थ बन जाता, परन्तु उस प्रकारका यहां सुभीता नहीं है। कहनेका तात्पर्य्य यह है, कि होलिका जैसे पवित्र त्यौहारमेंसे इस प्रकारके देशध्वंसक दोषोंको निकालकर देशहितकर शुभ नियमोंके साथ उसको मनाना चाहिये, जिससे हिन्दुसोसाइटी सभ्योंकी गणनामें हो। कोई कोई लिखे पढ़े महाशय भी यह कह बैठते हैं, कि योरपकी सभ्य सोसाइटीमें भी तो "अप्रिल-फूल" होता है, क्या आप उतना करनेके लिये भी मना करते हैं? परन्तु उन सज्जनोंको विचारना चाहिये कि, जन्मके अमीर और तीन दिनके बनावटी अमीरमें जितना अन्तर होता है, उतना ही अन्तर हिन्दु और योरपियनोंमें है। कारण, कि हिन्दुओंकी सभ्यता जितने युगोंकी है, उसके मुकाबलेमें उतने दिनोंकी भी योरपकी सभ्यता नहीं है। अतः तीन दिनके सभ्योंमें असभ्यताका लेश रहे तो बुराई नहीं, परन्तु जिसको अपनी अति

प्राचीन सभ्यताका घमण्ड हो, उसमें असभ्यताका लेश रहना भी कलंक सूचक है । इस लिये हमको पूर्ण सभ्य बननेकी आवश्यकता है ।

लौकिक स्वरूपका ग्राह्य विषय ।

पूर्व व्यवस्थाके हिसाबसे यह होलिका त्यौहार शूद्र वर्णका विदित होता है, परन्तु साथ-साथ ही हमारे पूर्वजोंकी अद्भुत शक्ति एवं उदारताका परिचय भी मिलता है, कि वे लोग नाममात्रको वर्गोंके चार भेद रखकर वैदिक नियमोंको निभाते हुए, संसारके व्यवहारोंमें मन-वचनसे एक होकर सोना और सुहागेकी भाँति एकताके सूत्रमें गुथे हुए रहते थे तथा एक दूसरेका उपकार करनेमें तत्पर रहते थे । यही कारण है, कि चारों वर्णोंके पृथक् पृथक् त्यौहारोंमें चारों वर्णोंके सभी लोग सम्मिलित हुआ करते थे । यहाँतक, कि होलीके दिन अन्त्यज-स्पर्शका भी उन्होंने एक नियम रक्खा था। गरीब तथा शूद्र लोगोंके पास गुलाल न होती, तो सुलभ धूलको ही वे लोग गुलाल-अबीरसे अधिक मानते थे और एक शुद्ध सदाचारी, स्वयंपाकी, वेदोंका पारंगत, ब्राह्मण भी होलीके दिन अपने दीन हीन,अति अपवित्र और देश भाई—अन्त्यजसे भी दिल खोलकर तथा बाहु मिलाकर मिलता था । यही कारण था, कि उस समय द्विज शूद्रोंके लिये और शूद्र द्विजोंके लिये काम पड़नेपर प्राणोंको न्योछावर करनेके लिये तत्पर रहते थे । जब देशके लोगोंमें परस्पर इतना मेल रहे, तो फिर किन विदेशीकी सामर्थ्य हो, कि वह हमको परतन्त्रताके असह्य दुःखोंमें डाल सकें ! परन्तु यह सब हमारी फूटका ही फल है । एक खेतके दो मालिक आपसमें लड़कर सत्वहीन हो गये हों, तो तटस्थ चिड़ियोंका भोग लगना निसर्गसिद्ध ही है । इसमें चिड़ियोंका दोष नहीं, किन्तु फूट फागके खेलनेवाले मालिकोंका ही है । परमात्मासे प्रार्थना है कि, वह हमको सुमति प्रदान कर, प्राचीन तरहकी होली खिलावें ।

—:*:—

इनके अतिरिक्त वङ्ग देशमें श्रावण शुक्ला सप्तमीको सीतलापूजन, भाद्रपद शुक्ला सप्तमीको कुक्कुटसप्तमी-व्रत, भाद्रपद शुक्ला अष्टमीको दूर्वाष्टमी (राधाष्टमी) व्रत, भाद्रपद शुक्ला नवमीको तालनवमी-व्रत, भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशीको अघोर चतुर्दशी उत्सव, भाद्रपद कृष्णा अमावास्याको आलोक अमावास्या-उत्सव, आश्विन शुक्ला चतुर्थीको मानचतुर्थीव्रत, कार्तिक शुक्ला अष्टमीको गोष्ठाष्टमी उत्सव, कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको भूतचतुर्दशी उत्सव, कार्तिक शुक्ला

नवमीको जगद्धात्रीपूजन, मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको अखण्डा द्वादशी व्रत, माघ शुक्ला सप्तमी (माकरी सप्तमी) को आरोग्य सप्तमीव्रत, माघ शुक्ला अष्टमीको भीष्माष्टमी उत्सव, माघ शुक्ला द्वादशीको आमलकी द्वादशीव्रत, फाल्गुन शुक्ला द्वादशीको गोविन्द द्वादशी व्रत आदि कितने ही छोटे बड़े व्रतोत्सव हुआ करते हैं ।

महाराष्ट्र देशमें आश्विन शुक्ला पञ्चमीको उपाङ्गललितापूजन, आश्विन शुक्ला अष्टमीको घटस्थान लक्ष्मीपूजन, आश्विन शुक्ला पौर्णिमाको कोजागरलक्ष्मीन्द्रपूजन, कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको हरिहरपूजन, पौष मासमें रामोच्चार जैसे बहुतसे नियम ग्रहण और दानोंके उत्सव, माघ शुक्ला चतुर्थीको दुण्ढिराजपूजन, माघ शुक्ला अष्टमीको भीष्मतर्पण, फाल्गुन कृष्णा अष्टमीको शीतलापूजन आदि बहुतसे व्रतोत्सव होते हैं ।

विभिन्न प्रदेशोंके महापुरुषोंकी जयन्तियाँ व्रतोत्सवोंमें ही परिगणित हो सकती हैं और उन उन प्रदेशोंमें धूम धामसे मनायी भी जाती हैं । श्रीभगवान् शङ्कराचार्य्य, श्रीसमर्थ रामदास, तुकाराम, ज्ञानदेव, एकनाथ, चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसीदास आदि महात्माओंकी जयन्तियाँ मनानेसे उनके पवित्र चरित्रोंका सर्वसाधारणके हृदयोंपर प्रकाश पड़ता है और उनके आदर्शानुसार आचरण करनेकी लोगोंमें प्रवृत्ति बढ़ती है ।

देशहितकर और लोकोन्नतिकारी इन व्रतोत्सवोंका देशमें जितना अधिक प्रचार होगा, उतना ही देशका मङ्गल होना अवश्यम्भावी है । श्रीभगवान्के पुनीत चरणकमलोंमें विनीत प्रार्थना है कि, वे आर्य्यसन्तान भारतवासियोंके हृदयोंमें ऐसी प्रेरणा करें, जिससे प्राचीन व्रतोत्सवोंका पुनरुद्धार हो और इस सदाचार पालनसे देशका अवनत शिर पुनः उन्नत हो सके ।

ॐतत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

———o———

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके
सभ्यगण और मुखपत्र।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय काशीसे "निगमागमचन्द्रिका" नामक एक हिन्दी भाषाका और दूसरा "महामण्डल मेगजिन" नामक अंग्रेजी भाषाका, इस प्रकार दो मासिकपत्र प्रकाशित होते हैं एवं श्रीमहामण्डलके अन्यान्य भाषाओंके मुखपत्र प्रान्तीय कार्यालयोंसे प्रकाशित होते हैं। यथाः—फिरोजपुर (पञ्जाब) के कार्यालयसे उर्दू भाषाका मुखपत्र और मेरठ तथा कानपुरके कार्यालयोंसे हिन्दी भाषाके मुखपत्र।

श्रीमहामण्डलके पाँच श्रेणीके सभ्य होते हैं। यथाः—स्वाधीन नरपति और प्रधान प्रधान धर्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े जमींदार, सेठ, साहूकार आदि सामाजिक नेतृगण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणोंमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं। यथाः—विद्यासम्बन्धी कार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्मकार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीयमण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायक सभ्य, विद्यादान करनेवाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्म्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं, जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं। हिन्दु कुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक सभ्या और साधारण सभ्या हो सकती हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषाका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २॥) ढाई रुपये देनेपर हिन्दु नरनारीगण साधारण सभ्य हो सकते हैं। साधारण सभ्योंको विनामूल्य मासिकपत्रिकाके अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको समाजहितकारीकोषके द्वारा विशेष लाभ मिलता है।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय।

जगतगञ्ज, बनारस।

श्रीमहामण्डल ग्रन्थमाला ।

स्थिर ग्राहकोंके नियम ।

(१) इस समय हमारी ग्रन्थमालामें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं-

मंत्रयोगसंहिता (भाषानुवादसहित)	१)
भक्तिदर्शन (भाषाभाष्य सहित)	१)
योगदर्शन (भाषाभाष्य सहित नूतन संस्करण)	२)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्य सहित)	१॥)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड	२)
" द्वितीय खण्ड	१॥)
" तृतीय खण्ड (नूतन संस्करण)	२)
" चतुर्थ खण्ड "	२)
" पञ्चम खण्ड	२)
" षष्ठ खण्ड	१॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड (भाषाभाष्य सहित)	१)
गीतावली	॥)
गुरुगीता (भाषानुवाद सहित नूतन संस्करण)	।)
हठयोगसंहिता "	॥)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत (नवीन संस्करण)	१)
कल्किपुराण (भाषानुवाद सहित)	१)
उपदेश पारिजात (संस्कृत)	॥)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य (नूतन संस्करण)	१)
शम्भुगीता (भाषानुवाद सहित)	॥।)
धीशगीता "	॥)
शक्तिगीता "	॥।)
सूर्य्यगीता "	॥)
विष्णुगीता "	॥।)
संन्यासगीता "	॥।)
रामगीता (भाषानुवाद और टिप्पणी सहित सजिल्द)	२)
आचारचन्द्रिका	॥)
नीतिचन्द्रिका	॥)
धर्मचन्द्रिका	१)
साधन चन्द्रिका	१॥।)
प्रवीण दृष्टिमें नवीन भारत	३)
नित्यकर्म-चन्द्रिका	।)
स्तोत्र कुसुमाञ्जलि	।)
धर्मप्रश्नोत्तरी	।)

(२) इनमेंसे जो कमसे कम ४) मूल्यकी पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदकर अथवा १) देकर स्थिर ग्राहक होंगे, उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ¾ मूल्यमें दी जायँगी ।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक पुस्तक खरीदनी होगी । जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी, वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी ।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहाँ वह रहता हो वहाँ हमारी शाखा हो तो वहाँसे, स्वल्प मूल्यपर पुस्तकें खरीद सकेगा ।

(५) जो धर्मसभा इस धर्मकार्य्यमें सहायता करना चाहें और जो सज्जन इस ग्रंथमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें, वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें । हमारे यहाँसे प्रकाशित अन्यान्य पुस्तकोंके लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइये ।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, अध्यक्ष शास्त्रप्रकाशक विभाग,
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय, जगतगंज, बनारस ।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद्।

प्रधानाध्यक्षा—हरहाईनेस धर्मसावित्री महारानी श्रीमती शिव-कुमारी देवी, नरसिंहगढ़।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी-महारानियों तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी निरीक्षकतामें, आर्य्यमाताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशीपुरीमें स्थापित की गई है। इसके निम्न-लिखित उद्देश्य हैं:—

(क) आर्यमहिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्य्यव्यवस्थाका स्थापन, (ख) श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित पवित्र नारी-धर्मका प्रचार, (ग) स्व-धर्मानुकूल स्त्रीशिक्षाका प्रचार, (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दु-सतियोंमें एकताकी उत्पत्ति, (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन और (च) हिन्दीकी उन्नति करना तथा (छ) इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये अन्यान्य आवश्यकीय कार्य्य करना।

परिषद्के विशेष नियमः—१म-इसकी सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुखपत्रिका "आर्य्यमहिला" मुफ्त मिलेगी। २य-स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकेंगी। ३य-यदि पुरुष भी परिषद्की किसी तरहकी सहायता करें तो वे पृष्ठपोषक समझे जायँगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी। ४र्थ-परिषद्की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैं:—

(क) कमसे कम १५०) एक बार देनेपर "आजीवन-सभ्या" (ख) १०००) एक ही वार या प्रतिमास १०) देने पर "संरक्षक-सभ्या" (ग) १२) वार्षिक देने पर "सहायक सभ्या" और (घ) ५) वार्षिक देनेपर या असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देनेपर "सहयोगिसभ्या" आर्य्यमहिला मात्र बन सकती हैं।

महापरिषद्की ओरसे काशीमें "आर्यमहिला महाविद्यालय" और "विधवाश्रम" स्थापित हुआ है। तत्सम्बन्धी, पत्रिका-सम्बन्धी तथा महापरिषत्सम्बन्धी सब तरहके पत्रव्यवहार करनेका यह पता है:—

विन्ध्येश्वरी प्रसाद शास्त्री, महोपदेशक

कार्याध्यक्ष "आर्य्यमहिला"

आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्कार्यालय,

श्रीमहामण्डलभवन जगत्गंज, बनारस।

भारतधर्म्म प्रेस और दो सप्ताहिक पत्र।

मनुष्योंकी सर्वाङ्गीण उन्नति लिखने पढ़नेसे होती है। पहिले समयमें शिक्षाप्रचारका कोई सुलभ साधन नहीं था, परन्तु वर्तमान समयमें शिक्षावृद्धिके जितने साधन उपलब्ध हैं, उनमें 'प्रेस' सबसे बढ़कर है।

सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिये भी इस साधनका अवलम्बन करना उचित जानकर श्रीभारतधर्ममहामण्डलने निम्नलिखित कम्पनीके द्वारा निजका

भारतधर्म्म नामक प्रेस

खोल दिया है। इसमें हिन्दी, अंग्रेजी और बंगलाका सब प्रकारका काम उत्तमतासे होता है। पुस्तक, पत्रिकाएँ, हैंडबिल, लेटरपेपर, वालपोस्टर्स, चेक, बिल, हुण्डी, रसीदें, रजिस्टर फार्म आदि छपवाकर इस प्रेसकी छपाईकी सुन्दरताका अनुभव कीजिये।

दो साप्ताहिक पत्र।

भारतधर्म सिण्डिकेट लिमिटेड नामक जो १० लाख रुपयोंके मूल धनसे कम्पनी खोली जा रही है और जिसके अन्तर्गत यह प्रेस विभाग रहेगा; उसकी ओरसे हिन्दी "भारतधर्म" और अंग्रेजी "महाशक्ति" ये दो सप्ताहिक पत्र निकलेंगे। हिन्दी पत्रका वार्षिक मूल्य ३) और अंग्रेजीका ६) रहेगा। दोनों पत्र सर्वाङ्ग सुन्दर और विशाल आकारके होंगे। कम्पनीका कमसे कम १ डिफर्ड शेअर खरीदनेवालोंको आजीवन दोनोंमेंसे एक पत्र विना मूल्य मिलेगा। नमूनेका अङ्क छप गया है और मुफ्त भेजा जाता है। पत्र व्यवहारका पता—

मैनेजिंग डाइरेक्टर,
भारतधर्म सिंडिकेट लिमिटेड,
स्टेशनरोड, बनारस छाउनी।

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालय।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्यालय काशीमें साधु और गृहस्थ धर्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल उपदेशक महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। जो साधुगण दार्शनिक और धर्मसम्बन्धी ज्ञान लाभ करके अपने साधुजीवनको कृतकृत्य करना चाहें और, जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्मप्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें, वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय,
जगत्गञ्ज, बनारस (छावनी)।